J. of U.P. Coll. Acad Soc.

Vol. 1-2 1984-85 No. 1, 1-2

शोधपत्रिका

उत्तर प्रदेश राजकीय महाविद्यालय एकेडेमिक सोसाइटी

JOURNAL

UTTAR PRADESH GOVT. COLLEGES ACADEMIC SOCIETY

अंक १, वर्ष १९८४
VOL. I, YEAR 1984

Vol. I – 1984 No. I
Vol. 2 – 1985 No 1-2

इलाहाबाद
ALLAHABAD

सोसाइटी की सदस्यता के लिए वार्षिक शुल्क २०) और प्रवेश शुल्क १०) है। सदस्यों को पत्रिका निःशुल्क भेजी जायेगी। अन्य व्यक्तियों और पुस्तकालयों के लिए पत्रिका का शुल्क ४०) है। धनराशि बैंक ड्राफ्ट द्वारा सचिव कोषाध्यक्ष, उत्तर प्रदेश राजकीय महाविद्यालय एकेडेमिक सोसाइटी, इलाहाबाद के नाम उच्च शिक्षा निदेशालय उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद के पते पर भेजी जानी चाहिए।
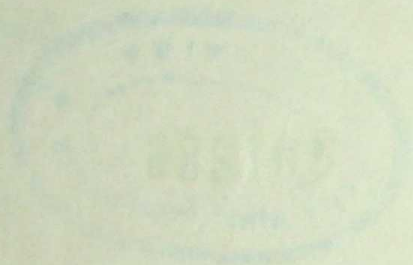
शोधपत्रिका

उत्तर प्रदेश राजकीय महाविद्यालय एकेडेमिक सोसाइटी

JOURNAL

UTTAR PRADESH GOVT. COLLEGES ACADEMIC SOCIETY

अंक १, वर्ष १९८४

VOL. I, YEAR 1984

इलाहाबाद

ALLAHABAD

शोध-पत्रिका उत्तर प्रदेश राजकीय महाविद्यालय एकेडेमिक सोसाइटी

अंक १, १९८४

JOURNAL OF UTTAR PRADESH GOVT. COLLEGE ACADEMIC SOCIETY

Vol. I 1984

विषय सूची

CONTENTS

विज्ञान वर्ग

CHEMISTRY

1. Changes in Glycoprotein of Buffalc Milk during postpartum. 1
   —C. Jhingran, K. D. Saxena & V. Mehra
2. Metal Ion Catalysed Thermal and Photochemical Synthesis of significant Biomolecules. 4
   —Sushil Gururani & U. S Agnihotri
3. Survey of Rohilkhand Region for Aromatic plants. 7
   —R. K. Baslas & Sudha Srivastava
4. Pollution Effect of Textile Effluents on Soil and Energy Value of Food. 12
   —R. K. Baslas & Somendra Singh
5. Spectral studies of Nickel (II) Complexes with Dimethyl Hidrazine and Aliphatic Dicarboxilic Acids. 16
   —Mrs. Sunita Sharma

BOTANY

6. Chemical changes in Saw-dust of Dalbergia Latifolia. 21
   —A. K. Srivastav
7. Some Important Grasses of Rishikesh, U. P. 25
   —J. C. Ghildiyal
8. Ecopathological studies on Abelmoschus Esculentus (L) Moench 1 29
   —D. N. Joshi & T. C. Joshi
9. Chlorflurenol : A Synthetic Regulator of Sex-expression and Fruit settings of Citrus limen L. 34
   —Arvind Kumar, B. C. L. Shah & C. L Tiwari

10. Effect of certain Growth Regulators on Sprouting of seed Corms of Colocasia Esculenta L (Arvi). 37
—M. A. Siddiqi & Kumar P.

11. Analysis of undergrowth Communities of Different Natural & Silvicultural Forest Ecosystems. 41
—Anita Chaudhary & Anil P. Joshi

ZOOLOGY

12. Biopotentiality of Germ cells in the crab, Potamon Koolooense (Rathbun). 47
—P. C. Joshi & S. S. Khanna

13. Records of some Nematodes Parasites of Avian Hosts from Garhwal Himalyan Ecosystem. 51
—Anand Singh Rautela

PHYSICS

14. Effect of Temperature on open Circuit Voltage of concentrated Sunlight Back Surface field Silicon Solar Cells. 56
—R. V. Singh

15. Pitch Angle Diffusion. 60
S. K. Khare, S. C. Sah, Megh Singh, Shobha Agrawal, & V. N. Sharma

16. On the Non-occurence of Triggered Emissions in TVLF Experiment. 63
V. N. Sharma, Megh Singh, S. C. Sah, S. K Khare

17. Recent Advancement in Solar Cells : A Review. 67
—S. C. Sah & S. K Khare

MATHEMATICS

18. समाकल रूपान्तरों के लिए सार्वीकृत प्रमेय 71
— नरोत्तम जोशी

साहित्य, मानविकी एवं वाणिज्य वर्ग

संस्कृत

1. कालिदास और कमल 1
—भवानीदत्त कांडपाल

हिन्दी

2. हिन्दी उपन्यासों में अस्तित्ववाद 7
—राजेन्द्र प्रसाद जोशी

3. हिन्दी उच्चारण और सुमित्रानन्दन पंत — 13
– श्याम गुप्त

4. एक महत्वपूर्ण कृति : श्रंगार शिरोमणि — 19
—ब्रजमोहन गुप्त

दर्शन शास्त्र

5. आधुनिक भारतीय दर्शन में शंकराचार्य के जगन्मिथ्यात्व सिद्धान्त की व्याख्या — 23
— कैलाश नारायण त्रिगुनायत

ENGLISH

6. Issac Asimov's Seience Fiction Technique. — 27
—Satish Kumar

7. From Here to Eternity. — 31
—Suresh Chandra

8. Nirad C. Chaudhuri on Hinduism. — 36
—Mrs. Ruby Siddiqi

PSYCHOLOGY

9. Self Disclosure Differences in the Areas of Money and Personality of Bhotia Mid Adolescents. — 40
—A. D Tripathi

10. Age differences in Risk Taking Behaviour. — 43
V. Sinha, G. S. Gupta & P. N. Arora

11. Students and Prohibition Programme. — 47
—R. D. Chaturvedi

ECONOMICS

12. Relevance of Malthusian Principle. — 52
—Shiva Narayan Gupta

13. Commercial Banks and Generation of Self Employment. — 58
—Harsh Vardhan Yajurvedi

HISTORY

14. Teaching of History is a Sacred Dharma — 64
—Om Prakash Gupta

15. Administration of Justice During the Mughal Rule in India (1556-1707 A. D.) — 68
—Ishrat Husain Ansari

16. Wnen Pant Suffered Lathi Blows — 72
—M. K. Rastogi

POLITICAL SCIENCE

17. Emerging Rural Leadership in a Backward Region : A Study of Gram Sabba Elections (April-May 1982) at Karnprayag Development Block in Chamoli District of Uttar Pradesh — 76
—H. K. Singh

SOCIOLOGY

18. The Rigvedic Verson of 'Arya' — 81
—Ram Lal Maurya

GEOGRAPHY

19. Geomorphological Appraisal of Meander Properties of Kharkai River and its Selected Tributaries (Bihar and Orissa) — 85
—Shiv Raj Singh

20. Commercial Land Rent Values with Special Reference to Central Complex Region of Rishikesh — 90
—A. C. Tripathi & Gulab Shankar Lal

COMMERCE

21. Present Position and Future Prospects of Customer Service in Banks — 95
—G. R Yadav

22. Innovative Banking & The Common Man — 102
—Dr. Mohd. Sayeed

23. कुमाऊं में सड़क यातायात की समस्यायें–एक आर्थिक सर्वेक्षण — 109
-- डा० एच० सी० जोशी

परिशिष्ट

24. उत्तर प्रदेश की उच्च शिक्षा के विकास में महाविद्यालयों का योगदान
—सतीश चन्द्र गुप्त, शिक्षा निदेशक (उच्च शिक्षा)
[एकेडमिक सोसाइटी के प्रथम अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण]

76

81

85

90

95

02

09

सम्पादकीय

राजकीय महाविद्यालयों की स्थापना का उद्देश्य प्रदेश में उच्च शिक्षा के आदर्श की स्थापना करना था। अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त, ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में शोधकार्य द्वारा नयी दिशाओं और नूतन संभावनाओं का अनुसंधान भी उच्च शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। उत्तर प्रदेश के अनेक राजकीय महाविद्यालय पिछड़े क्षेत्रों में हैं. जहां शोधकार्य और उसके प्रकाशन के लिए पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हो पातीं। हमारे वर्तमान शिक्षा निदेशक डॉ० सतीश चन्द्र गुप्त ने स्वयं एक मर्मज्ञ विद्वान और उच्च कोटि के शोधार्थी होने के नाते इस कठिनाई का अनुभव किया और उसके निवारण के लिए उत्तर प्रदेश राजकीय महाविद्यालय एकेडेमिक सोसाइटी की स्थापना की। इस मंच के माध्यम से उत्तर प्रदेश राजकीय महाविद्यालयों के शोध निरत प्राध्यापक अपने कार्य के प्रकाशन और ज्ञान के आदान प्रदान के लिए अवसर प्राप्त कर सकते हैं। मार्च १९८५ में सोसाइटी का प्रथम अधिवेशन राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महा-विद्यालय रामपुर में हुआ, जो पर्याप्त सफल रहा।

सोसाइटी की ओर से शोध पत्रों के प्रकाशन के लिए, एक शोध पत्रिका प्रकाशित करने का विधान किया गया. जिसका प्रथम खंड आपके हाथों में है। इस खंड में वर्ष १९८४ के प्रथम तथा द्वितीय अंक सम्मिलित हैं। वर्ष १९८५ से पत्रिका के दो अंक प्रतिवर्ष प्रकाशित करने की योजना है। इस योजना को सफल बनाने में आपका सहयोग अपेक्षित है।

प्रस्तुत पत्रिका एक शोधपत्रिका है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में किसी नये पदार्थ तथ्य या सत्य की खोज करना या फिर प्राप्त पदार्थ, तथ्य या सत्य का आकलन करके उसकी कोई नयी व्याख्या प्रस्तुत करना ही शोध है। इस शोध को एक विशेष शैली में लिपिबद्ध करके शोध पत्र तैयार किये जाते हैं, जिनके प्रकाशन के लिए प्रस्तुत पत्रिका का जन्म हुआ है।

पत्रिका के प्रकाशन में संरक्षण और मार्ग दर्शन के लिए डॉ० सतीश चन्द गुप्त, डॉ० ब्रज-मोहन लाल तिवारी तथा डॉ० ओम प्रकाश शर्मा के प्रति, शोध पत्रों के पुनरीक्षण आदि में सहयोग के लिए डॉ० वाल्दिया, डॉ० एस० बी० अग्रवाल, डॉ० जे० के० जैन, डॉ० एस० के० खरे, डॉ० एम० ए० सिद्दीकी, डॉ० अखिलेश कुमार, डॉ० मनमोहन शुक्ल, डॉ० शिवराज सिंह तथा प्रो० अशोक कुमार सिंह के प्रति संपादक मंडल अपना आभार प्रकट करता है। शुद्ध और आकर्षक मुद्रण के लिए हम शंकर प्रिंटिंग वर्क्स के श्री प्रदीप कुमार का धन्यवाद करते हैं। वह और भी अधिक धन्यवाद के पात्र होते यदि मुद्रण में विलम्ब न कर देते। जो भी हो इस अनपेक्षित विलम्ब के लिए हम अपने पाठकों के सम्मुख क्षमाप्रार्थी होते हुए आगामी अंक समय से निकालने का आश्वासन देते हैं।

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1984-85, Vol. 1 P. 1—3
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० १-३

CHANGES IN GLYCOPROTEIN OF BUFFALO MILK DURING POSTPARTUM

C. JHINGRAN, K. D. SAXENA* AND V. MEHRA**

Chemistry Department, Government Postgraduate College, Kotdwara

सारांश

ग्लाइकोप्रोटीन (प्रोटीओज-पेप्टोन) दूध में कम मात्रा में पायी जाती है। विभिन्न प्रकार के परिवर्तन दूध की ग्लाइकोप्रोटीन में नवजात शिशु के उत्पन्न होने के बाद पाये गये। रासायनिक अध्ययन के द्वारा कोलसट्राम में दूध की अपेक्षा हक्सोस, हक्सोसएमीन एवं प्रोटीन की मात्रा अधिक तथा फ्यूकोस व सियालिक एसिड की मात्रा बहुत कम, लगभग नहीं के बराबर, ज्ञात हुई। पेपर इलक्ट्रोफोरैसिस विधि द्वारा कोलसट्राम एवं दूध की ग्लाइकोप्रोटीन में दो-तीन पट्टियाँ (बैन्ड्स) पायी गयीं। लेकिन डिस्क इलक्ट्रोफोरैसिस विधि के द्वारा दोनों में ही छः-आठ पट्टियां पायी गयीं।

ABSTRACT

Glycoprotein (Proteose-peptone) is the minor protein component of milk. Various changes are involved in the milk glycoprotein during the postpartum. Chemical analysis indicated that colostrum contain high percentage of hexose, hexosamine and protein in comparison to milk, but little or no change was reported in the case of Fucose and Sialic acid. Glycoprotein of colostrum and milk gave 2 and 3 bands on paper electrophoresis, but disc electrophoresis analysis gave similar pattern (6-8 bands).

Milk consists of a complex and hetrogeneous mixture of proteins which are divided into two main groups. The major group is a mixture of phosphoproteins called casein and the second group called milk serum proteins which contain β-lactoglobulins, α lactalbumin, globulin and minor proteins. Reasonably vast literature has accumulated on the proteins of milk such as casein, lactalbumin and lactoglobulin but very little information is available on the glycoprotein (minor proteins) of whey. Recently, Joshi et. al. (1970) made studies on the postpartum changes

*Lecturer in Chemistry Department, Bareilly College, Bareilly.

**(Ph. D. Guide) Lecturer in Chemistry Department, Bareilly College, Bareilly.

involved in the proteose-peptone (glycoprotein) of milk. Attempts were therefore made to characterise glycoproteins by its physico-chemical properties like electrophoresis and chromatography, further quantitative estimation of carbohydrate and proteins in the glycoproteins was undertaken.

Samples of colostrum and milk were collected from buffalo of murrah breed and physico-chemical studies were carried out for the glycoprotein components.

Glycoprotein was isolated from colostrum and milk according to the method of Aschaffenburg (1946) with slight modification (Jhingran and Mehra, 1980). The isolation of colostrum glycoprotein was carried out as reported earlier (Jhingran and Mehra, 1980). In case of milk, the skimmed milk was diluted equally with distilled water and the glycoprotein was precipitated at pH 3.7 with ammonium sulphate as in the case of serum glycoprotein (Weimer et. al., 1954). The physico-chemical studies viz. eletrophoresis, chromatography were carried out in the colostrum and milk glycoproteins. The carbohydrate components in colostrum and milk glycoproteins were estimated by different methods as reported previously. The protein content of colostrum and milk glycoprotein was estimated by the method of Folin and Ciocalteu (1927) as modified by Lowry (1951) using bovine albumin as standard.

The dry sample of the glycoprotein of colostrum and milk were obtained as white amorphous powder. The yield of glycoprotein was higher in colostrum than milk. Glycoprotein showed heterogeneous nature which was indicated by paper electrophoresis. These glycoproteins were fractionated in two and three fractions in colostrum and milk glycoprotein respectively. In case of colostrum glycoprotein the second fraction (M-2) from the origin was broad and dark in comparison to the first one (M-1). In the case of milk glycoprotein first and second fractions were well defined in comparison to the third fraction. This indicates that the second fraction of colostrum glycoprotein was not further fractionated as in case of milk glycoprotein. Both the glycoproteins gave 6-8 bands on polyacrylamide gel electrophoresis. The aminoacid analysis of the glycoprotein showed 17 aminoacids in the colostrum as well as in milk. The prosthetic part of glycoprotein contained galactosamine, glucosamine, galactose, mannose, fucose, N-acetyl neuraminic acid and N-glycolyl neuraminic acid. The percentage of carbohydrate and protein were given in Table-1 which indicates hexose, hexosamines are higher in colostrum than milk whereas there is no change in the percentage of fucose and sialic acid. The protein components of glycoprotein of colostrum is also higher than milk.

Table–1

Percentage of Carbohydrate and Protein Components in glycoprotein of colostrum and Milk

Samples	Hexose	Hexosamine	Fucose	Sialic acid	Protein
Colostrum (24)	4.9 ± 0.07	3.53 ± 0.05	0.37 ± .04	2.19 ± 0.09	83.2 ± 0.14
Milk (24)	3.5 ± 0.5	2.4 ± 0.3	0.5 ± 0.1	2.2 ± 0.2	75.0 ± 5.0

REFERENCES

1. Aschaffenburg, R. (1946) J. Dairy Research, 14, 316.
2. Folin, O. and Ciocalteu, V. (1927) J. Biol. Chem. 73, 627.
3. Lowry, O. H , Rosenbrough, N J , Farr, A. L. and Randall, R. J. (1951) J Biol. Chem. 193, 265.
4. Jhingran, C. and Mehra, V. (1980) Indian J. Dairy Sci. 33, 110.
5. Joshi, V. K., Ganguli, N. C. and Bhalerao, V. R. (1976), Indian J. Dairy Sci 23, 60.
6. Weimer, H. E , Carpenter, C. M., Redlich. Moshin I., Little, M. S. and Nelson, E. L. (1954) Physiol. Zool. 27, 341-345.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc , 1984-85, Vol , 1 P. 4—6
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ४-६

METAL ION CATALYSED THERMAL AND PHOTOCHEMICAL SYNTHESIS OF SIGNIFICANT BIOMOLECULES.

SUSHIL GURURANI AND U. S. AGNIHOTRI
Deptt. of Chemistry,

Govt. Post Graduate College, Kashipur (NAINITAL)

सारांश

[पोटेशियम हेक्सासाइनोफेरेट (II) के जलीय घोल के थर्मल एवं फोटोकेमिकल डीकम्पोजीशन फ़ार्मलडिराइड तथा मेटल सेन्सटाइजर्स की उपस्थिति के उपरान्त ग्लाइसीन, एकेनीन, सीरीन, ग्लूटोमिक एसिड, एसपारटिक एसिड बनी। बनी हुई उक्त अमीनोएसिड की उपस्थिति क्रोमेटोग्राफी एवं स्पैक्ट्रोग्राफी के आँकड़ों तथा रासायनिक परीक्षणों के आधार पर की गयी है।]

ABSTRACT

Aqueous solution of Potassium Hexacyanoferrate (II) in presence of HCHO and metal sensitizers eg. TiO_2, U_2O_3, Fe_2O_3, V_2O_5, and MoO_3 was subjected to thermal and photochemical decomposition separately. It was found after thermal and photochemical treatment that certain significant biomolecules like glycine, alanine, serine, glutomic acid. aspartic acid etc. were found during the course of reaction. The formed aminoacids were identified by employing various techniques of chromatography and also by spectral analysis and chemical tests.]

INTRODUCTION

Formation of biologically significant organic molecules has been a subject of diversified studies. But in recent years it is believed that they were formed abiotically from simple hydrides of carbon, nitrogen and oxygen in primitive stages[1,2]. It has now been established that in early stages, earth had a substantial reducing atmosphere consisting of methane, ammonia and water. When such a reaction mixture of compounds acted upon by various energy sources, formation of HCN could be detected as a result of photodecomposition[3]. Miller et al[4] have also reported the formation of HCN as an intermediate by photodecomposing the similar

reaction mixture. It has been suggested[5,6] that HCN acts as a starting material in chemical evolution of molecular matrices of biochemical importance. Pathak et al[7,8,9] have also studied the formation of amino acids and their subsequent combination in forming protein like materials.

It is supposed that HCN stabilized itself by reacting with various metals forming complex compounds in primitive stages. The cyanide complexes would have decomposed slowly and produced HCN. The polymerisation of HCN and reaction with other simple molecules gave rise to different kinds of amino acids.

EXPERIMENTAL

Aq. solution of pot. hexa cyanoferrate (II) of 0.2 percent strength was prepared by dissolving appropriate quantity of the A. R. grade salt in double destilled water. 150 ml. of this solution was taken in each of the duly sterilized pyrex kjaldahl flasks of one set. In each flask, 5 ml. formaldehyde was added and in first kjaldahl flask 0.5 mg. of colloidal ferric oxide, in second 0.5 mg. colloidal molybdenum trioxide, in third 0.5 mg. titanium dioxide, in fourth 0.5 mg. vanadium penta oxide were added, where as no sensitizer was added in the fifth kjaldahl flask. The flasks were plugged with surgical cotton wool and were heated at $85 + 2^0$ C for about 160 hrs.

Similar set of experiments were also carried out for 160 hrs. in presence of solar radiations, ultraviolet light (radiations above 1800A^0) and artificial light separately using specially designed wooden tray and 1000 wt. electric bulb, having pott. hexacyano ferrate (II) solution of 0.2 percent strength, formaldehyde and above mentioned sensitizers in different pyrex kjaldahl flasks.

RESULT AND DISCUSSION

The effect of heat & solar, artificial & U. V. radiations on aquous solutions of pot. hexa cyano ferrate (II) in presence & absence of sensitizers e.g. TiO_2, Fe_2O_3, V_2O_5, & MoO_3 separately has been studied and formation of glycine, alanine, serine, glutamic acid, aspartic acid and aminobutyric acid and lucine has been reported alongwith some other unidentified products. The possible course of reaction may as-

$$K_4[Fe(CN)_6] = 4K^+ + [Fe(CN)_6]^{4-}$$

$$[Fe(CN)_6]^{4-} \xrightarrow[H_2O]{h\nu} [Fe(CN)_5OH] + HCN$$

$HCN + HCHO + H_2O \xrightarrow{\text{hydrolysis}} NH_2.CH_2.COOH$ (glycine)

$NH_2.CH_2.COOH + HCHO \xrightarrow{\text{condensation}} HO.CH_2.CH(NH_2).COOH$ (serine)
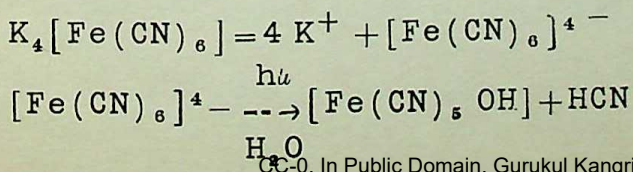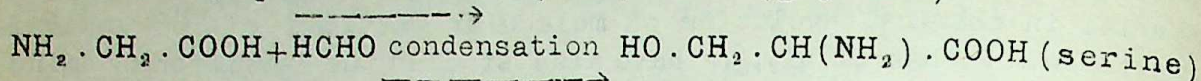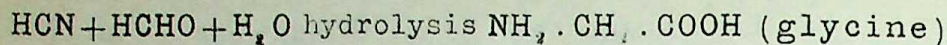
pot. ferrocyanide is a labile complex i. e. it can exchange its ligands. The cyanides are replaced by OH from water. The freedcyanide ion reacts with H and forms HCN. This HCN undergoes reaction with HCHO and water to form glycine. Glycine on condensation with HCHO form serine as

$NH_2CH_2COOH + HCHO \xrightarrow{\text{condensation}} HO.CH_2CH(NH_2)COOH$ (serine)
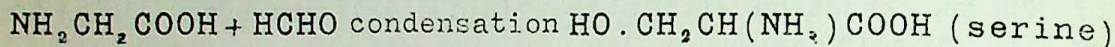
serine can give rise to aspartic acid by condensing with a molecule of HCHO and subsequent oxidation of the product formed as

$HO.CH_2.CH(NH_2).COOH + HCHO \rightarrow .CHO.CH_2.CH(NH_2)COOH + H\ O$

$CHO.CH_2.CH(NH_2)COOH + O \rightarrow HOOC.CH_2.CH.(NH_2)COOH$ (aspartic acid)
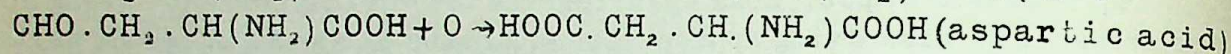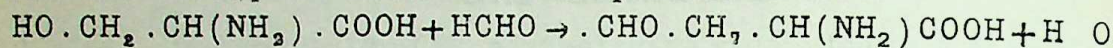
This aspertic acid on decorboxylation form alanine

$HOOC.CH_2.CH(NH_2).COOH \xrightarrow{\text{Decarboxylation}} CH_3.CH(NH_2).COOH$
α—alanine
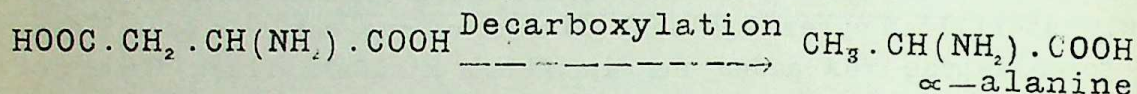
Simultaneously the resulting hydroxy acids may undergo photolysis forming a variety of products which were identified as CO, CO_2, hydrocarbons, alcohols, aldehydes ketonic acids etc.

The products were identified by chromatography, spectral methods and chemical tests.

REFERENCES

1. Oporin, A. I. 'The origin of life on earth' 1938.
2. Miller, J. R. Myers D. H., Inorg. Chem. Acta., 5, 215 (1970)
3. Abelson, P. M., Proc. Natt. Acad. Sci,, U. S. 55, 1365 (1376)
4. Palm, 'C' & Calvin M., J. Amer. Chem. Soc. 34, 2115 (1962)
5. Ferries, J. P. et. al. J. Mol. Biol,, 74, 511 (1973).
6. Ponnamperuma, C. Science, 147, 1572 (1965).
7. Pathak, H. D., Joshi, P. C. & Pandey V. N., Ind. J. Bio. Chem. Bio. Phys. 9 (2) 221-23 (1972).
8. Pathak H. D. & Khetwal K. S , Ind. J. Bio. Chem. 713, 211-14 (1970).
9. Pathak, H. D. & Joshi P. C., Ind. J. Bio. Chem. 7, 196-198 (1970).

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1984-85, Vol. 1 P. 7-11
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ७-११

SURVEY OF ROHILKHAND REGION FOR AROMATIC PLANTS

By
R. K. BASLAS & SUDHA SRIVASTAVA
Deptt. of Chemistry

Govt. Raza Post-Graduate College, Rampur

सारांश

[मानव जीवन और पौधों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रकृति प्रदत्त विभिन्न पौधे विविध तरीकों से मानव की सेवा करते हैं। सुगन्धित पौधों का उपयोग उद्योग धन्धों में विस्तृत रूप से हुआ है। हमारे सर्वेक्षण से निश्चित हुआ कि रुहेलखण्ड क्षेत्र में इक्यासी से अधिक सुगन्धित पौधे व्यापक रूप में मिलते हैं। रुहेलखण्ड क्षेत्र के इस सर्वेक्षण से औद्योगिक क्षेत्र में एक नयी दिशा प्रस्फुटित होने की आशा है। इस क्षेत्र के सुगन्धित पौधों की एक सूची भी है।

ABSTRACT

Human life is deeply associated with plants, Natural plants serve human beings in various ways. Aromatic plants are extensively used in industries. It has been confirmed by this survey that not less than eightyone aromatic plants widely grow in Rohilkhand region. This survey of Rohilkhand region to search aromatic plants is expected to open a new channel in the industrial realm of the region. The aromatic plants of this region are listed here.]

Since the beginning of human race man has been deeply associated with plants ranging in scale from mere existence of life to the present day burning problem of ecological imbalance resulting in the form of world-wide pollution. Plants give us varieties of taste from sweet and sour to bitter and pungent. Nature provides us different types of plants which serve human beings in various ways.

The plants extensively used in industries like perfumery, flavouring and pharmaceuticals etc. are known as aromatic plants. Its extract in the form of essential oils are put to various industrial uses like

manufacture of soap, toilet, cosmetics, perfumery articles, paints and varnishes, insecticides and deodorants.

In this paper an attempt has been made to make a comprehensive survey of aromatic plants of Rohilkhand region which are expected to be of commercial importance. The aromatic plants grown in this region are listed below.

AROMATIC PLANTS OF ROHILKHAND REGION

S.No.	Botanical Name	Common Name	Family	Aromatic parts
1.	Acacia farnesiana	Gand Babul, valayati kikar	Mimosoideae	Pods
2.	Aegle marmelos	Bel	Rutaceae	Leaves, Ripe fruits.
3.	Aerva tomentosa	-	Amaranthaceae	Leaves.
4.	Ageratum conyzoides	-	Compositae	Whole plant
5.	Allium cepa	Piyaz	Liliaceae	Whole plant
6.	Allium sativum	Lasun	Liliaceae	Bulb
7.	Andropogon muricatus	Khas-Khas	Gramineae	Seeds, root
8.	Anethum graveolens Syn-Peucedanum graveolens	Sowa	Umbelliferae	Fruits
9.	Anisomels ovata	-	Labiatae	Whole plant
10.	Artemisia vulgaris	Sarmi, Worm wood	Comositae	Whole plant
11.	Asparagus racemosa	Satmuli	Liliaceae	Flowers
12.	Blumea lacera	Kakranda	Compositae	Whole plant
13.	Blumea aromatica	-	,,	,,
14.	Brassica juncea	Asal rai	Cruciferae	Seeds
15.	Buddleia asiatica	Neemda	Loganiaceae	Flowers
16.	Calotropis procera	Madar	Asclepiadaceae	Leaves, stem
17.	Carthamus tinctorius	Kusum	Compositae	Seeds
18.	Carum copticum	Ajwain	Umbelliferae	fruits
19.	Carum roxburghianum	Ajmud	,,	Fruits

1	2	3	4	5
20.	Caryopteris wallichiana	Karui	Verbenaceae	Flowers, wood
21.	Cedrela toona	Tun wood	Meliaceae	Flowers
22.	Citrus aurantium	Khatta, Nibu	Rutaceae	Peel, leaves, flowers, young shoots
23.	Citrus limon Syn. C. medica	Bara Nimbu	,,	Peel
24.	Citrus Sinensis	Musammi	,,	Peel, leaves, flowers youngshoots
25.	Coriandrum sativum	Dhanya	Umbelliferae	Seeds
26.	Cuminium cyminum	Jira	,,	Fruits
27.	Curcuma longa	Haldi	Zingiberaceae	Dry rhizome
28.	Cyathocline lyrata	-	Compositae	Herb
29.	Datura fastaosa	Dhatura	Solanaceae	Seeds
30.	Dianthus caryophyllus	Carnations, clove pink	Caryophy-llaceae	Flowers
31.	Dillenia pentagyna	Aggai	Dilleniaceae	Flowers
32.	Diosphros embryopteris Syn. D. peregrina	Gab, Kala Tendu	Ebenaceae	Seeds, Flowers
33.	Ehretia accuminata	Chamror, Punyan	Boraginaceae	Flowers
34.	Euphorbia hirta	Dudhi	Euphorbiaceae	Leaves
35.	Euphorbia thymifolia	Chhoti Dudhi	,,	Dried leaves & Seeds
36.	Feronia limona Syn. F. elephantum	Kaithbel, wood apple	Rutauere	Leaves
37.	Foeniculum vulgare	Saunf	Umbelliferae	Fruits.
38.	Hedychium coronarium	-	Zingiberaceae	Flowers
39.	Ichnocarpus frutescens	Kalidudhi, Siamalata	Apocynaceae	Flowers
40.	Jasminum arborescens	Bara Kunda Chameli	Oleaceae	Flowers

1	2	3	4	5
41.	Jasminum grandiflorum Syn. J. officinable	Chambeli	,,	Flowers
42.	Jasminum pubescens	Chameli, Kunda	,,	,,
43.	Jasminum sambac Syn. J. multiflorum	Motia, Mongra	,,	,,
44.	Justicia gendarussa	Nili nargandi, Jagat madan	Acanthaceae	Flowers.
45.	Kcempferia rotunda	Bhui-Champa	Zingiberaceae	Flowers
46.	Kyllinga triceps	Nirbisi	Cyperaceae	Roots
47.	Laggera aurita	-	Compositae	whole plant
48.	Lathyrus odoratus	Sweet pea	Papilionaceae	Pod
49.	Lawsonia alba Syn. L. inermis	Hena, Mehndi	Lythraceae	Leaves, flowers
50.	Litsea polyantha	Maida,Karkawa	Lauraceae	Leaves.
51.	Matriceria chamomilla	-	Compositae	Whole plant
52.	Melia azadirachta	Neem	Meliaceae	Seeds,Flowers
53.	Melia azedarach	Bukain, dek	,,	Flowers
54.	Melilotus alba	Jangli methi	Papilionaceae	Dry plant
55.	Mentha arvensis	Marsh mint, Pcdina	Labiatae	Whole plant
56.	Mentha piperita	Peppermint	Labiatae	Whole Plant
57.	Menhta viridis	Spearmint	,,	,,
58.	Meriandra begalensis	Kafur Kapat	,,	Leaves
59.	Michelia champaca	Champa	Magnoliaceae	Flowers
60.	Moringa pterygosperma	Sanjna	Moringeae	Flowers, Seed.
61.	Nepeta ruderalis	-	Labiatea	Whole Plant
62.	Nerium odorum	Kaner	Apocynaceae	Flowers
63.	Nyctanthes arbortristis	Harsingar	Oleaceae	Flowers Leaves.

1	2	3	4	5
64.	Ocimum basilicum	Kali Tulsi, Sweet basil	Labiatae	Whole Plant
65.	Ocimum gratissimum	Ram Tulsi, Shrubby basil	,,	,,
66.	Ocimum sanctum	Tulsi	,,	,,
67.	Pandanus fascicularis	Serew pines, keorwa	Pandanaceae	Flowers
68.	Pergularia pallida	Surkiler	Asclepiadaceae	Herb
69.	Pogostermon plectranthoides	Pangla, lujra	Labiatae	Leaves
70.	Raphanus sativus	Muli	Cruciferae	Seeds
71.	Ricinus Communis	Arand, Andi	Euphorbiaceae	Seeds
72.	Rosa domascena	Gulab	Rosaceae	Flowers
73.	Salix tetrasperma	Baishi, Bhynsh	Salicaceae	Flowers
74.	Sphaeranthus indicus	Mundi	Compositae	Whole Plant
75.	Syzygium cumini	Jamun	Myrtaceae	Seeds
76.	Tagetes erectra	Genda	Compositae	Whole Plant
77.	Trigonella foenum-graecum	Methi	Papilionaceae	Seeds
78.	Vallaris henyei	Dudhibel	Apocynaceae	Flowers
79.	Vitex negundo	Nirgandi	Verbenaceae	Leaves
80.	Zingiber Cassumunar	Banada	Zingiberaceae	Rhizome
81.	Zingiber officinale	Adrak	,,	,,

REFERENCES

1. Duthie, J. F., 'Flora of the Upper Gangetic Plain', Vol. I & II, 1960.
2. Mathur, R. C., 'Systematic Botany', Agra Book Store, Agra, 1978.
3. Chopra, R. N., Nayar, S. L , Chopra I. C., 'Glossary of Indian Medicinal Plants', Council of Scientific & Industrial Research, New Delhi, 1956.

Jour. U. P. Govt. College Acad Soc, 1984-85, Vol., 1 P. 12-15
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० १२-१५

"POLLUTION EFFECT OF TEXTILE EFFLUENTS ON SOIL AND ENERGY VALUE OF FOOD"

R. K. BASLAS & SOMENDRA SINGH
Research Laboratory
Department of Chemistry,

Govt. Raza P. G. College Rampur

सारांश

[टैक्सटाइल मिल से निकलने वाले द्रव्यों के प्रभाव का अध्ययन मिट्टी के भौतिक रसायन गुणों एवं खाद्य सामग्री की शक्ति पर किया गया। टैक्सटाइल से निकले द्रव्य से सिंचाई के कारण मिट्टी की पी० एच०, कार्बनिक पदार्थ, कैल्शियम कार्बोनेट और फास्फोरस की मात्रा बढ़ती है और पोटेशियम की मात्रा भीतरी तह तक जाने के कारण कम हो जाती है। नलकूप से सिंचित मिट्टी में उत्पन्न गेहूं की खाद्य शक्ति की अपेक्षा मिल से निकले द्रव्य से सिंचित मिट्टी में उत्पन्न गेहूं की खाद्य शक्ति कम पायी गई।]

ABSTRACT

The effects of textile factory effluents on physico-chemical properties of soil and on energy value of food have been studied in the system Soil irrigated with textile effluents showed an increase in pH, organic matter, calc um carbonate content and phosphorus. Potassium decreased, probably due to it being leached to the lower layers of the soil. Energy value of wheat in case of effluent irrigated soil was found less in comparision to . tube-well water irrigated soil.]

INTRODUCTION

The disposal of waste water on land has assumed great importance in recent times. The pollutants present in the effluent of textile mill

create detrimental effects on receiving bodies. These harmful pollutants not only make the water unfit for use but also destroy the vegetation and crops where such water is discharged. Salts present in the effluent retard absorption of nutrients and water leads to alkaline conditions. The dissolved solids of the textile effluents clog the porous structure of the soil on which the effluent is discharged. Intake of air from the atmosphere by the plants and vegetations on which soil hampered and subsequently their growth retarded[1]. Some of the salt deposited on the soil from the effluent after water is evaporated due to natural drying, after the osmotic pressure balance across the roots of plants. This may further lead to adverse effects on the absorption of water and other nutritious components from the soil by the plants.

STUDY AREA

Effluents from the textile mill (RTLR) were discharged on land and used for irrigation the wheat crop plants and the another area was irrigated by tube-well water during the wheat crop season.

MATERIALS AND METHODS

Few soil samples were collected from the fields where textile waste water was used for irrigation the wheat crop plants and few soil samples were collected from the fields where tube-well water was used. These were ground, passed through 2 mm sieve and analysed for pH, organic matter, calcium carbonate phosphorus and potassium contents. Wheat plants were collected from the polluted and non-polluted soils and grains were removed and analysed for energy value of food.

The effects of effluents on the physico-chemical characteristics of soil were monitered as recommended (Jackson[2], 1958, Piper[3], 1950, Walkley and Black's[4], 1947, Olsen[5], 1947, Dutta[6], 1963). The effects of effluents on the energy value of food (wheat) was observed and compared the results with soil irrigated by tube-well water. The energy value of food was carried out on Toshniwal bomb calorimeter by the method as given in standard methods[7].

Observations are recorded in Table I and II.

Physico-chemical analysis of soil samples–Table-I

	Effluents irrigated soil					Tube-well water irrigated soil				
S.N.	pH	Cal. carbo. %	Org. matter %	Avail. P mg/kg soil	Avail. K mg/kg soil	pH	Cal. carbo. %	Org. matter %	Avail. P mg/kg soil	Avail. K mg/kg soil
1.	8.3	2.50	1.16	288	11.0	7.2	1.90	0.89	178	25.2
2.	8.2	2.62	1.30	291	17.6	7.2	1.75	0.83	192	18.0
3.	8.3	2.73	1.32	270	12.0	7.2	1.45	0.80	101	17.8
4.	8.1	1.94	1.38	250	13.5	7.8	1.82	0.85	185	22.3
5.	8.2	2.00	1.21	261	9.2	7.6	1.73	0.79	173	20.0
6.	8.0	2.84	1.10	243	15.1	7.2	1.62	0.94	168	19.5

Effect of textile factory effluent on energy value of food (wheat-T. Vulgare)

	Effluents irrigated soil	Tube well water irrigated soil
S.No.	Energy Value Cal./g	Energy value Cal./g
1.	3850.00	4544.98
2.	4226.43	4690.67
3.	4291.98	4580.69
4.	4215.26	4557.38
5.	3934.72	4632.60
6.	4012.34	4596.21

RESULTS AND DISCUSSION

The pH of the soil irrigated by textile effluents was found very high in comparision to soil irrigated by tube well water ie. 8-0-8.3, that is due to the effect of effluents on soil pH. The pH of the soil is mainly responsible for the retarding the growth of wheat crop the analysis of soil samples showed that the amount of calcium carbonate, organic matter, phosphorus were high in case of soil irrigated by textile

effluents (Table. I). These results were anticipated because the textile effluents pour considerable amounts of organic matter and other contents. The available potassium went down considerably, possibly due to it leaching downward to the lower layers[8].

Energy value of wheat grains decreased in case of effluents irrigated soil in comparision to tube well water irrigated soil (Table-II) Considering the data for the energy value of food it may be inferred that the reduction in energy value is due to not availability of sufficient nutrients by the plants from the soil hence lastly reduced the size of the grain and ultimately reduction in energy value of wheat of effluent irrigated soil.

REFERENCES

1. Batt, S. R., Subrahmanyam, K & Swami, K. R. "Pollution control in textile & allied industries", circular Report. Engg./116, 1981, 10.
2. Jackson, M. L. "Soil chemical analysis, Prentice Hall of India, New Delhi, 1967, 47,
3. Pipes, C. S., "Soil and Plant analysis", New York, Inter science publishers, 1950.
4. Walkly, A., and Black, I. A., Soil Sci., 63, 1947, 251-264
5. Olsen, S. R , Gole, C. L., Watanable, F S. & Dean, D. D. "Estimation of available phosphorus in soils by extraction with sodium bicarbonate, USDA, Circular, 1864, 939,
6. Dutta, N. P., Muhr, G. R., Sankarasubramoney, H., Daver, R. F., Leley, V. K. and Donabue, R. L., "Soil testing in India, 2nd edn. p 44, Unites states Agency for International development Mission to India. N. Delhi 1963.
7. Standard methods for analysis, ISI, (IS : 1359-1959).
8. Watson, K. S., Paterson, A. E., and Powell, R. D.," "J. wat. Pollut. control, Fed., 1977, 49, 24:34.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1984-85, Vol. 1 P. 16-20
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० १६-२०

SPECTRAL STUDIES OF NICKEL (II) COMPLEXES WITH DIMETHYL HYDRAZINE AND ALIPHATIC DICARBOXILIC ACIDS.

By
MRS. SUNITA SHARMA
Deptt. of Chemistry
M. B. Govt. P. G. College, Haldwani (Nainital), U. P.

साराँश

[स्पैक्ट्रा के अध्ययन और चुम्बकीय आंकड़ों के आधार पर डाईमिथाइल हाइड्रोजन और एलीफैटिक डाईकार्बोक्सिलिक अम्लों के साथ निकिल (II) के आक्ट्राहीड्रल यौगिक बनते हैं, किन्तु ये स्यूडो-आक्ट्राहीड्रल माने जाते हैं। तत्व परीक्षण से इनका सूत्र-$Ni(Me_2hy)_2(A)_2$ निर्धारित होता है। अवरक्त स्पैक्ट्रा संकेत देता है कि इन यौगिकों में धातु आयन अम्ल के आक्सीजन परमाणु से तथा हाइड्राजीन के नाइट्रोजन परमाणु के साथ संयुक्त होते हैं।]

ABSTRACT

On the basis of spectral studies and magnetic data of the Ni (II) complexes of dimethyl hydrazine and aliphatic dicarboxylic acid are found to be octahedral though these are considered to be pseude-octahedral. Elemental analysis confirms the formula $Ni(Me_2hy)_2(A)_2$. Infra red spectra indicates that the metalion is linked through oxygen atom of the acids and nitrogen atom of the hydrazine.]

Mixed ligand complexes of the transition metals have attracted attention in recent years because of their occurrence in many natural systems. The studies on mixed ligand complexes of transition metals are limited to spectrophotometry and potentiometry [1-5]. Comparatively little is known about the magnetic and spectral studies of mixed ligand complexes [6-7]. So it was presumed to synthesise the Ni (II) complexes with aliphatic dicarboxylic acids and Me_2hy and to characterise them by elemental anylysis, magnetic data and spectral studies.

EXPERIMENTAL

All chemicals used were of analytical grade or equivalent quality. Pure dimethylhydrazine is prepared from dimethydrazine hydrocholride [8].

The metal dicarboxylato salts and their complexes with N,N'-dimethyl hydrazine (Me_2hy) were prepared as reported earlier [7].

DISCUSSION

On the basis of analytical data (Table 1) these complexes have been formulated as Ni $(Me_2hy)_2(A)_2$ where A=oxalato (ox), succinato (succ), malonato (mal) or citrato (cit) ion. The magnetic moments of all the complexes of Ni (II) observed at room temperature lie between 2.7 to 3.18 B.M. (Table 1). The observed values indicate that the magnetic moment values are similar to those observed in octahedral complexes though the complexes are considered to be pseudo-octahedral [8].

In the Ni (II) complexes reported in the present work, four absorption bands have been observed in 9,900-10,100 cm^{-1},10,730-11,800 cm^{-1}, 17,800 - 18,600 cm^{-1} and 28,300 - 29,400 cm^{-1} regions. The first two bands are the split components of γ_1 and consequently can be assigned to the transition, $^3B_{1g}$ — a ^3E_g (γ_1) and $^3B_{1g}$ — $^3B_{2g}$ (γ_1). The remaining two bands have been assigned $^3B_{1g}$ — $^3T_{1g}$ (F) (γ_2) and $^3B_{1g}$ — $^3T_{1g}$ (P)(γ_3) and are not greatly affected by the low symmetary environment on account of the fact that the levels concerned are the $^3T_{1g}$ (F) and $^3T_{1g}$ (P) terms, which give rise to ($^3A_{2g}$ + ^3E_g) in D_4h symmetry. These two levels split in the reverse sense in the strong field limit, the splitting tend to cancel out. In almost all the cases only γ_1 has been found to split and γ_2 and γ_3 remain unsplit by the presence of low symmetry components. Ligand field paremeters (Table 1) D_q (E) and Dt have been evaluated making use of the equations,

$$E\,(^3B_{1g} - {}^3B_{2g}) = 10\,Dq\,(E) \text{ and}$$

$$E\,(^3B_{1g} - {}^3E_g) = 10\,Dq\,(E) - 35/4\,Dt$$

$$Dt = 4/7\,Dq\,(E) - Dq\,(A)$$

The distorted octahedral stereochemistry is further supported by the ratio γ_2/γ_1 which comes out to the 1.5—1.6, whereas this ratio in octahedral complexes (9) should about 1.8. The values Dt, which are measure of tetragonaltry have been found to increase as mal $\angle$succ $\angle$cit∞ ox, which suggests that the distortion in malonato complexes is maximum and minimum in oxalato or citrato complexes.

The splitting of the first band in the malonato and succinato complexes is nearly twice as large as in corresponding oxalato and citrato complexes strongly suggesting a cis-pseudo-octahedral configuration as the most probable one for oxalato and citrato complexes, whereas the configuration of the malonato and succinato complexes can be more plausibly regarded as trans-pseduo octahedral hence requiring bridging malonato and succinato complexes.

The major i.r. spectral bands, useful in diagnostic sense are collected in Table-2. The association of carboxylic acid is well known to take place through—COOH groups [10]. In free dicarboxylic acids an absorption of strong intensity appears near 3550 cm^{-1} which disappears in the formation of its metal salts. When COO$^-$ is formed the γ_{asy} and γ_{sym} carbonyl absorption appear in the region 1660-1570 cm^{-1} and 1460-1350 cm^{-1} respectively [11]. In the region 3380-3160 cm^{-1} one or two bands have been observed and are assigned to NH_2 streching vibrations and are lower in frequency then the bands observed in the corresponding hydrazines [12, 13]. In these complexes NH_2 bending frequency is coupled with γ_{asy} COO$^-$ frequency. The presence of (N-N) stretching vibrations at about 930 cm^{-1} indicate the unidentate behaviour of Me_2hy in these complexes [14, 17]. The metal nitrogen vibrations occur in the region 490—432 cm^{-1} [15, 16]. M-O stretching vibrations in the region 374-320 cm^{-1} support the involement of oxygen of the acid anions in the co-ordination.

On the basis of i.r. spectra it is has been concluded that in all the complexes metal ion is linked through oxygen atoms of the acids and nitrogen atoms of the dimethyl hydrazine.

TABLE - 1

Analytical data, magnetic moments and ligandfield parameters of mixed ligand complexes of Nickel (II).

Complex	Metal % Found (Calcd)	C % Found (Calcd)	H % Found (Calcd)	N % Found (Calcd)	U_{eff} B.M.	Dq (E)	Dq (A)	Dt
$Ni(Me_2hy)_2(ox)_2$	16.02 (16.55)	27.66 (27.28)	2.31 (2·25)	15.43 (15.78)	2.77	1,120	900	126
$Ni(Me_2hy)_2(succ)_2$	16.95 (14.29)	35.25 (35.06)	5.88 (5.85)	13.44 (13.63)	3.04	1,165	802	200
$Ni(Me_2hy)_2(mal)_2$	15.04 (15.34)	31.61 (31.35)	5.45 (5.22)	14.75 (14.64)	3.01	1,180	776	231
$Ni(Me_2hy)_2(cit)_2$	10.83 (10.50)	34.47 (34.72)	5.31 (3.01)	10.25 (10.02)	3.14	1,110	890	126

TABLE - 2

Infrared spectral bands of the mixed ligand complexes of Ni (II).

Assignments	$Ni(Me_2hy)_2(ox)_2$	$Ni(Me_2hy)_2(succ)_2$	$Ni(Me_2hy)_2(mal)_2$	$Ni(Me_2hy)_2(cit)_2$
γNH_2	3380sbr, 3260s	3460s	3440s	3260ssh, 3160s
$\gamma_{asy}(C=O)$ + NH_2 bending	1620s, 1577s	1595s	1660ssh, 1595s	1620ssh, 1600s
coupled- $\gamma_{sym}(C=O)$ and OH bending	1460s, 1350s	1410s	1360s	1390s
$\gamma(N-N)$	940m	930m	935m	940m
$\gamma(M-N)$ + $\delta(O-C=O)$	432m	465s	490m	440m
$\gamma(M-O)$ + ring deff.	374m	320m	320m	350s

REFERENCES

1 M. Naji and Y. Kidani, Nippon Kagaku Kaischi (1), 30-4 (1977).
2. S. Koch and G. Ackermann, Chem. Anal, 19, 23 (1974).
3. V. Kumari and G. K. Chaturvedi, Chem. Era. 10 (12), 15-19 (1975).
4. E. G. Sase and D. V. Jahagirdar, J. Inorg. Nucl, Chem, 37 (4), 985 (1975).
5, V. V. Ramanujam and U. Krishnan, Ind. J. Chem 19, A (8), 779-782 (1980).
6. C. Battistoni, G. Mattogno, A. Manaci and F. Tarli, J. Inorg. Nucl. Chem. 32, 2313-2319 (1970)
7. C. Battistoni, G. Ciullo, G. Mattogno, A. Monaci and F. Tarli, Gazz. Chim. Italiana 101, 661 (1971).
8. (Mrs.) Sunita Sharma, Ph. D. Thesis "Spectra and electronic structure of some metal complexes of hydrazine and its derivatives" 1982, Meerut University, Meerut (India).
9. I. S. Ahuja and R. Singh, Spectro Chim. Acta, 30 A, 2025 (1974).
10. M M. Davis and C. B. B M. Sutherland, J. Chem Phys 6, 755 (1938).
11. M. St Flett, J. Chem. Soc , 1962 (1951).
12. P A. Giguera and I. D. Liu, J. Chem. Phys , 20, 136 (1952).
13. J. R. Durig, S. Chatterjee, J M. Caspare and J. D Odom, J Inorg, Nucl. Chem. 34, 1805 (1972).
14 L. Sacconi and A. Sadacini, J. Inorg. Nucl. Chem , 25, 1389 (1963).
15. E. P. Bertin, I. Nakagawa, S. Mijushima, J. J. Lame and J. V. Quagliano, J. Amer. Chem. Soc., 80. 525 (1950).
16. G M Barrow, R. H. Vrueger and F. Basolo, J. Inorg. Nucl. Chem., 2, 340 (1956).
17. A. K. Srivastava, R. K. Agarwal, (Miss) V. Kapur, (Mrs.) S. Sharma, M. Srivastava and P. C. Jain, Transition Met, Chem., 7, 41-44 (1982)

Jour. U. P. Govt. College Acad Soc, 1984-85, Vol., 1 P. 21-24
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० २१-२४

CHEMICAL CHANGES IN SAW DUST OF DALBERGIA LATIFOLIA

A. K. SRIVASTAV
Department of Botany
Govt. P. G. College
RISHIKESH (Dehradun)

सारांश

[डलबरजिया लेटीफोलिया के ताजे बुरादे में १२ माह में जैविक अपघटन के कारण हुए रासायनिक परिवर्तन का मासिक अध्ययन करने पर सेलूलोज, हेमीसेलूलोज तथा नाइट्रोजन के प्रतिशत में ह्रास तथा लिग्नीन के प्रतिशत में वृद्धि पायी गयी। सेलूलोज, हेमीसेलूलोज तथा नाइट्रोजन का वृद्धि दर स्थिर नहीं था। प्रथम तीन महीनों में सेलूलोज, हेमीसेलूलोज तथा नाइट्रोजन क्रमशः 3.16, 2.50 एवं 8 89 प्रतिशत ही प्रयुक्त हुआ जबकि छः महीनों बाद 10.99, 15 80 एवं 14.44 तथा बारह महीनों बाद यह 41.81 52.37 एवं 32.33 प्रतिशत था। लिग्नीन का तीन, छः तथा बारह महीनों में प्रतिशत वृद्धि क्रमशः 0.14, 1.95 एव 17.72 रहा।

ABSTRACT

The chemical constituents of any litter including sawdust consist cell wall (Cellulose, hemicellulose, Lignin), cytoplasm reserve food materials and some inorganic matters. Cellulose is linear polymars of D-anhydro glucopyra-nose units linked by B 1-4 glycosidic linkage, Hemicellulose occurs as an amorphous mass around the cellulose and consists of relatively short mainly branched heteropolymers of gulcose, xylose, galactose, mannose and arabinose as well as uronic acid of glucose and galactose linked by 1-3, 1-6, 1-4 glycosidic bonds, Lignin is mainly built up of pheny building stones and carries major parts of methoxyl contents.]

MATERIALS AND METHODS

Fresh Sapwood saw dust of shisham (Dalbergia latifolia) was kept on an alcoholic washed cemented and shaded plateform. The sawdust was turned with a sterilised glass rod everyday.

Following methods were employed for the estimation of cellulose, hemicellulose, lignin and nitrogen and monthly obervations for twelve months were taken.

(A) Estimation of cellulose and hemicellulose :

The extraction of holocellulose (a collective name for cellulose and hemicellulose) was made by the process described by Green (1965).

(i) CELLULOSE--Cellulose was estimated from holocellulose by method given by Corbett (1965).

(ii) HEMICELLULOSE--From holocellulose, hemicellulose was estimated by the method described by Whistler and Feather (1965).

(B) Estimation of Lignin :

Lignin was estimated by treating the saw dust with 72% sulphuric acid for 4 hours. The mixture was diluted with water to 3 percent acid concentration and then boilled for 2 hours. The filtered residue was dried after washing.

Estimation of Nitrogen :—

Nitrogen was estimated by microkjeldahl distillation method (Jackson, 1960).

RESULT AND DISCUSSION

A critical study of the table (1) showed that the rate of decrease of cellulose and hemicellulose was not constant, only 3.16 and 2.50 per cent of cellulose and hemicellulose respectively were decomposed during first three months whereas after six months 10.99 and 15.80 and twelve months it was 41.81 and 52.37 per cent respectively. The lignin content increase during three, six & twelve months respectively by 0.14, 1.95 and 17.72 per cent. According to Linderberg (1948) the rate of cellulose and hemicellulose decomposition in litter is inversely proportional to its lignin content. Addition to lignin content might be due to formation of resistant complexes by the process of condensation and polymerisation of certain chemical and metabolities secreted by microflora during colonisation and their interaction.

Percentage fall in nitrogen content after three, Six and twelve months was 8.89, 14.44 and 32.33 respectively. The bulk of wood introgen is in the form of cell wall protein (Merrill & Cowling 1966) deposited in the primary middle lemella complex and thus not immediately available to colonising organisms. (King & Oxley 1977). Comparatively faster rate of cellulose and hemicellulose decomposition than nitrogen may revealed that wood inhabiting fungi utilies a large amount of cellulose and hemicelluloses in presence of relatively very small amount of nitrogen.

TABLE - I

	Feb.	Mar.	April	May	Jun	July	Aug.	Sept.	Oct.	Nov.	Dec.	Jan.
Nitrogen	0.90	0.87	0.82	0.79	0.77	0.75	0.72	0.69	0.66	0.63	0.62	0.60
Cellulose	46.57	45.92	45.10	44.05	42.97	41.45	39.35	37.26	34.74	32.16	29.44	27.10
Hemicellulose	27.65	27.50	26.96	25.92	24.72	23.28	21.83	20.03	18.26	16.53	15.05	13.17
Lignin	22.07	22.07	22.10	22.18	22.22	22.50	22.80	22.15	23.58	24.02	24.72	25.98

Figures : Show percentage of the contents per gram oven dry litter during different months.

REFERENCES

Brauns, F F (1952) The Chemistry of lignin Academic Press, London,

Corbett, W. M. (1965) Determination of alfa-cellulose of cotton and wood cellulose, In : Methods of Carbohydrate chemistry, vol. III (Whisler, R. L. ed.) Academic Press, London.

Cowling, E. B. (1970) Acta Univ Uspal No 164 : 19-20

Green, J. W. (1966) Wood cellulose In : methods Carbohydrate chemistry (Whistler, R. L. ed.) Academic Press, London.

Jackson, M. L. (1960) Soil chemical analysis, Asia, Publishing House, Delhi.

Kawase, K (1962) Jr. of Faculty or Agri Hakkaide University, 25. 2, 187-245.

King, B & T. A. Oxley (1975) Proc. 3rd Int Bio-deonSymp 987-994.

Lindebarg, G (1955) Pflauzenernahr Dung Bodent 69 : 142-150.

Merrill & Cowleng (1966) Can. J. Bot 44 1555-1580

Whistler, R. L. and M. S. Feather (1965) : Hemicelluloses : Extraction from annula plant with alkaline solution. (In : Methods in Corbohydrate Chemistry) Vol. V (Whistler, R, L, ed.) Academic Press London).

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1984-85, Vol. 1, 25-28
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० २५-२८

SOME IMPORTANT GRASSES OF RISHIKESH, U. P.

J. C. GHILDIYAL

Department of Botany

P. L. M. S. Govt. Post-Graduate College, Rishikesh (Dehradun)

सारांश

ऋषिकेश में तथा उसके निकट के स्थानों से ग्रामिनी कुल की ८७ जातियां एकत्रित की गईं जिनमें पैनिकम की ५ जातियां प्रभावी थीं।

ABSTRACT

In Collections made from different localities in and around Rishikesh Yielded 87 species of Grasses. Panicum was the most dominant genera represented by 5 species in the area.

INTRODUCTION

The grasses are well known from pre-historic period and are being used as food and fodder, from the time immemorial. The notable contributions on the grasses of Northern India are of, Duthie (1888), Hooker (1896), Bor (1940 & 1960), Raizada (1954) Raizada et al (1957) Raizada & Jain(1864)Dabadghao & Shankarnarayan (1973)etc. But the extensive study on this area has not been made so far.In view of increa-sing demand for reliable information concerning the various grasses used in this country the present work has been undertaken.

DESCRIPTION

Rishikesh, the gateway of uttarakhand and seat of many temples and ashrams is situated on the right bank of pious Ganges in the foot-hills of Himalaya. It is one of the important places of district Dehradun, situated at 384 M altitude and approximately 78°35′ Ecst longitude and 30°6′ 6′ North latitude. The area receives precipitation approximately 200 cms per annum. The temperature generally ranges 5 °c to 40°c. An average relative humidity of the area is about 72.72. The localities yielding maximun grasses are Pashulok grasslands, grassland of Govt. P.G. College campus and Manu swamp.

The list of grasses collected is as under--

Apluda aristata Linn.
Apluda mutica Linn.
Arthraxon lancifoleus Trin.
Arthraxon quartinianus A. Rich
Avena byzantina C. koch
Avena sativa Linn.
Bambusa nutans Wall. ex Munro
Bothriochloa intermedia (R.Br.) A. Camus
Bothriochloa pertusa Linn.
Brachiaria distachya Linn.
Brachiaria ramosa (Linn.) Slapf.
Cenchrus ciliaris Linn.
Cenchrus setigerus vahl.
Chionachne koenigii (Spreng.) Thwaites
Chloris dolichostachya Lagasca
Chloris gayana kunth.
Chrysopogon fulvus Spreng.
Chrysopogon scrrulatus Trin.
Coix lacryma-jobi Linn.
Cymbopogon citratus Dc.
Cynodon dactylon (Linn.) Pers.
Cynodon plectastachyus K. schum.
Cyrtococcum accrescens (Trin.) Stapf.
Cyrtococcum oxyphyllum Staud
Dactyloctenium aegyptium (Linn.) P. Beauv.
Dactyloctenium aristatum Link.
Dendrocalamus strictus (Roxb.) Nees.
Dichanthium annulatum (Forssk.) Stapf.
Digitaria ciliaris (Retz.) K.
Digitaria didactyla Willd.
Digitaria setigera Roth.
Echinochloa colonum (Linn.) Link
Echinochloa crusgalli (Linn.) P. Beauv.
Elusine coracana (Linn.) Gaertn.
Elusine indica Linn. Geartn.
Ergrostis aspera (Facg) Nees
Ergrostis atrovirens (Desf.) Trin.
Ergroftis tenella (Linn.) P. Beauv.
Ergrostis uniloides (Retz.) Nees

Erianthus ravennae (Linn.) P. Beauv.
Eulaliopsis binata (Retz.) Hubb.
Hordeum vulgare Linn.
Imperta cylindrica (Linn.) P. Beauv.
Isachne himalaica Hook.
Ischemum rugosum Salisb.
Leersia lackellii keng.
Leersea hexandra (Swartz) Prod.
Lolium temulentum Linn.
Narenga porphyrocoma (Hance) Bor.
Oplismenus burmannii (Retz.) P. Beauv.
Oplismenus compositus (Linn.) P. Beauv.
Oryza sativa Linn.
Panicum antidotale Retz.
Panicum coloratum (Linn.) Mont.
Panicum maximum Facq.
Panicum paludosum Roxb.
Panicum trypheron Schult.
Pennisetum purpureum schumach
Paspalidium flavidum (Retz.) A. Camus
Paspalum orbiculare Frost.
Paspalum scrobiculatum Linn.
Paspalum vaginatum Sw. Prodr.
Phalaris minor Retz.
Phragmitis karka (Retz.) Trin.
Poa annua Linn.
Pogonathrum paniceum (Lamk.) Hack.
Polypogon monospeliensis (Linn,) Desf,
Rottboellia exaltata Linn,
Saccharum bengalense Retz,
Saccharum officinarum Linn,
Saccharum spontaneum Linn,
Setaria glauca (Linn.) P. Beauv.
Setaria pallide-fusca (Schum.) Stapf & Hubb.
Setaria tomentosa (Roxb.) Kunth
Setaria verticillata (Linn.) P. Beauv.
Sorghum cernum Host,
Sorghum halepense (Linn.) Pers,
Sporobolus diander (Retz,) P, Beauv,
Themeda anathera (Nees) Hack.
Themeda arundinacea (Roxb.) Ridley

Thysonolaena maxima (Roxb.) O. Kuntza
Triticum aestivum Linn.
Urochloa panicoides P. Beauv.
Urochloa mosambicensis (Hack.) Dand.
Vetiveria zizaniondes (Linn.) Nash.
Zea mays Linn.

REFERENCES

Bor, N L. (1940), Indian For. Rec. (N. S.) Bot.

Bor, N. L. (1960) The Grasses of Burma, Ceylon, Indian & Pakistan; Preg. Press. London.

Dabadghao, R. M. and Shankarnarayan, K A. (1973) The Grass Cover of India. ICAR, New Delhi.

Duthie, J F. (1988). The Fodder Grasses of Northern India, Roorkee.

Hooker, J. D. (1986). Flora of British India, Vol. VII. Graminae. London.

Raizada, M. B (1954). Grasses of Upper Gangetic Plain and aspects of their ecology, Indian For. 80 : 24

Raizada, M. B., Bhardwaj, R. C, & Jain, S, K, (1957), Indian For, Rec. Botany, 4 : 171

Raizada, M. B. and Jain, S. K. (1964), Indian For. Rec. (N. S.) Botany. 6 : 151

—: o :—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1984-85, Vol. 1 P. 29-33
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १६८४-८५, खंड-१, पृ० २६-३३

ECOPATHOLOGICAL STUDIES ON ABELMOSCHUS ESCULENTUS (L.) MOENCH....1

Influence of Pathogenic Fungi on Biomass, Productivity, Organic matter, Chlorophyll content, Protein content and Calorific value

By
D. N. JOSHI, T. C. JOSHI
Department of Botany
Govt. P. G. College, Pithoragarh-262502

सारांश

पिथौरागढ़ के खेतों में एवेलमोसकस एस्कुलेन्टस की फसल पर ८ विभिन्न फफूँदियों के रोग पाये गये जिनके कारण पेड़ों के विभिन्न भाग प्रभावित होते हैं। रोग के कारण बायोमास, उत्पादकता, जैव पदार्थ, क्लोरोफिल की मात्रा, प्रोटीन तथा उष्मीय मान में काफी परिवर्तन पाया गया।

ABSTRACT

An intensive survey of local crop fields of Abelmoschus esculentus at Pithoragarh revealed that 8 fungi caused diseases in different part of the plants. The diseased plant parts exhibited a considerable change in the biomass, productivity, organic matter, chlorophyll content, protein content and calorific value.

Plant pathogenic fungi act as an important biotic factor as they are consumers in the ecosystem and can disturb the balance of biomass and productivity of the host. The pathogenic fungi are fully dependent on the host for their organic matter and protein requirement. Change in the biomass, productivity, chlorophyll content, organic matter, protein content, calorific value and several other types of metabolism in the infected tissues have been reported by various workers, (Chaudhury et al 1980, Garg et al 1976, Gupta et al 1981, Joshi and Dubey 1976, Kabi et al 1979, Mall and Sheikh 1977 and Scott and Smillie 1966.)

The present investigation aims at estimating the biomass, primary productivity and turn over of organic matter in relation to energy flow in healthy and diseased plant parts of Abelmoschus esculentus.

MATERIAL AND METHODS

The isolation and identification of fungi from the diseased parts were done by the routine mycological techniques. For the estimation of biomass the method proposed by Green Hill (1960) was followed. The estimation of productivity, organic matter, protein content was done by adopting the methods proposed by Mishra (1968). Chlorophyll contents were estimated by the method given by Withan et al (1971). The calorific value was determined by igniting the pallets of healthy and infected leaves in Parr Oxygen Bomb Calorimeter which was filled with oxygen at 15 atms. pressure. The energy value per gram of dry weight 'E' of the plant material was calculated using the following formula.—

$$E = \frac{W \Delta T - C}{M}$$

Where W=water value of the water bath system ΔT=rise in temperature, C=correlation factor for ignition wire, M=dry wt. in grams of the material burnt.

RESULTS AND DISCUSSION

Biomass (dry matter)--The biomass of healthy leaves of Abelmoschus esculentus was 23.56%. The foliage biomass generally decreased as the leaves got infected by different pathogenic fungi. The range of variation in the biomass of leaves infected with Alternaria alternata, Colletotrichum hibisci, Curvularia lunata, Cladosporium cladosporioides, Phoma hibernica was 21.40, 20.62, 17.52, 19.30, 19.70 and 18.20% respectively. Erysiphe cichoracearum and Helminthosporium nodulosum were the only exceptions which showed increase in foliar biomass; it was 24.74 and 24.78% respectively.

Productivity—The net primary productivity of healthy leaves was 106 mg/m2/hr. The values of net production for the leaves infected by Alternaria alternata, Colletotrichum hibisci, Curvularia lunata, Cladosporium cladosporioides and Erysiphe cichoracearum were 20.00, 102.50, 103.00, 92.50, 75.00 mg/m^2/hr. respectively. In case of Cercospora abelmoschi, Phoma hibernica and Helminthosporium nodulosum there was negative net production in the weight.

Chlorophyll Content—The quantitative estimation of chlorophyll-a, b, a/b ratio and total chlorophyll for the healthy leaves the values were chl a 1.117mg/gm, chl b 0.843mg/gm, chl a/b ratio 1.325 mg/gm and total chl 1.960mg/gm. In case of infected leaves the chl-a, chl-b, total chlorophyll content showed reduction. The chl a/b ratio also decreased in infected leaves except in the infections caused by Alternaria alternata, Cereospora abelmoschi and Phoma hibernica where a/b ratio increased. The minimum loss in chl-a was in Alternaria alternata infected leaves and the maximum in Helminthosporium nodulosum. On the other hand minimum loss in chl-b occurred in Colletotrichum hibisci infection and maximum in Cercospora abelmoschi.

Organic Matter—The accumulation of organic matter in the plants, both healthy and infected, was highly variable. The range of organic matter varied from 73.95% (maximum) in healthy and 58.96% (minimum) in Cercospora abelmoschi infected leaves.

Protein Content--The healthy leaves contained 11.647% protein. An increase in protein content was observed when the plants got infected with most of the fungi. The maximum increase, i.e. 15.71% was recorded in Helminthosporium nodulosum infection. In case of colletotrichum hibisci and Erysiphe cichoracearum a decrease in the protein content upto 9.021 and 9.388% respectively was recorded.

Calorific Value--Table--I provides information relating to the variation in calorific values of healthy and infected leaves. The calorific value of healthy leaf was 4.693k cal/gm dry wt. In Colletotrichum hibisci infection there was an increase in the calorific value while in all other cases reduction in calorific value was observed.

The lower biomass in the infected leaves as compared to healthy control might be due to lower amount of sugar, chlorophylls along with an enhanced activity of enzymes and more respiration. The only possible explanation for the increased biomass per unit area of infected leaves with Erysiphe cichoracearum and Helminthosporium nodulosum could be advanced on the basis of abnormal translocation of assimilates towards the infected area. This must be an additional factor for the reduction of fruit production in the infected plants because the assimilates are channelized in the different direction.

The reduction in net primary productivity may be due to increased rate of respiratory loss and reduction of chlorophyll-a, the main energy receiving centre. The increase in the O_2 up take and CO_2 evolution also decreases the organic carbon of the plant.

TABLE-I : The influence of pathogenic fungi on Biomass, Productivity Chlorophyll content, Organic matter, Protein content and Calorific value.

Sl. No.	Plant infected with	Biomass%gm fresh wt.	Productivity mg/cm²/hr	Chl-a mg/gm	Chl-b' mg/gm	Organic matter %	Protein %	Calorific value K cal/gm
1	Alternaria alternata	21.40	20.00	1.092	0.638	66.202	12.35	4.124
2	Cercospora abelmoschi	20.62	97.50	0.899	0.521	58.961	13.91	3.124
3	Colletotrichum hibisci	17.52	102.50	0.748	0.792	62.581	9.02	3.764
4	Curvularia lunata	19.30	103.00	0.570	0.772	70.339	13.33	4.828
5	Cladosporium cladosporioides	19.70	92.50	0.468	0.652	65.133	13.44	4.231
6	Erysiphe cichoracearum	24.74	75.00	0.430	0.630	70.856	9.28	4.312
7	Helminthosporium nodulosum	24.78	122.50	0.360	0.610	65.752	15.71	4.553
8	Phoma hibernica	18.20	40.00	1.038	0.672	68.271	12.09	3.861
	Healthy	23.56	106.00	1.117	0.843	73.959	11.64	4.693

Analysis of chlorophyll pigments of leaves reveals that there is a reduction in the quantity of chl-a in infected leaves. The chlorophyll-b is affected with slight variation, Reduction in chlorophyll contents may be due to the inhibition of its production by the pathogen or by the degradation of chlorophyllase, the enzyme essential for chlorophyll synthesis (Prasad et al 1976, Kabi et al 1979). The narrowing of chlorophyll a/b ratio was due to fungal action which continuously destroys chlorophyll-a and increase in chlorophyll ratio may be due to less effect on chlorophyll-b. (Mall and Sheikh 1977).

The reduction in calorific value may be due to increased respiratory rate of infected plant parts due to which most of the host energy was transferred to pathogen and diverted into different metabolic process of pathogen (Upadhyay and Dwivedi 1979). The present study also reveals that the leaves infectd with Colletotrichum hibisci showed increased calorific value. Possibly an increeasd lipid content may account for rise in calorific value as has been pointed out by the study of Bliss (1962).

REFERENCES

Bliss, 1962 Ecology, 43 : 453.

Chaudhary, Manjari and Manjeet Kaur, 1980; Indian Phytopath, 33 : 65.

Garg, I. D. and C. L. Mandahar, 1976; Phytopath, 85 : 298.

Green Hill, W. L , 1960; J. Brit. Grassl. Soc. 15 : 1-48

Gupta, V. P., B. P. Chakravarti and H. N. Gaur, 1981; 34 : 116.

Joshi, R. D, and L. N. Dubey, 1976; Indian Phytopath. 29 : 238.

Kabi. T , H. P. Nanda and A. M. Haldar, 1979; Indian J. Bot. Soc, 58 : 25.

Mall, L. P. and A. S, Sheikh, 1977 Indian J. Bot. 56 : 38.

Mishra, R. 1968. Ecology Work Book. Oxford and IBH Publishing Co. Calcutta, India.

Prasad, B., O. V. Verma and L. N. Daftary, 1976; Indian Phytopath. 29 : 91.

Scott, K. J and R. M. Smillie, 1966; Plant Physiol. 41 : 289.

Upadhyay, R. K and R. S. Dwivedi, 1979. Indian Phytopath. 32 : 434.

Withman, H. F., David Blaydes and R. M. Devlin, 1971. Experiments in Plant Physiology. Van nostrand Rinhold Co. New York.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1984-85, Vol. 1 P. 34—36
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ३४-३६

CHLORFLURENOL : A SYNTHETIC REGULATOR OF SEX-EXPRESSION AND FRUIT SETTINGS OF CITRUS LIMEN L.

ARAVIND KUMAR, B. C. L. Shah and C. L. TEWARI
Department of Botany, Govt. Post-Graduate College, Gopeshwar (Chamoli)

सारांश

सिटरस लाइमन के पेड़ों का जब क्लोरोफ्लुरिनोल के २००, ४०० एवं ८०० पी पी एम घोल से उपचार किया गया तो यह पाया कि मादा फूल तथा फल अधिक बनते हैं ।

ABSTRACT

Treatment of Citrus limon plants with Chlorflurenol at 200, 400 and 800 ppm produced female flowers and increased the number of intersexual flowers per plant. Fruit setting occured by flowers of both types and were Similar in appearance and taste but more in number.

INTRODUCTION

Citrus limen L is a common fruit crop of Garhwal Himalaya and is used in the preparations of lemonadle squash, Achars etc. It is an andromonoecious species and bear enough number of useless male flowers alongwith fruit producing bisexual flowers. Among several synthetic growth regulators so far studied, Chlorflurenol has been found as a successful agent to induce female flowers on male plants of Cannabis sativa (Mohan Ram and Jaiswal; 1971), Morus nigra (Jaiswal and Kumar, 1981) and Carica papaya (Kumar and Jaiswal, 1984) and on some monoecious species (Frankel and Galun, 1977). Nevertheless, its effects on sex expression and fruit settings on andromonoecious species are not worked out. Therefore, the present work was undertaken to study the effects of chlorflurenol on sex expression and fruit setting on Citrus limon L, an andromonoecious shrub.

MATERIAL AND METHODS

Previously grown plants of Citrus limon L were selected for experimentation. Plants bear flowers in the month of March and therefore the

spraying of Chlorflurenol (2-Chloro-9-Hydroxyflurene (9) carboxylic acid) was done in the last weak of February, 1983 upto runoff level followed by a second spraying after a fortnight. Three concentrations of Chlorflurenol, i.e. 200.400 and 800 ppm supplemented with 0.1% Triton X-114 as a wetting agent were tried employing four plants per treatment. Periodical observations were recorded counting the number and developmental stages of flowers of various sex types and fruits formed.

RESULTS

Chlorflurenol caused seviour burning of young leaves and tips of the branches even after a few days of spraying and drastically modified the morphology of leaves coming after a fortnight of second spraying. Seviority of symptoms were a direct function of the Chlorflurenol concentrations. At flowering, the chemical produced male and inter-sexual flowers alongwith a few female flowers at each concentrations used. Percentage distribution of flowers of various sex types per plant (± Standard Deviations) and number of fruits produced (± S.D.) has been given in the following table.

Concentrations in ppm	Percentage of male flowers	percentage of inter-sexual flowers	percentage of female flowers	Average number of fruits per plant
Control	31.4 ± 11.6	68.6 ± 11.9	0.0 ± 0.0	86.0 ± 14.5
200	27.2 ± 6.4	72.8 ± 14.4	0.0 ± 0.0	93.5 ± 12.8
400	19.3 ± 8.9	78.5 ± 13.6	2.2 ± 0.8	132.2 ± 21.9
800	15.5 ± 5.6	81.2 ± 13.0	3.3 ± 1.2	130.6 ± 24.5

In bisexual flowers produced on control plant, both pistils and stamens were fully developed whereas the latter produced after treatment the stamens showed various degrees of abnormality with only sterile pollen grains at all concentrations used. In vitro germination was not observed when the pollens from such intersexual flowers were cultured in Brewbaker and Kwacks Medium (1963). In very advanced stages of reduction, the anthers appeared as hyaline membranous structures without any pollen grains. On control plants, no female flowers were observed whereas at 400 and 800 ppm of the chemical, some completely changed female flowers without any trace of male structures were observed.

Fruit setting took place by induced female and intersexual flowers; Average number of fruits per plant (± S. D.) at each concentrations has been given in the table. Though the percent number of fruit bearing flowers (i. e. female and intersexual) increased with increase in the concentration of the chemical, yet at 800 ppm, the number of fruits were not increased (as compared to 400 ppm) perhaps because of more shedding and drying of floweres at this concentration. Fruits produced on treated plants resembled the normal fruits in shape, size and taste.

DISCUSSION

The findings presented in this paper demonstrate the inhancement of femaleness in andromonoecious species of S. limon by chlorflurenol. The chemical modifies the sex expression indirectly by interactions with endogenous growth hormones (Parups, 1980). Auxin is reported to be a femaleness inducing hormone (Frankel and Galun, 1977). Since chlorflurenol immobilizes the translocation of auxin (Gagianas and Burg, 1977), the latter might accumulate near the place of its origin/synthesis in plants treated with chlorflurenol. Therefore, it may be conjectured that in Citrus limon, auxin synthesized in the vicinity of developing male and bisexual flower primordia does not move away following chlorflurenol treatment aud its accumulation in greater amount in the vicinity of developing primordia supress the development of male sex organs but favours that of female sex organs.

REFERENCES

Brewbaker, J. L. and Kwack, B. H. 1963. Am. J. Bot , 50; 859.

Frankel, R. and Galun, E. 1977. Pollination Mechanism, Reproduction and Plant Breeding (Berlin, Heidelberg, New York : Springer Verlag)

Gagianas, A. A. and Burg, A. R.; 1977. Ann. Bot., 41; 1134.

Jaiswal, V. S. and Kumar, A. 1981.; Proc. Indian Acad. Sci (Plant Sci.).

Kumar, A. and Jaiswal, V. S. 1984 ; Proc. Indian Acad Sci. (Plant Sci.), (in press).

Mohan Ram, H. Y. and Jaiswal, V. S. 1971.; Naturwissenschaften, 58, 149,

Parups, E. V. 1980.; Physiol. Plant., 49; 281.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1984-85, Vol., 1 P. 37—40
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ३७-४०

EFFECTS OF CERTAIN GROWTH REGULATORS ON SPROUTING OF SEED CORMS OF COLOCASIA ESCULENTA L. (ARVI)

M. A. SIDDIQUI

Botany Department
Govt. Raza P. G. College,
Rampur U. P.

KUMAR, P.

Botany Department
Hindu College,
Moradabad U. P.

सारांश

[अरवी भारत की एक प्रमुख ट्यूबरस फसल है जो आलू से डेढ़ गुना अधिक पौष्टिक है। इसकी पैदावार को देखते हुए अरवी के वीज के अंकुरण का अध्ययन वहुत अधिक आवश्यक है। इस शोध प्रयोग में अनेक ग्रोथ हार्मोन्स (जैसे इन्डोल एसिटिक एसिड, जिबरेलिक एसिड और फ्लूरीनौल) का अरवी के अंकुरण पर प्रभाव देखा गया है।]

ABSTRACT

[Colocasia esculenta L. (Arvi) is an important tuberous crop of India which is one and half times more nutritious than Potato. The study of sprouting of the Colocasia esculenta L tubers is very important as far as its yield is considered. The effects of different growth hormones such as Gibberellic acid (GA_3), Indole acetic acid (IAA) and Flurenol (Fl) on sprouting of Colocasia esculenta L. Seed tubers have been observed in this research experiment.]

INTRODUCTION

Growth regulators affect sprouting of tubers and bulbs. Gibberellic acid is well known to break dormancy of seeds and buds in many plants

(Vegis, 1964) while in bulbils of Begonia-evansiana (Nagao & Mitsui, 1959, okagami & Nagao, 1973) and some species of Dioscorea (Okagami & Nagao, 1971), sprouting is inhibited by exogenously supplied GA_3. The present work was undertaken to study the effects of some growth regulators on sprouting of seed corms of Colocasia esculenta L.

MATERIALS & METHOD

Seed corms of Colocasia esculents L. var. Deshi of Uniform shape, size and firmness were selected for the present study. Each set of 20 corms were soaked in test solutions of flurenol; Fl (10,100 & 1000 ppm), gibberellic acid; GA_3 (1, 10 & 100 ppm) and indole acetic acid, IAA (10, 100 & 1000 ppm) for 24 hr. Distilled water treated seeds served as control. Seeds were planted in soil at a distance of 30 cm apart in rows which were apart 50 cm from each other. Observations were recorded on sprout emergence at 24 hr intervals and sprouting % was calculated.

RESULTS & DISCUSSION

The findings of the present experiment clearly indicate that emergence of sprout and % sprouting have been differentially affected with chemical treatments. In general, emergence of visible sprout has been delayed with all chemical treatments and flurenol was most effective. There was complete inhibition of sprout emergence by flurenol at 1000 ppm. GA_3 has been reported to shorten the rest period of number of seeds, shrubs, tubers and trees (Kahn & Goss, 1959; Rappaport et al., 1957; Vidaver & Hsiao, 1974) and hasten the emergence of sprouts in potato (Kumar and Baijal, 1978, 79). Delay in emergence of sprout with IAA may be due to accumulation of auxins like substances as reported by Marinos (1962). Inhibition with flurenol is in agreement with the findings of Agarwal & Kumar (1979).

% Sprouting also decreased with all hormonal treatment, however, % sprouting was higher with 10 and 100 ppm of flurenol in comparision to IAA and GA_3.

Table 1. Effects of Fl, GA and IAA on sprouting % of Colocasia esculenta L. in field conditions

Table 1. Effects of Fl, GA and IAA on sprouting % of Colocasia esculenta L. in field conditions

Hormonal treatment (ppm)	% SPOUTING - DAYS AFTER PLANTING																							
	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30
Control	4	12	20	36	56	68	72	76	84	84	84	84	84	84	84	84	84	84	84	84	84	84	84	84
Fl, 10	-	-	-	-	-	-	12	20	28	40	60	72	72	72	76	76	80	80	80	80	80	80	80	80
Fl, 100	-	-	-	-	-	-	-	-	-	8	16	24	24	28	32	32	36	36	36	40	48	56	60	64
Fl, 1000	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	
GA_3 1	-	4	12	16	24	36	44	48	64	64	68	68	68	68	68	68	68	68	68	68	68	68	68	68
GA_3 10	-	-	-	4	16	32	36	44	48	48	48	48	48	48	48	48	48	48	48	48	52	56	60	64
GA_3 100	-	-	-	4	8	12	16	24	40	40	48	48	48	48	48	48	48	48	48	48	48	48	48	48
IAA, 10	-	-	-	4	12	12	16	28	40	52	56	56	56	56	56	56	56	56	56	56	56	56	56	56
IAA, 100	-	-	-	-	4	12	24	32	36	36	40	44	44	44	44	48	48	48	48	48	48	48	48	48
IAA, 1000	-	-	-	-	8	12	12	12	16	16	16	16	16	16	16	16	16	16	16	16	16	16	16	16

Values are mean of three replicates

REFERENCES

Agarwal, A. K. & Kumar, P. 1979. Physiol. Ecol., 4, 198-200.

Khan, A., Goss, J. A. & Smith, D. E. 1957. Science, 125, 645-646.

Kumar, P. & Baijal, B. D. 1978. Physiol. Ecol , 3, 167-170.

Kumar, P. & Baijal, B. D. (1979). Bangladesh. J. Bot.,

Marinos, N. G. 1962. Physiol. Planta. 15, 6(3-674.

Okagami, N. & Nagao, N. 1971. Planta, 101, 91-94,

Nagao, M. & Mitsui, E. 1959. Studies on the formation and sprouting of aerial tubers in Begonia evansiana Andr. III. Effect of gibberellin on the dormancy of aerial tuber. Sci. Rep. Tohoku Uni. 4th Ser. (Biol.), 25, 199-2(5.

Rappaport, L., Lippert, L. F. & Timm, H. 1957. Am. Potato J., 34, 254-260.

Vegis, A. 1954. An. Rev. Plant Physiol., 15, 185-224.

Vidaver, W. & Hsiao, A. H. 1974. Plant Physiol., 35, 266-268.

—:o:—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1984-85, Vol, 1P. 41–46
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ४१-४६

ANALYSIS OF UNDERGROWTH COMMUNITIES OF DIFFERENT NATURAL AND SILVICULTURAL FOREST ECOSYSTEMS

ANITA CHAUDHARY AND ANIL P. JOSHI

Department of Botany, Post-Graduate College, Kotdwara

सारांश

[प्रस्तुत शोध में प्राकृतिक रूप से उगे वनों तथा तीन विभिन्न लगाये गये वनों के नीचे उगने वाली वनस्पतियों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य यह दर्शाना भी था कि आयातित वृक्ष प्रजातियों से उत्पन्न पारिस्थितिकी का इनके नीचे उगने वाली प्रजातियों पर क्या प्रभाव पड़ता है।]

ABSTRACT

[The study presents undergrowths of three plantations against natural forest ecosystems. The data obtained have also been compared to the undergrowths of Chir and Sal forest. The study aiming at revealing the difference between natural forest ecosystems and a modified climate created due to plantations of exotic species.]

INTRODUCTION

The ground vegetation plays a very important role in ecological characteristics and classification of the forests, but in most of the situations it constitutes only a small portion of the total biomass of the forest ecosystem (Ovington, 1955, 1957, 1959; Ovington and Madgwick, 1959; Baskerville, 1966; Hendersen, 1970). The production of herbaceous ground vegetation influences several ecosystem functions, such as grazing, reproduction of tree and shrub species and nutrient conservation against leaching and runoff.

Only limited studies of forest ground layer of natural and silvicultural forests are available, in India (Singh 1978, Singh and Yadav 1980, Mathur et al. 1982, Shanker Vinod et al. 1966, Joshi and Agrawal 1982, Joshi et al. 1983). However, there is still paucity of data regarding undergrowths of natural and plantations of different exotic species in different climatic zones.

MATERIAL AND METHODS

The undergrowths in following four fenced forest sites were selected at foot-hills of Kotdwara (26°46′ N latitude and 78°30′E longitude, 395m above mean sea level).

FOREST TYPES	AGE OF THE STANDS (in years)
1. Miscellaneous deciduous forest (Natural)	
2. TECTONA GRANDIS plantation	14
3. CASSIA GLAUCA plantation	7
4. EUCALYPTUS hybrid plantation	8

The vegetation was analysed by List Count Quadrat Method (Phillips 1959) with 25X25 cms size quadrat. IVI of different species were calculated by the method described by Cain and Castro (1950). the undergrowth were further compared to undergrowths of SHOREA ROBUSTA (Joshi and Agarwal 1982) and PINUS ROXBURGHII (Joshi et al, 1983).

RESULT AND DISCUSSION

On the basis of IVI, four different forest undergrowths communities were observed. CYNODON DACTYLON-ERAGROSTIS TENELLA community, CYNODON DECTYLON and RUNGIA PARVIFLORA community, CYNODON DACTYLON-CASSIA TORA community and CYNODON DACTYLON OPLIMENUS COMPOSITUS community were found under natural deciduous forest, TECTONA GRANDIS, CASSIA GLAUCA and EUCALYPTUS hybrid, respectively.

A comparative ecological study of different natural and silvicultural forests reveals that maximum number of species were found in natural deciduous forest and minimum under Eucalyptus. Similarly undergrowths of TECTONA GRANDIS and CASSIA GLAUCA recorded low diversity (Table 1). The reason may be attributed to overwood effect. The major factors which have direct or indirect effect on the undergrowths are light interceptions, precipitation, canopy structure, allelopathic effect root system, nature of liter decomposition and its rate (Ambast 1970).

Natural forests are result of series of interaction in species as well as between species and soil. The species of undergrowth and over-wood which are growing together strike an equilibrium with respective one another and with underlying soil. Therefore, natural forest are the result of long-back interaction for existence and natural processes are main determinents for the presence of enormous diversity in flora, here (Odum 1963).

In contrast, sivicultural forest ecosystems are man made and modified from the natural. The vegetation (biotic system) in such ecosystem is not in equilibrium with soil system (Abiotic system) and therefore may create limitation for one of the above part of the ecosystem.

In man made ecosystems which are too made up of one type of species (generally monoculture) lack any ecological relationship with other biotic and abiotic components of the system. These monocultures as have not met any prerequisite successional stages are deprived of equilibrium like that of their natural counterparts.

The most important factor for the undergrowth of any forest ecosystem is microclimate. It depends upon growth architecture, light interceptions, soil temperature, soil moisture etc. In PINUS ROXBURGHII high soil temperature and low moisture limits growth of mesophyllic species. Heavy litter fall and consequently acidity in the soil are other limiting factors (Joshi et al. 1983).

The undergrowth in SHOREA ROBUSTA, is, in contrast mainly consists of mesophyllic grasses and dicots as microclimate is pronouncely favourable for them (Joshi aud Agarwal, 1982).

In the present investigation the low species diversity was found under EUCALYPTUS hybrid. Similarly, other plantations as well recorded less species as compared to natural. It was mainly because of specific microclimate which a few species can withstand. Large leaf and shallow root system of TECTONA GRANDIS, allelopathic effect of leaves of EUCALYPTUS hybrid (Rao and Reddy 1984) and compact canopy structure of CASSIA GLAUCA may be the limiting factors in the present investigation (Anderson, 1969).

UNDERGROWTHS OF DIFFERENT FOREST TYPES

Table-1

Name of the Forest	Natural mixed deciduous forest	Tectona grandis	Cassia glauca plantation
	1	2	3
1. Total no. of species occured	46	23	21
2. No. of dicots	28	13	14
3. No. of monocots	18	10	7
4. Ratio of dicots and monocots	1:5:1	1:1	2:1
5. Dominating species	Cynodon dactylon (IVI97.43) Eragrostis tenella (IVI 35.50) Cassia tora (IVI 32.75) Brachiaria ramosa (lVI 28.84) Desmodium triflorum (IVI 25.65)	Cynodon dactylon (IVI 98.18) Rungia parviflora (IVI 55.70) Grewia tenex (IVI 21.13) Evolvulus nummularius (IVI 9.34) Murraya koenigyii (IVI 12.32)	Cynodon dactylon (IVI 136.31) Cassia tora (IVI 31.90) Evolvulus nummularius (IVI 25.16) Panicum adscendens (IVI 12.76)
6. Maximum IVI record	Cynodon dactylon (97.43)	Cynodon dactylon (98.18)	Cynodon dactylon (136.31)
7. Minimum IVI record	Anthospermum hispidum (0.47)	Dioscorea bulbifera (3.05)	Ageratum conyzoides (0.94)
Source	Present investigation	Present investigation	Present investigation

Table-1— Continued.

Name of the Forest	Eucalyptus hybrid plantation 4	Pinus roxburghii (natural forest) 5	Shorea robusta (natural forest) 6
1. Total no. of species occured	18	30	50
2. No. of dicots	12	16	39
3. No. of monocots	6	14	11
4. Ratio of dicots and monocots	2:1	1:1	3.5:1
5. Dominating species	Cynodon dactylon (IVI 81.33) Oplimenus compositus (IVI 48.86) Rungia parviflora (IVI 33.61) Bothrichloa intermedia (IVI 21.13)	Eragrostis brachyphylla Eragrostis pilosa Eriophorum gracile Anaphallis busua	3 grasses and 1 dicot
6. Maximum IVI record	Cynodon dactylon (81.33)		
7. Minimum IVI record	Ageratum conyzoides (1.32)		
Source	Present investigation	(Joshi et al., 1983)	(Joshi and Agarwal, 1982)

REFERENCES

Ambasht, R. S. and A. N. Mayura (1970). TROP. ECOL., 10 (2) : 86-193.

Anderson, R. C , O. L. Louk and A. M. Swann (1969) ECOLOGY, 50 : 225-263.

Baskerville, G. L (196( ). FORE. SCI. 12 : 49-53.

Cain, S and G. M. deo Castro (1959). 'Mannual of vegetation analysis'. Harper and Row Inc., New York.

Joshi, A. P. and A. K. Agarwal (1982). IND. JOUR. ECOL. : (In press).

Joshi, A. P., S. K. Gupta, A. K. Agrawal and A. Chaudhary (1983) IND. FORE., (in press).

Handerson, J. A. (1970). Biomass and composition of understorey vegetation in some ALNUS RUBRA stands in Western Oregon. M. S. Thesis, Oregon state University, Corvallis, 64 pp.

Mathur, H. N , Naveen Jain and S. S. Sajwan (1982), VAN VIGYAN, 20 (3 & 4).

Odum, E. P (1963) SCI. 162 : 264-270.

Ovington, J D. (1955). ECOLOGY, 43 : 1-21.

Annonymus (1957) ANN. BOT. 21 : 287-314.

M. A. I. Madwick (1959) EOR. SCI , 5: 344-355.

Rao, Swami N. and P. Chandrashekhar Reddy (1984). IND. FOR. 110.

Shankar Vinod and S. R. Saxena (1966). Vegetation under various tree canopyes. Ann. Prog. (C A. Z. R. I.) Jodhpur.

Singh, A. K (1978). Comparison of primary productivity and energatics of savanah and teak (TETONA GRANDIS Linn.) plantation of Chandraprabha region, Varanasi, Ph. D. Thesis, B. H. U.

———— —

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1984-85. Vol. 1, P. 47-50
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ४७-५०

BIOPOTENTIALITY OF GERM CELLS IN THE CRAB, POTAMON KOOLOOENSE (RATHBUN)

P. C. JOSHI AND S. S. KHANNA

Department of Zoology, Govt. P. G Gollege, Pithoragarh.

सारांश

[कुछ परिपक्व नर पी० कूलूएन्स के शुक्रधर नलिकाओं में एक या दो अंडक पाये गये हैं परन्तु किसी भी मादा के अण्डाशय में शुक्राणुओं का पाया जाना नहीं देखा गया है इससे पता चलता है कि नर की प्रारम्भिक जनन कोशिकाओं में उभयलिंगी सामर्थ्य होती है। किसी परिपक्व शुक्रधर नलिका में अंडक के पाये जाने के दो प्रमुख कारण हो सकते हैं—

१—भ्रूणावस्था में एण्ड्रोजेनिक ग्रन्थियों के विकास से पूर्व ही कुछ जनन कोशिकाओं का अंडक के रूप में विकसित हो जाना या

२—परिपक्व नर में एण्ड्रोजेनिक हॉरमोन का पूर्ण रूप से किन्हीं शुक्राणुजनन कोशिकाओं पर असर न होने से. उनका अंडक में परिवर्तित हो जाना।

ABSTRACT

The presence of one or two oocytes within a few seminiferous tubules of testes have often been observed in some adult male specimens of P KOOLOOENSE. Female specimens were never seen to contain sperms in their ovaries. This indicates bipotentiality of early germ cells in males. The presence of oocytes within a functional testis may either be due to differentiation of some of the indifferent germ cells into oocytes before the development of androgenic glands during the embryonic period, or in adults, due to the lack of sufficient musculinizing influence of androgenic hormone on certain indifferent spermatogonia that led their development towards oocytes]

INTRODUCTION

Appearance of ooctyes within the functional testis have been reported in few bisexual crustaceans (Carlisle 1960, Charniaux-Cotton and Kleinholz 1964) and lower Vertebrates (Turner and Bagnara 1973). Studies on experimental manipulation of sexual differentiation and sex

00 Jt Secretary of Education, U P., Lucknow.

reversal have also indicated that the early germ cells have the potential to develop into either male or female germ cells. (Carlisle 1960, Charniaux-Cotton 1960, Dodd 1960, Payen 1980). The present note reports the germ cell anamoly in the crab P. Koolooense.

The present observations were made while studying the seasonal histological changes in the testes and ovaries of P. Koolooense (Joshi and Khanna 1982_a, 1982_b). 15-20 adult live specimens of each sex (carapace widthe 3.8-4.5 cm.) were collected from, a local stream in each month. Gonads were dissected out and fixed in Bouin's fluid. Paraffin sections were out at 5 µ thickness and stained with Delafield's haematoxylin or Heidenhain's iron haematoxylin using eosin as counterstain. The histological conditions of the gonads were examined.

RESULT & DISCUSSION

Usully the seminiferous tubules consist of spermatogenetic cells at different stages of development. In few cases, some of the tubules were often found to contain one or two oocytes alongwith large number of spermatogenetic cells. These oocytes are young and yolk deposition was never seen in them. On the other hand, the spermatogenetic cells were not found to occur in any of the ovaries examined.

It has long been realized that the final morphological and functional expression of the gonad of a genetically determined sex is mainly under the control of hormones, particulary the sex hormones. Unlike vertebrates, the male sex hormones in crustaceans does not originate in the testes but in separate androgenic glands (Charniaux-Cotton 1958, Joshi and Khanna 1984). In certain crustaceans, the androgenic glands have been found to maintain all the primary and secondary male sexual characters (Charniaux-Cotton and Kleinholz 1964, Payen 1980, Joshi and Khanna 1984). In gonochoristic crustaceans, implantation of this gland or injection of androgenic gland extract into a functional female, initiate transformation of ovary into testis (Charniaux-Cotton 1960, Charninux-Cotton and Kleinholz 1964, Payen 1980). The surgical removal of this gland causes cessation of spermatogenesis and finally degeneration of the testis (Charniaux-Cotton 1960, 1965; Payen 1980). In some bisexual decapods, the spermatogonia differentiate into oocytes when the androgenic glands are small or inactive (Payan 1980). In protandric hermaphrodites, the termination of male phase or the on set of female phase corresponds with regression of androgenic glands (Carlisle 1960, Charniaux-Cotton and Kleinholz 1964). In these forms the germinal

epithelium alternatively give rise to spermatogonia and oogonia. Furthermore, the spermatogonia of certain malacostracans, when cultured In Vitro, autodifferentiate into oocytes in the absence of androgenic gland hormone (Payen 1980).

These obsrevations also explain the bipotentiality of early germ cells, even in the adults individuals.

There appear two possibilities regarding the occasional presence of oocytes within the seminiferous tubules of male P. Koolooense. Firstly, before the development and activation of androgenic glands during embryonic stage of these individuals, some of their indifferent germ cells might have started their differentiation and in absence of specific influences (androgenic hormone) they developed into oocytes. Secondly, after complete development and activation of androgenic glands in such males, some of their indifferent spermatogonia might have escaped the musculinizing influence of the androgenic gland hormone and differentiated into the oocytes instead of spermatocytas. Further growth and yolk formation could not occur in these oocytes, probably due to the absence of the female hormonal environment.

Charniaux-Cotton and Kleinholz (1964) suggested that within the same individual the response of androgenic hormone can vary the length of germinal zone of testicular tubules and that is why the ovary of a genetic female never contains sperms or spermatocytes but the testis often contains oocytes. In the present investigation also, the germ cell overlapping was found only in the male individuals. Hence, the second possibility regarding the development of oocytes within a functional testis of P. koolooense seems to be valid, but no definite generalization can be made in the absence of direct evidence. Recent studies indicate that the androgenic gland activity itself is controlled by neurohormones (Payen 1980, Joshi and Khanna 1984). The experimental studies on the reproductive endocrinology of this species in progress.

REFERENCES

1. Carlisle, D. B., Mem. Soc. Endocrinal , 7 (1960), 9.
2 Charniaux-Cotton, H, Compt rend 246 (1958), 2827.
3. Charniaux-Cotton, H., in "The Physiology of Crustacea", edited by T H. Waterman (Academie Press : New York), 1960, 411.
4. Charniaux-Cotton, H. and Kleinholz, L. H., in "The Hormones", Vol. IV, th edited by G. Pincus, K U Thimann and E. B Astwood (Academic Press : New York), 1964, 135.

5. Charniaux-Cotton, H, in "Organogenesis" edited by R. L. De Haan and H. Ursprung (Rinehart and Wilson, New York). 1965, 701.
6. Dodd, J M., in Marshall's Physiology of reproduction, vol, I, edited by A. S. Perkes (Longmans, London) 1960, 277.
7. Joshi, P. C and Khanna, S. S., Proc Indian Acad. Sci. (Anim. Sci), 91 (1982a), 439.
8. Joshi, P. C. and Khanna, S S Ibid, 91, (1982b), 451.
9. Joshi. P C. and Khanna, S. S. Z mikrosk. anat Forsch. Leipzig, 98, (1984) 429
10. Payen, G G., in Advances in Invertebrate reproduction", edited by W. H. Clark, Jr. and T. S. Adams. (Elsvier North Holland, Inc), 1980, 187.
11. Turner, C. D. and Bagnara, J. T., "General endocrinology" (W. B Saunders Company, London), 1673, 360

Jour. U. P. Govt. College Acad Soc. 1984-85, Vol. 1 P. 51-55

उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ५१-५५

RECORDS OF SOME NEMATODES PARASITES OF AVIAN HOSTS FROM GARHWAL HIMALAYAN ECOSYSTEM.

ANAND SINGH RAUTELA

Department of Zoology, Govt. P. G. College, Kotdwara.

सारांश

[जिला पौड़ी-गढ़वाल के पक्षियों में पाये जाने वाले निमटोड़ परजीवियों का सर्वेक्षण किया गया। ये परजीवी इन पक्षियों के शरीर के विभिन्न भागों से, जैसे गिजर्ड, छोटी आँत, रेक्टल सीकी तथा उदरगुहा में पाये गये, इन परजीवियों के बाहरी आकार प्रकार तथा विशिष्ट गुणों के अध्ययन के आधार पर इनको पाँच कुल तथा पाँच परिवार की सात जातियों में रखा गया।]

ABSTRACT

[A Survey of nematode parasites of avian hosts has been done from District Pauri Garhwal. Nematode parasites were recorded from different body parts of the avian hosts viz. gizzard, small intestine, rectal cecae and coelomic cavity. Morphological studies showed them to belong to 7 genera of 5 orders and 5 families.]

No work on the nematode parasites infesting hill birds has ever been done in District Pauri Garhwal. An attempt has been made to study the nematode parasites of avian hosts from various altitude (395-650 m. ASL). of Garhwal Himalayan ecosystem. A Total of 215 avian hosts of 17 genera and 22 species; 27 442% male and 72,558% female birds were examined for the parasites, of which 20.339% & 30.128% male and female birds respectively were found to be infected with nematode parasites of 7 genera (Table 1, 2).

MATERIAL AND METHODS

Avian hosts in the area were shot down with the help of an air gun. Domestic fowls Gallus gallus domesticus (L) were procured from the local

poultry farm at Kotdwara. Various parts of the alimentary canal, viz. oesophagus, crop, gizzard, intestine, rectum, rectal cecae and other parts of the killed hosts were dissected out in normal saline water in petridishes. Coelomic cavity of the killed host was also examined for the parasites. The nematodes were thoroughly washed in saline water, fixed in hot 70% alcohol and preserved in 5% glycerine alcohol. These were cleared in lactophenol and mounted in glycerine.

RESULTS AND DISCUSSION

Of the various birds examined 9 species of birds were found infected with 7 genera of nematodes. These nematodes were compared with close genera discribed by Yamaguti (1961) and identified as genus Ascaridia Dujardin (1845), Diplotriaena Railliet and Henry (1909), Diplotriaeno-ides Walten (1927), Eustrongylides Jagerskiold (1909), Heterakis garh-walensis Rautela and Malhotra (1981), Heterakis indica Maplestone (1931) and Heterakis Dujardin (1845), Synhimantus Railliet, Henry and Sisoff (1912) and a new genera and new species. Maximum number of nematode parasites were collected from small intestine and rectal cecae of male and female Gallus gallus domesticus L., Gizzard of Bubulcus ibis was found full of nematodes, coelomic cavity of Acridotheres fuscus, A. tristisi and Sturnus contra was infected with less number of parasites (Table 1, 2). These parasites were lying deep in thick layers of gizzard, lying freely in the lumen of small intestine and attached with thin membrane in coelomic cavity. Further, these parasites showed great morphological variations in body size, number of lips, type of buccal capsule, presence and absence of tridents, spicule size and number of anal papillae in male specimens, positions of vulva and egg size in female specimens. It has been noticed that the parasites collected from coelmic cavity are larger and transperent, smaller from gizzard and intestine still smaller were collected from rectal cecae. No nematodes were collected from other body parts. Nematodes were not found in Columba livia, Corvus macrorhynchus, Eudynamys scolopacea, Micropus orientalis, Necterina asiatica, N. reylonica, Polecus bengalensis, Passer domesti-cus, Psittacula crameri, Pycnonotus cafer. Streplopelia chienensis, S. decaocto and S. senegalensis. (Table 1). It shows gizzard, intestine, rectal cecae and coelomic cavity are the suitable parts for these nematodes. However, larger birds have greater susceptibility to nematode infection than the smaller birds. Rate of infestation may also depend on ecological factors and food and feeding habits of these hosts.

Table 1. Host examined and incidence of infection

Name of Host	Total killed	Host M	Exam. F	H. I. M	H. I. F	Incidence of Infection (%) M	Incidence of Infection (%) F
Acridotheres tristisi	8	3	5	3	-	100	-
Acridotheres fuscus	4	2	2	-	2	-	100
Bubulcus ibis	4	2	2	1	1	50	50
Caprimulgus asiaticus	2	-	2	-	1	-	50
Columba livia	6	2	4	-	-	-	-
Corvus macrorhynchus	2	-	2	-	-	-	-
Eudynamys scolopacea	1	-	1	-	-	-	-
Gallus gallus domesticus (L)	68	7	61	7	40	100	65.574
Hirunda rustica	1	-	1	-	1	-	100
Micropus orientalis	5	2	3	-	-	-	-
Necterina asiatica	11	3	8	-	-	-	-
N. zeylonica	14	4	10	-	-	-	-
Polecus bengalensis	19	7	12	-	-	-	-
Passer domesticus	25	44	21	-	-	-	-
Psittacula crameri	3	2	1	-	-	-	-
Pyenonotus cafer	17	13	4	-	-	-	-
Streptopelia chienensis	16	15	10	-	-	-	-
S. dacaota	3	1	2	-	-	-	-
S. senegalalensis	3	-	3	-	-	-	-
Sturnus contra	1	-	1	-	1	-	100
S. pagederum	1	-	1	-	1	-	100
Upupa epops	1	1	-	1	-	100	-

Exam..........Examined

H. I............Host Infected

M...............Male

F...............Female

Table 2. Nematodes Collected and Genus Identified

Name of Hosts	Total Nematode Collected	Location of Parasites	Genus
Acridothres tristisi	3	Coelomic cavity	Diplotiraenoides sp. Walton (1927)
A. fuscus	6	—Do—	Diplotriaena sp. Railliet and Henry (1909).
Bubulcus ibis	102	Gizzard	Synhimantus sp. Railliet, Henry and Sisoff (1912).
Caprimulgus asiaticus	3	Small intestine	Heterakis indica Maplestone (1931).
Gallus gallus domesticus (L.)	542	—Do—	Heterakis sp. Dujardin (1845).
—Do—	38	Rectal cecae	Heterakis garhwalensis Rautela and Malhotra (1982).
Hirudo rustica	5	Small intestine	Ascaridia sp. Dujardin (1845).
Sturnus contra	5	Coelomic cavity	Diplotriaena sp. Railliet and Henry (1909).
S. pagodarum	8	Small intestine	New Genera.
Upupa epops	11	—Do—	Eustrogylides sp. Jagerskiold (1909).

REFERENCES

Dujardin, F. 1845. Histoire naturelle des helminthes ou Vers intestinaux. Paris XVI + 654+15 pp.

Jagerskiold, L. A. K. E. 1909. Soc. Acta., Ser., 4 2. Art. 3 : 48 pp Upsala.

Maplestone, P. A. 1931. Rec. Ind. Mus., Calcutta. 33 (2) : 71-171.

Railliet, A. and Henry, A. 1909. Bull. Soc. Path. Exot. 2 (10) : 643-649.

Sisoff, P. 1912. Soc. Biol., 73 (36) : 622-624.

Rautela, A. S. and Malhotra, S. K. (1982). Himalayan Journal Sci. 2 (1) : 23-37.

Yamaguti, S. 1961. The nematodes of Verterbrates. Systema Helminthum. 3 (Part 1 and 2). Interscience Publishers. Inc. NY.

--- (o):(o)---

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1984-85, Vol , 1P. 56—59
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ५६-५९

Effect of Temperature on open circuit Voltage of Concentrated Sunlight back surface field silicon solar cells.

R. V. SINGH

Department of Physics, Govt. P. G Gollege, Uttar Kashi

सारांश

[यह शोधपत्र सूर्य के प्रकाश की निम्न, मध्यम तथा उच्च सान्द्रता पर ताप-आधारित सौर्य-सैल के प्राचलिक गुणांकों का प्रभाव सैल के खुले परिपथ में विभवान्तर पर दर्शाता है। इन सभी प्राचलिक गुणांकों का प्रभाव इस प्रकार होता है कि सैल के खुले परिपथ में विभान्तर, सैल का ताप बढ़ाने पर, घटता है। सैल के ताप में वृद्धि से, खुले परिपथ में विभवान्तर की यह घटोतरी, सूर्य के प्रकाश की सान्द्रता बढ़ने पर कम होती है। इस प्रभाव की व्याख्या, कैरियर की सान्द्रता पर आधारित ऊर्जा-पट्टिका अन्तराल में सिकुड़न का प्रयोग करके, कर सकते हैं।]

ABSTRACT

[This paper shows the effect of the temperature dependent solar cell parameters on the open circuit voltage of n+—p—p+ solar cells at low, medium and high levels of illumination. The effect of all these parameters is such that the open circuit voltage decreases with increasing the cell temperature. This degradation of open circuit voltage with increasing the cell temperature reduces with increasing the sun light concentration. This effect may be explained using the carrier concentraction dependent energy bandgap shrinkage phenomenon]

INTRODUCTION

Silicon solar cells when used under high injection conditions tend to get heated up as a result of which the current and voltage generated by the solar cell get modified. Apart from this the excessive rise in temperature of the solar cell has degrading effects on the solar cell constants. Though large number of investigators have studied the performance of back-surface-field (BSF) solar cells for photovoltaic applications, but the published literature on thermal performance of BSF cells is scanty. However few researchers /1,2/have tried to study the effect of temperature on the cell performance at one or less sun illumination. Fossum and Burgess/3/have studied such cells upto 40 suns only, but their results are limited to various approximations, such as neglig-

ence of temperature effect on excess carrier life time (τ), excess carrier generation rate (g), and intrinsic carrier concentration (n_i) at high levels of illumination. These results are also limited not to include the temperature dependence of low-high-junction voltage and Dember potential in total open circuit voltage of the cell.

In the present work it is planned to include the effect of above mentioned parameters as temperature dependent at high illumination levels to study the open circuit voltage of n+—p—p+ solar cell. Because of the limited space for the manuscript it could not be possible to give the details of n+—p junction voltage (V_J), low-high junction voltage (V_{lh}) and Dember potential (V_D), therefore only partial results are presented here, detailed results are being published subsequently.

THEORETICAL ANALYSIS

For calculating the values of V_j, V_{lh} and V_D we utilized the theoretical formulations of reference/4/, then the open circuit volage (V_{oc}) is calculated as under :

$$V_{oc} = V_j + V_{lh} + V_D \qquad \text{.......................} (1)$$

The temperature dependence of voltages is introduced through various parameters such as, intrinsic carrier concentration, excess carrier generation rate, excess carrier life time and mobility (μ) as follows :

$$n_i = 3.082/\exp(\,(E_g - \triangle E_g)/2kT) \qquad \text{.......................} (2)$$

$$\mu_e = 1360(T/300)^{-2.42}\ cm^2\ /\ V\text{-}sec \qquad \text{.......................} (3)$$

$$\mu_h = 495\ (T/300)^{-2.20}\ cm^2\ /\ V\text{-}sec \qquad \text{.......................} (4)$$

$$\tau = \tau_0\ \frac{p + n + 2n_i}{p + n} \qquad \text{.......................} (5)$$

$$g = \frac{1}{D} \int_{0.3\mu m}^{1.1\mu m} N\lambda(1\text{-}\exp(\,(\propto\lambda(T).D)))d\lambda \qquad \text{.......................} (6)$$

where,

μ_e, μ_h are the electron and hole mobilities, n, p are the electron and hole concentrations, τ_o is the carrier life time at low injection, k is the Boltzman constant and $N\lambda$ is the number of photons falling on unit area of the cell in unit time.

$$E_g = E_{go} - \frac{\beta T_2}{T+\gamma} \qquad \ldots\ldots (7)$$

$$\Delta E_g = 386\,(N/T\times10^{18})^{1/2} \text{ for non-degenerate semiconductor} \qquad \ldots\ldots (8)$$

$$\Delta E_g = 162\,(N/10^{20})^{1/6} \text{ for degenerate semiconductor} \qquad \ldots\ldots (9)$$

$$\alpha(T) = \sum_{\substack{i=1,2\\ j=1,2}} C_i A_j \left\{ \frac{[\hbar\omega \;\; E_{gi}(T)+E_{pi}]^2}{[\exp(E_{pi}/kT)-1]} + \frac{[\hbar\omega - E_{gi}(T) - N_{pi}]^2}{[1-\exp(-E_{pi}/kT)]} \right\} + A_d\,[\hbar\omega - E_{gd}(T)]^{1/2} \qquad \ldots (10)$$

with N= total majority carrier concentration, D= total cell thickness, E_{go} = energy bandgap at 0°K, ΔE_g = carrier concentration dependent energy bandgap narrowing, suffix i refers to various possible phonons of energy E_p, suffix j refers to deferent indirect bandgap E_g, which may be active in phonon absorption, E_{gd} = direct bandgap energy, A, C, β, γ are constants and other parameters have their usual meanings. These above given formulae are taken from reference/5-8/.

RESULT AND DISCUSSION

For numerical calculations the values of doping for front, base and back regions are taken to be as 10^{19}, 10^{16} and 10^{19} per unit volume respectively, the values of τ_0 for these three regions are assumed to be 1, 5 and 1 μ sec respectively, the thickness of the respective regions are 0.25 μm, 150 μm and 0.5 μm, and the front surface recombination velocity is 10^3 cm/sec. The values of the temperature coefficient (α) of open circuit voltage at different illumination levels is given in the table 1.

Table 1 : The coefficient at various illumination levels

Illumination levels (Suns)	0.01	0.1	1	10	10^2	10^3	10^4	10^5
α (mV/°C)	-2.351	-2.153	-1.951	-1.732	-1.479	-1.231	-0.965	0.605

It is very much clear from the table 1 that V_{oc} decreases with increasing the cell temperature which is expected because of the tendency of the extrinsic semiconductor to become intrinsic in character due to the shifting of Fermi-levels lying either above or below the intrinsic level towards the middle of the bandgap. The decrease in V_{oc} at one sun

illumination is found to be -1.951 mV/°C, which is in good agreement with the experimental value -2.15 mV/°C of Mandelkorn and Lamneck/1/. It can also be seen that the degradation effect of V_{oc} with increasing the cell temperature at low injection condition is greater than that at high injection conditions. This variation of V_{oc} can be explained using carrier concentration dependent bandgap shrinkage phenomenon/4/. As the illumination level is increased the energy bandgap shrinkage becomes lesser and lesser dependent of temperature and finally at very high illumination level it becomes independent of temperature, which is in turn lowers down intrinsic carrier concentration. Hence less reduction in V_{oc} with increasing cell temperature occurs.

From practical stand point this study helps one to design the silicon solar cells at high sun light concentration to increase their performance.

REFERENCE

1. J. Mandelkorn and Lamneck, J. H ; 11th IEEE Photo. Spec. Conf., NASA-TMX-71723, 1975.
2. A Sinha and S K Chattopadhyaya, Solid State Electronics, Vol. 22, pp. 849-852. 1979.
3. J. G Fossum and E L Burgess, 12th IEEE Photo. Spec Conf, Baton Rouge, LA, 1976.
4. R. V. Singh and C. M. Singal, Open Circuit Voltage Across two Junctions in n^+-p-p^+ Solar cells under high Illumination Level. Solar Cells, Vol. 8, pp. 97-123, 1983
5. R N. Hall, Solid State Electronics, Vol. 24, pp. 595-616, 1981.
6. W Shockley and W. T. Read, Jr., Phys. Rev , Vol. 87, pp 835-842, 1952.
7. H P. D. Lanyon and R. A. Tuft, IEEE Trans. Electron Devices, Vol. ED-26, pp. 1014-1018, 1979.
8. K. Rajkanan, R Singh and J. Shewchuu, Solid State Electronics. Vol. 22, pp. 793-795, 1979.

—o—

Jour. U. P. Govt. College Acad Soc. 1984-85, Vol., 1 P. 60-62
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ६०-६२

PITCH ANGLE DIFFUSION

S. K. Khare, S. C. Sah, Megh Singh, Shobha Agrawal, V. N. Sharma

Deptt. of Physics, Govt. Raza Post Graduate College, Rampur

सारांश

[विहित निर्देशांक में अक्षनति कोणीय - विसरण का सिद्धांततः अध्ययन किया गया है। अपने श्रेष्ठ सन्निकटन का प्रयोग करके विषुवतीय अक्षनति कोणों 'अल्फा जीरो' के विविध मानों के लिये प्रवेशित नवविसरण विहित निर्देशांक 'जेड' का परिकलन प्रस्तुत किया गया है।]

ABSTRACT

[Pitch angle diffusion in canonical Coordinate has been theoretically studied. Calculations for the introduced new diffusion canonical coordinate Z have been made and they are reported for various values of equatorial pitch angle $\propto_c$ using an excellent approximation]

INTRODUCTION

The atmospheric scattering of radiation belt electrons involves diffusion in both pitch angle and energy, aswell as deceleration. The emperical result of Wave particle interactions is the pitch angle life time that varies strongly with L but only moderately with energy for radiation belt electrons. Proton pitch angle diffusion presumably caused by electromagnetic ion cyclotron waves is believed to play an important role in the dynamics of radiation belt protons having energy $E \leqslant 400$ Kev. (Schulz and Lanzerotti, 1974). Pitch angle dependence of radial diffusion of Mev protons and effects of drift resonance brodening have been studied and some emperical estimates at constt. M & J $=0$ have been made (Khare & Sharma, 1980). Excellent approximation for T (y) given by Davidson (1976) has been manipulated by schulz (1977) to yield equally excellent approximation for the Fokker-planck transport-coeffi-

*Govt. Post graduate College Jaiharikhal (Dehradun)

cients associated with synchrotron loss in a dipole field. Calcutated values for full bounce period for 1 Mev proton over arbitrary pitch angles have been presented (Khare & Sharma, 1982-83). The equation for pitchangle diffusion (at constt. particle energy and shell parameter L) in a dipole field can be transformed into canonical form by the introduction of a new coordinate called Z (Schulz, 1981). In this paper calculations for the introduced new diffusion canonical coordinate Z have been made for various values of equatorial pitch angles α_o.

THEORY

It is a well known result in magnetospheric physics that the phase space density (averaged over gyration, bounce and drift) evoles according to the equation.

$$\frac{d\bar{f}}{dt} = \frac{1}{x T(y)} \frac{\delta}{\delta x} \left[x T(y)\, D_{xx} \frac{\delta \bar{f}}{\delta x} \right] + \bar{s} \quad \text{----------} \quad (1)$$

in presence of (1) pitch angle diffusion at fixed particle energy E and shell parameters and (ii) a distributed source $\bar{S}$ (Lyons etal, 1972 Schulz & Lanzerotti, 1974). The diffusion coordinate X is the cosine of equatorial pitch angle α_o in this formulation and the factor $T(y)$ is well approximated (Davidson, 1976) by the formula

$$T(y) = T(o) - [T(o) - T(1)]\, y^{\frac{3}{4}} \quad \text{---------} \quad (2)$$

Where $T(0) = 1.3801730$, $T(1) = \left(\frac{\pi}{6}\right) 2^{\frac{1}{2}} = 0.7404805$ and

$$y \equiv \sin \alpha o \equiv (1 - x^2)^{\frac{1}{2}}$$

The purpose of present work is to introduce a new diffusion coordinate called Z, in terms of which equation (1) can be solved without further approximation over the entire range of X for selected forns of

$D_{zz} \equiv [x T(y)]^2 D_{xx}$. The new coordinate is defined by the equation

$$z = Z(y) = \int_0^x x' T(y')\, dx' = \int'_y y' T(y')\, dy'$$

$$\simeq \tfrac{1}{2}(1-y^2)\, T(o) - \tfrac{4}{11}[T(o) - T(1)]\,(1 - y^{\frac{11}{4}}) \quad \text{-----------} \quad (3)$$

It follows from (1) & (3) that

$$\delta\bar{f}/\delta t = \delta/\delta z\, [D_{zz}\, \delta\bar{f}/\delta z] + \bar{S} \quad \text{----------} \quad (4)$$

with D_{zz} defined as above. This last form of the diffusion equation is cononical in the sense that there is no intervening Jacobian factor that fails to commute with $\delta/\delta z$.

RESULTS & DISCUSSION

By the use of equatien (2) calculations for the function T (y) have been made for various values of equatorial pitchangles α_o. These calcutated values of T (y) have been used in equation (3) inorder to calculate the new introduced diffusion canonical coordinate Z. These values for various values of equatorial pitchangles α_o have been reported in the table 1. From the results it has been found that the canonical coordinate Z is variable corresponding to the equatorial pitch angle α_o. Moreover, it varies sharply from $\alpha_o = 20°$ to $60°$

TABLE I

S. N.	α_o	= T (y)	Z.
1-	0°	1.380	0.4574
2-	20°	4.825	0.3888
3-	40°	3.006	0.2412
4-	60°	2.405	0.0966
5-	80°	2.187	0.0112

REFERENCES

1- DAVIDSON, G. T. 1976 J. Gesphys. Ref 81, 4029

2- KHARE, S. K. & SHARMA, V. N. 1980 Research Journal Himalya Shodh Parishad Gopeshwar. 1 49

3- KHARE, S. K. & SHARMA, V. N. 1982-83 Journal of Scientific Res B H. U. Varanasi 33 (2) (In press)

4- LYONS, L. R. THORNE, R. M. KENNEL, C. F. 1972 J. Geophy S. Res. 77 3455

5- SCHULZ, M. 1977 Report SAMSO-TR-77-52 U.S.A.

6- SCHULZ, M. 1981 Report SD-TR-81-69 U.S.A.

7- SCHULZ, M. & LANZEROTTI, L. J. 1974 Particle diffusion in Radiation Belts (Springer-verlag)

—(•)—

Jour. U. P. Govt College Acad ·Soc. 1984-85, Vol., 1 P. 63-66
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १६८४-८५, खंड-१, पृ० ६३-६६

ON THE NON-OCCURENCE OF TRIGGERED EMISSIONS IN TVLF EXPERIMENT

*V. N. Sharma, Megh Singh, S. C. Sah, S.·K. Khare,

सारांश

[तरंग-कण युग्मन हेतु अवशोषण-परिक्षेत्र पर बल दिया गया है। कला-उत्क्रमण काल में प्रवर्तित उत्सर्जन-अननुवर्तन व्याख्या हेतु अल्तशूलर (१६७४) की भांति ही विसॅलर (सीटीबाज) क्षोभित इलेक्ट्रान वितरण फलन से तीव्रता-आश्रय का विश्लेषण किया गया है।]

ABSTRACT

[Emphasis has been placed for the wave-particle coupling upon the cross-section for absorption, the intensity dependence from the whistler perturbed electron distribution function has been analysed in the same manner as by Altshuler (1974) to explain the non occurrence of triggered emissions at the time of a phase reversal.]

INTRODUCTION

The importance of wave particle interaction in the magnetosphere as well as the role played by resonant electrons have drawn the attention of many theorists and experimentalists for extensive monitorings, and intensive studies. Waves of major interest to magnetospheric physics have frequencies ranging from well below the proton gyrofrequency to somewhat above the electron gyrofrequency. The problem at hand concerns the interaction of the whistlar mode waves, ($\omega < \omega_c$ i.e. the radiation frequency of the wave ω is considered to be less than ω_c, the precision frequency) with the trapped spiralling high energy electrons having energy of the order of mega electron volts.

*Govt. Post-Graduate College, Jaiharikhal (Dahra Dun)

Previously this problem has been treated (Kennel and Petschek, 1966) by solving the linearized, Vlasov-Maxwell equations for a plasma of ions and electrons.

Intrinsic bandwidth of cyclotron resonance in the geomagnetic field has been studied by schulz (1972). Altshu.er (1974) has explained the amplification mechanism, and attacked the problem of intensity saturation Schulz, 1974).

To observe the effect of phase changes of a whistler-mode wave in wave-particle interactions in the magnetosphere Controlled experiments were performed with the transportable very low frequency (TVLF) transmitter facility. Among the most-interesting results of the controlled TV Phase reversal experiment (Koons etal. 1976) are the wave magnetic field saturation level at 3.5 pT, and nonoccurrence of triggered emissions at the time of a phase-reversal. In this paper, with particular emphasis on the intensity dependence of cross-section for absorption and emission at resonance a view point to explain the non occurrance of triggered emission by analysing whistler-perturbed electron distribution function has been presented.

THEORY

If the population density of upper state N_2 is greater than the population density of lower state N_1, the stimulated emission dominates the abosorption, and the signal grows according to exp(gx), where x is the propagation direction and the gaing is simply (Altshuler, 1974)

$$g = \sigma_0 \quad (N_2 - N_1) \quad cm^{-1} \qquad \ldots\ldots (1)$$

σ_0 is the cross-section for absorption and emission at resonance,

However if the fields ($\vec{E}$, $\vec{B}$) associated with the whistler in the magnetoplasma rest frame are ($\vec{E}$, $\vec{B}$) in the moving frame, the cross-section is corrected by

$$\sigma = \sigma vac \frac{E'^2}{E' \; B'-} \qquad \ldots (2)$$

and we write the equation (23) for g by altshular (1974) as

$$g = \frac{2\pi^2 c\hbar}{m} \left(\frac{\sigma}{\sigma vac}\right)^2 \int_0^\infty \sigma_0 T \left[\frac{\delta f}{\delta v_t} - \frac{\delta f}{\delta v_z} \frac{v_t}{(v_t + v_z)}\right]_{v_z = v_R} dv_t \qquad \ldots. (3)$$

to study the role of cross-section, and decay constant (width). In equation (3) m is mass of electron, Γ is the radiative damping, v_t is the transverse velocity of the electron, v_z is the longitudinal speed along the magnetic field taken in z -direction, v_p is the phase velocity of whistler radiation and is equal to $\frac{c}{n}$ where index of refraction n for the whistler wave propagation along the field line is given by

$$n^2 = 1 + \frac{\omega_p^2}{\omega(\omega_C - \omega)}$$

where ω_p is the plasma frequency, f is the electron distribution function and v_R is the resonance velocity defined by

$$\omega_c = \left(1 + \frac{v_R}{v_p}\right)\omega$$

RESULTS AND DISCUSSION :

A decrease in transverse velocity due to a radiative emission process would necessarilly cause an increase in longitudinal speed, and a requirement for gain is the greater population density of upper level. To explain the non-occurrence of triggered emission at the time of a phase-reversal in controlled TVLF experiment, a numerical example would help to illustrate the use of present work. For parameters (Koons etal. 1976) $N = 345\ Cm^{-3}$, index of refraction for 6.6 KHz wave propagating parrallel to the geomagnetic field is 13.8. i.e. wave length 3090 metres, $V_{\parallel} = 7.3 \times 10^7$ m/sec, characteristic pitch angle for the interaction is 30 degrees, and wave magnetic field at the saturation level $B_W = 3.5$ pT (milli Gamma). We have obtained the linear growth rate $y = 0.2\,\tilde{\omega}$ for magnetospheric plasma, where $\tilde{\omega}$ is the particle bounce (or trapping) frequency. As a check, assuming no change in electron distribution function for the non-occurrence of triggered emissions, the correction factor for the cross-section

$$\frac{E'^2}{E'\ B'} = \frac{\omega_c}{\omega_n} = \left. \frac{\left(1 + \frac{v_z}{v_p}\right)}{n} \right|_{v_z = v_R} \qquad \text{...... (4)}$$

at the resonance has been considered to control the Lorentz finite line width (decay constant), and in turn, the radiative reaction characteristic time. For the measured linear growth rate of the wave $Y = 30\ Sec^{-1}$, our preliminary calculations show that the line shape characterised by

intrinisic band width=26 HZ, the small damping constant obtained is of the order of 10^{-2}.

REFERENCES

1— Altshular, S. J. Geophys. Res. 79,3791 (1974)

2— Kennel, C. F. & Petschek, H. E. J. Geophys Res. 71, 1 (1966)

3— Koons, H C. Dazcy, M. H. Dowden, R. I. & Amon, L. E, S. A controlled VLF phase-reversal expt. in the magnetosphere, Report SAMSO—TR—76—218 (1976)

4— Schulz, M. Phys Fluids 15, 2248 (1972)

5— Schulz, M. Aerospace report ATR—74 (7420)—1 (1974)

—(o)—

Jour U. P. Govt. College Acad Soc. 1984-85, Vol. 1 P. 67-70
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १६८४-८५ खंड-१, पृ० ६७-७०

RECENT ADVANCEMENT IN SOLAR CELLS : A REVIEW

S. C. Sah & S. K. Khare

Department of Physics, Govt. Raza P. G. College, Rampur

सारांश

[सोलर सैल में हुई हाल की प्रगति को देखते हुऐ एक समीक्षा की गई है।]

ABSTRACT

[Review has been done in the light of recent advancements in solar cells]

Conventional energy resources such as fossil fuels will be exhausted in near future due to the continuous increase in worldwide energy demand. So the development and use of alternative energy sources have become a matter of great concern. Recently researcn and development of low cost-flat panel solar cells, thin film solar cells have increased a lot as it can convert the solar energy to electrical energy with high efficiency and can provide power at low cost. Moreover it is free from pollution. In near future the cost of solar power plants will be economically feasible for large scale use of solar energy.

First solar cell was developed by Chapin, Fuller and Pearson in 1954 using a diffused si-pn Junction. Raynolds, Lavis Antes and Marburger developed cds cell (1954) J. Mandelkorn and J. H. Lanoneck Jr. proposed fabrication of back surface field (BSF) solar cell (1972), which has much larger output than conventional cells. The front surface is made in the normal way but the back of the cell has a very heavily doped region instead of having a metalic ohmic contact. J. Lindmayer and J. F. Allison (1972) presented a model for an improved solar cell ''The Violet Cell'' which is fabricated with reduced surface doping concentration and smaller junction depth. It has a much higher spectral response in

the violet region (hv > 2.75ev.). Arndt. Allison, Haynos and Moulenoerg Jr. (1975) made a ''Textured Cell'' having Pyramidial surfaced produced by anisotropical etching of <100> oriented Si surfaces. Antireflection quoting on cell reduces the overall refelection to a few percent which enhances efficiently upto 15%. In 1979 T. I. Chappell proposed ''V-grove multijunction solar cell''. Anisotropical etching of <100> Si has been used in this type of solar cell. For a 50 μm. thick diode, the effective optical thickness is over 250μm. This results in greater collection efficiency (>93%). This cell is expected to have more than 20% conversion efficiency. The concept of a BSF & textured cell are combined resulting in a development of a new cell ''Tandan-junction solar cell'' (IDS) by S. Y. Chiang, B. G. Garbajal & G. F. Wakefield (1978-79). This device behaves like a BJT using much thinner base material. Its efficiency is also expected more than 20%.

A novel configuration having both junction and metallization perpendicular to the cell is the ''Vertical junction solar cell. The diffusions and metal contacts are embeded in deeply etched grooves normal to the surface formed by anisotropic etching < 110 > Si. The measured results are open circuit voltage Voc=590mv JSc=33mA/Cm², temperature coefficients -2.07mV/°C and fill factor (FF)=0.80 under one sun AM 1 conditions. This gives an experimental efficiency of 15.6%. Under high solar concentration as 500 Suns (using concerntrator systems) Voc has observed as high as 770 mV. This temperature cofficient has increased to -1.45 mV/OC (Frank, Goodrich, and Kaplow-1980).

Hetrojunction solar cells have been also proposed for n-Indium Tinoide/p-Inp solar cell, efficiency of 14% under AM 2 Condition was obtained by Harsha-Backmann etal. (1977). Its conversion efficiency ranges from 12 to 15%. For a GoAS hetroface solar cell vander plas, James et.al. (1978) obtained Voc as 1.13 volts, a max. power output 10.7 W and an efficiency of 23.3% at 50°C.

Mocn et. al. (1978) used a combination of AlGaAs and Si cell with spectral spliting filter and found the following results under 165 Suns and AM 1.5 conditions for Si and AlGaAs cell.

Cell	Voc (mV)	(PW)	Efficiency	FF
Si (Eg/1.1 ev)	730	.915	11.1%	.725
AlGaAs (Eg=1.61 eV)	1025	1.44	17.4%	.825

The combined efficiency has been obtained 28.5% at 50°C

The metal Insulator Semiconductor (MIS) Solar Cells have also been develcped. A new approach using a thick metal MIS grid pattern with the semi conductor between the grid fingers covered by a transparent layer of a dielectric has been given by Halen, Mertens etc. (1978). At Am-1 conditions efficiencies upto 18% have been obtained by Green, Godfrey et. al. (1980) for a Si MIS cell and Thomes, Norman et. al. (1980) for a MIS/Inversion layer cell.

In a thin film solar cell the active semiconductor layer of polycrystallins or disordered film (film of Cds, Si, GaAs, Inp, CdTe etc.) is deposited or formed on electrically active or passive substrate (Glass, cermamic, plastic, metal, graphite etc.) by various methods as vapour growth, evaporation plasma and plating. A 9.15% efficiency has been achieved by Barnett, Bragagnolo etc. (1978) in thin film Cds/Cu2s solar Cells. A 1 Cm' CuInSi, cell demonstrated Voc=.416 V Isc=37.2 mA/Cm^2, FF=.65, Effi.=10% (Buildhaupt et. al. (1981) Cdte, Inp, $Zn3p_2$, Cds MIS, Cu. Si, Ins, Wse_2 $ZnSiAs_2$ which have high optical absorption coefficients have also been tried for thin films. Thin films shows considerable potential due to low cost material & low cost processing. There is wide scope for exploration of other novel suitable material for thin film cells.

Thus inspite of considerable work done during last two years, only Si solar cells/pannels can be produced in large scale. While GaAs cells are yet to be available in mass production. Bicolour cells were also proposed (Barthelemy-1981) But it may require further ten years work on multicolor cells. Now the major effort towards lowering the costs of cells/pannels, using cheap material as a substrate. Recently work is being done in (solar grade Si) poly crystalline Si as a substrates on which a thin film of Si grown. Development in techniques for growing potentially low cost solar grade Si is under progress. In this direction studies can be carried out for simplified purification coupled with an adequate crystallization processes. The aptitude of the various ceramics and flexible organic polymers can be examined as the cheap substrate. Work can also be carried out in the development of low cost silane as a raw material for production of amorphous solar cell. In long range still more impure materials may be used to get crystallized substrates.

Many crystal growing techniques such as Ignot technique, Ribbon technique, thin film techniques may give acceptable materials. Various

ribbon techniques as 'ultrafast quenching' ribbon from cylinder, ribbon to ribbon, ribbon from powder are in developmental stages. Research is certainly to be pursued on all these techniques.

REFERENCES

1. Chappel T. I — 1979 — I. E. E. Trans. Electron Devices. — ED—26 1091
2. Chiang S. Y, et. al. — 1979 — —do— — ED—26 1365
3. Frank R. I., Goodrich J. L. and Kaplow R. — 1980 — GOMAC Conf Houston.
4. Harsha K. S. S., et. al. — 1977 — Applied physics letter 30 — 645
5. Moon R. L., James L. W. et. al — 1978 — Conf. rec. 13th IEEE photovoltage special conf. IEEE N York, — 859
6. Barnett A. M. et. al. — 1978 — Conf. rec 13th IEEE photovoltage special conf IEEE N. York. — 419
7. Green M. A.. Godfrey R. B et. al — (Conf. rec 14th) as above. — 684
8. Buldhaupt L F Mickelsen R. A. & Chen W. S. — Proceedings Cds/Cu2s and cds/Cu Ternery photovoltic cells subcontractors in depth Review meeting SERI report No. SER/Cp—613—1232 — 1—15
9. SZe, S. M. — 1981 — Physics of Semiconductor Devices. — Willy Eastern Ltd

—:o:—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1984-85, Vol. 1 P. 71-73
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसायटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१ पृ० ७१-७३

समाकल रूपान्तरों के लिये सार्वीकृत प्रमेय

नरोत्तम जोशी

गणित विभाग, राजकीय महाविद्यालय जयहरिखाल (लैंसडाउन), गढ़वाल (उ०प्र०)

सारांश

[प्रस्तुत प्रपत्र में समाकल रूपान्तरों का मेलिन रूपान्तर से सम्बन्ध प्रदर्शित करने वाले सार्वीकृत प्रमेय दिये गये हैं।]

ABSTRACT

[In the present note generalized theorms are given showing relationship of integral transforms with Mellin transform.]

१. प्रस्तावना

अष्टि के स्वरूपानुसार, समाकल रूपान्तरों की एक बड़ी संख्या को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता हैं, जो निम्न प्रकार से परिभाषित हैं –

$$T_1[f(t);p] = p\int_0^\infty K(pt)\, f(t)\, dt \tag{1.1}$$

तथा

$$T_2[f(t);p] = \frac{1}{p}\int_0^\infty K\left(\frac{t}{p}\right) f(t)\, dt \tag{1.2}$$

शोधकर्ताओं द्वारा समय-समय पर विभिन्न समाकल रूपान्तरों के लिये मेलिन रूपान्तर से सम्बन्ध प्रदर्शित करने वाले प्रमेय प्रस्तुत किये गये हैं। उदाहरणार्थ, श्रीवास्तव[3], श्रीवास्तव एवं पंडा[4]। हमने भी शोध-प्रबन्ध[2] में इस प्रकार के प्रमेय प्रस्तुत किये हैं।

इस प्रपत्र में हम ऐसे सार्वीकृत प्रमेय प्रस्तुत कर रहे हैं, जो समाकल रूपान्तरों एवं मेलिन रूपान्तर में सम्बन्ध प्रदर्शित करते हैं।

संकेत रूप में, हमने फलन f(t) के मेलिन रूपान्तर को M[f(t);p] द्वारा प्रदर्शित किया है।

२. सार्वीकृत प्रमेय

प्रमेय 2.1 यदि

$$\phi(p) = T_1 [\, f(t);\, p\,] \qquad (2.1)$$

तथा lf (t) एवं lϕ(t)l के मेलिन रूपान्तरों का अस्तित्व हो तो

$$M[\phi(p);s] = M[K(p);s+1 \quad M[f(t);-s] \qquad (2.2)$$

दशर्ते कि lf(t)l का T_1—रूपान्तर अस्तित्व में हो तथा निहित समाकल परम अभिसारी हों।

उपपत्ति. समीकरण (2.1) से,

$$M[\phi(p);s = \int_0^\infty p^{s-1} \phi(p)\, dp$$

$$= \int_0^\infty p^s \left\{ \int_0^\infty K(pt) f(t)\, dt \right\} dp \qquad (2.3)$$

समाकल (2.3) में समाकलन के क्रम को परिवर्तित करने पर तथा साधारण चर परिवर्तन से हम पाते हैं

$$M[\phi(p);s] = \int_0^\infty p^s K(p)\, dp \int_0^\infty t^{-s-1} f(t)\, dt$$

$$= M[K(p);s+1] \quad M[f(t);-s] \qquad (2.4)$$

चूंकि समी० (2.3) में निहित t-समाकल परम अभिसारी है, यदि lf(t)l का T_1-रुपान्तर अस्तित्व में हो, अतः समाकल (2.3) परम अभिसारी होगा, यदि समी० (2.3) का p-समाकल अभिसारी हो तथा t^{-s-1} f t), L(o ,∞) वर्ग का हो। इन परिस्थितियों में, समी० (2.3) मे समाकलन के क्रम में परिवर्तन डि ला वाले पूसां के प्रमेय [1, पृ० 504] के अनुसार वैध है।

प्रमेय २.२ यदि

$$\phi(p) = T_2 [\, f(t);\, p\,] \qquad (2.5)$$

तथा lf(t) एवं lϕ(t)l के मेलिन रूपान्तर अस्तित्व में हों, तो

$$M[\phi(p);s] = M[K(p);s+1] \quad M[f(t);s] \qquad (2.6)$$

बशर्ते कि $|f(t)|$ का T_3-रूपान्तर अस्तित्व में हो तथा निहित समाकल परम अभिसारी हों।

इस प्रमेय की उपपत्ति प्रमेय 2.1 के ही समान है, अतः इसे नहीं दिया जा रहा है।

संदर्भ

1- ब्रामिविच, टी० जे० आई ए० - An Introduction to the Theory of Infinite Series, सेंट मार्टिन्स प्रेस, न्यूयार्क, 1955.

2- जोशी, एन०-पी-एच० डी० थीसिस, कुमायूं विश्वविद्यालय, 1979.

3- श्रीवास्तव एच० एम०-Math. Z., 1971, 11, 263, 273.

4- श्रीवास्तव, एच० एम० एवं पंडा, रेखा-Nederl. Akad. Wetensch. Proc. Ser. A 81 = Indag. Math., 1978, 40, 118-131, and 132-144.

()—()

साहित्य, मानविकी
एवं
वाणिज्य वर्ग

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1984-85, Vol. 1 P. 1-6
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० १-६

कालिदास और कमल

डॉ० भवानीदत्त काण्डपाल

संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय अगस्त्य मुनि

सारांश

[राष्ट्र कवि कालिदास के मानस पटल पर राष्ट्रीय पुष्प कमल की कितनी गहरी छाप थी, उनका कमल के प्रति अन्य वनस्पतियों की अपेक्षा कितना अधिक अनुराग था, उन्होंने कितनी कलात्मकता से मुख, नेत्र, हस्त, पाद आदि शरीरावयवों का कमल के साथ सादृश्य प्रस्तुत किया है कितनी बारीकी से सूर्य, चन्द्र, भ्रमर, सरोवर, गज, हंस आदि का कमल के साथ साहचर्य प्रकट किया है तथा वे कौन से कारण हैं जिन्होंने महाकवि कालिदास में कमल के प्रति इतना अधिक अनुराग जगाया आदि विभिन्न विन्दुओं पर इस शोध-लेख में गम्भीरता से विचार किया गया है।]

ABSTRACT

[Kalidas was deeply influenced by the national flower 'lotus'. He, very beautifully and artistically, has compared various human organs with the lotus and shown the association of sun, moon etc. with it. In the present paper this aspect of Kalidasa's poetry has been explained and illustrated. The factors which enabled the poet to employ lotus for various poetical uses have also been brought to light.]

संस्कृत के मूर्धन्य कवि कालिदास को भारतीय भावनाओं से जुड़े हुए कमल पुष्प ने अत्यधिक आकर्षित किया है। उनके साहित्य में उपलब्ध विविध कमल-वर्णन-प्रसंगों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि उनका कमल से चिरसाहचर्य रहा है, कमल की विशिष्टताओं का उन्होंने सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण किया है एवं उनके मानस पटल पर कमल ने अमिट छाप छोड़ी है। तभी तो वे अपनी काव्यकृतियों में यत्र-तत्र कमल के रक्त, श्वेत, नील रंगों का होने, शेवाल से अनुविद्ध होने, पाले से जल जाने, चक्रवाक द्वारा खाये जाने, मन्द पवन से झूम उठने, रमणियों का कर्णाभूषण बनने, मछलियों की गति से चंचलित होने, हेमन्त ऋतु में सूख जाने, तापशामक उपचार के रूप में प्रयुक्त होने, सरोवर तट पर उगने आदि सही-सही तथ्यों का उद्घाटन कर सकने में समर्थ हुए हैं[1]। कालिदास के साहित्य में उल्लिखित वनस्पतियों के निम्नांकित आकलन से यह स्पष्ट हो जायेगा कि कालिदास को कमल से कितना अधिक अनुराग था :—

वनस्पति उल्लेख

कमल–२४८	वार	तिन्तिणी–१	वार	शाल–३	वार	काश–५	वार
आम्र–५७	,,	तिलक–४	,,	शाल्मलि–२	,,	कीचक–५	,,
अशोक–३७	,,	देवदारु–८	,,	शिरीष–५	,,	कुंकुम–३	,,
मन्दार–६	,,	नमेरु–४	,,	सरल–३	,,	बुरबक–१०	,,
पारिजात–७	,,	नक्तमाल–१	,,	सल्लकी–२	,,	कुश–१७	,,
अगुरु–६	,,	नारिकेल–२	,,	सप्तच्छद–३	,,	कुसुम्भ–१	,,
अर्जुन–६	,,	पलाश–५	,,	अतिमुक्त–१२	,,	कूर्पासक–३	,,
असन–१	,,	पाटल–२	,,	कुन्द–१०	,,	केतकी–६	,,
अक्ष–४	,,	प्रियाल–१	,,	ताम्बूल–३	,,	जपा–१	,,
अक्षोट–१	,,	पूग–३	,,	द्राक्षा–१	,,	तिल–१	,,
इंगुदी–४	,,	प्लक्ष–३	,,	विम्ब–६	,,	दूर्वा–७	,,
उदुम्बर–१	,,	वकुल–५	,,	नबमालिका–१४	,,	धान्य–३३	,,
कदम्ब–१४	,,	बीजपूरक–३	,,	मरिच–१	,,	निचुल–१	,,
कर्णिकार–७	,,	भूर्जपत्र–४	,,	मालती–५	,,	बन्धुजीव–३	,,
कुटज–३	,,	मधूक–२	,,	यूथिका–२	,,	मुस्ता–३	,,
कोविदार–१	,,	लवंग–२	,,	श्यामा–६	,,	यव–६	,,
खर्जूर–२	,,	लवली–१	,,	अर्क–१	,,	वेतस–११	,,
चम्पक–१	,,	लोध्र–७	,,	इक्षु–४	,,	शरकाण्ड–६	,,
जम्बू–४	,,	वट–१	,,	उसीर–२	,,	शिलीन्ध्र–१	,,
तमाल–३	,,	विकंकत–१	,,	एला–२	,,	शेफालिका–२	,,
ताड़–६	,,	शमी–४	,,	कदली–६	,,	शैवाल–५	,,

उक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि कालिदास की दृष्टि कमल पुष्प पर जितनी रमी है उतनी अन्य किसी भी वृक्ष, लता या पुष्प पर नहीं रमी।

महाकवि ने कमल का सर्वाधिक उपयोग मानव शरीर एवं उसके मुख, नेत्र, हस्त, पाद आदि सभी शरीरावयवों की आभा, आकृति तथा कोमलता आदि विभिन्न विशेषताओं को अभिव्यंजित करने के लिए किया है। तपस्या करती हुई पार्वती का कांचनपद्मनिर्मित वपु, कुमार कार्तिकेय का मन्दाकिनी में विकसित कमल सदृश गात्र, राजमहिषी धारिणी की मृणाल कोमल देह आदि वर्णन-प्रसंगों में सम्पूर्ण शरीर के लिए कमल का सादृश्य प्रस्तुत किया गया है[2]। पारसीक देश में रघु के आक्रमण से मुरझाए हुए यवनियों के मुख-पद्म, वन में परित्यक्ता सीता का परिम्लान मुखारविंद, रघुवंश के राजा नल का नलिनाभ वक्त्र, तपःनिरता पार्वती का कमलश्री सम्पन्न मुख, विवाह का दृश्य देख रही रमणियों के सहस्रपत्र सदृश मुख, शिव के समीप स्थित पार्वती का पुण्डरीक आनन, गोद में

बैठे कुमार का पार्वती द्वारा चूमा जाता हुआ मुख-पद्म, शिव के सम्मुख उपस्थित देवताओं के हिम से मुरझाये हुए कमल सदृश मुख, कुमार के वीरता भरे शब्द सुन रहे देवताओं के विकसित मुखारविंद, वरुणास्त्र प्रहार करने के पश्चात् कुमार का मुस्कान युक्त वक्त्र-कमल, शरद रूपी नव वधू का विकच-पद्म-मनोज्ञ-वक्त्र, शिशिर ऋतु में घरों के भीतर बैठी हुई युवतियों के कनक-कमल-कान्त मुख, वसन्त ऋतु में रमणियों के बेल-बूटे चीते हुए हेमाम्बुरुह वक्त्र, राजा के सम्मुख स्थित मालविका का अर्द्ध-विकच पंकज सदृश मुख मंडल आदि प्रसंगों में मुख के सादृश्य के लिए कमल को ग्रहण किया गया है।[3] नील कमल की नीलाभा एवं पंखुड़ियों की नेत्र सदृश विशिष्ट आकृति से आकृष्ट होकर महाकवि ने दिलीप के निवातपद्म चक्षुओं की स्थिरता, अज के पद्माभ चक्षुओं की रमणीयता, विष्णु के पुण्डरीक अक्षों की विकचता, निषध के कुशेशय अक्षों की सरसता, उमा के नीलोत्पल नयनों की चंचलता, निशा-रमणी के सरोज-नयनों की संवृतता, इन्द्र के अम्भोज-नेत्रों की बहुलता, कुमार के कोकनद अक्षों की अरुणाभा, हरिणों के उत्पल नेत्रों की चटुलता, शरद रमणी के नीलोत्पल अक्षों की सुभगता, प्रजागरित युवतियों के पद्म-नेत्रों की विपाटलता आदि वर्णन-प्रसंगों में आंखों के सादृश्य हेतु कमल को ग्रहण किया है[4] । हस्त एवं पादों की कोमलता और रक्ताभा को अभिव्यंजित करने के लिए इन्दुमती-स्वयंवर में उपस्थित राजा के कुशेशय कर, पुत्र को गोद में उठाती हुई पार्वती के पाणिसरोरुह, शिव के साथ खेलते हुए कुमार के पाणिपद्म, कान्त-संसक्ता रमणियों के कर-कमल, एवं राजा के समीप स्थित मालविका के कमल-हस्तों[5] के साथ-साथ झुके हुए राजाओं से सुशोभित रघु के पाद-पद्म, सीता के मौन पड़े हुए नूपुरों वाले चरणारविंद, पार्वती के अलक्तक से रंजित पाद सरोरुह, अवलाओं के लाक्षारस रंजन योग्य चरण-कमल, रमणियों के नूपुर मुखरित पादाम्बुज, मालविका का अशोक को विकसित करता हुआ चरण-अम्बुरुह[6] आदि स्थलों में चरणों के लिए कमल का सादृश्य उपस्थित किया गया है।

मुखोच्छवास की गन्ध में कमल-गन्ध की रुचिरता का अनुभव करते हुए महाकवि ने दिलीप और सुदक्षिणा के मुख की कमल की सी मधुर गन्ध, अज के मुख की पद्म की सी रुचिर गन्ध, पार्वती के मुख की पंकज की सी पावन गन्ध, उर्वशी के मुखोच्छवास की पुण्डरीक की सी मादक गन्ध, रमणियों के मुख की अब्ज की सी मदिर गन्ध आदि सादृश्य प्रस्तुत किए हैं[7] । इसके साथ ही हथिनी द्वारा कमल के पराग में बसा हुआ सुगन्धित जल अपनी सूँड से निकालकर हाथी को पिलाये जाने, चक्रवाक द्वारा आधा कुतरा हुआ सुगन्धित कमल-खण्ड चक्रवाकी को भेंट किये जाने, अवन्ति देश में कमल-आमोद-मैत्री-कषाय प्रातःकालीन शिप्रावात के बहने, कण्वाश्रम में अरविंद की सुरभि को वहन करने वाले रुचिर पवन द्वारा शरीरावयवों को स्पर्श किए जाने आदि प्रसंगों में भी कमल-गन्ध का उल्लेख हुआ है[8] । कमल के पुष्पों में सूर्य की किरणों से आने वाली विकचता का सूक्ष्म निरीक्षण करके महाकवि ने कल्पना की है कि सूर्य कमलिनी का प्रियतम है। उसका स्पर्श पाकर कमलिनी खिल उठती है, दिन में ही अचानक मेघ घिर आने पर मुरझा जाती है, चन्द्र का स्पर्श उसे विकसित नहीं कर पाता[9] सूर्य भी नित्य प्रातः अपनी प्रेयसी कमलिनी के कमल-मुख के अश्रु-विन्दुओं को पोंछने के लिये आ जाता है [मेघ १/४३] कमलिनी के सूर्य के समान ही कुमुदिनी का प्रियतम चन्द्र है[10] । कमल विकास सम्बन्धी इस कवि प्रौढ़ोक्ति में कुछ वैज्ञानिक तथ्य भी है। वनस्पति विज्ञान के प्रसिद्ध ग्रन्थ "वेल्थ आफ इंडिया" में वनस्पति-विशेषज्ञों ने भी स्वीकार किया है कि कमल की कुछ प्रजातियां ऐसी हैं जिनके कोशों का विकास सूर्य के ताप से होता है, जिससे वे रात्रि के शीतल वातावरण में सिकुड़ जाते हैं तथा दूसरी प्रजाति ऐसी भी है जिसके दलों में शीतलता से ताजगी आती है[11] ।

महाकवि ने विविध प्रसंगों में सरोवर, भ्रमर, गज और हंस से भी कमल के सान्निध्य का उल्लेख किया है। सरोवर कमल का आश्रय है, कमल से ही उसकी शोभा होती है, जल-तल घट जाने पर कमल दण्ड ऊपर खड़े रह जाते हैं, कमल के पराग से जलाशय रंग जाते हैं, सरोवर तटों पर भी कमल उगे रहते हैं[12]। भ्रमर कमलों का रसलुब्ध प्रेमी है। कमल-वसति में मंडराता रहता है, कमलों से मधु लेता है, कमल-कोशों में सोया रहता है परन्तु कमल के दल रहित हो जाने पर उसे छोड़कर मयूर पक्षों में शरण लेता है[13]। हाथी कमलों का विध्वंसक है। सरोवर में प्रवेश करके कमलिनियों को रौंद देता है और उन्हें उखाड़ फेंक कर जल-क्रीड़ा करता है[14]। हंस को कमलिनियों से अनुराग है, विस-किसलय उसका पाथेय है, कमलिनी की छाया में वह आँख मूँद कर विश्राम करता है[15]।

इसके साथ ही वक्षजोपम्य भ्रमरयुक्त पंकज, मुख-ज्योतिर्मण्लोपम्य कमल प्रभामंडल, शिरोपम्य कमल पुष्प, दन्तोपम्य विसांकुर, धूम एवं व्योमोपम्य नीलोत्पल, यश मत्स्य एवं कैलाश श्रृंगोपम्य कुमुद आदि पर भी महाकवि की दृष्टि रमी है[16]।

कविवर कालिदास के कमल के प्रति विशेष अनुराग के निम्नलिखित कारण प्रतीत होते हैं :-

(१) भव्याकृति :—

कमल नामक वनस्पति अपने सम्पूर्ण अवयवों में एक मोहक आकृति लिये होती है। अरवी की पत्तियों के समान अण्डाकार इसकी पत्तियाँ इतनी चिकनी होती हैं कि पानी में डुबोने पर भी गीली नहीं होती। इसी कारण निर्लिप्ता के लिए "पद्म पत्र इवाम्भसि" कहा जाता है। इसकी विभिन्न प्रजातियों में चार-पाँच सेमी० से बीस-पच्चीस सेमी० व्यास तक के सुन्दर पंखुड़ियों के आकर्षक सन्निवेश से युक्त फूल लगते हैं[17]। भारतीय उष्ण एवं उपोष्ण कटिबन्ध की झीलों में इन आकर्षक कमलों के एक साथ खिलने से होने वाले अद्भुत मोहक दृश्य ने कालिदास को अत्यधिक आकर्षित किया है।

(२) आकर्षक रंगादि :—

कमल की पाँच प्रमुख प्रजातियां भारत में होती हैं[18]।

क–श्वेत कमल–नेलम्बियम-स्पैसिओजम (Nelumbiam-speciosum)
ख–रक्त कमल–निम्फिया लोटस (Nymphea-lotus)
ग–नील कमल–निम्फिया स्टेलाटा (Nymphea-stellata)
घ–कुमुद–निम्फिया एल्बा (Nymphea-alba)
ड–स्थल कमल–आयोनिडियम सफ्रुटिकोसम (Ionidium-suffruticosum)

इन पाँचों प्रजातियों में उपलब्ध श्वेत, रक्त एवं नील रंग, कोमलता, रुचिरगन्ध एवं विशिष्ट आकृति आदि विशेषताओं के कारण कमल में सर्वोत्तमता आ गई है। इसी कारण महाकवि ने कमल

को मुख, मुखोच्छ्वास, नेत्र, ओष्ठ, कपोल, सिर, हस्त, पाद आदि सभी शरीरावयवों एवं सम्पूर्ण शरीर के सादृश्य हेतु ग्रहण किया है।

(३) राष्ट्रीय भावना :—

अनादि काल से कमल के साथ भारत की सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय भावनाएँ जुड़ी हुई हैं। पुराणों के अनुसार जगत स्रष्टा ब्रह्मा का आविर्भाव विष्णु के नाभि-कमल से हुआ। योगशास्त्र के अनुसार सिद्ध योगी ब्रह्म-साक्षात्कार करने हेतु कुण्डलिनी को जगाकर उसे षट्कमल-चक्रों, द्विदल-कमल और षोडश दल कमल-चक्रों से पार कराते हुए मस्तिष्क के अन्दर स्थित सहस्रदल कमल में प्रविष्ट कराते हैं। साहित्याचार्यों ने नायिका भेद में पद्मिनी नायिका को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। सृष्टि-कर्ता ब्रह्मा, ज्ञान की धात्री सरस्वती तथा धन-वैभव की देवी लक्ष्मी का आसन भी कमल है। चतुर्भुज विष्णु के हाथों में शंख, चक्र, गदा के साथ पद्म भी है। अतः राष्ट्रकवि कालिदास का भारतीय राष्ट्रीय पुष्प कमल के प्रति अधिक अनुराग होना स्वाभाविक ही है।

संदर्भ

(१) रघु० ६/६५, १३/५, १३/५१, १३/६०, कुमा० ५/६, ५/२७, ६/१७, १३/३२, १७/१६, मेघ० १/११, २/११, २/३७, ऋतु० ३/८, ३/११, ३/१६, ४/१, शाकु० १/१६, ३/७६

(२) कुमा० ५/१६, ११/२६, विक्र० ३/१३

(३) रघु० ४/६१, ६/८०, १४/५०, १८/५, कुमा० ५/२१, ७/६२, ६/१, ११/२५, १२/३५, १३/१७, १७/४०, ऋतु० ३/१, ५/१३, ६/८, माल० २/१०

(३) रघु० ३/१७, ५/६८, ५/७३, १०/६, १८/४, कुमा० १/४०, १/४६, ५/३५, ७/२०, ८/३०, ६/२६, १२/२३, ऋतु० २/६, ३/१४ ३/२८, ४/१५

(५) रघु० ६/१८, कुमा० ११/२१, ११/४७, ऋतु० ३/२३, माल० ५/६

(६) रघु० ४/३७, १३/२३ कुमा० ६/२७, मेघ० २/१२, ऋतु० ३/२०

(७) रघु० १/४३, ५/६१, कुमा० ५/२७, ८/१६, ऋतु० ६/३३, विक्र० ४/४२

(८) कुमा० ३/३७, मेघ० १/३३, शाकु० ३/५

(६) रघु० ४/६१, ६/३६, ६/४४, ६/६६, ६/८६, १७/७५, मेघ० २/३२, ऋतु० ३/२५, शाकु० ५/२८ ७/१६, माल० ४/७, ५/३

(१०) रघु० ६/३६, ६/८६, ७/६४, १७/७५, कुमा० ७/७४, ८/७०, ऋतु० ३/२५, शाकु० ३/१५, ४/३, ५/२८

(११) Wealth of India—Raw Material, Vol. VII, 1966, Page 70.

(१२) रघु० ६/२६, ६/२७ ६/३७, ११/१२, १६/४६, १८/३७ कुमा० २/२, मेघ० २/१६, ऋतु० ४/६, शाकु० ४/११, ७/१२, विक्र० २/२२

(१३) रघु० ८/५५, कुमा० ८/२३, ८/३३, ८/३६, ऋतु २/१४, ६/१५, शाकु० ५/१, ६/२०, विक्र० ४/४०

(१४) रघु० १६/१६ १६/६८, ऋतु० १/१६, २/१५

(१५) मेघ० १/११, विक्र० ४/३१, माल० २/१२

(१६) रघु० ३/८, ४/५, ४/१६, १०/४४, १५/५२, कुमा० ७/१६. १७/३५, मेघ० १/४४, १/६२, ऋतु० २/२, २/१६, २/२३, ३/४

(१७) Flora of British India, Vol.I, 1872, J.D. Hooker-London P. 114, 115.

(१८) Wealth of India-Raw Material, Vol.VII, 1966, S.H.Zaheer etc. New Delhi - P. 7-9, 70-73.

-: o :-

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc 1984-85, Vol , 1P. 7—12
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ७-१२

हिन्दी उपन्यासों में अस्तित्ववाद

डा० राजेन्द्र प्रसाद जोशी

हिन्दी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय पिथौरागढ़

सारांश

[अस्तित्ववाद उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी का प्रसिद्ध पाश्चात्य दर्शन है। 'अस्तित्व सार रूप से पहले है', इस वाक्य को संपूर्ण अस्तित्ववादी दर्शन का मूलाधार माना जा सकता है । अस्तित्ववादियों का विश्वास है कि मनुष्य अपने दुःखों के लिए स्वयं उत्तरदायी है, और इस उत्तरदायित्व से वह बच नहीं सकता । आस्तित्ववादी दर्शन ने समकालीन साहित्य को बहुत प्रभावित किया है, और हिन्दी साहित्य इसका अपवाद नहीं है ।]

ABSTRACT

[Existentialism is famous western philosophy of 19th and 20th century. 'Existence precedes essence—This may be safely regarded as the basic stand point of existential philosophies. The existentialists hold that human beings are themselves responsible for their miseries and there is no escape from this. Existential philosoply has a very great impact on the contemporary literature of almost all the countries and Hindi literature is no exception to it.]

अस्तित्ववाद एक संकटकालीन पाश्चात्य दर्शन है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही पाश्चात्य देशों के कुछ दार्शनिकों को विज्ञान के विध्वंसात्मक प्रवृत्तिजन्य संकट और तत्कालीन पारंपरिक रूढ़िवादिताओं से उत्पन्न संकट के कारण विसंगति की प्रबल अनुभूति होने लगी थी । संकटजन्य इसी विसंगत्यानुभूति की प्रतिक्रिया में अस्तित्ववादी दर्शन का उद्भव हुआ[1] आगे भी इसी प्रकार के संकट के ताप से विदीर्ण होकर ही अन्य दार्शनिकों ने अस्तित्ववाद का समर्थन कर उसका बहुविध विकास किया[2] । अस्तित्ववादी दर्शन को उद्भूत एवं विकसित करने वाले दार्शनिकों की देश-काल -क्रम के अनुसार सूची इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है:—

स्थान	नाम	समय
डेनिश	सोरेन कीर्केगार्द	१८१३—१८५५
जर्मनी	१. फ्रेडरिक नीट्शे	१८४४—१९००
	२. कार्ल यास्पर्स	१८८३—
	६. मार्टिन हेडेगर	१८८९—
	४. फ्रैज काफ्का	१८८३—१९२४
फ्रांस	१. गेब्रियल मार्शल	१८८९—
	२. ज्या पाल सार्त्र	१९०५—१९८०
	३. अलबेयर कामू	१९१३—१९६०
रूस	१. फ्योदोर दास्तोस्की	१८२१—१८८१
	१. निकोलाइ बर्दिएफ	१८७४—१९४८

इन दार्शनिकों के अनुसार व्यक्ति से वस्तु को अधिक महत्व दिया जाना ही वर्तमान संकटों का मूल कारण है। प्रत्ययवादी, वस्तुवादी, विचारवादी या आदर्शवादी हीगेल का विरोध करते हुए इन दार्शनिकों ने कहा कि मनुष्य का अस्तित्व सार रूप से पहले है। ये अस्तित्ववादी विचारक वास्तव में विचार या वस्तु से अधिक मनुष्य को प्राथमिक महत्व देने की इच्छा में पारम्परिकता के विद्रोही बने और 'आउट-साइडर' बनकर अपने सत्य को जानने की कोशिश में लगे रहे। ऐसे 'आउटसाइडर' को परिभाषित करते हुए दिनकर जी ने लिखा है—

"मानव-समाज में मनुष्य जिस रूप में जी रहे हैं, उसे अस्वीकार करना 'आउटसाइडर' का पहला लक्षण है।"

× × ×

"सारा समाज बीमार है, लेकिन उसे अपनी बीमारी का ज्ञान नहीं होता है। 'आउटसाइडर' की यह विशेषता है कि वह जानता है कि मैं बीमार हूं।"

× × ×

" 'आउटसाइडर' संसार के परिष्कार की अभिलाषा है, वर्तमान के प्रति विरोध है।"[3]

अस्तित्ववादी 'आउटसाइडर' की भांति तथाकथित संकट की कटु पीड़ा भारतीय जन-मानस में भी व्याप्त रही। ऐसे समय में यहां के प्रबुद्ध वर्ग को इस पाश्चात्य पीड़ावादी दर्शन ने प्रभावित किया। बीसवीं शताब्दी में इस दर्शन के प्रभावकारी रूप से सम्बन्धित दो उक्तियां द्रष्टव्य हैं :–

१– "समूचे आधुनिक साहित्य और दर्शन पर किसी भी परवर्ती दार्शनिक ने ऐसी छाप नहीं छोड़ी थी, जैसी कि कीर्केगार्द ने"[4]

२– "आधुनिक दर्शन के क्षेत्र में प्रत्यक्षवादियों और अस्तित्ववादियों के विद्रोह ने एक स्वस्थ एवं मुक्तिदायक प्रभाव डाला है।"[5]

अस्तित्ववाद की इसी लोकप्रियता ने हिन्दी के साहित्यकारों को भी प्रभावित किया। अपने उपन्यासों के सन्दर्भ में अज्ञेय जी लिखते हैं :–

"मैं एक संदेश लाया हूं जो कि मेरा अपना नहीं है, जिसे मैं एक बाह्य प्रेरणा से बाध्य होकर कहूंगा——मैं चाहता हूं, उसी प्रेरणा के भविष्य को इंगित कर जाऊँ।"[6]

अस्तित्ववाद की उपादेयता पर प्रकाश डालते हुए भगवती प्रसाद बाजपेयी लिखते हैं :–

"वास्तव में अस्तित्व की स्थापना ही नहीं, उसका संरक्षण भी अपने युग की बड़ी समस्या है। उसका मूल उद्देश्य है–वर्गगत मतों, धारणाओं तथा सिद्धान्तों के प्रति निरपेक्ष रहकर केवल मानवीय हितों के नव-नव प्रकार के शोधों की समीक्षा करना।"[7]

अपने उपन्यास 'सूना आसमान' में इस दर्शन के व्यावहारिक रूप को स्वीकृति प्रदान करते हुए बलवन्त सिंह लिखते हैं—"यदि शास्त्रीयता की दीवार से दर्शन को बाहर कर दिया जाय तो मेरे इस उपन्यास में एक दर्शन मिल सकता है।"[8] हिन्दी के निम्नलिखित उपन्यासों में अस्तित्ववादी दर्शन को सैद्धान्तिक या स्वाभाविक अभिव्यक्ति मिली है :—

शेखर : एक जीवनी (अज्ञेय), नदी के द्वीप (अज्ञेय), अपने-अपने अजनबी (अज्ञेय), सूरज का सातवां घोड़ा (धर्मवीर भारती), वे दिन (निर्मल वर्मा), सूना आसमान (बलवंत सिंह). आज और अभी (भगवती प्रसाद वाजपेयी), यह पथबन्धु था (नरेश मेहता), न आने वाला कल (मोहन राकेश), दूसरी बार (श्रीकान्त वर्मा), आपका बंटी (मन्नू भंडारी), पथ की खोज (डॉ० देवराज) अजय की डायरी (डॉ० देवराज)

हिन्दी के उपर्युक्त उपन्यासों में अस्तित्ववादी दर्शन के अनुरूप संकटजन्य पीड़ा या वेदना की अभिव्यक्ति हुई है, जैसे—"संसार का पहला दर्शन सदा ही उसके पीड़ा भरे रूप का दर्शन होता है।"[9]

"वेदना में एक शक्ति है, जो दृष्टि देती है।"[10] इसी तरह "जो यातना में है, वह द्रष्टा हो सकता है।"

अन्य उपन्यासों में भी इसी तरह की स्वीकारोक्तियाँ देखी जा सकती हैं।[11]

विद्रोह अस्तित्ववाद का दूसरा प्रमुख स्वर है। हिन्दी के उपन्यासों में इस स्वर का नारा भी प्रबल दिखाई पड़ता है। जैसे––

"हम सभी कुछ बदलना चाहते हैं। हमारी विद्रोही प्रेरणा धर्म के, समाज के, राज्यसत्ता के, अर्थसत्ता के और अन्त में अपने व्यक्तित्व के प्रति विद्रोह है।"[12]

"मैं नहीं मानता कि संसार सदा ऐसा ही रहा है, और ऐसा ही रहेगा। मनुष्य के विकास का इतिहास इतना कृत्रिम, शिथिल और थोथा नहीं है कि क्रान्तिकारियों ने संघर्ष में पड़कर कुछ कर न दिखाया हो।"[13]

"जो इस नैतिक विकृति से अपने को अलग रखकर भी इस तमाम व्यवस्था के विरुद्ध नहीं लड़ते, उनकी मर्यादाशीलता सिर्फ परिष्कृत कायरता होती है।"[14]

ऐसे ही विद्रोही की अभीप्सा में राजेन्द्र यादव लिखते हैं––"कोई तो आखिर होंगे जो रूढ़ियों के मुर्दों की छाती पर पाँव रोपकर-जीवन का शंख फूँकेंगे।"[15]

व्यक्ति-स्वातंत्र्य की भावना भी अस्तित्ववादी दार्शनिकों के मूलमंत्रों में से एक है। व्यक्ति-स्वातंत्र्य की बात का पूर्ण समर्थन हिन्दी के अस्तित्ववादी उपन्यासकारों ने किया है। इस विषय में अज्ञेय का मत है––

"व्यक्ति को दबाकर जो भी निर्णय होगा, गलत होगा, घृणित होगा। समान व्यवहार का नियमन समाज करे–ठीक है, मेरे अन्तरंग जीवन का नहीं। वह मेरा है। मेरा यानी हर व्यक्ति का निजी।"[16]

भगवती प्रसाद बाजपेयी व्यक्ति-स्वातंत्र्य के समर्थन में लिखते हैं––"मनुष्य का अपना धर्म और कर्म, प्यार व ममता, तथा सारे जीवन मूल्य सदा तुलनात्मक नहीं होते, वह अपने-अपने निज के अलग और स्वतंत्र होते हैं।"[17]

इन्हीं सिद्धान्तों के अनुरूप हिन्दी के अस्तित्ववादी सभी उपन्यासों के नायक वरण की स्वतंत्रता तथा पूर्ण व्यक्ति-स्वातंत्र्य की कामना में सतत् संघर्षशील दिखाई पड़ते हैं।

अस्तित्ववाद की एक अन्य प्रमुख विशेषता है––मृत्युबोध के साथ प्रतिपल जीना, इस संदर्भ में हिन्दी उपन्यासकारों के कुछ मत द्रष्टव्य हैं :––

१– "विज्ञान कहता है––जो कुछ हो चुका है, वह भविष्य के अन्त तक रहेगा; और जो होना है, वह भूत के प्रारंभ से ही था। क्योंकि भूत व भविष्य कुछ नहीं है, क्योंकि काल भी कुछ नहीं है––तब मैं मर कर भी जीता रहूंगा, पर जीते हुए भी मर चुका हूं।"[18]

२– "शायद मृत्यु का ज्ञान और जीवन की कामना एक ही चीज है, बहुत बार सुनने में आता है कि जीना वही जानता है, जो मरना जानता है, यही ध्रुव सत्य है।"[19]

इन्हीं बातों के समानान्तर अन्य उपन्यासों के नायक भी मृत्युबोध के साथ जीते हुए मृत्यु से त्रस्त नहीं बल्कि उसका सहज वरण करने को तत्पर रहते हैं। इन मुख्य धारणाओं के अतिरिक्त कथित उपन्यासों में क्षणबोध, जीवन की निरर्थकता, नैतिकता पर प्रश्नचिह्न, अनीश्वरवादिता और निराशामयी धारणाओं को भी चारित्रिक अभिव्यक्ति मिली है।

निष्कर्षतः हिन्दी के उपन्यासों में अस्तित्ववादी दर्शन की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों तरह की अभिव्यक्ति हुई है। यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि आज साहित्य की विधाओं में से उपन्यास ही संकटग्रस्त जीवन के सर्वाधिक निकट आया है। हिन्दी के इन उपन्यासों के सभी नायक आधुनिक संकटग्रस्त परिवेश में पल रहे मानवों का प्रतिनिधित्व करते हैं। औपन्यासिक नायकों के माध्यम से अस्तित्ववादी उपन्यासकार दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में यही संदेश प्रसारित करते हैं कि वेदना भी वरणीय है। जो व्यक्ति रूढ़िगत मान्यताओं से लदकर जिस-किसी तरह अपने जीवन को घसीट रहे हैं, उन्हें ये संदेश देते हैं कि रूढ़ियों के इन निरर्थक वोझों को शीघ्र फेंको। जो नैतिकता के नाम पर अपनी अन्तरात्मा की आवाज को गुलामी के कठघरे में कैद किए हुए हैं, उन्हें ये व्यक्ति स्वातंत्र्य का जीवन-दर्शन सिखाते हैं। जो जीवन एवं मृत्यु से त्रस्त हैं, उन्हें ये उपन्यासकार मृत्युबोध की अनिवार्यता बताकर स्वत्व को दवाने वाले तत्वों के प्रति विद्रोही बनाकर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। इस तरह जीवन की निरर्थकता के मध्य किसी क्षण में छलांग लगाकर मानव-अस्तित्व की पर्तें खोलने वाला अस्तित्ववादी दर्शन प्रस्तुत करके उपन्यासकारों ने यही व्यंजना की है कि आज के संत्रस्त जीवन से मुक्ति का एक ही उपाय है——अस्तित्ववोध।

संदर्भ

१. द प्वाइन्ट ऑव व्यू, कीर्केगार्द, पृ० १००, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १६३६।

२. (क) द आउटसाइडर, कॉलिन विल्सन, पृ० १४१, पान बुक्स लन्दन १८७१।
   (ख) दि मिथ ऑव सिसिफस, कामू, पृ० ५५, आस्टिन ओब्रायन, लंदन, १६५५।
   (ग) लेटर्स टु मिलेना, काफ्का (अनु० विली हास) पृ० २०४, पेंग्विन बुक्स, लंदन।
   (घ) ड्रीम एण्ड रियलिटी, वर्दिएँफ, पृ० ३३, जिओफ्रे ब्लेस लन्दन, १६५०।
   (ङ) एक्जिस्टेंशियलिज्म फ्राम दास्तोव्स्की टू सार्त्र, काफमैन, पृ० ५३।

३. आधुनिक बोध, रामधारी सिंह दिनकर, पृ० ५४-५५, उदयाचल पटना—४।

४. एक्जिस्टेंशियलिज्म फ्राम दास्तोव्स्की टू सार्त्र, काफमैन, पृ० ५०।

५. रिलीजन एण्ड कल्चर, डा० राधाकृष्णन, पृ० १०८, हिन्द पाकेट बुक, १६६८।

६. शेखर एक जीवनी (पहला भाग), प्रवेश पृ० ४२, सरस्वती प्रेस इलाहावाद।

७. आज और अभी उपन्यास की भूमिका), प्रत्यूष प्रकाशन, रामबाग, कानपुर—१२।

८. सूना आसमान (उपन्यास की भूमिका), लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, १६६७।

६. शेखर एक जीवनी (प्रथम भाग) पृ० २१६, सरस्वती प्रेस, इलाहावाद।

१०. वही (भूमिका भाग)।

११. (क) नदी के द्वीप, अज्ञेय, पृ० १६७, सरस्वती प्रेस इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण।
(ख) आज और अभी, भगवती प्रसाद बाजपेयी, पृ० १८, ८६, प्रकाशन उपर्युक्त।
(ग) शेखर एक जीवनी (द्वितीय भाग) पृ० ३३, सरस्वती प्रेस इलाहाबाद।
(घ) उखड़े हुए लोग, राजेन्द्र यादव, पृ० २६७, साहित्य सदन देहरादून १९५६।
(ङ) पथ की खोज, डा० देवराज, पृ० १४२, बुद्धिवादी प्रकाशन गृह लखनऊ १९५१।
१२. शेखर एक जीवनी (प्रथम भाग), पृ० ३४, प्रकाशन उपर्युक्त।
१३. आज और अभी, भगवती प्रसाद बाजपेयी, पृ० ८२।
१४. सूरज का सातवाँ घोड़ा, धर्मवीर भारती, पृ० ५९, साहित्य भवन इलाहाबाद, तृ० सं०।
१५. उखड़े हुए लोग, राजेन्द्र यादव (भूमिका), प्रकाशन उपर्युक्त।
१६. नदी के द्वीप, अज्ञेय, प्रकाशन उपर्युक्त।
१७. आज और अभी, भगवती प्रसाद बाजपेयी, पृ० १६१, प्र० उपर्युक्त।
१८. शेखर एक जीवनी (प्रथम भाग), पृ० ३६, प्र० उपर्युक्त।
१९. वही , वही , पृ० १२८, प्र० उपर्युक्त।

–: (०) :–

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1984-85, Vol., 1 P. 13—18
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० १३-१८

हिन्दी उच्चारण और सुमित्रानन्दन पन्त

डॉ० श्याम गुप्त

हिन्दी विभाग, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर

सारांश

प्रसिद्ध आधुनिक कवि श्री सुमित्रानदन पंत ने हिन्दी उच्चारण पद्धति के अनुसार शब्द प्रयोग की प्रवल वकालत की है। उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों में हिन्दी उच्चारण का पूर्ण स्वास्थ्य विद्यमान है। प्रस्तुत शोध लेख में हिन्दी उच्चारण पद्धति पर प्रकाश डालने के पश्चात् पंत जी की उच्चारण सम्बंधी धारणाओं एवं शब्द प्रयोग में विद्यमान उच्चारण वैशिष्ट्य का विश्लेषण एवं विवेचन किया गया है। इससे हिन्दी उच्चारण को समझने और काव्य में शुद्ध उच्चारण से युक्त शब्द प्रयोग करने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

ABSTRACT

[Sumitra Nandan Pant, the illustrious modern poet, has strongly emphasised the use of words in accordance with the prevalent pronunciation in Hindi and he has successfully applied this Proposition to his own poetry. In this research paper an attempt has been made to assess and analyse the poetic worth of Pant's poetry in the light of Hindi Pronunciation method. This experiment would promote the use of poetic diction corresponding with Hindi pronunciation.]

अन्य भाषाओं की भाँति अपने उच्चारण वैशिष्ट्य से सम्बन्धित हिन्दी भाषा में उच्चारण की जाने वाली प्रत्येक ध्वनि अनिवार्यत: लिपिबद्ध की जाती है और इसमें प्रत्येक लिपिबद्ध ध्वनि-संकेत का उच्चारण अनिवार्य होता है। उच्चारण से ही छंद की आत्मा लय का निर्माण होता है। स्मरणीय है कि अभीष्ट उच्चारण के अभाव में छन्द सदोष हो जाता है।

हिन्दी वर्णमाला दो भागों में विभाजित है—स्वर और व्यंजन। स्वर बिना किसी सहायता के स्वयं उच्चरित होते हैं, परन्तु व्यंजन की उच्चारण पूर्णता के लिए उसके अन्त में स्वर का योग अनिवार्य है। स्वर रहित व्यंजन हल् कहा जाता है और उसे आधा अक्षर माना जाता है। छंदशास्त्र में हल् की कोई मात्रा निर्धारित नहीं की गयी है, जबकि ह्रस्व या लघु वर्ण में एक। और दीर्घ

या गुरु वर्ण में दो मात्राएँ (ऽ) मानी जाती हैं[1]। मात्रा का अभिप्राय और उसके निर्धारण का आधार किसी वर्ण के उच्चारण में लगने वाला समय है। यदि किसी वर्ण के उच्चारण में अल्प काल लगता है तो उसे लघु और यदि उसके उच्चारण में अपेक्षाकृत दीर्घकाल लगता है तो उसे गुरु कहते हैं। खड़ी बोली हिन्दी में अधोलिखित वर्णों का लघु उच्चारण किया जाता है :

१- ह्रस्व स्वर—अ, इ, उ, ऋ, का।

२- ह्रस्व स्वरों से युक्त व्यंजनों का, जैसे—गिरि, ऋषि, पुलिन आदि का।

३- अर्द्ध चन्द्रविन्दु से युक्त वर्णो का; जैसे—'हँसमुख' में 'हँ' का।

४- ह्रस्व संयुक्ताक्षर से आरम्भ होने वाले शब्द के प्रथम वर्ण का; जैसे 'क्षति' में 'क्ष' और 'व्यवहार' में व्य' का।

५- संयुक्ताक्षर के पूर्व के उस लघु वर्ण का, जिस पर संयुक्ताक्षर के उच्चारण का भार नहीं पड़ता; जैसे—'तुम्हारा' के 'तु' और 'कन्हैया' के 'क' का।

अधोलिखित स्थितियों में किसी वर्ण का गुरु उच्चारण किया जाता है :—

१- दीर्घ स्वरों—आ, ई, ऊ. ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः का।

२- दीर्घ स्वरों, अनुस्वार और विसर्ग से युक्त वर्णों का; जैसे—जादू, अंतः आदि।

३- संयुक्ताक्षर के पूर्व उस लघु वर्ण का, जिस पर संयुक्ताक्षर के उच्चारण का भार पड़ता है; जैसे—'विज्ञान' के 'वि' 'पत्र' के 'प' का।

संस्कृत में संयुक्ताक्षर के पूर्व का अक्षर सर्वदा गुरु होता है।[2] हिन्दी को विभाषा अवधि और ब्रजी में पालि की भांति ए और औ स्वर ह्रस्व और दीर्घ दोनों हैं; अतः इनका उच्चारण विकल्प से लघु भी किया जाता है। उदाहरण—

नाथ संभु धनु भंजनिहारा।
होइहै कोउ एक दास तुम्हारा॥[3] (रेखांकित का लघु उच्चारण)

इस प्रकार हिन्दी के प्रत्येक वर्ण का उच्चारण निश्चित है। श्री सुमित्रानन्दन पंत के शब्दों में—"हिन्दी में तो सोने की तोल है, उसमें आप रत्ती भर किसी मात्रा के उच्चारण को सुविधा के लिए घटा-बढ़ा नहीं सकते, उसकी आवश्यकता नहीं पड़ती।[4]" जब कोई वलपूर्वक लघु का गुरु और गुरु का लघु उच्चारण करता है या शब्द के स्वरूप को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करता है, तब अस्वाभाविकता आ जाती है। सफल कवि तो वह है, जो शब्द को उसके सही उच्चारण के साथ प्रयुक्त करता है।

मात्रा के न्यूनत्व एवं आधिक्य से अप्रभावित गद्य में वर्ण उच्चारण सम्बन्धी कोई कठिनाई नहीं होती; व्यक्ति बिना किसी आशंका के भाषा-प्रकृति के अनुसार शब्द का उच्चारण कर लेता है, परन्तु पद्य में एक मात्रा के हेरफेर से उसका अस्तित्व तत्काल प्रभावित हो जाता है। ऐसी स्थिति में शब्दों के उच्चारण में जोड़ तोड़ करने के लिए वाध्य होना पड़ता है। कहा भी गया है—

'अपि माषं मषं कुर्यात् छन्दोभङ्ग न कारयेत्।'

अर्थात् 'माष' का उच्चारण 'मष' भले ही कर दिया जाये, परन्तु छन्दोभंग नहीं करना चाहिए। अभीष्ट लयप्राप्ति हेतु इस प्रकार शब्द-स्वरूप को विकृत करने की स्थिति कभी वरेण्य नहीं कही जा सकती।

हिन्दी उच्चारण के सम्बन्ध में पंत जी अपने कवि जीवन के आरम्भ से ही बहुत सजग दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने हिन्दी उच्चारण प्रकृति के अनुसार ह्रस्व वर्णों का लघु और दीर्घ वर्णों का गुरु के रूप में ही प्रयोग किया है। उनके छायावादी काव्य में लघु को गुरु तथा गुरु को लघु के रूप में न तो कहीं लिखा गया है और न कहीं अभीष्ट लय-प्राप्ति हेतु ऐसा उच्चारण करने की विवशता है। उन्होंने अपने काव्य में केवल मात्रिक छंदों का ही प्रयोग किया है और इसके लिए उन्होंने तर्क दिया है –

"हिन्दी का संगीत केवल मात्रिक छंदों में ही अपना स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सम्पूर्णता प्राप्त कर सकता है, उन्हीं के द्वारा उसमें सौन्दर्य की रक्षा की जा सकती है।"[5]

"कवित्त में परकीय, मात्रिक छन्द में स्वकीय हिन्दी का अपना उच्चारण मिलता है।"[6]

संयुक्ताक्षर-उच्चारण के प्रसंग में पंत जी ने लिखा है–"संस्कृत में संयुक्ताक्षर के पूर्व अक्षर को गुरु मानना आवश्यक सा हो जाता है, वह अच्छा भी लगता है, हिन्दी में ऐसा नियम नहीं है और वह कर्ण-कटु भी हो जाता है।"[7] उनके इस कथन से ऐसा लगता है कि वे जो कहना चाहते थे, वह कह नहीं पाये, क्योंकि उनके इस मत और उनके शब्द-प्रयोग में सर्वत्र अनुरूपता नहीं पायी जाती। उनके काव्य में एक शब्द के मध्य विद्यमान संयुक्ताक्षर का पूर्व वर्ण सर्वत्र गुरु पाया जाता है। उदाहरण—

मधुर प्रतिध्वनि सुनकर उसकी
नव कलियाँ सजतीं शृङ्गार।
X X X
यह अति अस्फुट ध्वन्यात्मक है
बिना व्याकरण बिना विचार।[8]

इस उदाहरण में प्रतिध्वनि का 'ति', अस्फुट का 'अ' और ध्वन्यात्मक का 'ध्व' संयुक्ताक्षर के पूर्व होने के कारण ह्रस्व होने पर भी उच्चारण नियमानुसार गुरु हैं। अतः उनका यह कथन कि हिन्दी में संयुक्ताक्षर के पूर्व का वर्ण दीर्घ नहीं होता, उचित नहीं है। ऐसा ज्ञात होता है कि उनके 'संयुक्ताक्षर के पूर्व अक्षर' का अभिप्राय उस वर्ण से है, जिस पर संयुक्ताक्षर के उच्चारण का भार नहीं पड़ता। (इसके लिए लघु उच्चारण के सम्बन्ध में इस लेख में पूर्व निर्दिष्ट नियम संख्या ५ देखिए।)

उन्होंने समस्त शब्द में संयुक्ताक्षर के पूर्व स्थित उस लघु वर्ण को, जिस पर संयुक्ताक्षर के उच्चारण का भार नहीं पड़ता, लघु ही माना है। उदाहरण—

निखिल जगत प्रेम-ग्रथित, (रेखांकित का लघु उच्चारण)
मोहित चर-अचर भ्रमित[9]

इसी प्रकार निम्नलिखित उदाहरण का रेखांकित वर्ण लघु है -

डाँडों के चल करतल प्रसार, भर-भर मुक्ताफल फेन-स्फार[10]

यदि समस्त शब्द में संयुक्ताक्षर के पूर्व अक्षर पर उसके उच्चारण का भार पड़ा है तो उन्होंने हिन्दी उच्चारण प्रकृति के अनुकूल उसे गुरु माना है, जैसे --

'एक गुह्य आघात और भी मर्मस्थल पर,[11] = २४ मा०

'ग्राम प्रकृति-श्री के रंग-स्थल,[12] = १६ मा०

'धरा स्वर्ग कश्मीर प्रकृति का सद्यः सौन्दर्यस्थल, = २८ मा०

इन्द्र नील नभ मरकत हरित धरित्री शस्यश्यामला[13], = २८ मा०

उपर्युक्त उदाहरणों में रेखांकित वर्ण गुरु हैं।

वे शब्दोच्चारण के मर्म को पहले भलीभाँति समझते थे, तत्पश्चात् तदनुरूप उसका प्रयोग करते थे। उदाहरण के लिए उनके काव्य में कई बार प्रयुक्त शब्द 'प्रतिक्षण' लिया जा सकता है। इसका उच्चारण अधिकांशतः 'प्रति व्यक्ति' के सादृश्य पर ४ मात्राओं का होता है, अतः उन्होंने इसका प्रयोग उसी रूप में किया है। उदाहरण -

'ढलती थी गहरी हो प्रतिक्षण[14] = १६ मा०

'जिस असीम ऊँचाई में तुम रहती प्रतिक्षण[15]. = २४ मा०

'अपने में स्थित/नव समाज रचना में रत/मैं प्रतिक्षण[16] = २८ मा०

'रंगों में जो कहती प्रतिक्षण[17] = १६ मा०

इसी प्रकार का इसका प्रयोग 'लोकायतन' के पृष्ठ ४८, ६५, ११०, १६२, १७४, १६२, ४४० एवं ४४२ पर द्रष्टव्य है।

हिन्दी में 'प्रतिक्षण' का उच्चारण ५ मात्राओं का भी प्रचलित है। इस प्रकार के उच्चारण में संयुक्ताक्षर के पूर्व का अक्षर 'ति' गुरु उच्चरित होता है। उन्होंने इस प्रकार के उच्चारण वाले 'प्रतिक्षण' शब्द का भी प्रयोग किया है, यथा—

'और नहीं तप खँटना तुमको स्वयं प्रतिक्षण[18] = २४ मा०

'एक असम्भव आकांक्षा से मथित प्रतिक्षण[19], = २४ मा०

'उधर देश में चली प्रतिक्षण[20], = १६ मा०

'जाल तानती रही प्रतिक्षण[21], = १६ मा०

५ मात्राओं के उच्चारण वाले 'प्रतिक्षण' का प्रयोग संस्कृत उच्चारण पद्धति से प्रभावित है। ऐसा प्रभाव उनके कवि जीवन के अंतिम चरण में ही दिखायी पड़ता है और वह भी बहुत न्यून मात्रा में। चूँकि ऐसा उच्चारण हिन्दी में भी प्रचलित है, अतः इसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

पंत जी 'मरुस्थल' का उच्चारण 'मरुथल' के समान 'मरुस्थल' के रूप में करते थे, इसलिये उनके इस शब्द के उच्चारण में संयुक्ताक्षर के पूर्व का अक्षर 'रु' गुरु नहीं है और इसमें केवल ४ मात्राएँ हैं। उदाहरण—

'गिरि समतल मरुस्थल को कोकर उर्वर[22], =१८ मा०
'मरुस्थल-सा अब शुष्क बोध जल[23] =१६ मा०
'बिना कर्म के ज्ञान शुष्क नीरस मरुस्थलवत्[24] =२४ मा०

यदि मरु और स्थल का उच्चारण मिलाकर किया जाए तो इसमें ५ मात्राओं का उच्चारण है, परन्तु सम्पूर्ण पंत काव्य में इस शब्द का ४ मात्राओं का निरपवाद प्रयोग प्राप्त होता है। अतः इससे सिद्ध होता है कि उन्होंने मरु और स्थल के मध्य समास सम्बन्ध स्थापित नहीं किया है।

पंत जी ने अपने काव्य में संस्कृत (तत्सम) शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है, परन्तु उनसभी को हिन्दी उच्चारण के साँचे में ढालकर ही अंगीकार किया है। विशेष रूप में उनके छायावादी काव्य का उच्चारण विशुद्ध हिन्दी का है और 'सोने की तोल' का है। उन्होंने अपने सम्पूर्ण काव्य में अभीष्ट उच्चारण की प्राप्ति के लिए किसी शब्द-स्वरूप को ज़रा सा भी नहीं तोड़ा मरोड़ा है। एक उदाहरण देखिए

शान्त, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल। =१४ मा०
अपलक अनन्त, नीरव भूतल। =१६ मा०
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल, =१६, १५ मा०
लेटी हैं श्रान्त, क्लान्त, निश्चल।[25] =१६ मा०

हिन्दी उच्चारण पद्धति के सन्दर्भ में इस उद्धरण की प्रथम एवं चतुर्थ पंक्ति का विशेष उच्चारण सौन्दर्य द्रष्टव्य है। इसकी प्रथम पंक्ति में अभीष्ट लय (१६ मा.) की प्राप्ति हेतु २ मात्राओं की कमी पड़ रही हैं। यदि वे चाहते तो शान्त, स्निग्ध और ज्योत्स्ना में समास करने के पश्चात् संस्कृत-पद्धति से उच्चारण कर अभीष्ट लय की प्राप्ति कर लेते। यहाँ उन्हें मात्रा-न्यूनत्व तो स्वीकार था, परन्तु हिन्दी के उच्चारण-सौन्दर्य-स्वास्थ्य को जरा सा विकृत करना किसी भी कीमत पर स्वीकार नहीं था।

इस लेख में पूर्व विवेचित 'मरुस्थल' शब्द के उच्चारण में उनके लघु उच्चारण प्रिय कोमल व्यक्तित्व का प्रभाव है और 'प्रतिक्षण' के कुछ परवर्ती प्रयोगों पर संस्कृत का। समग्र रूप में सम्पूर्ण पंत काव्य हिन्दी उच्चारण की दृष्टि से उत्तम कोटि का है, उसमें भी उनका छायावादी काव्य सर्वश्रेष्ठ है। उन्होंने पादान्त में शास्त्रानुमोदित लघु के गुरु उच्चारण करने के स्वातंत्र्य का कभी उपयोग नहीं किया। इससे उनकी शब्द-प्रयोग-सामर्थ्य और उच्चारण की स्वाभाविकता के प्रति उनकी विशेष अनुरक्ति का ज्ञान होता है। आज हिन्दी विभिन्न भाषाओं से शब्द और शिल्प ग्रहण कर रही है, अतः उसके स्वभाव की रक्षा के लिए उच्चारण-पद्धति की स्वाभाविकता के प्रति विशेष जागरूक रहना है। इस दिशा में श्री सुमित्रानन्दन पंत का हिन्दी उच्चारण पद्धति के अनुसार शब्द प्रयोग सदा अनुकरणीय रहेगा।

संदर्भ

१- 'एक मात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यये ।'
त्रिमात्रस्तु प्लुतज्ञेयो, व्यंञ्जनंचार्द्ध मात्रकम् ।।
—छंदः प्रभाकर (दशम सं०), भानु बिलासपुर (म०प्र०) पृ० ३ पर उद्धृत

२- संयुक्ताद्यं दीर्घं, सानुस्वारं विसर्गसंमिश्रण्,
विसेयमक्षरं गुरुं, पादन्तस्थं विकल्पेन ।
—श्रुतिबोध, छंदः प्रभाकर (दशम सं०), बिलासपुर (म०प्र०), पृ० २ पर उद्धृत

३- गो० तुलसीदास, रामचरित मानस (चौंसठवाँ सं०) गीता प्रेस गोरखपुर, पृ० १८३

४- पल्लव प्रवेश, (आठवाँ सं०), राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ० ३६

५, ७- पल्लव प्रवेश (आठवाँ सं०), राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ० ३५

६- सुमित्रानन्दन पंत ग्रंथावली खंड एक (प्रथम सं०), राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ० १६७

८- वही, उत्सर्ग, पृ० ८१

९- वही, ज्योत्स्ना. पृ० २९३

१०- वही, नौका विहार, पृ० २७५

११- पुरुषोत्तम राम (द्वितीय सं०) राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ० ३४

१२- लोकायतन (प्रथम सं०), राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ० ६८

१३- शंखध्वनि (प्रथम सं०), राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ० १३१

१४- लोकायतन (प्रथम सं०), राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ० ४५

१५- सत्यकाम (प्रथम सं०), राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ० ११४

१६- शंखध्वनि (प्रथम सं०), राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ० १०१

१७- वही, पृ० ११०

१८- पुरुषोत्तम राम (द्वितीय सं०), राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ० २०

१९- वही, पृ० २६

२०- लोकायतन (प्रथम सं०), राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ० ९५

२१- शंखध्वनि (प्रथम सं०), राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ० १७०

२२- लोकायतन (प्रथम सं०), राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ० ५९१

२३- पुरुषोत्तम राम (द्वितीय सं०), राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ० ३९

२४- सत्यकाम (प्रथम सं०), राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ० २०९

२५- सुमित्रानन्दन पंत ग्रंथावली खंड—एक (प्रथम सं०), राजकमल प्रकाशन दिल्ली, २७४

—o—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1984-85, Vol. 1 P. 19—22
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० १९-२२

एक महत्वपूर्ण कृति : श्रृंगारशिरोमणि

डॉ० ब्रजमोहन गुप्त

हिन्दी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामनगर, नैनीताल

सारांश

[प्रतापसाहि रीतिकाल के अंतिम प्रमुख आचार्य-कवि हैं। अभी तक इनके दो ग्रन्थ—व्यंग्यार्थ कौमुदी (प्रकाशित) एवं काव्यविलास (अपूर्ण एवं हस्तलिखित) ही विद्वानों के विवेच्य रहे। जून १९७६ में कवि के प्रपौत्र ने अलंकार चिन्तामणि, काव्यविनोद, जयसिंह, प्रकाश एवं जुगल शिखनख हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग को भेंट किये हैं; किन्तु इधर श्रृंगार शिरोमणि के कुछ पृष्ठ मेरे देखने में आये हैं। वस्तुतः यह ग्रन्थ इतना रोचक एवं विवेचनात्मक है कि कई दृष्टियों से इसे उस युग की प्रौढ़तम कृतियों में रखा जा सकता है]

ABSTRACT

[Pratap Sahi is the last poet of the Riti Kal. Only two of his books Vyangyarth Kaumudi (published) and Kavya Vilas (incomplete Ms) have so far been evaluated by scholars. The poet's grandson presented some unpublished Mss Alankar Chintamani, Kavya Vinod, Jai Singh Prakash and Jugal Shikhnakh to Hindi Sahitya Sammelan in 1976. The author who has gone through some of the pages of Shringar Shiromani has attempted a critical analysis of this book which may be considered a monumental work.]

प्रतापसाहि रीतिकाल के अन्तिम प्रमुख कवि हैं। सुप्रसिद्ध कवि करन (करनेस) इनके ही पूर्वज थे। इनके पिता रत्नेश भी वहुत अच्छे कवि थे। प्रतापसाहि का जन्म संवत् १८२५ के लगभग देवपुर, बिजावर (म०प्र०) में हुआ था। राघवगढ़ नरेश जयसिंह एवं चरखारी नरेश रतनसिंह इनके प्रमुख आश्रय दाता थे। प्रतापसाहि ने नौ मौलिक एवं चार टीका ग्रन्थों की रचना की थी।

श्रृंगारशिरोमणि का सर्वप्रथम उल्लेख १९०६ की खोज रिपोर्ट[1] में मिलता है। उसी में यह काल विषयक दोहा उदधत है—

संमत अस्टादस सरस नब्बे ऊपर चार।
माघ मास सित पंचमी, यहै ग्रन्थ अवतार ।।

अर्थात् इस ग्रंथ का प्रारम्भ माघ शुक्ल ५ संवत् १८६४ को हुआ। अन्तिम पुष्पिका न मिलने से इसके समाप्ति वर्ष का पता नहीं चलता (प्रतापसाहि ने अपने प्रत्येक ग्रंथ के प्रारम्भ एवं समाप्ति तिथि का उल्लेख किया है) इतिहासकारों ने भी इसी रचना-संवत् को मान्यता दी है।

यद्यपि श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी[२] ने इस ग्रंथ की एक प्रति राज्य पुस्तकालय, बूँदी (राज०) में बताई है, किन्तु अब वहां कोई प्रति उपलब्ध नहीं है। मुझे प्रतापसाहि के प्रपौत्र श्री कन्हैयालाल, चरखारी के पास इस ग्रंथ के केवल ३६ पृष्ठ देखने को मिले हैं--पृष्ठ सं० १, ५,८, १० से १६, २१, २३ एवं २६। इनमें छंद सं० है--१ से १६३ तक। अनुमानतः इस ग्रंथ में २५० छंद रहे होंगे। प्राप्त पृष्ठों तक कवि नायक-नायिका एवं सात्विक भावों का विवेचन कर चुका है। ग्रंथ कवि की हस्त लिपि में है।

रचना-क्रम एवं वर्ण्य विषय

कवि ने इस ग्रंथ की रचना शृंगार के आलंबन नायक-नायिका के लक्षणों में निहित विरोध के समाधान हेतु की है--

कहुं कहुं लछन में लषत, जानौ जात विरोध ।
शृंगांर सिरोमनि ग्रंथ में ते राखे मत सोध ।। छंद ३।

प्रतापसाहि ने पहले लक्षण दोहा छंद में प्रस्तुत किया है, तदुपरांत लक्षण के संबंध में विभिन्न अन्तर्विरोध दिखाये हैं बाद में अपना तर्क प्रस्तुत किया है तथा अपने मंतव्य की पुष्टि में अनेक संस्कृत-हिन्दी ग्रंथों का मत दिया है--

प्रथमहिं संका करि बहुरि उत्तर कहि रस रीति।
लखि सुहृद सब रीझि हैं, श्रम लखि करिहैं प्रीति ।। छद ४।

प्रतापसाहि ने संस्कृत एवं रीति-ग्रंथकारों के मतों का विश्लेषण ब्रजभाषा गद्य में किया है जिससे एक ओर ब्रज गद्य प्रौढ़ हुआ है तो दूसरी ओर गद्य के माध्यम से हिन्दी समीक्षा की परिपाटी आगे बढ़ी है। यद्यपि इनसे पूर्व भी टीका-ग्रंथों में गद्य मिलता है किन्तु शास्त्रीय-विवेचन गद्य में पहली बार देखने को मिलता है। एकाध स्थल देखिये--

"खंडिता-- परतिय के तन चिह्नन प्रिय, प्रात दिखावै आनि।
रस अनुकूल रिसै कही, वही खंडिता जानि ।।छंद ८३।

प्रिय के अपराध तैं खंडिता कही है सोऊ पति के अपराध धीरा अधीरा मानवती होती हैं। मान कौ लछन प्राचीन ग्रंथन में लिख्यो है।। अपराधं कोपो वा पूर्णमानमुदाहृता ।। मानमंजरी में

कह्यो है ।। प्रियापराध सूचिका चेष्टामात्रः ।। कोप तैं मान मान दैं ईर्षा तातैं ईर्षाजन्य जे भेद हैं ते सव खंडिता में ही संभावित है ।। अव जौ कोऊ कहै बोले सो धीरा बोले सो खंडिता तौ मानवती कौ बोलिवौ नाही है तहां मानवती खंडिता एक ही भई ।। अरु मान कौ लछन न बौलिवो भाषा ग्रंथन में लिख्यौ है--

दोहा-- पिय अपराध सरोष ह्वै, तिय जु धरै मुख मौन ।
मान कहत हैं तासु कौ, अनुभव रस बुध भौन ।।

तहां मध्या प्रौढ़ा मानवस्था करि धीरा अधीरा धीराधीरा ये तीन भेद होत हैं तहां धीरा अधीरा कौ बोले विगरि कोप नाहीं जान्यो जात है या लछन में विरोध परत है तहां प्रगट कोप करै अधीरा गुप्त कोप करै सो धीरा पति के परोछ कोप करै सो अन्य संभोग दुःखिता ।। कोप कारन सवमें है तातैं ये भेद खंडिता के अंतरभूत सव है ।। ताकौ समाधान ।। प्राचीन भारती ग्रंथन में मान चारि प्रकार कौ कह्यौ है ।। उक्तं च ।। वैमनस्य व्यलीकश्च विप्रियं मन्युरेव च एतेन संप्रवक्ष्यामि लक्षणानि यथाक्रमम् ।। निद्राखेदालसं गात्रं सचिह्नं सरसं व्रणं ।। एतादृशं पति दृष्टवा वैमनस्य विधीयते ।। बहु मोदार्थं मानो विलीकमुपजायते ।। युवतिनो वध्वा कुर्यात्तद्धदेविप्रियं भवेत् । उपचिह्नं ससर्जं तु मन्युस्तत्रोपजायते ।।

तहां वैमनमान खंडिता में है ।। व्यलीकमान धीरा में ।। विप्रियमान अधीरा में ।। मन्यु मान मानवती में ।। या क्रम तैं जुदी जुदी जानि लीजै ।। काहे तैं मान ही के कारन होती है तातैं मान ही तैं जुदी जानिये ।।"

इस प्रकार प्रतापसाहि ने मान के कारण खंडिता आदि में अंतर स्पष्ट किया है। इसी प्रकार के अनेक विवेच्य स्थल हैं जैसे (१) स्वकीया नायिका का क्रोध रहित होना, अन्यथा खंडिता से अन्तर कैसे ? (२) मुग्धा को अंकुरित यौवना क्यों कहते हैं ? (३) अज्ञात यौवना में अनुराग का अभाव, (४) धीरादि भेदों की स्वकीया के साथ परकीया एवं सामान्या में संभावना, (५) परकीया की पहचान कैसे ? विना पहचान उसके लक्षिता एवं कुलटा भेद कैसे ? (६) दूती संभोग दुःखिता को अन्य अन्य संभोग दुःखिता क्यों कहें ? (७) खंडिता, मानवती भेद, (८) कलहांतरिता और खंडिता, (९) विप्रलब्धा और उत्कंठिता, (१०) वासक सज्जा और आगतपतिका, (११) गर्विता और स्वाधीनपतिका इत्यादि।

ग्रंथकार ने अपने पूर्ववर्ती कुमारमणि, बिहारी, मतिराम आदि के विभिन्न छंद अपने समर्थन में उद्धृत किये हैं। उसने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रंथों का उपयोग करने की बात इस प्रकार स्वीकार की है

रसमंजरी विचारि, मोद परिमल सु चित्त धरि ।
समुझि तिलक शृंगार, काव्य रूपक रत्नाकर ।
साहित्य दर्पन सोधि, भरतसूत्र कौ मत लहि ।
पुनि सुन्दर शृंगार, वहुरि रसराज भेद कहि ।
रसिक प्रिया सु विचारि चित, अपर ग्रंथ रस के गनत ।

शृंगार सिरोमनि ग्रंथ यह कवि प्रताप भाषा भनत ।। छंद सं० २ ।।

इनके अतिरिक्त नायक भूषण, अमरेश गुसाईं, संभु कवि तथा निघंटु एवं भाव प्रकाश आदि के उद्धरण भी 'शृंगार शिरोमणि' में मिलते हैं।

शैली की दृष्टि से 'शृंगार शिरोमणि' कारिका-वृत्ति-शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस शैली का संस्कृत ग्रंथों के अनुकरण पर पहली वार इतना सुन्दर रूप हमें हिन्दी में दिखलाई पड़ता है।

काव्य की दृष्टि से यह एक उत्तम रचना है। यद्यपि कवि ने लक्ष्य के अनुरूप उदाहण प्रस्तुत किये हैं तथापि कहीं-कही अद्भुत भाव व्यंजना है। अन्य संभोग दुःखिता का एक श्लेषपरक उदाहरण देखिए

जानि कै दिली हौं गुन आगरौ विचारि तोमें,
काबिल कुमाऊँ मानि पठई नजारे में।
मोरग बिसारि करनाटक अनेक करि,
आई है अवधिनी कैलंजरि निसारे में।
कहैं परताप काशमीर कौ तिलक भाल,
पटना समात तन उमगि विहारे में।
सूरति सुहाई भागनगरि विलोके मोहि,
ऐसी को हितू है राजमहल हमारे में ।। छंद सं० ९८ ।।

यहाँ अनेक शहरों एवं प्रान्तों के माध्यम से किस प्रकार नायिका ने अपनी वेदना व्यक्त की है। इस प्रकार रीति युगीन ग्रंथों में 'शृंगार शिरोमणि' यथा नाम तथा गुण वाले कथन को चरितार्थ करता है।

संदर्भ

१- खोज का संक्षिप्त विवरण, नागरी प्रचारिणी, काशी, १९६४ प्रथम भाग, पृष्ट ४७१।
२- व्रजभाषा रीतिशास्त्र ग्रंथ कोष, सं० जवाहरलाल चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, १९६५।

—०—

Jour U. P. Govt. College Acad. Soc., 1984-85, Vol. 1 P 23—26
उ० प्र० रा० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० २३-२६

आधुनिक भारतीय दर्शन में शंकराचार्य के जगन्मिथ्यात्व सिद्धांत की व्याख्या

कैलाश नारायण त्रिगुनायत

दर्शनशास्त्र विभाग, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर

सारांश

[नव्य वेदान्त में शंकराचार्य के निरपेक्ष विज्ञानवाद को आधुनिक विज्ञानवादी विचारधारा के संदर्भ में पुनर्व्याख्या की गई है। इस व्याख्या का उद्देश्य अद्वैत वेदान्त को अधिक व्यावहारिक बनाना है। इस प्रयास में अद्वैत वेदान्त के कुछ व्याख्याकार ज्ञानमीमांसकीय नहीं अपितु तत्वमीमांसकीय वस्तुवाद की ओर झुके हैं। जबकि दूसरे इसकी विज्ञानवादी व्याख्या करते हैं।]

ABSTRACT

[In New-Vendantism Shankara's absolute idealism is reinterpreted in the light of modern idealstic or a absolutist thought. The aim of this interpretation is to make it more practical. In this attempt some interpreters of advaita lean heavily on realism not mere epistemological but ontological realism while others interpret it on idealstic lines.]

आधुनिक भारतीय दर्शन में शांकर वेदान्त विशेष रूप से शांकर वेदान्त के जगन्मिथ्यात्व सिद्धान्त की व्याख्या अद्वैत वेदान्त को और अधिक व्यावहारिक बनाने के लिये विभिन्न रूपों में की गई है। प्रो० राधाकृष्णन् और कोकिलेश्वर शास्त्री सहित रवीन्द्र नाथ टैगोर और श्री अरविन्द अद्वैत वेदान्त की वस्तुवादी व्याख्या करते हैं जबकि पॉल डायसन इसकी विज्ञानवादी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

डायसन छान्दोग्य उपनिषद[1] के उस कथन को उद्धृत करते हैं जहाँ यह कहा गया है कि आत्मा के ज्ञान से सबका ज्ञान हो जाता है। वे इस उद्धरण से यह निष्कर्ष निकालते हैं कि प्राचीन उपनिषदों में आत्मा की एकमात्र सत्ता और फलस्वरूप जगत की असत्ता सिद्ध की गई है[2]।

प्रो० राधाकृष्णन डायसन के उपयुक्त मत से सहमत नहीं है। यदि आत्मा है और वह समस्त प्रमेय पदार्थों को समवेत किये हुए हैं तब स्वभावतः यह परिणाम निकलता है कि आत्मा के ज्ञान से समस्त प्रमेय पदार्थों का ज्ञान हो जाता है। परन्तु उससे यह नहीं सिद्ध होता है कि समस्त प्रमेय पदार्थ असत् हैं। उनका विचार है कि उपनिषदों में कहीं भी यह मत व्यक्त नहीं किया गया है कि परिवर्तनशील संसार निराधार भ्रममात्र है। उपनिषदों के रचयिता कविहृदय और कलाविद् थे। वे इस प्राकृतिक जगत के अन्दर जीवनयापन करते रहे और कभी भी इस जगत से दूर भागने का प्रयास तक नहीं किया।[3] इसलिये राधाकृष्णन् के मत में जगन्मिथ्यात्व की अवधारणा उपनिषदों का मौलिक सिद्धांत नहीं हैं[4] और शंकराचार्य का यह सिद्धांत उपनिषदों की शिक्षा के अनुकूल नहीं है। इसका कारण यह है कि प्रपत्रमय जगत भ्रम नहीं अपितु सत्य है यद्यपि यह निचले स्तर पर है।[5] वे यह स्वीकार करते हैं कि एक और अनेक के सम्बन्ध की व्याख्या एक गम्भीर समस्या है। इसलिये उपनिषदों में सादृश्यों और रूपकों के द्वारा ही ईश्वर और जगत के सम्बन्ध की व्याख्या की गई है। परन्तु यह उपनिषदों का दोष नहीं है। इन दोनों का सम्बन्ध अनिर्वचनीय है और इसी अनिर्वचनीयता को परवर्ती वेदान्त में मायावाद का रूप दे दिया गया है[6]।

राधाकृष्णन् का विचार है कि जब रस्सी सर्प के रूप में दिखाई देती है तब यह सर्प न तो शून्य से आता है और न भ्रमनिवृत्ति के बाद शून्य में विलीन ही होता है। उनके अनुसार इस भ्रम का कारण तार्किक और मनोवैज्ञानिक है। यह तत्वमीमांसकीय नहीं है।[7] भ्रांतिनिवारण का तात्पर्य मात्र अवधारणा में परिवर्तन है। वे अपना मत व्यक्त करते हैं कि शंकराचार्य के मोक्ष सिद्धांत से भी उपर्युक्त तथ्य प्रमाणित होता है। शंकराचार्य के अनुसार मोक्ष का तात्पर्य ,जगत् का विनाश नहीं है क्योंकि ऐसा होता तो एक व्यक्ति की मोक्ष प्राप्ति से सम्पूर्ण जगत का आस्तित्व समाप्त हो गया होता।[8] इसलिये प्रो० राधाकृष्णन के मत से मोक्षावस्था म जगत का निषेध नहीं होता अपितु इसकी पुनर्व्याख्या होती है।[9] सांसारिक पदार्थ यथार्थ सत्ता के अपूर्ण रूप अवश्य हैं परन्तु वे उसके मायावी रूप नहीं है। उनके अनुसार सत् को स्वीकार करने पर उन सभी को स्वीकार करना पड़ेगा जो सत् पर आधारित हैं। इसलिये ब्रह्म की मूलसत्ता जगत की सापेक्ष सत्ता सिद्ध करती है। राधाकृष्ण हैगेल के मत का समर्थन करते हैं कि भेद का निषेध परमतत्व का निषेध है इस तरह तो परमतत्व शून्य हो जायेगा।[10] वे रामानुज के उस उध्रण को प्रस्तुत करते हैं जहां यह कहा गया है कि कार्य की असत्ता से कारण कार्य का अनन्यत्व सिद्ध नहीं किया जा सकता है क्योंकि सत् और असत् का कोई तादात्म्य नहीं है। यदि ऐसा है तो या तो ब्रह्म असत् है या जगत् सत है।[11]

कोकिलेश्वर शास्त्री के अनुसार परमतत्व अपने को अपने से भिन्न रूपों में प्रकट करता है।[12] व्यक्त होने के पहले नामरूपात्मक जगत अव्यक्त रूप से ब्रह्म में स्थित है। अतः शंकराचार्य का सही दृष्टिकोण यही है कि जगत धोखा नहीं है। शंकराचार्य के दर्शन में अभेद पर विशेष जोर दिया गया है परन्तु भेद का समापन नहीं किया गया है।[13]

रवीन्द्र नाथ टैगोर के अनुमार जगत ईश्वर के स्वभाव की अभिव्यक्ति है। इसलिये जगत भी ईश्वर की ही भाँति सत् है। ईशोपनिषद के ११ वें मन्त्र की व्याख्या करते हु वे कहते हैं कि असीम (ब्रह्म) और सीमित (जगत) दोनों एक ही हैं। ठीक वैसे ही जैसे गीत और गायन।[14]

उनके अनुसार जगत गति है परन्तु इस गति में सम्बन्धों की एक नित्य शृंखला है।[15] जैसे किसी कहानी की पुस्तिका में वाक्यों के बाद वाक्य आते रहते हैं फिर भी इस शृंखला के द्वारा एक भावात्मक अर्थ निःसृत होता है वैसे ही जगत परिवर्तनशील होते हुए भी नित्यत्व की अभिव्यक्ति करता है। अतः वह सत् है।

श्री अरविन्द के अनुसार जगान्मिथ्यात्व का सिद्धांत तर्कसम्मत नहीं है। जगान्मिथ्यात्व के समर्थक स्वप्न और मतिभ्रम के साम्यानुमान द्वारा जगत को मिथ्या सिद्ध करते हैं। श्री अरविन्द वृ० उपनिषद ४, ३, ७, १०, ११, १२, १४ के आधार पर स्वप्न सिद्धांत की तत्वमीमांसकीय व्याख्या प्रस्तुत करते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि स्वप्न असत नहीं है। उपनिषदों में जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति को एक ही सत्ता की विभिन्न अवस्थायें बताया गया है। वहाँ कहीं भी ऐसा संकेत नहीं है कि ये तीनों भ्रम या असत् को उत्पन्न करने की शर्तें हैं।[17] रस्सी और सर्प का साम्यानुमान भी जगत को मिथ्या सिद्ध करने में समर्थ नहीं है। भ्रमात्मक वस्तु का कहीं न कहीं अस्तित्व अवश्य है। उनके अनुसार माया क्रीड़ा अथवा लीलामात्र है। एक से अनेक का रूप धारण करना सत् की सत् के साथ, चेतना की चेतना के साथ और आनन्द की आनन्द के साथ क्रीड़ा हेतु होता है।[18] जगत और जीवात्मा के रूप में परमतत्व ही अभिव्यक्त होता है। जगत् परमतत्व से ही उत्पन्न होता है और परमतत्व में ही विलीन होता है। यह असत् नहीं है। उपनिषदों में एकता और अनेकता को यथोचित महत्व प्रदान किया गया है। यह तो परवर्ती विचारकों की देन है जिन्होंने एकता को स्वीकार करके अनेकता को अस्वीकार कर दिया।[19]

वस्तुस्थिति यह प्रतीत होती है कि उपर्युक्त समस्त विचारकों के दृष्टिकोण शंकराचार्य के जगन्मिथ्यात्व सिद्धांत के सम्बन्ध में यथार्थ ज्ञान के अभाव के परिचायक हैं। उनका इस दिशा में प्रयास श्लाघनीय अवश्य है कि वे अद्वैत वेदान्त को अधिक व्यवहारिक बनाना चाहते थे। परन्तु उन्होंने शंकराचार्य के यथार्थ मंतव्य की उपेक्षा की। शंकराचार्य जगत को पूर्ण असत् कभी नहीं बताते हैं। उनके अनुसार जीव ब्रह्म की एकता के ज्ञान के पूर्व संपूर्ण जगत् सत् है।[20] शंकराचार्य जब जल बुद्‌बुद्, माया, भ्रम आदि शब्दों के द्वारा जगत का वर्णन करते हैं तब उनका उद्देश्य जगत की पारमार्थिकी असत्ता सिद्ध करना है। क्योंकि सत् की कसौटी से मात्र ब्रह्म ही पारमार्थिक रूप से सत् है। यदि ब्रह्म ही एकमात्र सत् है तो इससे तार्किक रूप से यह सिद्ध होता है कि उससे भिन्न जगत सत् नहीं है परन्तु ब्रह्म ज्ञान से पूर्व इस जगत की सत्ता विद्यमान रहती है। इसलिये शंकराचार्य जगत को व्यावहारिक रूप से सत् बताते है। विवेकानन्द का सिद्धांत शंकराचार्य के यथार्थ मंतव्य के अधिक निकट है। उनके अनुसार समुद्र की लहर समुद्र से एकता रखते हुए भी समुद्र नहीं है। यह समुद्र से भिन्न है और इसकी भिन्नता नामरूप के कारण है। यद्यपि लहर के समाप्त होने से लहर का पूर्वरूप भी समाप्त हो जाता है फिरभी वह केवल भ्रम नहीं कहा जा सकता है।[21] इतना होने पर भी शंकराचार्य का विवेकानन्द से कुछ विरोध भी है। विवेकानन्द के अनुसार माया सिद्धांत कोई तार्किक सिद्धान्त नहीं है। यह विश्वरूप की व्याख्या के लिये कथन मात्र है। शंकराचार्य के अनुसार माया सिद्धान्त तार्किक सिद्धान्त है। यदि आत्मा अथवा ब्रह्ममात्र ही सत् की कसौटी के आधार पर सत् सिद्ध होता है तब तार्किक रूप से यह निःसृत होता है कि ब्रह्म से भिन्न जगत सत् नहीं है। परन्तु यह पूर्ण असत् भी नहीं है क्योंकि इसका अनुभव होता है।

संदर्भ

1- छान्दोग्य उपनिषद (निर्णय सागर प्रेस बम्बई १६३२) १.१.२
2- Paul Deussen-The Philosophy of the Upanisads (Edinburgh 1608) P. 23E
3- Radhakrishnan-The Philosophy of the Upanisads (George Allen and Unwin) P. 61, 62
4- Radhakrishnan-The Philosophy of Mhe Upanisads (वही पृ० ६४-६८)
5- Radhakrishnan-Eastern Religions and Western thought (Clarendon Press Oxford Second Edition 1940) P. 30
6- Radhakrishnan- The Philosophy of Upanisads (George Allen and Unwin P. 62
7- Radhakrishnan-Indian Philosophy Vol. II (George Allen and Unwin I977) P. 582, 523
8- शा० भा० (वाराणसी सं० २०२८ वि०) ३.२.२१
9- Radhakrishnan—Indian Philosophy Vol. 11 P. 583
10- वही Vol. I (George Allen Unwin 1977) 67
11- रामानुज-श्रीभाष्य (जार्ज थिबौत का अनुवाद–Clarendon Press, Oxford 1904)
12- K. Shastri-An Introduction to Advaita Philosophy (Calcutta University Press P 926) P. 27
13- वही पृ० २६
14- Tagore-Personality (Indian Edition 1933) P. 57
15- वही पृ० ५६
16- Sri Aurovindo-The Life Divine Vol. II (1940) P. 202 (Arya Publishing House, Calcutta)
17- वही पृ० २३८
18- वही पृ० १३७
19- वही खंड १ (द्वितीय संस्करण जुलाई १६४३) पृ० ४३
20- शा० भा० (वाराणसी सं०२०२८ वि०) २.१.१४
21- विवेकानन्द–ज्ञानयोग पृ० १२७ (अद्वैत आश्रम, मायावती अल्मोड़ा) १६२५ (लंदन में १८६६ में विवेकानन्द द्वारा भाषण–Maya and The Evolution of The concept of God)

—०—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1984-85, Vol. 1 P. 27—30
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० २७-३०

ISAAC ASIMOV'S SCIENCE-FICTION TECHNIQUE

Dr. SATISH KUMAR

Professor & Head of the Dept of English, Govt. Raza College, Rampur.

सारांश

[विश्व के महान् विज्ञान-कथा-शिल्पी एसिमोव ने सुप्रसिद्ध अमरीकी कथाकार पो की जासूसी और वैज्ञानिक कथा-तकनीकों का समन्वय करके 'साइंस फिक्शन मिस्ट्री' की एक नयी शैली को जन्म दिया । उनके उपन्यासों और कहानियों की सेटिंग अंतरिक्ष या कोई सुदूर ग्रह है। उन्होंने अपराधों का पता लगाने के लिए जिस साईन्टिस्ट डिटेक्टिव की सृष्टि की है और पो के दूपाँ के समान डा० उर्थ और इलिजा़ बेली जैसे जासूसों का सृजन किया है, वह उन्हें इस क्षेत्र का अप्रतिम कथाकार सिद्ध करता है।]

ABSTRACT

[Asimov's greatest technical achievement lies in combining the detective and science fiction genres and in evolving the scientist detective. E. A. Poe, the pioneer of science fiction and detective fiction in American literature, greatly influenced Asimov's fictional technique. He calls the new genre, born of the union of science fiction and detective fiction "science fiction mystery", and it is noticeable that Asimov uses the word "mystery" in the sense of a "soluble problem" as Poe had used it in the Murders in the Rue Mergne" and "The Mystery of Marie Roget" In ASIMOV'S MYSTERIES, THE CAVES OF STEEL and THE NAKED SUN Asimov assimilates the Scientific and the Detective Modes of Fiction]

E.A. poe's technique of THE TALES OF MYSTERY AND RATIOCINATION and science-fiction anticipate the manner and method of Asimov the most outstanding writer of science-fiction in our time. The greatest contribution of Asimov to science fiction lies in bringing together the detective and science-fiction genres and in evolving the scientist-detective who combines vast scientific knowledge with the sharp ratiocinative ability of Poe's Dupin. Asimov has created two imperishable scientist-detectives-Bailey who resolves complicated murder mysteries in THE

CAVES OF STEEL and THE NAKED SUN. and Dr. Wendell Urth who is credited with the solution of murder mysteries in ASIMOV'S MYSTERIES. Jack D. Wages, first of all, traced Asimov's debt to Poe :

> This prophecy is only partly fulfilled in the unlikely accomplishment of Isaac Asimov who, with numerous backward glances to Poe's work, has successfully amalgamated the detective story with science fiction, Such a union is not unnatural, for science and detection have much in common, both usually elevating the idea or plot over characterisation and both often presenting the reader with a puzzle to solve.[1]

Asimov conscientiously and ingeniously amalgamated the mystery form with science-fiction. In the 'Introduction' to ASIMOV'S MYSTERIES he points out that such a fusion is possible within the precincts of art : one would think that science fiction would blend easily with the mystery. Science itself is so nearly a mystery and the research scientist so nearly a Sherlock Holmes ... ... In a science fiction story the detective could say, ''But as you know, Watson, ever since 2175, when all Spaniards learned to speak French, Spanish has been a dead language. How came Juan Lopez, then, to speak those significant words in Spanish ?'' Or else he could have his detective whip out an odd device and say, ''As you know, Watson, my pocket-frannistan is perfectly capable of detecting jewel in a trice.'' ?

Poe's influence on Asimov is obvious in ASIMOV'S MYSTERIES, a collection of thirteen short stories. It is not an exaggeration to say that in all of them he observes the rules of the detective story, as laid down by Poe, but all this has been done with the additional fillin of a science-fiction setting. In four stories ''The Singing Bell'', ''The Talking Stone'', ''The Dying Night'' and ''The Key'' Asimov created the character of Dr. Wendell Urth, the renowned ex-traterrologist, on the pattern of Poe's Dupin. Urth's ability to perform astounding feats analysis and ratiocination, his love of music and books his cloistered existence and his chiding of obtuse policemen are only a few traits that remind us of Poe's Dupin. Like Dupin, Urth is a scholar and prefers loneliness. Like Dupin's house, his house seems to exist in isolation. Like Dupin he is a bachelor and is tinged with eccentricities. Like Dupin, he has won renown as a rationalist and solver of mysteries. When the police officers fail to investigate crimes, committed on distant planets they seek his help. He has acted as a consultant for the Terrestrial Bureau of

Investigation on serveral occassions and has given perfect satisfaction.

The setting in Poe's Dupin stories is Paris, where as in Asimov's short stories and novels the setting is a colony on the moon or a remote planet, or it is a mythical world or location in distant future on earth. His settings suggest hypothetical possibilities which may have physical existence. Asimov deftly assimilates the science fiction with the detective fiction by presenting mysteries, which are solved by an amateur detective on the moon or in distant and remote futures. Consequently, Asimov's criminals are not like Poe's Minister D-------, whose imagination does not stretch beyond the earth. They, on the other hand, are expert spacemen like Peyton, Caunas Straus, Edmund Farley and Professor James Priss.

Asimov's two novels, THE CAVES OF STEEL and THE NAKED SUN are fine artistic examples of the assimilation of the scientific and the detective modes of fiction. In both these novels he carries us to remote settings, space in the first and the planet Solario in the second, where the first murders were committed. Elijah Bailey, the detective, assisted by a robot Daniel Olivaw, successfully investigated the munders with remarkable capacity for Dupinesque ratiocination.

Poe, it is obvious, anticipated Asimov, His device of extrapolation in detecting remote and unknown futures and vast distances in space and planets, the physical details of science, chemical theories and astronomical details in describing the setting, and above all, minute observation and ratiocination are some of the technical devices which Asimov learnt from Poe. Summing up Asimov's indebtedness to Poe, Jack D. Wages writes :

> Thus Asimov's science fiction mysteries contain the minute scientific explanation that is the hallmark of Poe's scientific fiction, in combination with most of the elements of Poe's detective stories.[3].

Asimov's amateur detectives, Dr. Urth and Elijah Bailey, occupy the same sovereign place in the science fiction mystery, which Dupin enjoys in the detective fiction. Asimov's greatest and lasting contribution lies in the masterly and ingenious fusion of the science fiction mystery

with the detective fiction. In this respect he is without a peer. Conscious of his greatness in the field of science fiction he writes:

In the field of science fiction I am a national monument.[4]

REFERENCES

1. Jack D Wages "Isaac Asimov's Debt to Edgar Allan Poe", POE STUDIES, Vol. 6, no. 1, June 1975, P. 29.
2. Isaac Asimov : ASIMOV'S MYSTERIES (Frogmore, Panther Books Ltd., 1976) P.P. 9-10.
3. Op Cit. P. 29.
4. Isaac Asimov's : BUY JUPITER (Frogmore. Panther Books Ltd., 1977) P 10.

—o—

Jour. U. P. Govt. College Acad Soc 1984-85, Vol., 1 P. 31-35
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ३१-३५

ci-

P. 29.

FROM HERE TO ETERNITY

[A note on the concept of Time in Mulk Raj Anand's 'Untouchable']

SURESH CHANDRA

Principal, Govt. Degree Coll ge Vedikhal (Pauri)

सारांश

[इस विश्व प्रसिद्ध उपन्यास में अठारह वर्षीय अछूत हिन्दू युवक के एक दिन का जीवन चित्रित है। वह प्रातःकाल फौज के शौचालयों की सफाई करता है, दिन में अनेक बार समाज और पिता से प्रताड़ित होता है, घर छोड़कर निकल पड़ता है किन्तु महात्मा गाँधी का भाषण सुनकर रात को घर लौट पड़ता है। इस सोलह घंटे के नाटकीय संघर्ष में उपन्यासकार एक ओर उसके अठारह वर्ष का व्यक्तिगत जीवन तथा दूसरी ओर दो हजार से लेकर छह हजार वर्षों के सामाजिक जीवन–यहां तक कि कालातीत सांस्कृतिक मूल्यों का चित्रण करता है। अतः उपन्यास का समय-काल-पट मात्र १६ घंटे न होकर व्यक्तिगत अठारह वर्ष तथा समाजगत सहस्र वर्ष, युग युगान्त से बढ़कर कालातीत है जो नायक की चेतना को प्रभावित करता है।

ABSTRACT

[This world renowned novel presents a single day in the life of a Hindu outcaste of eighteen years. In the morning he cleans the latrines in a military regimental centre, gets humiliated and scolded by people and his father, leaves his home, sees and listens to Mahatma Gandhi and returns home at night. In this dramatic struggle of sixteen hours the writer reveals the story of the hero's eighteen years on one hand and social structure from two to six thousand years-even the values that are beyond time--on the other. The time scale of the novel, therefore, is not sixteen hours but eighteen individual years and thousands of years-ages-yugas-even beyond Time on social level which governs the depths of the hero's being.]

'This remarkable novel', says E. M. Forster in the Preface, 'describes a day in the life of a sweeper in an Indian city with every realistic circumstance[1].' Saros Cowasjee, writing the 'After word' to the novel, tells that besides the influence of Rousseau, Tolstoy and

Gogol, the two works, Gorky's 'Creatures that once were men', and Joyce's 'Ulysses', influenced him most : ''Like Gorky he went to the lowest dregs of humanity in search of his hero, like Joyce he dramatised the events of a single day (in both novels the time involved is about sixteen hours)2.

These sixteen hours mirror eighteen years of the hero's life and thousands of years of his heredity and environment. His social and racial consciousness struggles against the circumstances of a single day till the conflict is hopefully resolved. The individual and social present reveals the individual and social past and both merge into a suggestive future-the British Indian penal code and the Machine-the flush system.

The hero, eighteen years old Bakha, chided by his father, leaves his cold bed on a winter morning to clean latrines in a military barrack, then he burns refuse, goes to sweep city streets, gets humiliated there and then in the temple, begs for food, leaves half eaten mid day meal, sees his friend's sister being married, plays a hockey match, scolded by his father roams about to meet a Salvation Army padre and then goes to city railway station where he hears people talking about Mahatma Gandhi, sees him and finally returns home in the night.

This time scale of physical existence fades into insignificance as, through artistic subtlety, the individual awareness of eighteen years of Bakha's life on one hand and thousands of years of social existance on the other grow upon the reader.

It is the timeless stage of social structure that the entire drama of the hero's one day existance has been played upon. Society itself is a character, the antagonist, having its roots in times immemorial. It is the ancient Hindu socity categorising its people in four classes-Varna-Comprising of Brahmin, Kshattriya, Vaishya and Shudra. Brahmins are at the highest and Shudras at the lowest. One belongs to them by birth-Janma. Birth also is governed by Karma-deeds-not only of one life but of a chain of lives. Manu, the law giver, did not originate but simply codified this system. Among the Shudras there are different status as a Washerman-Dhobi-is higher than a leather worker-Chamar and the sweeper, scavenger-Bhangi-is the lowest-Antyaja. Inspite of the freedom in philosophy, Knowledge and devotion-Darshan, Gyan and Bhakti-the Varna system still prevails. The ages old problem of untouchability is the out come of degeneration in the ancient social set up. The remoteness of this problem is stated by Mahatma Gandhi in the novel : 'We have for centuries trampled underfoot millions of human being without the slightest remorse for our

iniquity[3].' Bakha, the green youth of lowest stratum of society, has the simple old Indian consciousness which is deeply furrowed by the style of European dress.

On several occasions the novelist specifically drops hints of 'thousands of years.' 'The serfdom of thousands of years had humbled him (Bakha)[4].' The kindly Hindu Havildar Charat Singh 'had a Condescending grin which symbolised two thousand years of racial superiority[5].' The Babu, tells that 'We had canals in ancient India four thousand years before Christ[6].' We have 'a race consciousness six thousand years old[7],' says the editor poet Sarashar. Very imperceptibly, with his artistic witchcraft, the writer takes the reader from two to four and then to six thousand years back which is just an indirect suggestion of a very remote part the time beyond history.

It is in this timeless world that gods exist. They are immortal. Bakha's mother symbolised the giver-Mahalakshmi. Yama-the god of death, Vishnu, Kali, Hari, Narayana are timeless gods. As the timescale contracts, the gods appear into timeborend human form-the avatars. the incarnations of timeless god-Vishnu. Rama and Krishna belong to 'Treta' and 'Dwapara', followed by much bemoaned 'Kaliyuga' millions of human years go to make a Yuga. Bakha's understanding and reverent feelings for these gods takes the reader further down to hoary vedic age when sacrificial fire 'Yagna' was performed-the experience that Bakha had while burning the garbage.

Bakha's rendezrous with Christ, Yessuh Messih through Salvation Army padre col. Hutchinson brings us into palpable time sense of history. It is another matter that the Judgement Day and Kingdom of God donot appeal to the hero because he was a product of culture which believed in Yama-the god of death rewarding and punishing souls for their Karma-deeds life after life. ''The religion which was good enough for his fore fathers was good enough for him[8].' Thus the antiquity in the depth of his being reasserts itself.

The humourous references to Emperor Jehangir's bell and Rana Sanga, the conqueror of Akbar take us closer to our own history. The immediate present is revealed through the narration of individual's lives. Sixty five years old col. Hutchinson had charmed a pleasure loving barmaid in Cambridge to be his wife and had brought her to India where he donned native dress and was once beaten up by the Congress wallahs. He had succeded to convert only five persons to Christian fold. Mahatma Gandhi, almost of the same age, goes back to the narration of his child hood

experience when he touched an outcaste boy leka and, thereafter, in his Ashram even Brahmins did the work of scavenging. Bakha's part is unfolded through his recollections of his mother and how ten years earlier he had played husband to his friend, Ram Charan's sister. As a child he longed to possess the sola 'tope' that hung in the quarter guard of the regiment surrounded by many legends of its continuous presence there. Bakha s father narrates in great detail how a Hindu Hakim come to his house to treat the infant Bakha.

Then this immediate, individual present moves towards future. 'The old order changeth, yielding place to new.' At Golbagh where ancient Hindu kings had planted beautiful bowers, the multitudes waiting for Mahatma Gandi had crushed them down. ''It was as if they knew, by an instinct surer then that of conscious knowledge, that the things of the old decadence must be destroyed in order to make room for those of the new. It seemed as if, in trampling on the blades of green grass, they were brutally trampling on a part of themselves, which they had begun to abhor and from which they wanted to escape to Gandhi.''[9]

Gandhi's arrival sets the time machine moving towards past. ''He has the Shakti to change the whole world[10] 'says the Babu. To his baffled hearer 'Gandhi was a legend, a tradition, an oracle. He had heard from time to time during the last fourteen years, how a saint had arisen as great as Guru Nanak, the incarnation of Kreshanji Maharaj of whom the Ferungi Sarkar was very afraid. His wife had told him of the miracles which this saint was performing[11].' Gandhi presents himself as an orthodox Hindu and still calls the age old tradition of untoucha-bility as a blot on Hinduism. He revives the spirit of Bakha towards a determined future by calling Harijans–'the sons of God.' It gives him heart to face his unhappy envirorment once again.

The sense of past rises from four thousand years in the speech of the Babu to six thousand years of racial consciousness in the discussion of the poet and the barrister. But all this hoary past and fermenting present move towards a future when the flush system will remove the dirty profession of scavenging and the Indian penal code will establish equality in society. This change shall be organic and not mechanical because it is the genius of India to accept all things, says the poet. ''We have through out our long history, been realists, believing in the stuff of this world, in the here and now, in the flesh and the blood We have the advantage of a race consciousness which accepted all the visible and invisible values.''[12]

Thus, out of sixteen hours of his existence, the inner chambers of Bakha's mind widen from here to eternity. ''His wealth of inner experience, however: was extra ordinary.'' It was like that of a peasant an Arab seaman or a beggar singing to the tribe of infinity and eternity coming down in human history since the down of civilization. It is the poet Sarashar who strengthens the confidence in the hero which was engendered by Gandhi. The encircling gloom of night cannot keep him away from his home. To him he shall ask the secret of new life-the machine.

In this way Mulk Raj Anand, with a magic wand of genius, takes the reader, enclosed in the capsule of a single day, up into space swinging him backward and forward in the limitless time. As Bakha, the hero, moves homewards the reader returns to his familiar grounds as if the rose should shut and be a bud again.''

REFERENCES

References to page numbers are quted from Orient Paperbacks Edition of 'Untouchable' 1970.

1. Page 5; Untonchable
2. Page 176 : Ibid
3. P. 160 : Ibid
4. P. 71 : Ibid
5. P. 17 : Ibid
6. P. 154 : Ibid
7. P. 169 : Ibid
8. P. 136 : Ibid
9. P. 151 : Ibid
10. P. 152 : Ibid
11. P. 153 : Ibid
12. P. 169 : Ibid

—:)o(:—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1984-85, Vol., 1 P. 36-39
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ३६-३९

NIRAD C. CHAUDHURI ON HINDUISM

MRS. RUBY SIDDIQUI

Dept. of English, Govt. Raza P. G. College. Rampur.

सारांश

[नीरद चौधरी, जो इंडो इंगलिश साहित्य में एक अत्यधिक विवादाग्रस्त लेखक हैं, ने अपने साहित्य में हिन्दू धर्म पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनके अनुसार हिन्दू धर्म एक धर्म नहीं है, अपितु विभिन्न धर्मों का संकलन है। हिन्दू अपने धर्म को 'सनातन धर्म' कहते हैं। चौधरी के हिन्दू धर्म से सम्बन्धित विचारों का तर्क पूर्ण विश्लेषण यह बताता है कि उनके विचार संकोर्ण और निराधार हैं]

ABSTRACT

[Nirad C. Chaudhuri, the most controversial writer in Indo-English Literature, has authoritatively expressed his views on Hinduism in 'The Continent of Circe' and Hinduism'. According to him, Hinduism is not one religion, it is a compendium of many religions. In want of a better expression Hindus call their religion 'Sanatan Dharama'. A careful and disintersted study of his views on Hinduism reveeals that his approach is false, distorted and misleading.]

Nirad C. Chaudhuri is a well known name in Indo-English prose. He is one of the greatest, yet the most controversial writers. In this respect, his place in literature is a privileged one. As a writer his contribution to the development of human thought and craftsmanship is remarkable.

Nirad Chaudhuri, an unknown Indian till 1951 when his 'Autobiography' made him oonspicuous, is an erudite intellectual who has the courage to stand apart and be ''different from the crowd as a critic of Indian society''. He has been a prey to controversy because of his odd and eccentric theories on religion. He loves everything Western and hates everything Indian.

N. Chaudhuri has given expression to his views on Hinduism, Indian history and civilisation in his famous but controversial books 'The Continent of Circe' and 'Hinduism' In these books Chaudhuri's approach to Hinduism is false, distorted and misleading. He does not appear to be in the full know of the sources of Hinduism and Vedantic religion. Chaudhuri equates Hinduism with Indian which means ''an inhabitant of the georaphical continent of India''[1]. Chaudhuri writes in his famous book ''Hinduism'' : ''Hinduism can be described as many religions with greater aptness, and it also pervades Hindu life as lived in the world in every nook and cranny''[2]. Chaudhuri pinpoints that the modern European orientalists found that the Hindus had no other name for the whole complex of their religious beliefs and practices except the phrase ''Sanatana Dharama'' or the eternal way. They did not even have a word of their own for religion in the European sense; and so that orientalists coined the work 'Hinduism' to describe that complex of religion.

N. Chaudhuri's views on Hinduism are based on his opinion on the outlandish character of the Aryan settlement in India. Hinduism is a polytheistic religion of those Aryans who settled in India. Its polytheistic character dates back to the hoary past of the Aryana settlement in India. Chaudhuri suggests that in addition to a clash over territory the Aryans in Iran might have quarrelled over a question of religion and beliefs. A group of Iranian Aryans might have resented the approach to jealous and intolerant semetic single God. The Aryans according to him entered the territory of Punjab aroud 1000 B. C. The Aryans who supposed themselves the first civilised people to settle in India had to face the dark primitives of India. They called themselves Aryans which means 'nobly born' and they addressed the dark primitives as 'Aryans'. Dr. Satish Kumar opines that ''a permanent demarcating line was drawn between the Aryan invaders who permanently settled in India and the aborigins from the Punjab. The Aryans spread over the Gangetic planes, on the last they went to the south.[3]''

In the 'Continent of circe' Chaudhuri points out that the Aryans of the Rigveda, who settled in India, were racially related with the Metannians of Hurrians in upper Mesopotamia in the 14th and 15th centuries B. C. Metannians were very nearly related to the Aryans who finally went to Persia and then to India. ''This Metannian Mesopotanian connection is the only thing which is certain in the history of the Indo-Aryans before they came to India.[4]''

In the opinion of Chaudhuri Hinduism is conspicuous for its worldly character and it is the means of supporting and improving the existence of its followers in the world. Although in Hinduism ''there is belief in another world, in life after death, and in all the supramundan e things which form the staple of every religious system,'' the worldly aims of religion outweigh the unwordly ones. Chaudhuri boldly remarks, ''Actually the religion is for the world and there is no unworldliness in it. At the same time the world is also for religion and the two cannot be separated. Therefore in Hindu society every wordly activity is under the control of religion, and every thing religious is involved in the world.[5]''

The Aryans in India had confronted a difficult problem of how to survive with their culture in an environment which was hostile in every way. So they had to create a way of life which would for some multiple purposes resists the enmity of the aboriginal inhabitants whom they looked upon as savages, as well as the temptation to fraternize with them; compensate for the decline of vitality inevitable in a tropical environment; check erosion of moral; and withstand the destructive impact of environment on their institution.

Hindusm has been divided into three stages-the Vedic, ancient and modern. Chaudhuri suggests that by the 7th century A. D. the general character of Hinduism was establihed and most of its major features as seen in recent times had made their appearance. According to Chaudhuri the earliest form of Hinduism is prehistoric and is remarkable for its Indo-European character. The Indo-European character of the earliest manifestation of Hinduism ''is only one aspect of the German Indo-European complexion of the life and culture as well as the institutions of the ancient Hindus.[6]''

In the course of centuries many changes have come into Hinduism 'Polymorphous Monotheism' is the first conspicious change that became visible. The following cults which were not known in the Rigvedic period came into existence.

1. The Cult of Shiva.
2. The Vishnu-Krishna cult.
3. The mother Goddess cult.
4. The cult of the rivers.
5. The cow worship cult.

With the coming into existence of the first three cults the image worship in temples which was hitherto unknown in Hinduism came into being. Another conspicious change seen in Hinduism was called the way of love (Bhakti Marga) which means disinterested surrender of self to a personal God of love.

Priesthood is a prominent institution in Hinduism. The Brahmin caste belongs to the priestly order. ''Priesthood is an important profession. 'Chaudhuri views that the attitude of Hindus towards tbeir religion is purely wordly, the common Hindus got comfort, consolation and protection from religion. Chaudhuri describes Hinduism as a means of living in the world with the help of supernatural agencies'' He finds want of spirituality in Hinduism. ''Nirad C. Chaudhuri is a non-conformist. He ridicules everything that he sees around him. He is a rationalist whose views on Hinduism and Hindu society have been vitiated by class hatred, personal prejudices and petty jealousies ''Chaudhuri's views on Hinduism and Indian history are cynical, subjective and distorted.''

REFERENCES

1. Nirad C. Chaudhuri : "The Continent of Circe" P. 30 Orient paper backs
2. Nirad C. Chaudhuri : "Hinduism" New Delhi P. 7, B. I. Publications, 1979
3. Dr. Satish Kumar : "Nirad C. Chaudhuri, The Man and Writer" P. 45, P.B.D. Bareilly, 1983.
4. Nirad C. Chaudhuri : "The Continent of Circe" P. 46.
5. Nirad C. Chaudhuri : "Hinduism."
6. Ibid P 69.

—):o: —

Jour. U. P. Govt. College Acad. Scc., 1984-85, Vol. 1 P. 40—42
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ४०-४२

SELF DISCLOSURE DIFFERENCES IN THE AREAS OF MONEY AND PERSONALITY OF BHOTIA MID ADOLESCENTS.

(A Psychological study of Interpersonal communication)

A. D. TRIPATHI

Dept. of Psychology Govt. Raza College, Rampur.

सारांश

[५० मध्य किशोर भोटियाओं को "सिन्हा आत्म प्रकाशन" मापनी भरने के लिये दी गई। अध्ययन का उद्देश्य इन किशोरों में धन एवं व्यक्तित्व क्षेत्र में आत्म प्रकाशन भिन्नता ज्ञात करना है। प्राप्त प्रदत्तों से ज्ञात होता है कि इन क्षेत्रों से सम्बन्धित आत्म प्रकाशन में किशोरों में सार्थक भिन्नता है। निष्कर्ष यह भी दर्शाते हैं कि भोटिया किशोरों के लिए "धन" की तुलना में "व्यक्तित्व" अधिक वैयक्तिक क्षेत्र है।]

ABSTRACT

[50 literate Bhotia midadolescents of Kumaon hill region, U. P were administered SSDI to explore self-disclosure differences in the areas of "Money and Personality". Results show that adolescents differ significantly in their self-disclosure in the areas of Money and Personality. Results further show that Personality is the greater private area than Money of Bhotia adolescents.]

INTRODUCTION

Many current studies have characterised that the self-disclosure is one of the major aspects of the basic personality (Halverson & Shore 1969, Lubin 1959, Pederson & Higbee 1969). Differences in the readiness of individual to disclose personal information have been observed by Lewin (1953) and demonstrated by Jourard (1958). Lewin's observations concerned differences between German and American, while Jourard demonstrated differences related to sex and race in a group of American College students. Melikian (1962) found in his study that different aspects are significantly different at .01 level of confidence for all aspects except between 'Attitudes' and 'Tastes' and between 'Money' and

'Personality'. Tewari & Singh (1967) concluded that self-disclosure varies with person to person to whom it is made as well as the aspect of personality disclosed. Here self-disclosure means the real expression of one's own self divided in many folded variations, such as money, personality, study, feeling ideas, interests etc. Sinha (1972) found out that self-disclosure varies in 'Public and Private' areas. Tripathi (1975) studied the nature and trend of self-disclosure.

The present study is an investigation to trace out the differences of self disclosure in 'Money and Personality' areas of Bhotia midadolescent students. It is hypothesized that there are true and significant differenccs in the disclosure of money and personality areas of the sample adolescents. The 'Money' areas is concerned with the aspect of Penuiary interests of the adolescents, and 'personality' is the area concerning the central core of one's own self.

METHOD

SUBJECTS :

A sample of 50 literate midadolescent (age range 15-17 years) students of Bhotia community (male, female urban, rural) of Kumaon hill region (Pithoragarh) of Uttar Pradesh are taken. The selection of the subjects was made randomly. All the students were matched with regard to caste, socio-economic status and educational level.

TOOL :

Sinha's self-disclosure inventory (1973) was used. This inventory contains 80 items divided into 8 parts. Each part is related to 8 areas of self i. e. Money, Personality, study, Body, Interests, Feeling-ideas, Vocation and Sex. The workability of the tool was established before use.

TEST OF INFERENCE :

Since Sinha's self-disclosure Inventory is a self rating scale and the data are not expected to be normally distributed, non-parametric statistics of X^2 test was used with a view of testing the hypothesis.

RESULTS AND DISCUSSION

(Table 1 about here)

Table 1 clearly indicates that the median scores in Money and Personality areas are significantly different at .02 level of confidence

This confirms our hypothesis and we can safely say that Bhotia midadolescents of Kumaon hill region differ significantly in their self-disclosure of Money and Personality areas to different target figures. The median scores show a comparative trend of self-disclosure i. e. the lesser extent of self-disclosure in the area of Personality in comparision to Money area. Indeed both these areas are low clustered areas (Sinha 1974) of the self and adolescents try to conceal their expression in these areas, still the data indicate that 'Personality' is still greater private area of self than 'Money' of Bhotia adolescents. This again confirms the results of Jourard (1961) and Sinha (1972).

TABLE-1

Self-disclosure difference in the areas of Money and Personality of Adolescents.

	Area of Self		X^2	P
	Money	Personality		
Median Scores	85.00	55.00	6.42	.02

Value of X^2 to be significant at 1df & on .02 level = 5.41

REFERENCES

Halverson, C. F. (1969) & Shore, R. E. Self-disclosure and Interpersonal functioning. J. of counselling & Clinical Psy. 33, 213-217.

Jourard, S M. & (1958) Lasakow, D. Some factors in self-disclosure. J, of Abnormal & Social Psy. 56, 91-98.

Jourard, S. M. (1961) Self-disclosure Pattern in British & American females. J of Social Psy. 54, 315-320

Lewin, K. (1953) Some Social-Psychological differences between the United States & Germany; Selected papers on group dynamics, Boston, Houghton-Maffun.

Lubin, B. A. (1959) Modified verson of self-disclosure Investory. Psychol. Report, 17, 493.

Melikian, H. L. (1962) Self-disclosure among University Students in the Middle East. The J. of Social Psy. 57, 257-26.

Pedersen, D M. (1969) & Higbee, K. L. Personality Correlates of self-disclosure. J. of Social Psy. 78, 81-89,

Sinha, V. (1972) Private and Public Areas in self-disclosure. Agra University J. of Researches Vol. 20 Pt-I. 51-56.

Sinha, V. (1973) A Tool to measure self-disclosure. Agra University J. of researches (Letters) Vol XXI Pt. I, 1-4.

Sinha, V. (1974) High and Low clustered areas in self-disclosure Indian Journal of Psyl. Researches, Vol. 18 No 2, 46-47.

Tewari, J. G. & (1967) Singh, S. Self-disclosure in Urban and Rural students J. of Psyl. Researches. Vol. II No. 1, 7-13.

Tripathi, A. D. (1975a) Self-disclosure and Bhotia community A Psychological study. 'Vanyajati' An Illustrate Quarterly Magzine. Vol. XIII No. 1, PP 15-19.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1984-85, Vol. 1 P. 43-46
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ४३-४६

AGE DIFFERENCES IN RISK TAKING BEHAVIOUR.

V. SINHA *, G. S GUPTA & P. N. ARORA,
Department of Psychology, Govt. Raza P. G. College, Rampur.

सारांश

[इस अध्ययन का उद्देश्य जोखिम ग्रहणशीलता प्रवृत्ति पर आयु के प्रभाव को देखना है। इस अध्ययन में रामपुर तथा मुरादाबाद जिले के ८१ शहरी पढ़े लिखे व्यक्तियों को 'अरोरा-सिन्हा जोखिम मापनी' भरने के लिये दी गई। इन प्रयोज्यों की आयु सीमा १८-६० वर्ष थी। प्रसरण-विश्लेषण का प्रयोग विभिन्न आयु वर्गों में जोखिम-ग्रहण-शीलता प्रवृत्ति में सार्थक अन्तर ज्ञात करने के लिए किया गया। प्रदत्त-विश्लेषण से निष्कर्ष निकला कि जोखिम ग्रहणशीलता प्रवृत्ति पर आयु का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।]

ABSTRACT

[The present study aims at tracing the impact of age on risk taking tendency. Eighty one urban male literates of various age groups (ranging from 18 to 60 years) of Rampur & Moradabad districts (U.P.) were administered Arora & Sinha's risk taking questionaire (R T Q), Analysis of variance technique was applied to find out the significance of difference between the risk taking tendencies of various age groups, The results reveal that Ss of different age groups do not differ significantly in their risk taking behaviour]

INTRODUCTION

Risk taking is an important Psychological Characteristic of human personality. The term 'Risk' means generally a dangerous element or factor, where an individual is put willingly or unwillingly in that situation. Hobrin (1974) is of the opinion that risk is a condition where there is a possibility of occusance of loss as a result of deviation from the intended or expected situation. Chaubey (1974) defines the term 'risk' as a condition where both the aspects of an incidence are clear to the person concerned and the outcome clearly defines the success & failure. Gupta & Arora (1983) have explored the utility of risk taking behaviour in following two ways (a) it prepares the individual in coping

* Asstt Director, Higher Edu. Alld.

with the dangerous situations & surroundings and (b) it helps in channalization of abundant body energy in different creative ways.

Age is an important personality factor, it brings important physical, psychological, biological & social changes in human personality. Consequently each age group has unique personality traits. It has been proved through various Psychological studies that age affects-perception, thinking, emotions, power motivation, n-ach, self-disclosure and other behavioural characteristics.

Wallach & Kogan (1961) reported the significant age differences in confidence-judgement. They found that youngesters were significantly higher in confidence than the older one. They also found a positive association between the confidence and risk taking behaviour. Chaubey (1974) studied the rural population of Allahabad (U.P.) and reported that the age has a significant effect on risk taking behaviour. While the results were reversed in case of under developed villages. Contrary to above Sinha (1969) did not observe any significant differences in risk taking tendencies at different age levels.

The purpose of present study is to find out the effect of age on risk taking behaviour. It was hypothesized that Ss of different age groups do not differ significantly in their risk taking behaviour.

METHODOLOGY

SAMPLE :

The study was conducted on 81 urban literate male Ss of Rampur and Moradabad districts (U.P.). The entire sample was divided into three groups viz. (1) adolescents (age 17 to 20 years), (2) adults (age 21 to 40 years) and olders (age 41 years & above). Each group comprised of 27 Ss. The three groups thus obtained were matched strictly with regard to Socio-economic status, religiosity, values & nationality.

TOOL :

Arora & Sinha's (1983) risk taking Questionnaire was used to measure the magnitude of risk taking behaviour of the Ss under reference. The questionnaire is a five point rating scale. It measures the magnitude of risk in eight areas namely (1) Hills, (2) space, (3) sea, (4) commercial trades, (5) police, (6) fire, (7) Vocations & (8) Military service. Each

area comprises of 8 items & there are 4o items in all in the inventory. Its split half reliability is 0.84 and validity is 0.79 against Yusuf's opinion questionnaire (1974).

DATE AND ANALYSIS :

Analysis of variance technique was used to find out the significant differences in risk taking behaviour with regard to different age groups. Data with statistical measures have been shown in table-1.

TABLE-1

Significance of difference in risk taking scores of Ss of different age groups.

Sl. No.	Age wise groups	No. of Ss	Mean Scores	ratio	df.	P.
1.	Adolescents	27	141.64			
2.	Edults	27	132.48	2.428	78/2	N.S.
3.	Olds	27	131.35			

P-denotes level of significance.
N.S. Not significant.

RESULTS & DISCUSSION

TABLE-1 Shows that there is no significant difference in the risk taking scores of the subjects belonging to different age groups i.e., adoloscents, adults & olds. The calculated value of 'f' is 2.428 which is less than significant tabled values 6.96 & 3.96at .01 & .05 levels of significance respectively.

The conclusion of the above study is that risk taking behaviour at any stage is not affected by increasing age. The present study corroborates the findings cf Sinha (1969). The very fact is that the life in modern era has become so competitive & materialistic that we cannot pass even a single moment of our life without taking risk. Risk taking has become an essential need of every stage & every sphere of life & those who avoid risk taking suffer failures in life. Coleman (1976) has rightly remarked that 17th century was the age of enlightenment, 18th century the age of reasons, 19th century the age of progress & 20th century- the age of anxiety. In the opinion of researchers-risk taking can be taken as a reaction against the present conflict, frustration & anxiety regardless of age & other personality variables.

REFERENCES

1. Arora, P. N. & Sinha, V. (1983) Manual of Risk taking Questionaire N P C National Phychological group Agra, 1—8.
2. Chaubey, N P. (1974) Motivational dimensions of Rural development : A study of risk taking, risk confidence & fear of failure in villages. Chaitayna publisity House, Allahabad, 150—154.
3. Coleman, J. C. (1976) Abnormal Psychology & Modern life. Scott, Foresman & Co.
4. Gupta, G.S. & Arora, P.N. (1983) Caste differences in risk taking behaviour. Asian J. of Psychology & Education, Accepted for publication.
5. Hobrin, E. D. (1974) Advanced Learner's Dictionary, Allyn & Bacon, Inc., Boston.
6. Sinha, D. (1969) Indian villages in transition : A motivational Analysis. Associated publishing house, New Delhi, 28—35.
7. Wallach, M.A. & Kogan, N. (1969) The effect of anxiety on relations between subjective age & competition in an older sample In P H. Hoch & J zubin (Eds), Psychopathology of aging. N.Y. Gruue & Stratton, Pp 123—135.
8. Yousuf, S M.A. (1974) The measure of risk taking, Psychological studies, 16 (i), 64—67.

-: (o) :-

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1984-85, Vol., 1 P. 47-51
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ४७-५१

STUDENTS AND PROHIBITION PROGRAMME

R. D. CHATURVEDI

Deptt. of Psychology, M. B. Govt. College, HALDWANI

सारांश

[इस अध्ययन का उद्देश्य मद्यपान के लिए आवश्यक कारकों का तथा मद्य निषेध-प्रोग्राम के बारे में लोगों के विचारों का पता लगाना है। अध्ययन के लिए सागर के ४०० विद्यार्थियों तथा अन्य व्यक्तियों को एक मापनी दी गई। प्रदत्तों के विश्लेषण से निष्कर्ष निकला कि कुछ व्यक्ति मद्यपान को पसंद तथा कुछ नापसंद करते हैं। जहाँ तक मद्य-निषेध-प्रोग्राम के लागू करने की विधि का प्रश्न है, निष्कर्ष यह निकलता है कि लोग वैधानिक विधि की तुलना में व्यक्तिगत सम्पर्क एवं समझाने-बुझाने की विधि को अधिक प्राथमिकता देते हैं।]

ABSTRACT

[The present study enquires into the 'why' of Alcoholism and the patterns of behaviour of alcohol cs in a sample of 400 persons from Sagar. Questionnaire was administered and responses we're obtained, which reveal that there are some people who favour alcohol consumption. The study found some people in favour of public drinking and others against it Regarding the enforcement of prohibition people preferred persuation method to legal enforcement.]

A : INTRODUCTION

The introduction of the prohibition in our country is one of the important reformatory programmes which the government has scheduled for the uplift of the country. Keeping in view the merits and demerits of prohibition it is now established that many people are in favour of prohibition and there are many who are against it (1,2,3,4,5,6,7,8,9). In our country this problem needs special attention because Mahatama Gandhi. the Father of the Nation strongly advocated the immediate enforcement of prohibition programme as an infalliable measure for the betterment of the people. The year 1969 has been declared as the Mahatama Gandhi Centenary year, and as such it becomes the duty of the people of the country to remove the evil of Alcoholism in the appropriate manner.

When people advocate for the Alcohol consumption for one reason or the other and other section of the people show negative attitude i.e. do not favour alcohol consumption. It becomes a necessary point to decide whether to go for prohibition enforced or to go the other way. The present investigation is attempted with the purpose to know keeping this thing in mind the 'why' of Alcoholism and the nature of the behaviour under alcoholism. This would enable us to predict the success or failure (effectivity) of the prohibition programme in our country. Therefore, the present study attempts to find:

(1) What are the factors which are responsible for the consumption of alcohol ?

(2) What the people think about prohibition programme and the problem of its enforcement ?

B : METHOD

The respondents were-hostel students and day scholars of the University Teaching Department Sagar University, Fourth class employees of the University of Sagar, Military personnel (Stationed at Sagar). The total sample was 400 equally divided into the four catagories stated above. A questionnaire especially prepared for this purpose given the respondents in English and Hindi to know their views about prohibition.

C : RESULTS & DISCUSSION

Two views were given regarding the factores influencing the alcohol consumption. Military Personnel, Hostellers and day-scholars mentioned 'bad company' and the Fourth class employees mentioned 'worries' as the important factors respectively which speak about the alcohol consumption. The data is shown in the Table given below :

TABLE I

FACTORS CONSIDERED AS LEADING TO ALCOHOL CONSUMPTION.

Base	Military	Fourth Class	Hostellers	Day Scholars
Worries and Disappointments	27 %	41 %	18 %	22 %
Habit	22 %	8 %	19 %	27 %
Fun	10 %	28 %	21 %	15 %
Inclination	4 %	2 %	11 %	1 %
Bad Company	28 %	18 %	24 %	32 %
Others	5 %	3 %	1 %	-
Don't know	4 %	-	6 %	2 %

Regarding opinion about prohibition among the sample there were two voews : (1) Military Personnel and Hostellers dismissed the concept of prohibition by calling it a 'bogus idea'. (2) The fourth class employees and the Day scholars were in favour of prohibition. The study revealed that there are a few men who held 'Don't know attitude, Regarding the enforcement of prohibition, the 'persuation' method was preferred over the method of 'legal enforcement'.

TABLE II

OPINION ABOUT PROHIBITION

Base	Military	Fourth Class	Hostellers	Day Scholars	Total
Bogus Idea	49	36	47	39	171
Necessary	41	37	45	43	229
Don't know	7	7	8 + 11	10	
				11	N = 400

*Figures are shown in percentages.

**Those who did not give any responses. Total response got 389.

TABLE III

WAYS OF ENFORCING PROHIBITION

Ways	Military No. of Res-pondents	%	Fourth Class No. of Respon-dents	%	Hostellers No. of Respon-dents	%	Day Scholars No. of Respon-dents	%
By Law	8	20	21	36	16	35	18	42
Persuasion	33	80	36	64	29	56	25	56
Total	41		57		45		43	N = 186

Alcohol consumption is followed by a state of mental aberration which is an undesirable situation not approved by the society in which he is responsible for his acts. In addition to this, people are in favour of alcohol consumption. It was considered to be an agreeable necessity to know from the respondents if the Government should allow public drinking or it should be limited to specific areas or in private premises only. To this the Military Personal, Fourth Class workers and Hostellers expressed opinion for public drinking while day-scholars were not in it's favour.

TABLE-IV

Opinion for Public Drinking (Figures show percentages)

Base	Military	Fourth Class	Hostellers	Day Scholars	Total
Agree	59	66	46	37	208
Indifferent	13	9	13	9	44
Disagree	28	25	41	43	137
Total	100	100	100	100	389

Regarding other measures of minimising alcohol consumption th respondents mentioned 'will power' as a possible means. 'Will-power means the person himself. If he so desires, he can give up the habit o drinking or minimise the consumption of liquor.

Thus, it is clear from the above study that before enforcing th prohibition there is a great need of extensive researches as to know th other details of alcoholic consumption amoung Indian people because th effectivity of the prohibition programme depends upon these researches

In the light of the above findings and the negative attitude toward prohibition, as shown by some of the respondents, the author feels strong necessity of re-education programmes aiming at the attitudin changes in this direction. Taking the clues from the responses given a small number of respondents who support persuation as a measure, indicates that if prohibition programme is enforced on the basis persuation only, the negative attitude towards prohibition becom positive.

REFERENCES

1. Alexander, H G. — Narcotics in India and South Asia (Williams & Norgate Ltdi, London 1951)
2. Elliot, M. A. & Merrill, F. F. — Social Disorganization (Harper & Brothers New York, 1950)
3. Editors — Encyclopedia of Social Sciences, Vol I & XIX (Macmillan Company, New York, 1949)
4. Govt of India — Planning Commission, Report of the Prohibition Inquiry Committee (1955)
5. K. Thomas — Towards Better India (P. Verdachari & Co, Madras, 1949)
6. Levy, R — Drinking - An Economic and Social Study. (Reutledge & Kegan Paul Ltd., London 1951)
7. Mourer, E. R. — Disorganization - Personal & Social (J. B. Lippincott & Co. New York, 1942)
8. Upadhayya, Ramji — Bharat Ki Samajik Sanskriti Khan-Pan (Kitab Mahal, Allahabad, 1948)
9. St. Nihal Singh — Dry America (Ganesh & Company, Madras, 1921)

—(o)—

Jour. U. P. Govt. College Acad, Soc., 1984-85, Vol. 1 P. 52—57
उ० प्र० रा० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ५२-५७

RELEVANCE OF MALTHUSIAN-PRINCIPLE

SHIVA NARAYAN GUPTA

Department of Economics, Govt. Degree College, Jakhini, Varanasi.

सारांश

[प्रमुख क्लासिकल अर्थशास्त्री टामस राबर्ट माल्थस का जनसंख्या-सिद्धान्त जनसंख्या अध्ययन के इतिहास में "मील का पत्थर" माना जाता है। उसके मौलिक विचारों का प्रभाव डार्विन, वेलेस, रिकार्डो, मार्क्स एवं केंस की प्रस्तुतियों में स्पष्ट देखा जा सकता है। वर्तमान शताब्दी में उसका जनसंख्या सिद्धान्त, विशेषकर भारत जैसे विकासशील देशों के संदर्भ में, पूर्णतः प्रासंगिक है।]

ABSTRACT

[Malthusian Principle of Population represents as indispensible land mark in the history of Population Studies, His fundamental ideas provided the crucial stumulus on the idealogy and views of Charles Darwin, Alfred Russell Wallace, David Ricardo, Karl Marx and John Maynard Keynes. In the twenteeth century, his **Principle** appeares to be relevant mostly in under-developed economics like India.]

Among the classical economists, T. R. Malthus was the "best abused man of the age,"[1] but he had raised a spectre which haunted half the century, wrote professor Willey[2]. His Principle of Population represents as indispensible land-mark in the history of population studies. It was later still years after the death of Malthus, that his fundamental ideas provided the crucial stimulus to the development of the theory of the origin of species by natural selection contributed by Charles Darwin and Alfred Russell Wallace. In economics, one of his contemporaries, David Ricardo produced a general theory of production and a theory of rent, incorporating the pessimistic views of Malthus with respect to population and food production. This was a positive impact he made. In addition, he makes a reactionary effect on the ideology of Karl Marx and Friedrich Engels, the joint introducers of scientific socialism. Thus, when we look back through all the dust and hubbub of the still continuing controversy, the main achievement of Malthus appears to be practical.

This main achievement is to have brought questions of national population and individual family size within the sphere of morality and prudence, of policy and decision. In the twenteeth century, his principle has been an indispensable reading for anyone interested in the problems of the underdeveloped countries. Indeed, in many respects, Malthus' concerns are far more relevant today for the economics of most populous countries, like India.

MALTHUS : A PROPHET OF GLOOM

Though Adam Smith's work established the foundations of classical economics in terms of problems, concepts, and general idiology, yet he did not finish the building. His WEALTH OF NATIONS is, however, a masterpeice work but it needed systematization and development. One rather surprising aspect of this subsequent development was the growing pessimism of classical thought. The growth of a pessimistic outlook at the time of what was possibly mankind's most dramatic economic break through is something of a puzzle, though perhaps it mainly proves the well known point that the age hardest to understand is one's own. The Man and the PRINCIPLE usually held responsible for this increasingly glooomy outlook are Thomas Robert Malthus, who was later regarded by the perfectionists as a prophet of gloom.[3]

MALTHUS' Reasoning

Malthus' reasoning consists of three parts, which must be kept distinct. The first relates to the supply of labour. By a careful study of facts he proves that every People, of whose history we have a trust-worthy record, has been so prolific that the growth of its numbers would have been rapid and continuous, if it had not been checked either by a scarcity of the necessaries of life, or some other cause, that is by disease, by war, by infanticide or lastly by voluntary restraint. In other words, if population increases, other things remaining the same, supply of labour will also be increased positively.

His second position relates to the demand for labour. Like the first it is supported by facts, but by a different sets of facts. He show that no country had been able to obtain an abundent supply of necessaries of life after its territory have become very thickly peopled. So, demand for labour is inversely related to the increase of population itself. The produce which Nature returns to the w rk of man is her effective demand for population, and Malthus shows that a rapid increase in population, when already thick, had not led to a proportionate increase in the demand for labour.

Thirdly, he draws the conclusion that what had been in the past, was likely to be in the future and the population growth process would be checked by poverty generating unemployment and bad nurture, or some other cause of suffering unless it were checked by voluntary restraint.

The above analysis, which produced such a stir, as originally presented by Malthus himself, can be described in a contrast between two 'ratios' :

> Taking the population of the world at any mumber....the human species would increase in the ratio of 1, 2, 4, 8, 16, 32, 64, 128, 256, 512 etc. and subsistance as 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10 etc.[4]

PRINCIPLE'S RELEVANCY

Certainly, the human, like animal, populations - with certain freak exceptions possess a power to multiply is a matter of fact. Even the precision of the geometrical progression, doubling every twenty-five years[5], is a sobar extrapolation from something which Malthus knew had actually happened in favourable though never absolutely ideal conditions. However, it is right to say that he himself offered the arithmatical and / or geometrical ratio not as any sort of discovery but as a reasonable maximum supposition.

Thus, it is clear that population growth would increase, if unchecked.[6] After inferring he argued that, on the one hand, sooner or later these will have to be checks, and, on the other hand, it follows necessarilly that checks are infact operating constantly and everywhere. Malthus divided these checks into ''preventive'', or those reducing the birth rate and ''positive'', or those raising the mortality rate. All these checks, in turn, were resolvable into 'moral restraint' vice, and misery.[7] ''Moral restraint'' was restraint from marriage which is not followed by irregular gratifications. ''Vice'' included promiscous intercourse, unnatural passions, violations of the marriage bed, and improper arts to conceal the consequences of irregular connections. ''Misery'' was what was left over the effect of extreme poverty, bad nourishing of children, great towns, plague, famine, war and all those positive checks by which either nature or man himself brought the number of human beings under effective control.

The preventive check, on the other hand, as for as it is voluntary, is peculiar to man, and arises from that distinctive superiority in his reasoning faculties which enables him to calculate distant consequences.

The check, according to him, is brought into play through late marriage and abstinence within marriage. The goodness of fit, however, in this regard, has been tested by several succeding authorities[8] in India's perspective.

Following moral restraint Malthus always suggests to realize that she was pregnent. In his view point, female (she) is also a man. That's why it ever requires a sterile male to stay faithful to a fertile female, till sufficient improvement in her health condition.

If we again follow empirical evidence, what Malthus found in modern Europe the positive checks to population prevail less and the preventive checks more than in the past, is true today to a large extent. Thus, with the advancement of civilization the preventive checks, as suggested by Malthus have to be very popular.

Though lacking confidence in moral restraint and disapproving of vice, Malthus feared that ''misery'' might prove to be the key restraining factor. But as he continued to observe population change, many circumstances led him to believe that man could more or less control his numbers if he wished. And if society could exercise this control, there was no reason why his miserable condition should not steadly improve. Thus, Malthus was essentially correct in his view that in the absence of effective preventive checks, man, with only occasional and short lived exceptions, had long suffered and would continue to suffer from the positive checks. He believed that any improvement in the standard of living of the mass of working men would immediately lead to an expansion of population and this, in turn, would bring back the standard of living down to a ''subsistance'' level. As long as its passions and moral character remained unchanged, mankind was chained to the wheel of perpetual poverty.

Evidently, Malthus has been greatly misrepresented by many critics that there is clearly a misplaced precision in the use of ''ratios'' in the Malthusian account. Although, as we have already seen, these ratios are not as any sort of discovery but as a reasonable maximum supposition which help his principle to a much greater impact than it might have had in more sober dress.

CONCLUSION

Malthus deserves great credit for bringing this problem to the attention of people as well as for the objective manner in which he

analysed the facts available to him and thus increased our understanding of one extremely important element affecting human welfare. To him, the mode of essentially and permanently bettering the condition of the poor involves explaining to them the true nature of their situation. Following this idea he advocates a great extension of national education, though qualitative, by keeping the size of their own families within the limit. Even today, in this regard to achieve man's welfare by several 'International Action and Training Programmes'[9] "small is cheerful" is our main aim.

Malthus was a social scientist rather than a social philosopher. For this reason, while he was interested in increasing human welfare to encourage visions of an improved level of living which was unattainable, he tried to be scientific in evaluating the probabilities of attaining the ease of living pictured by the Utopians.

The influence of the PRINCIPLE spreads over two-third of the world today. Almost all the parts of Asia, Africa, and south America come under its purview. In these countries, on one side, mostly postive checks operate and birth and death rates are very high, and on the other side, poverty and unemployment, which is the essence of the Malthusian principle, is switching over the whole economy.

Malthus can be said to be the leader of "Neo Malthusianism", Which advocates the use of contraceptives to eradicate poverty and unemployment keeping small family norms, and the leader of the "problem" approach in domography[10] with the relationship between population and other socio-economic factors like poor nourishment, illiteracy, unemployment, poverty etc. His primary contribution to the study of population was his use of facts for the support of his general PRINCIPLE regarding the dynamics of population growth and change in their relation to man's welfare. He is more responsible than any one else for bringing population study within the field of social science. That's why, the study of population vis-a-vis population Dynamics is now becoming a proper field of investigation, with the aim of gaining knowledge with which to better man's living conditions.

Finally, Malthus' thought had a profound effect on the economists, like David Ricardo, Karl Marx, Alfred Marshall, John Meynard keynes etc. who were to give classical economics as well as evolution of modern economics its most consistance and systematic presentation.

REFERENCES

1. Boner J, (1924) : 'Malthus and his work'. 2nd Ed., London : Allen and Unwin, pp. 1-2.
2. Willey, B, (1949) : 'Origin and Development of the Idea of Progress', in a collection of talks by various authors first broadcast by the B. B. C., 'Idea and Beliefs on the Victorians,' London : Sylvan Press. p. 43.
3. Thompson and Lewis (1953) : 'Population Problems', Bombay : Tata Mac Graw Hill, p. 19
4. Flew, Anthony (ed, 1970) : 'Malthus : An Essay on the Principle of Population', England : Penguin, p. 75
5. Ibid, p. 74
6. Ibid, p. 242
7. Ibid, p. 249
8. For Instance, Agrawala, S. N (1977) : "India's Population Problems', Bombay : Tata Mac Graw Hill, p. 87; and Pandey, K, M. (April 1981) : 'Age at Marriage in an Urban Population in India', in The Indian Journal of Economics, Vol. LXI, Part IV, N. 243, p. 535.
9. Muramatsu and Harper (ed. 1965) : 'Population Dynamics', Calcutta : Oxford & I. B. H., p p 13-240.
10. Agrawala, S. N. (1977, p. 18)

~)o(~

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc 1984-85. Vol, 1 P 58-63
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ५८-६३

COMMERCIAL BANKS AND GENERATION OF SELF EMPLOYMENT

DR. HARSH VARDHAN YAJURVEDI

Head Deptt. of Economics, Govt. Post Graduate College, Rudrapur.

सारांश

[यद्यपि व्यापारिक बैंकों ने स्व-रोजगार योजनाओं के लिए उदार साख सुविधाएँ प्रदान करने में पर्याप्त रुचि ली है, फिर भी राष्ट्रीयकरण के समय अपेक्षित भूमिका को निभाने में वे पूर्णतः सफल नहीं रहे हैं। इस प्रवृत्ति के लिए अंशत. उत्तरदायी कार्यकारी समस्याओं को इस प्रकार दूर किया जाना चाहिए कि बैंक स्व-रोजगार उत्पन्न करने हेतु प्रस्तुत प्रस्तावों को वित्तीय सहायता देने में अपेक्षाकृत अधिक प्रेरित हों।

ABSTRACT

[Although the commercial banks took keen interest in granting liberal credit facilities to the self-employed and professionals, one of the segments of priority sectors, their performance was not up to the expectations made at the time of nationalisation,. The working problems, though not entirely responsible, should be handled in such a way as to give banks more incentives for entertaining the proposals generating self employment]

Ever since India gained independence, the problem of un-employment has been assuming serious dimensions and threatens to become more accute in coming years. Because of human sufferings involved, and the sense of frustrations and tensions in society which it breeds, unemployment is pragnent with potential danger of creating difficulties in regard to law and order and endangers social and political unrest and other problems.[1] The problem of unemployment in educated and technically qualified persons has assumed serious dimensions from about the middle of sixties.[2]

Besides other long term strategies, the control of the staggaring growth of population,[3] being the most important, different other schemes were also started to generate employment opportunities for educated and technically qualified persons and weaker sections of rural population. Despite different long term as well as short term measures taken to check the increasing unemployment, the problem was becoming more accute and as such it was considered that the creation of additional employment opportunities will have to be supplemented with promotion of self employment to encourage entrepreneurship and promote increased industrial production.[4] To this effect, it became imperative to create oonditions favourable for the growth of self employment on a large scale and to take measures to foster and enlarge the move towards self-employment.

It was in this regard that when 14 major commercial banks were nationalised in July' 1969, they were assigned an important role to play in granting preferential treatment to the then-neglected sectors, later on known as 'Priority-sectors'. Among the priority sectors, the professionals and self-employed persons was an important segment and banks were expected to grant credit facilities on liberal and concessional terms subserving the objects of public policy.

The Reserve Bank of India, in the light of the recommendation of the Thakkar Committee appointed by it, issued certain guidelines for meeting credit requirements of various types of self-employed persons to commercial banks in March' 1971[5] for the operation of special credit schemes to those categories of persons. The Thakkar committee suggested that if each branch of the banks entertains on an average about 50 proposals in a year, about 3 million jobs could be created by commercial banks in next 5 years.[6]

The present paper is intended only to evaluate, in brief, the role of commercial Banks and to ascertain the extent to which they have been successful in performing the task assigned to them for generating self-employment.

Table-1 deals with the commercial banks' advances to professionals and self-employed persons. The data are available only till the end of June' 1981. It is evident from the table that the commercial banks' outstanding advances increased considerably from Rs. 2 crores at the end of June' 1969 to Rs. 214 crores at the end of June' 1981, registering an

increase of 107 fold during the period of 12 years. The number of acc-unts also registered rather a sharper increase of 115 fold resulting decrease in the average amount per account from Rs. 2500 to Rs. 232 The table also reveals that the public sector banks constitute the maj portion of credit to this sector constituting the 93% of the total. proves that the commercial banks, particularly public sector banks took keen interest in entertaining the cases generating self-employmen

The keenness of the commercial banks in this direction is also cle from the Table-2, which shows that the share of self-employment schem in total priority sectors advances increased from 0.04 percent at th end of June' 1969 to 2.27 per cent at the end of June' 1981. Increasi emphasis has been given to include scheduled castes and Tribes and th weaker sections of the society among the beneficiaries under suc schemes following the guidelines issued by R. B. I. on the recommenda tions of the working Group on Modalties of Implementations of the prior ty Sectors Lending and 20 Point Economic Programme.[7] It was in acco dence that out of total outstanding advances to this sector at the e of June' 81, Rs. 17.8 crores or more than 8 percent belonged to SC/ST[8]

But inspite of best efforts and keenness showed by commercmal ban in granting credit facilities to this sector, they were not positive successful in performing the task assigned to them. Even the idea entertaining on an average of 50 proposals per branch did not mater alise. Of course, there aresome owrking problems that hinder, to so extent, the ways of achieving theobjects set forth.

Banks generally face some genuine problems in entertaining proposa relating to self employment. The prososed projects generally la econmic viability and banks, considering their banking norms relat to security of funds and recovery positions etc., even on liberal ter seem to be reluctant for granting credit facilities. Generally, t banks have to entertain the cases from the proposals recommended certain other agencies having different procedures for screening su

cases, and that too, for the fulfilment of quota fixed by higher authorities. The craze in the public to take advantage any how of the subsidy offered by the goverment agencies also adds to the problem. In some cases, the proposlas are accepted hurriedly and under tense conditions ignoring some standing banking norms.

Few Suggestions :

Since the unemployment position in the country, particularly among educated and technically qualified persons, has worsened considerably, it is imperative to develop self-employment generation programme at war level alongwith other short and long term measures.

The viability of proposals of self-employment should be taken first into consideration strictly in accordance with banking norms, giving due emphasis to the fair recovery prospects and under guidelines issued for the purpose. Simultaneously, the proposals should not be accepted in haste ignoring certain procedural formalities deliberately or otherwise. While screening the proposals, emphasis should be given to realy needy and deserving persons having good sense of enterpreneurship for generating self employment. The fixation of quota for such cases entertained by each branch for a certain period by the higher authorities, should be replaced by such arrangements so as bank officials may need not pass through psychological burden of fulfilling the quota anyhow, and as such, may not on the safer side, prefer to grant credit facilities to the members of families with sound financial positions, avoiding the risk of non-recovery of loans. The banks should also keep strict vigil on the progress of the projects. Some separate cells may also be set up by banks to monitor the working and progress at branch level. The situation regarding self employment in the country from time to time should continuously be monitored by appropriate agencies of the government and the Department of Man Power Planning and the Centre should exercise a co-ordinating role in the matter.[9]

TABLE-1

LOANS AND ADVANCES PROVIDED BY SCHEDULED COMMERCIAL BANKS TO PROFESSIONALS AND SELF-EMPLOYED PERSONS.

(Amount in crores of rupees & No. of A/cs in'000s.)

Period as at the end of.	Public Sector Banks				Amount per a/c	% age of public sector Banks to total	All scheduled commercial Banks				Amount per A/c
	No. of A/cs	Amt. out standing	CHANGE				No. of A/cs	Amount outst-anding	Change		
			Abso lute	% age					Abso-lute	% age	
June'69	8	2.00	—	—	2500	100.00	8	2.00	—	--	2500
Dec.'73	162	28.00	26.00	1300	1728	82.30	171	34.00	32	1600.00	1988
Dec.'75	250	43.00	15.00	53.6	1720	84.30	260	51.00	17	50.00	1962
Dec.'77	542	81.00	38.00	88.4	1495	89.00	567	91.00	40	78.00	1605
June'79	672	119.00	38.00	47.0	1771	86.20	715	138.00	47	52.70	1930
June'81	878	189.00	70.00	58.8	2153	93.00	919	214.00	76	55.10	2329
Dec.'81	844	219.00	30.00	15.9	2320	—	N. A.	N. A.	—	--	--

Source : Compiled from the relevent issues of R. B. I. Annual Report on Currency & Finance.

TABLE-2

THE ADVANCES TO SELF EMPLOYED PERSONS AS PERCENTAGE TO TOTAL PRIORITY SECTORS ADVANCES

(In crores of rupess)

Period at the end of	Total priority Sectors advances	Advances to self employed person	% age of self employed persons to total prioity sectors advances
June' 69	306.00	02	0.04
Dec.' 73	1518.00	34	2.24
Dec.' 75	2291.00	51	2.23
Dec.' 77	3395.00	91	2.68
June' 79	5906.00	138	2.34
June' 81	9443.00	214	2.27

Source : Compiled from the relevent issues of R.B.I. Annual Report on Currency & Finance.

REFERENCES

1- Bhagwati, B. Report of the committee on un-employment, May' 1973, pp. 8 Government of India. pp. 8
2- Ibid
3- World Bank Report of the Pearson Committee pp 111
4- Bhagwati, B Report of the Committee on Un-employment, May' 1973, pp. 156
5- R. B I. Circular dated 19-3-1971
6- Bhagwati, B Interim Report on short-term measures for employment, Feb' 1972, pp. 28
7- R. B. I. Report on Trend and Progress of Banking in India, 80-81, pp. 70
8- R. B. I. Report on Trend and Progress of Banking in India, 82-83, pp. 41
9- Bhagwati, B, Report of the Committee on Unemployment, May 1973 pp. 193

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1984-85, Vol., 1 P. 64-67
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ६४-६७

TEACHING OF HISTORY IS A SACRED DHARMA

OM P. GUPTA

Deptt. of History, Raza Govt. Post Graduate College, Rampur.

सारांश

[इतिहास शिक्षक का कार्य एक पवित्र-धर्म है। मध्यकालीन इतिहास की प्रवृति धर्मतंत्रीय रही है। हमें साम्प्रदायिकता की भावनाओं से ग्रस्त इतिहास-कारों को नकारना चाहिये तथा राष्ट्रवादियों और साम्यवादियों के बीच का मार्ग अपनाना चाहिये। फीरोज और सिकन्दर धर्मान्ध क्यों थे ? औरंगजेब सर्वाधिक गलत समझा गया मुगल सम्राट है, जैसे निष्कर्षों से बचना चाहिये। हमें एतिहासिक तथ्यों की व्याख्या ईमानदारी से करना चाहिये और इतिहासकारों द्वारा प्रतिपादित पूर्वग्रहों का खंडन करना चाहिये।]

ABSTRACT

[The work of a History-Teacher is a moral mission. The nature of Medieval Indian history has been theocentric. We should condemn 'The Communalists' and choose a middleway between The Nationalists and The Communists. We should avoid to ask as how Firoz and Sikandar were the religious bigot. Auranzeb is the most misrepresented Moughal emperor. We should inetrpret historical realities objectively and judiciously to remove acrimonious feelings and myopic concepts.]

In the times when communal harmony off and on is endangered by un-warranted and unseen agents of disintegration, and from us emerge shame-ful writers of painful chapters of Moradabad, Meerut and Bhiwandi, the work of a history teacher becomes a moral mission or a sacred Dharma. According to Manu, 'The true Dharma is free from the feeling of love and hatred.' History is the story of past, fraught with both pleasures and pains. As a teacher we have to relate and re-relate this story, but how much sincerity and faithfulness we keep in narrating it, only God knows. No instrument can be invented to asses our integrity.

NATURE OF MEDIEVAL INDIAN HISTORY

Unfortunately the Medieval Indian History has been written by those who were the masters of pen, but not the true keepers of their conscience. Through their writings they corresponded the wishes of the clergy and glorified the sordid and ignoble deeds of their over-lords. Posthumous chronicles also give the smell of avarice and contempt for the rulers of past. Balanced historical accounts are rare, the bulk cosists either of eulogies or prejudices. Dia-uddin-Barni, wrote history but always aimed at glorifying Islam in the land of infidels (Dar-ul-Herab). Abul Fazl tried to make Akbar a legendary figure, while Abdul Qudiri Badaooni portrayed him as a virtuous monster. Most of the historians of this period looked at the things through religious spectacles. ''The bulk of Indian intellegentsia was theocentric inoutlook irrespective of caste, colour and creed on Community''.[1]

DUTIES OF HISTORY-TEACHER

Our teachers of history owe a great moral responsiblity in teaching the history written in the age of communalism, fanaticism and caste and colour prejudices. Let us remember that we are living in the age of secular democracy. It is we, who can either interpret historical facts before our taughts at the expense of religious bitterness, or at the dispense of communal harmony. I am not suggesting to distort historical facts, let them be unchangeable. I am calling my collegues to use their moral conscience in their interpretations. We all do hear a moral voice of our inner-pure-being, but it seems to have been suppressed by sonorous cries of our external-being, which always remain under socio economic and religio-political pressures. The true teacher of History shall have to Fight this 'external' and honour and respect the 'internal' for the foundation of an egalitarian society. Let us promise to remain always a true interpreter of historical facts. There are 'Communalists', 'Nationalists' and 'Communists' in our profession and are living in well organized guilds. Let us condemn 'communalists' for ever, and try to remain a good friend of the remaining two.

THE PROBLEMS TO BE INTERPRETED OTHERWISE

K. Satchida Nanda Murty observes; ''The real can be conceived in multiple ways, so history, too, could be interpreted diversely. But the greatest care should be taken to see that history is neither nerrated nor interpreted from narrow view points''[2]

The problem that how the Hindus were defeated by the Turkish invaders at the close of 12th Century A.D., can be explained and interpreted diversely. One may stress upon the deceit and treachery of the Turkis without giving little importance to the political, social and cultural degeneration of the Hindus. The balanced conclusion awits such a rational reply. ''The Hindus were no less brave than the Muslims, but they failed to produce a Mahmud or Muizzud-din''.[3]

Muslims will not be able to establish the honour of Theism (Tauhid) and the supremacy of Islam unless they strive with all their courrage to overthrow infidelity[4] (Kufr). What is required is a balanced and dispassionate teaching of History. Our teachers in the question papers should avoid to ask such prejudiced problems-was Firoz Shah Tughlaq a 'religious fanatic'? Was Sikandar Lodi a 'bigot'? By asking such questions we make our students pre occupied with prejudices. Firoz not only persecuted a Brahmin, but also extirpated shias and executed Ahmad Bahri, Mahdi and Ain-i Mahru.[5] Similarly Sikandar Lodi not only ordered for the execution of a Brahmin, Lodhi and the destruction of the temples and idols, but also showed a great interest in the learning of the Hindu arts and Sciences. He also encouraged Hindus to learn Persian.[6]

Aurangzeb or Alamgir is the most mis represented Moughal Emperor. Mostly he is portrayed as an avowed enemy of Hinduism, a prince of Iconoclasts and an enthuziastic priest of conversion. But the truth is not this. He pleaded against the conversion of Inderman, the landlord of Dhandera and wrote to Sadulla Khan, the Chief Minister of Shah-Jahan to intervene on behalf of Zamindar and pursuade the emperor not to insist Inderman's conversion.[7] At another occasion Aurangzeb's reply to his muslim courtiers who induced him to deprive two non-Muslims of their government offices, is also quotable. He replied, ''Religion has no concern with secular business, and in matter of this kind of bigotry should find no place''[8]

It is the moral responsiblity of a teacher of history to interpret the historical facts dispassionately, objectively and judiciously so that he may remove all acrimonious feelings, prejudices and myopic concepts which divide man against man. He must present a vision of concord and harmony, based on the proper integration of history.

REFERENCES

1. Dr. K. C. Misra, Contemporary India, p. 19 Delhi, 1975
2. K. Satchida Nand Murty; Reading in History, Politics & Philosophy p. 43 London 1970
3. H. C. Ray; Dynastic History of Northern India, p. 1078 vol. II Calcutta 1936.
4. Barni : Fatwa-i Jahandari (Eng tran-Afsarjahan Begum) p. 46 Allahabad.
5. Futuhat-I-Firozshahi p. 5 to 9 Aligarh 1954.
6. K. A. Nizami; Salatin-I-Delhi Ke-Mazhabi Rujhanat (Urdu) p. 468 2nd Edn. Delhi 1981
7. Zahiruddin Faruki, Aurangzeb and His Times p. 184 Delhi 1980.
8. J N. Sarkar; Anecdotes of Aurangzeb p. 97 Calcutta 1954.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1984-85, Vol. 1 P. 68-71
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ६८-७१
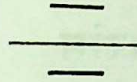
ADMINISTRATION OF JUSTICE DURING THE MUGHAL RULE IN INDIA (1556-1707 A. D.)

PROF. ISHRAT HUSAIN ANSARI

Deptt. of History, Govt. Degree College, Chakia (Varanasi)

सारांश

[भारत में मुगल काल (१५५६–१७०७) का न्यायिक प्रशासन कुशल और मितव्ययितापूर्ण होने के साथ-साथ मुख्यतः सत्यों एवं तथ्यों पर आधारित था। सम्राट द्वारा भ्रष्ट न्यायाधीशों को गम्भीर दंड दिये जाते थे। मुगलों ने अपनी प्रजा को सही न्याय दिलाने के लिए कुछ उठा नहीं रखा और इसके लिए वे अपनी बीमारी और दौरों के दौरान भी जागरुक रहे। उन्होंने समसामयिक परिस्थितियों में जितना उत्तम हो सकता था, उतना उत्तम न्याय प्रदान किया।]

ABSTRACT

[The administration of Justice during the Mughal rule in India (1556-1707 A D) was quick, inexpensive and mostly based on truth and facts. The currupt judges were dealt with severely by the emperor. The Mughals left no stone unturned to ensure that justice was done and for this they did not spare themselves even when they were on tour or sick. They administered justice as best as it was possible in the circumstances of time]

In this paper an attempt has been made to examine critically the administration of justice during the Mughal rule in India (1556-1707 A. D.). The Mughal Emperor was the Khalifa of the age. He was 'the highest court of appeal and sometimes acted at the first instance'. The Mughals were actuated by the noble and lofty ideals of justice. They prided themselves on their love for equity and regarded the administration of justice as important duty which a sovereign could not afford to neglect. They took a keen interest in it and attended most zealously to the duty.[2]

The Mughal Emperor used to hold his court every day where ordinary cases were decided. Akbar held his court after prayers and administered justice there.[3] Every Emperor, however, set apart a day of the week especially for judicial work of a more important character.[4] In the case of Akbar it was Thursday,[5] for Jahangir Tuesday,[6] and for Shahjahan and Aurangzeb Wednesday.[7]

The Mughal Emperors were lovers of justice. Akbar is stated to have declared that, 'If I were guilty of an unjust act, I would rise in judgment against myself. What shall I say then of my sons, my kindred and others'.[8] Father Monserrate has praised Akbar's regard 'for right and justice in the affairs of Government. He was by nature kindly and benevolent and was 'sincerely anxious' that offenders should be punished.[9]

Jahangir seems to have been, in this respect, most particular. William Hawkins who visited India during Jahangir's reign (1608-13), remarked that he held daily court.[10] Nicholas Withington (1612-16) observed that Jahangir sat in his court at Agra three times a day to do his 'great justice'.[11] Jahangir's chain of justice,[12] by which everyone, without fear of obstruction, could carry his grievance to the emperor, was a sincere expression of his zeal to provide justice to his people.

Shahjahan upheld the maxims of his father that true justice must be enforced. He severely punished those who were found guilty of any crime. When any of his officials committed an oppressive act, he inflicted on him an exemplary punishment. Mohammed Amin, Mutsaddi of Surat port was dismissed on account of his tyranny.[13]

Aurangzeb was impartial according to Muslim standards. He maintained that a king should apply himself unweariedly and painstakingly to the dispensing of equal justice to everybody.[14] He even gave money to plaintiff requiring help from the Government Treasury. The Emperor entertained petitions even in his private chamber[15] and he heard petitions of women, widows and orphans in his harem and redressed their wrong.[16] Ovington calls Aurangzeb the 'Ocean of Justice', and remarks that he decided cases with equity. No one could influence him by virtue of his rank.[17]

There were various types of courts dealing with various kinds of cases; revenue courts settling cases arising out of complaints about

right in land; the Qazi's courts dealing with cases pertaining to marriage, inheritance, divorce, etc., the secular courts headed by administrative officers dealing with non-religious and undefined offences that came before them and lastly the caste courts and village panchayats outside the judicial organisation. Sarkar classifies courts into the following- (a) Courts of Religious Law-with the Qazi as the Presiding Officer, (b) courts of Common Law-with Governors and other officers as Presiding Officers and (c) Courts of Political cases presided over by the Emperor or his agents.[18]

The organisation of the judicial system of the Mughals was entirely the same as laid down by Muslim jurists and established in Northern India by the sultans of Delhi. The king was the centre,—his being the supreme court. Under him in the capital were the Dewan-Ala and Qazi-ul-Quzat (Chief Qazi). In the provinces were the Subedars the Dewan and the provincial Qazi, in the Sarkar the Faujdar, the Karori and the Qazi, and the Shiqdar, the Amina and the Qazi dispensed justice in the parganah.

The Qazi-ul-Quzat was the higest judicial officer of the country. He was responsible for the proper and efficient administration of justice. The Maintenance of law and order was the responsibility of the Governor in the province, of Faujdar in the district, Thanedar in the sub-division and in the cities.[19]

There were three groups of crimes viz., offences against God, offences against the state and offences against private individual. The four kinds of puhishments[20] were Hadd, Tazir, Qisas and Tashir. Hadd was a punishment for crimes against God. Tazir was punishable by public reprimand, dragging of the offender and exposing him to scorn, boxing of his ears, scouring. Qisas was in the nature of retaliation. The relative of the victim was allowed to demand retaliation or compensation. Tashir involved public degradation. it was in the form of shaving the head of the offender, putting him on an ass, 'with his face towards its tail, covered with dust, sometimes with a garland of shoes, placed round his neck' etc.[21]

The Mughal justice was quick, inexpensive and mostly based on truth and facts. The corrupt judges were dealt with severely by the emperor[22] The Mughals left no stone unturned to ensure that justice was done and for this they did not spare themselves even when they were on tour or sick. They administered justice as best as it was possible in the circumstances of time.

REFERENCES

1 P. Saran, The Provincial Government of the Mughals, Allahabad, 1941, 359.
2- B. S. Jain, Administration of Justice in Seventeenth Century India, Delhi 1970, 119.
3- Abul Fazl, Akbarnama III, 717; Bev. III, 373,
4- P. Saran, Op. Cit; 360; S. P. Sangar, Crime and Punishment in Mughal India, Delhi, 1967, 11.
5- Akbarnama, Bev; III, 1069; Text, III, 717; Monserrate's Commentary, 209-12.
6- The Embassy, 87; De Laet, 94; Early Travels, Hawkins, 116; Finch, 184.
7- J. N, Sarkar, Mughal Administration, Calcutta, 1954, 94,
8- Abul Fazl, Ain-i-Akbari, Tr. Blochmann, I, 2nd ed; 165,
9- Monserrate, 209-12.
10- Early travels in India, 116.
11- Ibid; 226.
12- S. M. Jaffar, Some Cultural Aspects of Muslim Rule in India, Peshawar, 1959, 31ff.
13- Khafi Khan, Muntakhab-ul-Lubab, I, 750.
14- Muhammed Kazim, Alamgir Nama, 1098.
15- Ibid; 1103.
16- S. P. Sangar, Op. Cit; 12.
17- Ovington, Voyage of Ovington, 193.
18- B. S. Jain, Op. Cit; 78; Cf. Mughal Administration, Op. Cit.
19- S. P. Sangar, Op. Cit; 39,
20- For a detailed study of punishments according to Islamic Law, see, Hughes' Dictionary of Islam, 476-477.
21- For a detailed study of various crimes and punishment in Mughal India, sce S. P. Sangar, Op. Cit.
22- S. M. Jaffar, Op. Cit; 31ff.

—(○)—

Jour. U. P. Govt. College Acad 'Soc 1984-85, Vol., 1 P. 72-75
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ७२-७५

WHEN PANT SUFFERED LATHI BLOWS

Dr. M. K. Rastogi

Principal M. B. Govt. College, Haldwani

सारांश

[पं० गोविन्द बल्लभ पन्त स्वतंत्रता संग्राम के एक साहसी योद्धा थे। साइमन कमीशन सबसे अधिक विवादास्पद आयोग था जिसे भारत में प्रतिनिधि शासन के सम्बन्ध में रिपोर्ट देने हेतु गठित किया गया था। भारत में दूसरी बार ३० नवम्बर, १९२८ को कमीशन को लखनऊ आना था जहां इसके बहिष्कार की पूर्ण तैयारियां हो चुकी थीं। पन्त ने नेहरू के साथ कमीशन के बहिष्कार का नेतृत्व किया एवं उन पर निर्मम लाठी प्रहार हुआ। पन्त को छः फीट से अधिक लम्बा होने के कारण गम्भीर चोटें आईं जो उनके भावी जीवन के लिये स्थायी शारीरिक अक्षमता बन गई।]

ABSTRACT

[Pandit Govind Ballabh Pant who was a valiant fighter of freedom. The Simon Commission was the most controversial Commission ever appointed to report on the extent to which responsible government in India be introduced. The commission was to visit Lucknow on 30th November, 1928 when elaborate arrangements for its boycott were made. Pandit Pant alongwith Pandit Nehru led the boycott when they were Lathi charged. Pandit Pant suffered the most being six foot odd in height. The injuries, which he received, resulted in a painful and persistent malady throughout his life.]

Bharat Ratna pandit Govind Ballabh Pant (1887-1961) was born in an age of political renaissance. He was the child and rebel of the age in which he was born. The reactionary and revolutionary under currents vibrated the political activities pulsated by a new conciousness for establishing the self goverting institutions under a constitution to be framed by Indians alone with in the frame work of British empire. Pant was the pivot who spear-headed such movements in Uttar Pradesh which

resulted in his physical ailments from which he suffered particularly during the boycott of Simon-Commission.

The Simon-Commission was the most controversial Commission ever appointed in India under Section 84 of the Reform Act of 1919 on 4th of November, 1927 with all white members to report on the extent to which responsible government in India be introduced. It aroused political passion and affected the lives of nearly all the Indian political leaders.' Pant opposed the appointment of this commission tooth and nail. Speaking in the U.P. Legislative Council on February 25, 1928. Pant said, ''The history of the growth of the self-governing institutions with in the British Empire has demonstrated that there is only one way for the solution of the constitutional difficulties, and that can be found only in the country for which the Constitution has to be desired and only by those people, who are to be affected by that constitution.''[2] Appealing for the boycott of the Simon Commission Pant exhorted the people, ''If you are dissatisfied with the all white Commission, it is your duty, the duty you owe to your country, the duty you owe to your conscience, the duty that you owe to your future generations, to assert yourself unambiguously before it becomes too late. And if you fail to do so, mind you are taking a great and irksome and very terrific responsiblity on yourself and it will be for you to answer the generations to come for having stood in the way of the progress of this great country at a critical hour. ..... It is your duty in your own interest to support the moment of boycott so that there may be more places available for you there.''[3] Again on September 18, 1928 Pant opposed the setting up a committee of seven members to welmome the commission by saying, ''For me the Simon Commission is an ophemeral thing. It may come and bound to go. I do not attach any importance to it,''[4] Pant made it clear that the country would not tolerate this all white Commission. He said, ''History has repeatedly proved that there is no limit to the capacity of for bearance even of the fallen and oppressed people, and when tyrants become too bold and aggressive their victims shake off their lethargy and raise their heads against their oppressors.''[5]

The Simon Commission landed on October 12, 1928 for the second time. It was to visit State-Capitals. The Commission visited Lahore on 30th. October. Lala Lajpat Rai led the opposition to the Simon Commission with placards reading ''GO BACK SIMON.''[6] He was unscruplously assulted by the Lathi blows and succumbed to the injuries he received.

The Commission was to visit to Lucknow on 30th November, 1928. Pandit Jawahar Lal Nehru and Govind Ballabh Pant were at Lucknow to look after the elaborate aggangements for the boycott of the Commission. Huge processions, demonstrations and public meetings were organised in advance as a part of rehearsal for the boycott. As a precautionary measure the Government prohibited processions and demonstrations. Nehru and Pant took out a procession in the evening of November 29th. Both of them including many a volunteer received injuries. They were vigorously pursued and mercilessly beaten.

The incident of November 29th had the singular effect of rousing up Lucknow against the Commission. Describing it Nehru wrote, ''Innumerable little processions came from various parts of the city, and from the Congress office started the main procession, consisting of several thousands marching in fours.[7] Pant alongwith Nehru was in the main procession. They were stopped near the railway station and immediately the mounted police galloped towards them. Nehru and Pant alongwith several of their companions received serious injuries. Describing the incident Nehru wrote, ''We held our ground, and as we appeared to be unyielding, the horses had to pull up at the last moment and reared up on their hindlegs with their front ho ps quivering in the air over our heads. And then began a beating of us, and battering with lathis and long batons both by the mounted and the foot police.[8] Pant suffered the most and sustained severe injuries. Narrating the incident Nehru wrote, ''Govind Ballabh Pant, who stood by me offered a much bigger target, being six foot odd in height, and the injuries he received then have resulted in a painful and persistent malady which prevented him for a long time from straightening his back or leading an active life.''[9] Pant suffered serious injuries but it encouraged him further to be active participant in the freedom struggle. The Leader wrote in a jubiliant tone, ''The purpose of the boycott demonstrations has been achieved and the victors are those who carry the marks of police batons on their bodies.''[10]

Pant felt proud of the incidents of November 29th and 30th. Speaking in the U.P. Legislative Council on December 13, 1928 Pant said, ''My name has been prominently mentioned with the splendid activities that are associated with this city of Lucknow in connection with the visit of the Simon Commission. I can say this much, that I am not swayed by any feeling of anger of resentment. If a personal explanation of faith can be permitted, I am prepared to say with all humility that I am proud of

the part that I took on November 29 and 30 and it is my prayer, my sincere, earnest, humble prayer to the Almighty that he may give me strength to face the brute force of which we are the victims not only when it is displayed by means of batous but also when we have to face more serious ordeals for it is only thus one can put an end to a Raj which is based entirely and exclusively on brutal and physical force and on might and nothing else.''[11]

REFERENCES

1- M. Chalapati Rau — Govind Ballbh Pant, Delhi (1981) page 73.
2- U. P. Legislative council Proceedings, 1928, 25-2-1928.
3- U. P. Legislative Council Proceedings (1928) 25-2-1928.
4- U. P Legislative Council Proceedings (1928) vol. XXXIX Sept. 22, 1928.
5- Shyam Sunder — political life of Pandit Govind Ballabh Pant, P. 98.
6- Gyanendra Pandey — The Ascendancy of the Congress in Uttar Pradesh (1926-1934) Page 90.
7- J. L Nehru — An Autobiography, Page 179.
8- Ibid — Page 180.
9- J L Nehru — An Autobiography Page 180
10- Note on the press of the United Provinces dated 8th Dec., 1928.
11- U. P. Legistative Council Proceedings Vol. XI (1928) Dec. 13, 1928.

-)(o)(-

Jour. U. P. Govt. College Acad ·Soc 1984-85, Vol., 1 P. 76-80
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० ७६-८०

EMERGING RURAL LEADERSHIP IN A BACKWARD REGION : A STUDY OF GRAM SABHA ELECTIONS (APRIL - MAY 1982) AT KARNPRAYAG DEVELOPMENT BLOCK IN CHAMOLI DISTRICT OF UTTAR PRADESH.

Dr. H. K. Singh

Political Science Deptt., Govt. Post Graduate College, Go eshwar

सारांश

[इस शोध-निबन्ध में कर्णप्रयाग विकास-खंड के १९८२ के ग्राम-सभा के चुनावों में ग्रामीण नेतृत्व के विविध पक्षों के उदय पर प्रकाश डाला गया है। कहा जा सकता है कि नेतृत्व किसी व्यक्ति या संगठन का ऐसा विवेकपूर्ण कार्य है जो लोगों के व्यवहार, भावों और विचारों को प्रभावित, निर्देशित और रूपान्तरित करता है तथा सामाजिक और राष्ट्रीय हितों की लक्ष्य प्राप्ति के लिए उन्हें प्रेरित करता है। वर्तमान ग्रामीण नेतृत्व शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक तथा जलवायु सम्बन्धी स्थितियों से निर्मित एक पूर्णतः सामाजिक आर्थिक नेतृत्व है।]

ABSTRACT

[An attempt has been made in this paper to bring to light the Various aspects of the emergence of rural leadership in the Gram Sabha elections (1982) in Karanprayag Development Block Opinions of political thinkers are sharply divided over the definition of the term "leadership" However, leadership is the enlightened activity of an individual or group, which influences, directs, guides and transforms the thoughts, feelings and behaviour of other people, and leads them towards the formulation and achievements of goals of social and national welfare. The present rural leadership is governed and conditioned by climatic, educational, social and economic factors and it is preeminently a socioeconomic leadership]

Leadership is a universal and multi-dimensional human phenomenon. But there is no unanimity on the precise meaning of the term leadership. Edenger rightly observes, "As social Scientists have learned to probe

beneath the manifest aspects of leadership and have become correspondingly more sensitive to the relevance of numerous and complex latent facts, they have found it more difficult to agree on what leadership is and does.''[1] Particularly, effort to forumlate a single view of Leadership which will embrace different types of leaders is much more difficult.[2] Ordway Tead defines leadership as ''the activity of influencing people to co-operate towards some goal which they come to find desiarable.''[3] The functional aspect of leadership is comprehensively defined by Stogdill. He observes ''Leadership may be considered as the process of influencing the activity of an organised group in its effort towards goal setting and goal achievements.''[4] Weber says, ''Leadership is the process by which people are induced to move forward toward some goal or purpose.''[5] Some writers give behavioural definitions of leadership. ''Leadership'', says Piere, ''is behaviour that effects the behaviour of other people more than their behaviour effects that of the leader''.[6] According to Haiman, ''leadership refers to the process by which an individual directs, guides, influences or controls the thought, feelings, or behaviour of other human beings.''[7]

Though the meaning of the term leadership is different from person to person, yet a study in leadership reveals many dimensions of the process of social change in a traditional society like ours. There is a comprehensive list of leadership types according to different authorities, but our concern is with the politically influential actors at village-level, we may classify them broadly into traditional and non-traditional leaders. The traditional leaders are elders, parents, chiefs, Zamindars, feudals etc. They are usually cast-oriented, status-quo minded and are individual-oriented rather than institution oriented. The non-traditional leaders usually are institutional. In sociological context they perform routine functions of their status alloted to them in society. In political terms, they are democratically elected members of representative institutions. In our study they are newly elected village heads (Gram Pradhans) of village councils (Gram Sabhas) in the month of April-May 1982. This leadership has a socio-economic base with a political tinge.

AREA OF STUDY :-

The Karnprayag development block of Chamoli district, falling in the inner Himalayas, has a total area of 308.3 Sq. Km. and a population of 26494 in which 12468 (46.06%) are males and 14026 (52.94%) females, and 4933 (18.62%) persons are scheduled caste. Percentage of literacy is 40.8. Total numbers of villages is 157 in which 145 are inhabited. Block

is mainly populated with Hindus (98.3%).[8] Though the caste-wise breakup has not been done since 1931 census, yet the present survey finds the approximate percentage of Brahmin, Rajput, and Harijan 40,41 & 19 respectively. Mostly, villages are not connected with roads and are not easilly accessible throughout the year. Socio-cultural environment is designed by remoteness, high altitude, isolation, serene grandeur of mountains, inhopitable temperature, short growing season associated with favourably rain-fed ridges and valleys, animal herding, foreshry and agriculture of hardier crops. The village is viewed as a settlement in which people live whole lives-that is, children take birth, they grow up, never travel far from their birth place and die there.[9] ''Change comes but slowly in the village; individual houses last only some decades, but house types and village patterns persist for centuries .... people follow the same social patterns as their father.[10] As such, the Himalayan system as a whole has had a profouned effect on the socio-cultural institutions of its people, their conditions of life and the resource base on which they depend.

MAIN FINDINGS :-

(TABLE-1)

Age-Group/castes	Brahmins			Rajputs			Harijans			Total		
	W	L	T	W	L	T	W	L	T	W	L	T
Under 35 Years	3	1	4	3	2	5	-	-	-	6	3	9
36-55 Years	2	1	3	9	5	14	-	1	1	11	9	20
Above 56 Years	7	5	12	30	18	48	-	3	3	37	24	61
Total	12	7	19	42	25	67	-	4	4	54	36	90

(TABLE-2)

Ed. level/castes	Brahmins			Rajputs			Harijans			Total		
	W	L	T	W	L	T	W	L	T	W	L	T
Primary	5	3	8	25	15	40	-	3	3	30	21	51
junior H. S.	1	2	3	10	6	16	-	1	1	11	9	20
High School	3	2	5	5	4	9	-	-	-	8	6	14
Above H. S.	3	-	3	2	-	2	-	-	-	5	-	5
Total	12	7	19	42	25	67	-	4	4	54	36	90

(TABLE-3)

Occupation/castes	Brahmins			Rajputs			Harijans			Total		
	W	L	T	W	L	T	W	L	T	W	L	T
Ag. Lab	–	–	–	–	–	–	–	2	2	–	2	2
Land owners	1	–	1	17	4	21	–	–	–	18	4	22
Retd. civil Empl.	1	1	2	2	3	5	–	1	1	3	5	8
Ex-Army Personal	1	–	1	11	15	26	–	1	1	12	16	28
Shop keeper	8	4	12	11	3	14	–	–	–	19	7	26
Contractors	1	2	3	1	–	1	–	–	–	2	2	4
Total	12	7	19	42	25	67	–	4	4	54	36	90

(Abb. :- W=Won; L=Lost; T=Total)

The present study covers all the 54 Gram Sabhas in Karnprayag development block. The total number of candidates was 90 in which 67 (74.44%) were Rajputs, 19(21.11%) were Brahmins and 4(4.44%) were Harijans, Among the 54 candidates who won the elections, 42(77.78%) were Rajputs and 12(22.22%) were Brahmins. No Harijan coul be elected. No woman was even a candidate. (Table-1)

Age group wise, elder age group (above 56 years) was far ahead from the rest two groups. Out of 90 candidates, 61(67.78%) belong to this group while 20(22 22%) to middle age group (36-55 years) and only 9(10%) to younger generation (under 35 years). Among the elected Gram Pradhans, 37(68.52%) were above 56 years of age (Table-1).

Education does not play an important role in deciding the merit of a candidate at local level. 51(56.67%) candidates were educated only upto primary level, 20(22.22%) upto Junior High School, 14(15.56%) upto High School and only 5(5.56%) were above High School level. This trend was also present among the successful candidates (Table.2).

Occupation-wise economically well-to-do class was dominant in the Gram Sabha elections (Table-3).

Thus, the present study show that men are born equal but some are born more equal than others. The present rural leadership is not different from the traditional leadership. Age and caste are still deciding

factors. Economic status has been of greater significance. The Gram Pradhan possesses a parent like image. A greater caste solidarity prevails at village level. In a static society, where ''the authority of the state stops at the village gate'',[11] the rural leadership is predominantly a socio-economic leadership.

REFERENCES

1. Edinger, J. Lewis (Ed.)-Political leadership, in Industrilized societies-Newyork, John willey and Sons 1967, p 25,
2. Downton, V. James, Jr. — Rebel leadership - N. Y., The free press, 1973, p. 4.
3. Ordway Tead — The Art of leadership - N. Y. Mac Graw-Hill, 1956, p. 12,
4. Stogdill, Ralph M — Leadership, Membership and Organisation - Psycholcgical Bulletin, 1950, 47, 4.
5. Weber, C A. & Weber, E. M. — Fundamental and Educational leadership - N. Y. Mac Grow Hill 1955, p. 81.
6. Piere, L. etc — Social Psychology - N Y. Mac Grow Hill, 1942, p. 178.
7. Haiman, S. Franklin — Group leadership and Democratic action - Press Houghton, Mifflin Co , 1950, p.4
8. Census' 1971 (Block level Data of 1981 Census is not available).
9. Smith, R J (Ed) Social Organisation and the application of anthropology - Ithaca, Cornell University Press, 1974, p. 171.
10. Cressey, G B — Land of the 500 Million - N Y Mac Grow Hill, 1955, pp. 16—17.
11. Frestone, C. S. — A. Geographical Social and Economic study of the South East Asian village - Hongkong George Philip, 1971, p. 166.

—(o)—

Jour U. P. Govt. College Acad Soc. 1984-85, Vol 1 P. 81-84
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५ खंड-१, पृ० ८१-८४

THE RIGVEDIC VERSION OF "ARYA"

Dr. RAM LAL MAURYA

Deptt of Sociology, Govt. Postgraduate College, Pithoragarh.

सारांश

[ऋग्वेद इस परिकल्पना का खंडन करता है कि 'आर्य' शब्द से अभिप्राय एक ऐसी जाति से है जो वंशानुक्रम, पराक्रम और मेधा की दृष्टि से अन्य जातियों की अपेक्षा श्रेष्ठ होती है। ऋग्वेद से इस धारणा की पुष्टि भी नहीं होती कि आर्य बाहर से आये थे। उससे यह भी सिद्ध नहीं होता कि आर्य भारत के ही मूल निवासी थे। वास्तव में, ऋग्वेद के अनुसार कुछ विशिष्ट गुणों से संपन्न व्यक्ति ही 'आर्य' संज्ञा का अधिकारी हो सकता है। जैसा ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं से स्पष्ट है कि उत्तम गुणों से युक्त व्यक्ति को दुर्गुणी या गुणहीन दस्युओं और दासों से भिन्न करने के लिए. 'आर्य' पद से विभूषित किया जाता था।]

ABSTRACT

[Rigveda refutes the fanciful tradition of identifying the "Arya" as a human race of superiority of genes, prowess, and intellect, and also, either as ancient invaders, or as the indigenous inhabitants of India. In fact, Rigveda mentions some distinctive qualities that qualify a person as the "Arya". As is evident from various hymns in Rigveda, it designates virtuous ones as the "Arya" with a view to distinguish them from non-virtuous people whom it names Dasyu or Dasa]

There is a fanciful tradition of identifying the "Arya" as a human race genetically superior to all other human races. The "Aryas" are also recognized as an alien people of prowess, as invaders of India having invaded long before the Rigvedic hymns were composed, sometimes near about 3000 B. C.,[1] and, also as conquerrers of the so called Indian aborigins. The so called invaders of India are designated as such to distinguish the "Arya" from those to whom the scholars consider the aboriginal population of India, very explicitly termed as "Dravidas".

However, scholars like Radhakumud Mukerji (as expressed in his Hindu Civilization) considers even the ''Dravidas'' as alien people, and says that they settled here in India even before the Aryans had settled.[2] But in Rigveda itself nothing is mentioned about the immigration of the Aryans.[3] Besides, ''Little is known about the physical type of either the aboriginal population or the conquerring Sumerians. It has been surmised, however that the latter were ''Aryans'' or of 'Indo-European' stock.[4] Even the nation of immigration of so called Aryans is not acceptable. Abinas Chandra Das, though recognizing the ''Arya'' as a human race and considering them as native people living in India from time immemorial, denies the notion of immigration,[5] and writes : ''Their immigration, therefore, from Central Asia, Northern Europe, or the Arctic region becomes improbable.''[6] The supposition that the ''Arya'' were some alien people of superior origin who invaded India or immigrated from elsewhere gets falsified from this fact too, that though, as it is believed, Rigvedic hymns were composed by the Aryans,[7] but, it is surprizing, they themselves (if they were so) did not mention about their superiority of origin, native place, and the so called invasion.

No doubt, invasions, not only in India, but throughout the world occurred throughout the known history of mankind, and many a people of different origin and culture settled even in India. Moreover, every successful invader was regarded superior, and the invaded could have no alternative but to accept the invader's superiority and subordination. But, it does not qualify the invader as a human race of superior origin. This is to say that, generally, the ''Arya'' are cosidered as a human race of superior origin and as invaders of India. Even combination of race, superiority of genes, prowess, and alienity, besides intellect, are taken for granted as the qualification of a people to be called as ''Arya''. But in Rigvedic sense, none of these explanations are acceptable as the qualification of the ''Arya''. And, since the Rigveda is considered as the original source book of the explanation of the notion of ''Arya'', the Rigvedic version of the ''Arya'' cannot be ignored.

Rigveda makes wholly different and pervasive explanation of the ''Arya''. In fact, Rigvedic hymns mention some distinctive qualities that qualify a person as ''Arya''.

The Rigvedic hymns categorize all the human beings into two exclusive classes of (i) Arya, and (ii) Dasa[8] (Or Arya and Dasyu)[9]

the basis of their nature, temperaments, dispositions, actions, deeds, character, etc. But none of the Rigvedic hymns introduces the ''Arya'' either as a race, or as a people of superior origin, or as a people of prowess, or as an alien people, or as an invader. Even, none of the Rigvedic hymns introduces Dasa or Dasyu either as a race, or as a people of inferior origin, or as a people lacking in prowess, or as a native people, or as aboriginal population of India, or as ''Dravidas'' as is generally presumed. This is to say that one can hardly find in Rigveda any mention of race, genetic superiority, prowess, alienity, etc. as the qualification of a people to be recognized as ''Arya''. In fact, Rigveda intends to distinguish the good people calling them as ''Arya'' from the bad people calling them as ''Dasa'' or ''Dasyu''. There are a number of hymns in Rigveda, which name as ''Arya'' the people who are virtuous, submissive, gentle, lenient, dutiful, etc.[10] Contrary to it, Rigveda introduces those people as ''Dasa'' or ''Dasyu'', who are lawless, hostile, devoid of humanity, mischievous, obnoxious, wretched, nasty, lier, dishonest, vicious, wrongdoers, wicked, malicious, violent, deceitful, nefarious, robber etc.[11] Moreover, a hymn says that Dasa were trained as Arya,[12] by which it may be inferred that no person by birth is either Arya or Dasa or Dasyu. Evidently, Rigveda categories all human beings into two classes on the basis of goodness and badness of their nature, deeds, and attitudes and designates virtuous ones as ''Arya.''

Conclusively, ''Arya'' is not any race considered genetically superior or any alien people having invaded and settled in India. Instead, ''Arya'' is a person who is virtuous by heart, word, and action.

REFERENCES

1. H. E. Barnes and H. Becker, 'Social Thought From Lore To Science," D. G. Heath and Company, Boston, New York, Chicago, London, 1930, p 71.
2. Basudeo Sharan Agarwal (Trans.), "Hindu Sabhyata" (in Hindi), IIIrd Edition, Rajkamal Prakashan Private Limited, Delhi, 1965 p 56.
   See, also, J. Talboys Wheeler, "India—Vedic and Post-Vadic," First Edition, Susil Gupta (India) Limited, Calcutta, 1952, p. 9
3. Basudeo Sharan Agarwal (Trans) "Hindu Sabhyata" (in Hindi), IIIrd Edition, Rajkamal Prakashan Private Limited, Delhi, 1965, p 86
4. H.E Barnes and H Becker, "Social Thought From Lore to Science," D. C. Heath and Company, Boston; New York, Chicago, London, 1930, p 84
5. Abinas Chandra Das, "Rigvedic India." IInd Edition, R Cambray & Co., 15-College Square, Calcutta, 1927, p, 1

6- Ibid.

7- Ralph T. H. Griffith, "The Hymns of the Rigveda, Third Edition, (in Two volumes), E. J. Lazarus & Co., Benares 1920, p. v.

8- Rigveda, V.34,6; VI,18,3; VI.25,2; VI 23.10; VI.33,3; VI.60,6; VII 83 1; VII,86 7; VII 24 27; VII.51 X.38.3; X.69.6; X.83 1; X.86 19; X 102,3; X.138.3; etc.
See also, Ralph. T. H Grifith's (The Hymns of the Rigveda, 1926) and Sayana's commentaries the related hymns

9- Ibid. I 51 8; I 117 21; II 11.18; II 11.19; III.34 9; VI 18 3; VII 5,6, etc.

10- Ibid I.104 2; II 11 8; VI 18.3; IX.41.2; X 86 19; etc.

11- Ibid. I.33.9; I.51.8; I.53.6; II.11.10; II 20 6; IV.28.4; VI 18.3; VII.6.3; VII.104.2; VII.104 VII.104.4; VII.104.7; VII.104 8; VII 104.9; IX.41.2; X.22.8; X.38.3, etc.

12- Ibid, VI.23.10.

— (०) —

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1984-85, Vol 1 P. 85-89
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५ खंड-१, पृ० ८५-८९

GEOMORPHOLOGICAL APPRAISAL OF MEANDER PROPERTIES OF KHARKAI RIVER AND ITS SELECTED TRIBUTARIES (BIHAR AND ORISSA)

Dr. SHIV RAJ SINGH

Deptt. of Geogarphy Govt. Raza Postgraduate College, Rampur.

सारांश

[जलीय आकारमिति का महत्वपूर्ण अंग, विषर्पण वैशिष्ट्य खरकई प्रवाह वेसिन के विकास की दशाओं को समझने के लिए सहायक रहा है जिसमें विषर्पण की लम्बाई, ऊँचाई एवं आकृति-अनुपात के उच्च मूल्यों को प्रदर्शित करने वाली केन्द्रवर्ती निम्न प्रदेश और पश्चिमी पठार की नदियां प्रदेश को यत्र-तत्र विखरे कुछ प्रतिरोधक ग्रेनाइट नोस के कोर-प्रस्तर और घनाभव्लाक के अलावा अन्य स्थलाकृतिक उच्चावच्च से रहित एक समप्राय मैदान में परिवर्तित कर जलीय कारकों द्वारा अधिकृत की जाती हैं जबकि उच्च भागों में निम्नवर्ती अपरदन से प्रभूत गहरे गाँर्ज और तीव्र घाटी-पार्श्व ढाल बेसिन विकास की उत्तर युवावस्था एवं पूर्व प्रौढ़ावस्था के अभिसूचक हैं।]

ABSTRACT

[Meander preperties, the important components of fluvial morphometry, have been helpful to assess the stages of Kharkai drainage basin development wherein the streams of central lowland region and western plateau depicting higher values of meander length, height and form ratio are dominated by hydrological factors converting the region into a pene-plain which consistently lacks topographic undulations except a few resistent granito-gneisssic core-stones and Cuboidal blocks in patches whereas deep gorges and steep valley-side slopes caused by gullying erosion in the upper reaches indicate late youth to premature stage of the basin development.]

PROLOGUE :

Meander properties, the significant morphometric tools, are helpful in determining the stages of basin develoment under regional planning and the magnitude of the factors involved in patternising the sinuous course where tortuous and irregular channels with more symmetric Crenulations indicate advancing terrain develoment in which topographic controls lose their impact and the hydrological factors become most pronounced converting the region into a peneplain. The high degree of meander length, height and form ratio is the characteristic of meander properties which are applied to a sinuous stream having one or a series of symmetrical arcs along its course.

PHYSICAL SETTING OF KHARKAI BASIN :

Kharkai river, a right bank afluent of Subarnarekha, originates from simlipal upland of Orissa highlands and swiftly flows towards north annexing 32.60% of its catchment area from Mayurbhanj (Orissa) and remaining 67.40% from Singhbhum district (Bihar). The river merges with its master stream at Sonari town, a constituent part of Jamshedpur where the meeting point is popularly know as ''river meet'' or ''Do Muhani''. Astronomically the basin extends from 22°N to 22° 56′ 20″N latitudes and 85° 18′ 30″E to 86° 25′ 30″E longitudes and is characterised by Dalma range, eroded escarpment, exfoliated dome-like topography, core-stones of granito-gneissic structures and arkasani granophyres and plateaux covered with dense vegetative cloak which have either impeded or enhanced the symmetry of meandering course of Kharkai and its small tributaries.

METHODOLOGY :

The shapes of meander courses interms of meander height and length inorder to study the different ratio of symmetry of meanders of Kharkai and its eleven small basins selected from five physiographic regions (1-The north-western highlands-Toyargara and Bamni; 2- The central lowland region-Bhangbanga; 3-The western plateau-Torlo ane Surnialor; 4-Eastern escarpment-Barhai, Jirai and Kandria; 5-Simlipal upland-Deo, Kanu and Chheria rivers have been calculated on the basis of models** applied for the explanation of meandering and sinuous course of the river.

THE APPLICATION :

Following Brice's models meandering properties comprising meander length, meander height, form ratio and repetition of symmetry have been measured and calculated (table-1) which denote that the rivers of central low land, simlipal upland and western plateau viz. Bhangbanga, Kanu and Torlo record high values of symmetry of meander length (52.21%, 42.15% and 55.60% respectively), meander height (56.25%, 41.15% and 58.12% respectively). These aforesaid values of the meanders exhibit that the rivers are passing through the senile stage of valley development and the region over which they flow is in its penultimate stage.

Brice**

(1) Symmetry of (arc) meander length $= 100 \dfrac{100(\text{Mean deviation of arc-length})\%}{\text{Mean arc length}}$

(ii) Symmetry of (arc) meander height $= 100 \dfrac{100(\text{mean deviation of arc height})\%}{\text{mean arc height}}$

(iii) Symmetry of Form ratio $= 100 \dfrac{100(\text{mean deviation of F. R.})\%}{\text{mean form ratio}}$

Where form ratio $= \dfrac{\text{arc length}}{\text{arc height}}$

(iv) Repetition of Symmetry $= Na \times 100/\sum Na$

Where Na = % of number of arcs whose length does not deviate more than 25% from the average length of the meanders.

$\sum Na$ = Total number of meanders.

Generally, the rivers which have these values above 50% are termed as meandering rivers but the case of central lowland, dissected simlipal upland and western dissected plateru (Torlo river) is some what different as the region is a peneplain yet the granito-gneissic structure, 'burus' 'tors' and 'dungris' (Ukamburu, Churia 'hull' Date dungri and Satbhaiya dungri) have restricted the development of full size of meanders. The rivers of north-western highlands and north-eastern part of simlipal upland present different conditions by experiencing low percentage of symmetry of meander length (Bamni 27.19%; Toyargara=37.23% and Cheria 30.14%) which show that the nature of terrain and lithological characters of rocks (Dalma lava, basic igneous rocks and granitic batholiths) have impeded the expected size of sinuous course consequently minimising the degree of symmetry of meanders.

TABLE-1

Sl.No.	Rivers	Symmetry of meander length %	Symmetry of meander height%	Symmetry of form ratio%	Repetition of symmetry %
1.	Barhai	36.16	35.26	35.14	20.38
2.	Jirai	34.35	30.15	36.35	32.34
3.	Chkeria	30.14	35.13	36.15	18.70
4.	Kandria	38.34	36.15	37.24	20.58
5.	Deo	38.21	37.33	38.70	22.54
6.	Bhangbanga	52.21	56.25	53.21	41.20
7.	Kanu	42.15	48.32	41.15	34.36
8.	Torlo	55.60	57.50	58.12	42.16
9.	Surnialor	41.13	37.17	42.35	56.50
10.	Toyargara	37.23	34.23	36.25	21.15
11.	Bamni	27.19	22.16	22.24	19.60
12.	Kharkai	45.16	42.15	36.21	30.14

The basins of Barhai, Jirai, Kandria and Surnialor register mode-rate percentages of symmetry of meander length (36.16%, 34.35%, 38.34 and 41.13% respectively) which indicate their mature stage of basin development. The presence of 'burus' and parallel residual hills locally known as 'dugris' and 'hulls' (Morohi dungri, Dongra buru, Sadar 'hull' and Baghmuripahar), in the upper reaches of these basins, have restricted the meandering shapes whereas in their lower parts these rivers, when entering the Central lowland at the confluence of Kharkai have more meandering courses. Bhangbanga might have recorded more per-centage than depicted in the present table but the resistant granito-gneissic residuals near Hatha town and Halidipokhar village have inter-vened the sinuous flowage causing lesser meandering length. The value of repetition of symmetry of all tributaries vary from 18.70% (Chheria) to 56.50% (Surnialor).

Kharkai river registers moderate values of symmetry of meander length, height and form ratio (45.16%; 42.15% & 36.21% respectively) which indicate the mature stage of basin development but the resistant geological structure in the upper reaches of the river (Badam pahar, Singhasan buru Iiljat buru, Daujat buru, Rangavi pahar, Bamni pahar, Badi pahar and above all the major joints of central geo-anticline) have been the dominant controlling factors of meandering properties. The river assumes more sinuous course in the central lowland region near Nengtasi

village where Sanjai, its longest tributary, merges in Kharkai. Repetition of symmetry (30.14%) indicated in the present table, consistently reveals the facts about late mature stage of basin development and the same is validated by other morphometric attributes as moderate stream frequency, gentle slope, moderate relative relief and moderately high dissection index covering 84.04%, 80.54%, 63.38% & 83.50% of total areal expansion in their respective categories.

EPILOGUE :

It is axiomatic to deduce that the higher values of meander properties of rivers of central lowland region and western plateau indicate the absolute consumption of topographic undulations giving the region apenultimate stage whereas the lower values project the late youth to primature stage in which gullying erosion and valley widening are fairly descernible but the impacts of resistant lithologies and vegetal cover in restraining the meandering course in the upper reaches can not be ignored.

REFERENCES

1- Brice; J. C 1964 : Channel patterns and terraces of the Rivers in Nebraska. U S Geol. Surv. Pr fessional Paper 422D

2- Muller, J. E. 1968 An introduction to hydraulic and topographic sinuousity index. Adn. Assoc. Amer. Geogr Vol 58, No 2PP. 371-385.

—(०)—

Jour. U. P. Govt College Acad Soc. 1984-85 Vol 1 P. 90-94

उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५ खंड-१, पृ० ९०-९४

COMMERCIAL LAND RENT VALUES WITH SPECIAL REFERENCE TO CENTRAL COMPLEX REGION OF RISHIKESH.

Dr A. C. Tripathi & Dr. Gulab Shankar Lal

Govt. P. G. College, Rishikesh

सारांश

[सामान्यता निम्न श्रेणी के व्यावसायिक केन्द्रों की तुलना में उच्च श्रेणी के केन्द्रों की जमीन की कीमत, किराया एवं पेशगी (पगड़ी) रकम अधिक होती है। भूमि मूल्य किराया एवं पेशगी की दरें केन्द्रीय व्यापारिक क्षेत्र से सीमान्त की ओर कम होती है। भूमि मूल्य किराया एव पेशगी की विषमता का नगर के व्यावसायिक क्रियाओं एवं संरचना से घनिष्ठ सम्वन्ध होता है।]

ABSTRACT

[The higher order centres indicate higher rates of rent, land value and premium against the lower order commercial centres in general. There is a marked decrease in rent value and premium from the centrality of market at higher level of hierarchy away towards the marginality. The complexity of rent- Land and premium is closely related to the texture and commercial activities in the town]

INTRODUCTION :

The area under study is located on the right side of the holy Ganges in the foot hill of the Himalaya towards the East Doon Valley in Dehradun district. Rishikesh extends along 78° 19′ East longitude and 30° 17′ North latitude. The reporting area of Rishikesh town is 2.59 Sq.km. (Based on Distt. census Hand Book 1971) and 8.66 Sq.km. (The area of wards 1981 calculated by planimeter) and the population in 1971 and 1981 is 17,646 and 28,897 respectively.

Rishikesh town is on both sides of road known as Hardwar-Laxman Jhula Road- (D.G.B.R.). On the left side is the Ganges and on the north is the forest range. Rishikesh is a religious centre and is designated as the ''Gateway of the Himalaya''. The city opens route to Badrinath, Kedarnath, Gangotri and Yamunotri. The study area has the sites like Geeta Bhawan, Swarg Ashram on one hand while on the northern side is the Barkot range and in the south is the I.D.P.L. The size of area under study is somewhat rectangular with projections in the north and the west, on the eastern and the southern side are limited by natural barriers. As regards the shape of the area, it is hexagonal with nucleations in the east and the south. The length of Rishikesh from east to west is 4.95 km. and from north to south is 3.71 km.

GENERAL PATTERAN OF LAND VALUES :

The pattern of land values in the city differs from one place to another because of various characteristics like location, situation site, approach, consuming area, transport and prospects of the area. Consequently, it is observed that the highest land value is in south-east section and the lowest is in the north-west section, and that is why urbanization is developing in the north and north-west sections because of cheap land value in general. The land value is the highest in the central area but decreases away from the centrality towards the point of marginality. Consequent upon the dispersal nature of population distribution. This broad difference in land values is due to the presence of administrative, educational, medical and other commercial units in the central part of the city, where there is a little space for future development. Residential colonies are fast developing in the north and north-west section. This demand will naturally increases. The residential land value in these parts will increase in the future.

RELATIONSHIP BETWEEN LAND VALUE OF COMMERCIAL AND NON COMMERCIAL AREAS:

The great difference in land value of commercial belt with road fronts and land just behind them in adjoining areas is another feature which reveals the relationship between the land value of two types of areas. The land used for shops, godown or residence in the same locality and the road frontage are very costly because of the approach of service facilities while the land under noncommercial use is generally cheaper. It is expected that in the central commercial area of Rishikesh, the land value of non-commercial use will increase in future due to space-limitation.

The land value further increases in the commercial areas of high order functions against the low order functions as observed by the author. The rental value of shops and godowns is also increasing day by day because of complex functions and congestion in the central part of the city. The higher order of retail nucleations record more rent than the lower order centres due to high degree of competition and shortage of space in the former.

There is a common practice of cheese paring economics for commercial space in the city specially in higher order and retail centres. Pagri, Salami and advance premium is paid to the land lord at the time of handing over the shop to the shop-keepers, such amount is not refundable and no receipt is given but the shop-keepers arrange to get the money back with profit from another shop-keepers at the time of vacating the shop. The land value and premium increases with the hierarchy of commercial centres.

LAND VALUES, RENT AND PREMIUM OF SHOPS :

Land value in the different markets ranges between Rs. 95 to 114 per s. ft. where-in the land value is higher for the road frontage and for the back. The average land value for the market in the city is Rs. 94.22 per Sq. yd. However, exceptions exist in the city regarding land value according to the situation and site of the shops. Generally nodal points and centrally located shops have costly land values than others. There is no positive correlation with the rent and premium. The rent is governed by the area and the size of shops, while premium rates are determined by urgency and utility of the shop. Land values, rent and premium of the shops by level of the shops go a long way in characterising the shopping pattern and intra-urban market geography of Rishikesh.

ANALYSIS OF CENTRAL COMPLEX REGION AND CONCLUSION :

The central level complex comprises 5 main markets as nucleus commercial area of the city, chiefly engaged in dealing of cloth, grains, jwellary, tailoring and general merchandise, etc. The area is densely settled and the markets have compact nature and character degenerating into a large scheme. In this complex, the rent average is Rs. 1.43 per sq. ft. but ranges between Rs. 0.90 to 1.80 per sq. ft. for all types of

the market considered together. The premium figure ranges from Rs. 85 to Rs. 250 per sq. ft. for all categories of shops as evidenced in table :

TABLE-1

Average rent, land and premium values of sample places in central complex region, Rishikesh Figure in rupees)

Location of sample point	Average rent of shops per sq. ft.	Average premium of shops per sq. ft.	Average rent of godown per sq. ft.	Average land value in front per sq. ft.	Average land value at the back per sq. yd.
Ghat road	1.15	90	0.70	120	100
L. J. Road	1.75	100	0.85	150	120
Kshetra road	1.80	250	0.95	200	135
Chandreshwar Mandir road	1.55	105	0.50	175	80
L. R. Road	0.90	85	0.55	160	95
Total	7.15	630	3.55	805	530

Source : Field work, 1982

The above table reveals the range of rent from Rs. 1.15 per sq. ft. for all categories along Ghat road, Rs. 1.75 per sq. ft. for all categories along L. J. Road, Rs. 1.80 per sq. ft. for all categories along Kshetra road, Rs. 1.55 per sp.ft. for all categories along chandrashwar Mandir road and Rs. 0.90 per sq. ft. for all categories of shops along L. R. road and the premium rates are Rs. 90 per sq. ft. in Ghat road, Rs. 100 per sq. ft. in L.J. Road, Rs. 250 per sq. ft. in kshetra road, Rs. 105 per sq. ft. in Chandrashwar Mandir road and Rs. 85 per sq. ft. in L. R. road. The heighest rent is Rs. 1.80 per sq. ft. in Kshetra road market, while the lowest is Rs. 0.90 per sq. ft. in L. R. road market, while the highest premium rates are Rs. 250 per sq. ft. in kshetra road and lowest is Rs. 80 per sq.ft. in Lajpat Rai road. Other markets have moderate rent and premium. The peak rental value and the premium are greatly concerned with retail nucleations and the areas of heavy commercial activities in the centrality of central complex, but decreases towards peripheral zone rather towards points of marginality. It is also observed that the rent of godowns is about half of the rent of the shops because the later is in the front portions and the former ones are in the back and consequently, the value of the land is variable. It is

also observed that the central complex region has limited space almost reaching the saturation. The commercial activities which would tend to the higher rates of rent and the premium both. In future, the existing range map diminish largely because of complex structure of the market. The situation is entirely different in other commercial regions of the city.

Conclusively speaking, from the analysis of various markets of the city, it is inferred that the rent, land and premium value tend to increase with the level of hierarchy of commercial centres as indicated in table :

TABLE-2

Average rent, land and premium value of commercial centres of Rishikesh

(Figures in rupees)

Level of commercial centres	Average rent of shops per sq. ft.	Average premium of shops per sq. ft.	Average rent of godown per sq. ft.	Average Land value in front per sq. yd.	Average land value at back per sq. yd.
Central complex land	1.43	126	0.71	161	106
Neighbourhood level	0.95	105	0.55	110	105
Community level	0.88	75	0.53	92	80
Other level	0.90	85	0.55	95	75

Source : Field work, 1982

Table reveals the average rent of shops and godowns, premium of shops and land values at different level of hierarchy. The central complex level is characterised by the highest average rent of shops (Rs. 1.43 per sq. ft.) and the premium of shops (Rs. 126 per sq. ft.) and the land value (Rs. 161 per sq. yd.)and the average land value for back portion (Rs. 106 per sp. yd.).

To sum up, the higher order centres indicate higher rates of rent, land value and premium against the lower order commercial centres but with a minute variation. There is a marked decrease in rent value and the premium from the centrality of the market at higher level of hierarchy away towards the point of marginality. The complexity of rent, land and premium is closely related to the texture and complexity of commercial activities in the town.

—:o:—

Jour. U. P. Govt. College Acad Soc. 1984-85, Vol 1 P. 95-101
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५ खंड-१, पृ० ९५-१०१

PRESENT POSITION AND FUTURE PROSPECTS OF CUSTOMER SERVICE IN BANKS

G. R. Yadav, Lecturer in Commerce

Govt. P. G College, Pithoragarh

सारांश

[प्रस्तुत शोध-पत्र में बैंकों के विकास में ग्राहक सेवा के योगदान की समीक्षा की गई है। बैंकों में ग्राहक सेवा की वर्तमान स्थिति तथा उनकी खराब सेवा के कारणों का आलोचनात्मक परीक्षण किया गया है, साथ ही 'तलवार समिति' के सुझावों के प्रकाश में कुछ सुझाव भी दिये गये हैं।]

ABSTRACT

[In the present paper review of customer service in development of banking has been throughly made The present position of customer service and reasons for its poor service have been critically examined, Mcreover remedies of poor service in the light of 'Talwar Committee' has also been suggested.]

Customer service in banks means satisfying the needs of Customers at the right time and in a right manner. A service institution can survive and prosper if it can render service acceptable to its customers. Banks are essentially social organisations rendering financial services to sub-serve the socio-economic objectives of the society. It is important to recognise that the social purpose of banks is not peripheral but vital to the banks themselves, and in a way, the very reason for their existance. The customers want personalised service and attention. The banks are expected to give top most priority in providing satisfactory and efficient service to their customers. Their success depends largely on the range and quality of service offered to their customers. As the customers are first introduced at bank counters, the treatment meted out to them at the counters matters most in building up the image of the bank.

The man behind the counter has immense potentialities to promote and maintain customers' satisfaction.

THE ROLE OF CUSTOMER SERVICE IN THE DEVELOPMENT OF BANKING

To relate the roll of customer service in the development of banking, it can be said that ''Customer service is the pivot around which the whole banking industries cluster''. Yet it is useful to reflect as to who the Indian banking is meant to serve. ''One instance : banks in India are open to the public 22 hours a week, banks in London are open 27½ hours, Frankfurt 30, Stockhome 35, Newyork 40, and Zurich 42¾ hours. Not time alone, even the content of banking, largest of banks have sought to reach the smallest man is a myriad ways, and have transformed banking into an easy on human psychology. Banking has become the very core of the emergence from the 'economy of goods' to 'knowledge economy'.[1] Even after passing a time of 15 years the situation in India is the same as in 1969, as the working hours even today are only 22 hours a week (4 hours w.e.f. 10 A.M. to 2 P.M. per day and on Saturday 2 hours w.e.f. 10 A.M. to 12 Noon). The immortal truth is that banks are fully dependent on customers since they play a dual role of contributing to their business by way of depositing and other support and at the same time availing the variety of services offered. This phenomenon is unique to banks unlike many other services and manufacturing industries to whose sustenance and growth the customers may not contribute directly by funds but by only availing the services offered or buying the products. The working group on customer service headed by Sri R. K. Talwar appointed by the Govt. of India, expressed its views in the interim report, ''Banking is nothing if not a service. Banks are business organisations selling bank services. It is necessary for banks to continously assess and reasses to customers perceive bank services, what are the new and emerging customer expectations and how these can be satisfied on an ongoing basis''.[2] In March 1975 the Govt. of India appointed a working group to study the problems of customers service who submitted its final report in March 1977. The working group in its report has given the following slogans about the customer from the angle of the banker :

''A customer is the most important visitor on our premises.
He is not dependent on us.
We are dependent on him.
He is not an interuption on our work.
He is the purpose of it.
He is not an outsider on our business.

He is a part of it.
We are not doing him a favour by serving him.
He is doing us a favour giving us an opportunity to do so''.[3]

Thus it can be said that role of customer in the development of banking is very important. Existance of banking industry is associated with customers.

PRESENT POSITION

Presently the general impression of the community at large about the services rendered by the banking industry as a whole is not satisfactory. There is wide spread criticism about the way services are dispensed at the counters, the unhelpful attitude of the employee and lack of commitment to the development of the institution. The general tendency on the part of the employee is to brush aside the criticism of customers and make a comparision of the customer service of banks that of other public sector institutions like Railway, Post-Office, Treasury etc. Such comparision is self-defeating and precludes the bankers from taking corrective actions to enhance their image and growth prospects.

Prior to 1969 the situation was not as today. At that time bankers were operating in a sellers' market and their objective was business, pure and simple, based on demand-supply factors. Credit was scarce, investment avenues were few and customers many. But after nationalisation of 14 major commercial banks in 1969, the position has radically changed. Their social responsibilities have increased. For balanced development of the economy they were insisted to open branches in rural areas. Their progress regarding deposits/advances and branch expension etc. can be observed in the following table :-

PARTICULARS	JUNE 1969	JUNE 1983
No. of Commercial Banks	89	226
No. of bank offices in India	8262	42016
Deposits (Rs. in crores)	4646	53566
Advances (Rs. in crores)	3599	35929
No. of bank employees	2,20,000 (Dec. 1969)	5,94,197 (Dec. 1980)
Per Capita deposits (Rs.)	96%	723* (a)
Population per branch office	65,000	16,000

NOTE— (a) Date relates to last friday of the year.
Source :(i) SBI monthly Review Jan. 1984 P 4.
(ii) *Commerce Weekly Vol. 147 No. 3765 Bombay, July 30, 19[illegible]
(Banking supplement 1983) P 39.

The above table shows that banks' position is now very sound. There appears a rapid growth in deposits, advances, per capita deposits and branch expansion. But against these, the actual position regarding customers service offered by banks is poor. If one goes to bankers to talk about the customers service, their responses in this regard will be quite vigours, but on the other side the opinion of customers will be disappointing regarding customer service in banks. The government of India appointed Talwar Committee to suggest improvement in the customer service in banks, which gave its interim report in 1975. The recommendations given by the committee were promptly accepted by the government and instructions were issued for their speedy implementation, yet the situaiton is not good enough.

REASONS FOR POOR CUSTOMER SERVICE :

The reasons for poor customer service are as under :-

1. Attitudes of Staff impingics as most siginificantly on the service rendered and here banks have not been able to orient their employees to the desired extent. Today's situation is that the employee's attitudes in banks continue to be generally unhelpful in regard to improving customer service.

2. The employees mostly are not punctual in their duties. They devote only 50-60% of the working hours on the counter.

3. They also do partial behavior with the customers regarding transactions.

4. In most of the branches, customers have to wait for a long for encashing of cheque or withdrawl of small amounts from their Savings Bank Accounts. If a customer is required to wait for a long time, he may as well avoid depositing his Savings with banks.

5. Many customers express their views that their pass books/statements of accounts are not furnished and when furnished, are not neat and legible.

6. Each customer wants that secracy of his accounts should not be disclosed to outsiders by the bank, while there are maximum number of chances, when customers find leakage of information relating to their account.

7. There is lack of knowledge of a customer and in turn the customers' lack of knowledge about the bankers. Very few bankers and bank employees know their customers well.

8. As profitability is not among banks' objectives, the bank employees do not pay the least attention toward customers.

9. When someone wants to transfer one's account from one place to another, banks take too much time for transfering the account.

10. Central/Head Offices of each bank send gifts to the branches for customers for mobilising deposits but bank employees do not distribute them among customers. Either they themselves use them or distribute them among their relatives and friends.

11. Lack of co-ordination among officers, clerks and Class Fourth employees also found.

12. There is lack of uniformity in bank charges. Some of these are also perceived by customers to be high.

13. Customers have to wait for a long time to get counterfoil of pay-in-slip after depositing their money.

Besides above reasons there are many other reasons responsible for poor customer service, such as delay in collection of out station cheques, lack of counselling, delay and inadequacies in correspondence etc.

REMEDIES :

''No amount of new technology, improvement in systems and procedures, delegation of authority and power, introduction of mechanical and electronic aids will help create feeling of satisfaction to customers unless people behind the counters everywhere consider that they are there to serve the customer. Their very purpose is to fulfill the customers' needs in so for as it relates to his transactions with bankers and they are duty bound to serve him.''[4] As earlier has been said, a working group was appointed by the Govt. under the Chairmanship of Sri R.K. Talwar in March 1975 to study the problems of customers service, who

submitted the final report in March 1977. The group has given 17[illegible] recommendations for improving customer service in banks. The Government has accepted a few of them. However a few suggestions in this regard may be given as under :

1. Customer contract programme should be arranged at the branches.
2. Teller system should be introduced effectively in the branches where it is needed.
3. Evening and morning counters should be started in city and town branches.
4. Some working hours should also be fixed for Sunday and other gazetted holidays.
5. Customer service committee should be constituted in all major branches with a view to periodical meetings with different groups of customers for appreciating their difficulties and improving customer service.
6. The bankers should provide free remittance facility (mail transfer, Telegraphic transfer and issue of draft) to their customers. They should also cellect customers' outstation Cheques free of charge.
7. The bank employees should be given a good training to deal with customer.
8. Customer service compaign should be started in the bank branches.
9. Bank employees need to be better motivated for bringing about improvement in customers service.
10. The bank employees should know the customers very well and try to come close with them.
11. There should be good co-ordination among bank employees.
12. The man behind the counter should be impowered to sign the customer foil of pay-in-slip and return to depositer.

In view of the above mentioned reasons for poor customer service of the banks and suggestions thereon, it can be concluded that the prospects of the banks depend on the improvement of their service. The people will not like to deposit with the banks, if they don't take interest to improve

their service. Therefore banks should implement the above suggestions in practice, only then their future prospects will be bright.

REFERENCES

1. Customer Service National Institute of Bank Management Bombay (1969) P 4.
2. Interim Report of the working group on customer service in banks : SBI Mly Review (Dec. 1975) P 433.
3. Customer Service in bank-final Report of working group : Indian Bank Association, Bombay (1977) P vii
4. Acharya, K. R.; Customer Service : Is it really deteriorating ?
   Shreyas : Canara Bank, Bangolor (March-April 1984) P 23.

—(०)—

Jour. U.P. Govt. College Acad Soc. 1984-85, Vol. 1 P. 102-108
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसायटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१ पृ० १०२-१०८

INNOVATIVE BANKING & THE COMMON MAN

Dr. Mohd. Sayeed

R. H. Govt. P. G. College, Kashipur.

सारांश

[प्रस्तुत शोधपत्र में आधुनिक बैंकिंग के अपरम्परागत कार्यों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। इसमें बढ़ती हुई जनसंख्या और सामान्य जन की सेवा के लिए चलाई गई विविध नूतन योजनाओं के कार्यकलाप और उपलब्धियों का विश्लेषण किया गया है। सार्वजनिक क्षेत्र की बेंकें निस्संदेह सामान्य जन के द्वार पर पहुंची हैं, फिर भी उनकी कार्यपद्धति में सुधार की आवश्यकता है और यह भी आवश्यक है कि उन्हें राजनीतिक हस्तक्षेप से दूर रखा जाय।]

ABSTRACT

[The present article attempts to highlight the non-tradional functions of modern banking. It analyses the working and the achievements of various innovative schemes meant for serving the teeming population and the common man. Public Sector banks have, no doubt reached the doors of the common man, yet their working needs to be improved and kept free from political interferences.]

Banking in India has gone through a series of crises. Ultimately the Govt. had nationalise major commercial banks in 1969. Since the nationalisation of these banks, the weaker sections of commumity i. e. Small & marginal farmers, Small industrialists, retailers, road & water transport operators, students and educated unemployed have started receiving due attention from the Commercial banks. Public sector banks, in fact, redefined their functions. From merely acceptance of deposit & loaning of funds, banks took up development-oriented and need-based financing. They shifted from the age-old conservative policies to modern banking practices, with emphasis on regional development and supervised credit planning which brought dynamism and innovation in their working.

Innovative banking, in plain words, includes all those acts under which improved techniques, new methods and novel schemes are applied in banks particularly in mobilisation of deposits, development of credit, rendering various services and managing the affairs of the organisation. During his study on the State Bank of India, Mr. O. P. Mathur observed, 'the State Bank of India has recently initiated measures to (a) bring to bear social orientation on the part of bank employees in operating situation (b) encourage the staff and develop operating units as 'Local' institutions and (c persuade and support the employees for greater political involvement in community affairs. These activities have been termed as 'Innovative Banking'.

Innovative banking encompasses all spheres of banking segments, e. g. deposits, credits, customer service and personnel management. From the State Bank's Innovative Banking, news Bulletin published half-yearly, it can be easily understood that the bank is growing as a service organisation. Besides advancing loans to hitherto neglected persons of society such as tribals, Harijans, prisoners, handicapped, slum dwellers. Bank is organising blood-donation camps, Students competitions, plantation camps, Medical check-up camps, accident relief camps & Sports Competitions. Similarly, new schemes have been developed in regard to deposits and credits. Some of these novel schemes are discussed here :

DEPOSITS SCHEMES :

1. Gold Cheque System

The State Bank of India has recently introduced this scheme. In the system bank issues special cheque book containing last two leaves as Gold cheques. These cheques can be encashed at any branch of the State Bank without collection charges or introduction. The facility is extended to those depositors who maintain an average balance of Rs. 1000/- in case of Saving Bank Account Rs. 2000/- in case of a current account. It means, through this scheme, more funds will be available with the bank.

2. Travellers Cheques

On the deposit of required amount these cheques are issued by bank. The depositor makes One signature before the issuing person and takes the cheques with him. These cheques can be encashed at any bank throughout the country. At the time of encashment another signature is put at the space provided for on the cheque. Travellers cheques are very commonly used by tourists.

3. Education Deposit Plan

The plan is based on the fact that during the initial stage of education, the expenditure on education is nominal but at advance stage it goes very high. Under this scheme, the depositor has to deposit a particular amount every month upto a certain period generally for ten years. When the ward of the depositor takes admission in higher classes, the amount deposited earlier alongwith interest is received back in monthly instalments. The plan facilitates depositors to provide expensive education to their children.

4. Perennial Pension Plan

In the plan the depositor has to deposit a certain monthly amount for a certain period after which he receives monthly instalment. For example after depositing Rs. 100/- per month for 120 months, depositor gets Rs. 197.50 per month from next month onwards. Monthly income plan is also similar to this plan. In this plan, depositor has to deposit money in lump sum and interest is payable monthly or quarterly or as per depositor's will.

5. Retirement Scheme

The Salaried persons when retire get a handsome amount of provident fund, gratuity and insurance etc. The Scheme is to mobilise the amount and in return monthly interest is paid to the depositors.

6. Akshaya Nidhi Scheme

This scheme has heen launched by the Bank of Baroda. Under this Scheme the depositor has a choice of deciding the quantum of income he could receive every month unlike in the existing monthly income plans. On maturity, the depositor will get back the balance of his principal amount. A similar scheme has been introduced by the Canara Bank as 'Kamdhenu Deposit'.

7. Pygmy Deposit Scheme

This Scheme has been started by Syndicate Bank. Staff of the Bank collects money from depositors at their doors. The scheme has gained popularity due to dimplicity and easy operation.

Besides these, many other Schemes and plans are in operation with more or less the same rules and regulations.

NOVEL SCHEME FOR CREDITS

1. Education loan Scheme

Banks are giving loans for higher education to students of Engineering, Technology, Architecture, Medical, Agriculture and Business Management. Students studying in India as well as in foreign institutions are eligible under this scheme.

2. Credit Facilities to SC/ST

As per the instructions given by the State Bank of India in April 1981, banks evolved many bankable Schemes suited for Scheduled Castes, Scheduled tribes, adivasis and other weaker sections of the society.

3. Housing Finance

Under this Scheme banks finance housing projects of individual and Societies. Projects of State Sponsored societies are also financed on concessional rates.

4. Schemes for Physically Handicapped Person

Public Sector commercial banks are providing credit facilities to physically handicapped persons through financing their self-employed ventures.

5. Cash Card/Credit Card

It is a new innovation in Indian Banking. Some banks issue cards depositors. On the basis of which depositor can do shopping. The system is very popular in developed countries. The depositor, deposits money in banks fixed deposit account and receives cash credit cheques to the value of 75% of the deposit. Interest is payable on the whole amount of deposit. No interest is charged on the money withdrawn through cards if the amount is refunded within 60 days. On the repayment the card is again issued.

EMPLOYMENT-ORIENTED SCHEMES

Shortly after nationalisation the nationalised banks took up the responblities of financing employment-oriented schemes particularly in the field of agriculture, small scale industries and some other hitherto unknown sectors. Banks seek out the educated unemployed particularly youngman with technical background, help them with a scheme suitable to their aptitude give finance and look after their all

other interests. Some banks have started entrepreneurial clinics or advisory services as well Professor S.R. Davar calls it 'Retail Finance'. According to him, under the category of Retail finance will come the small borrowers who are from the neglected and weaker sections of the economy.[2]

Another Scheme for providing self employment to educated unemployed youth was announced by the late Prime Minister Smt. Indira Gandhi in her Independence Day address on the 15th Aug.1983. The Objective of the scheme is to encourage the educated unemployed youth, including women to undertake self employment ventures in industry, service and business through provision of a package of assistance. The maximum loan eligible under the Scheme is Rs. 25000/-

VILLAGE ADOPTION SCHEME

The Village Adoption Scheme is an extension of 'Area Approach'. In this scheme a particular bank selects a village or a group of small villages on the basis of the potentiality of the village for future growth. In the villages adopted, attempts are made to help all the viable cultivators for all their needs.

As at the end of Dec. 1981 are scheduled Commercial Banks had adopted 1,21,008 villages and financed Rs. 42.36 lakh direct agricultural loan accounts involving an amount of Rs. 1228 crores.

LEAD BANK SCHEME

On the recommendations of the Gadgil Study Group and of the Nariman Committee the Reserve Bank of India introduced the Lead Bank Scheme towards the end of 1969 to extend institutional credit to the priority sectors, regions and sections of the community and thereby to provide initial infrastructure for planned development of the districts. Under this Scheme each Bank has been allotted certain districts in which the bank assumes leadership in initiating and quickening their developmental process. The banks acts a pace setter, and provides integrated banking facilities to the district in close colloboration with other financial institutions. These factors have led to better utilisation and recycling of local resources both natural and human-thereby improving the employment opportunities and improving the living standard of rural populace.[3]

DIFFERENTIAL RATES OF INTEREST SCHEME

DRI is another innovative scheme introduced by the Public Sector Banks. The objects of the Scheme is to extend bank loans at concessional rates of interest to weaker sections of the community. Advances of the State Bank under the Differential Rates of Interest Scheme rose from Rs. 103 crores at the end of Dec. 1982 to Rs. 118 crores at the end of 1983.

PERSONAL LOAN-CONSUMPTION LOAN

Traditionally consumption loans were not advanced by commercial banks. But ever since their nationalisation, commercial banks stepped into this field also. These loans are given generally to such individuals having mostly current or savings accounts. The loans are granted in the form of a fixed loan or a lump-sum repayable in equal monthly instalments for a maximum period of 36 months. Such consumption loans are most convenient and suitable for salaried persons as repayment can easily be made from monthly salary. The following are some of the items for the purchase of which banks generally grant consumption loans.

Car, Scooter, Motorcycle, Bicycle, T.V. Sets, V. C. R., Refrigerator, Fans, Furniture, Geyser, Washing Machine, Type Writer, Air conditioner, Air Collers, Pressure Cooker, Cooking Gas, Sewing Machines, Technical books, Medical and Engineering Equipments, agricultural implements, for payment of income tax, hospital, bells, college fees etc. Cost of repairing and renovating a house, expenditure on marriages, funerals and births, expenditure on religious ceremonies. The list is illustrative and not exhaustive..

MISCELLANEOUS SCHEMES/FACILITIES

The State Bank of India and a few nationalised banks have introduced Teller system to exper cash payment of cheques. Under this system the cheque for smaller amount is paid immediately on presentation at the cash counter.

Besides, the banks have been providing more and more facilities to the commen man in the form of opening evening branches, Sunday branches morning and evening countres and Round-the-clock Exchange Bureax. Introduction of Mobile banks cater the banking needs of far-off places.

To sum up, it may be said that commercial banks ever since th nationalisation have tried to reach the doors of the common man throu multifarious novel schemes. But in view of the huge population and va geographical area, together with development needs of agro-industri sector, the public sector commercial banks will have to strive conti nuously for banking development, so as to meet with readiness the ever increasing financial needs of the country. At the same time, t problem of mounting overdues and bad customer service, also draw o attention. It is also complained that these novel Schemes are bei misused in favour of political party. Complaints of bribery have al been received against bank personnel, before sanctioning loans educated unemployed and weaker sections.

The low profitability (due to liberalised lending scheme) T mounting overdues (due to unsecured loans) and bad customer servi (due to poor personnel training & mismanagement) are the other serio drawbacks which really threaten the future of Commercial Banking India. The Govt. the RBI and the Bank management should, therefor formulate such a dynamic banking policy which cures the ills and serve the masses better, free from political interfrences.

REFERENCES

1. O. P. Mathur Public Sector Bank in India's Economy P. 198
2. R. S. Davar, Law and Practice of Banking PP. 536-37
3. B. K. Ghose : The Lead Bank Scheme-Some Reflections Journal of institute of Bankers June 1983 P 95
4. Annual Report of S. B. I 1983

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1984-85, Vol. 1, P. 109-115
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८४-८५, खंड-१, पृ० १०९-११५

कुमाऊँ में सड़क यातायात की समस्यायें – एक आर्थिक सर्वेक्षण

डा० एच० सी० जोशी,
विभागाध्यक्ष-वाणिज्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय पिथौरागढ़ ।

सारांश

[उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग में स्थित नैनीताल, अल्मोड़ा एवं पिथौरागढ़ जनपद कुमाऊँ के नाम से जाना जाता है। भौगोलिक विषमताओं के कारण इस क्षेत्र में सड़क यातायात साधनों का प्रयोग सम्भव नहीं है। इस पर्वतीय अंचल में जहां खनिज पदार्थों एवं प्राकृतिक सम्पदा के प्रचुर भण्डार का विदोहन अभी तक उचित रूप में नहीं हो पाया है, इसका मूल कारण विदोहन के मार्ग में आने वाली यातायात की समस्यायें हैं। अतः प्रस्तुत शोधपत्र में यातायात के मार्ग में आने वाली समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है ताकि इनका निवारण होने पर क्षेत्रीय विकास सम्भव हो सके।]

ABSTRACT

[The three districts of northern U. P. Almora, Nainital and Pithoragarh, are known as Kumaun. Because of its topographical conditions no other form of transport except the road transport is possible here. It has not been possible to exploit fully the rich mineral and natural resources of this area principally because of the non-availability of a system providing cheap and easy transport. The present paper aims at identifying factors responsible for the transport problem in this region, so that steps could be taken to remove them and thus create conditions necessary for an all round progress of this economically and industrially backward area.]

मनुष्य की आधारभूत आवश्यकताओं में भोजन, वस्त्र और मकान के उपरान्त यातायात का ही स्थान है। यातायात आर्थिक विकास एवं उन्नति की आधारभूत आवश्यकता है। मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अपने चारों ओर की परिस्थितियों की खोज करना चाहता है। खोज की इस इच्छा से मनुष्य एक स्थान से दूसरे स्थान तक निकलता रहा। मनुष्यों के निरन्तर चलने से पगडन्डियां बनती गई और अधिकतम-लाभ प्राप्ति की दृष्टि से इन पगडन्डियों को सड़क का रूप दिया जाने लगा। अतः सड़कें बनती गई और उनके पीछे-पीछे सभ्यता का विकास होता गया। मनुष्य एकांकी जीवन के स्थान पर सामूहिक जीवन बिताने की योजना बनाता गया। फलतः बिखरी झोपड़ियां गाँव और नगर के रूप में परिवर्तित होती गई। भलीभांति विकसित यातायात पद्धति केवल मॉग की सन्तुष्टि ही नहीं करती वरन नई मांग को जन्म भी देती है इसीलिये कृषि, उद्योग व्यवसाय आदि क्षेत्रों में यातायात का महत्व स्पष्ट होता है। यातायात के सम्पूर्ण साधनों में सड़क यातायात सबसे अधिक जन समाज की सेवा करता है। उसी आधार पर यह विश्व के सम्पूर्ण यातायात साधनों के ऊपर एक महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ है।

उत्तर प्रदेश के तीन पर्वतीय जिले - नैनीताल, अल्मोड़ा और पिथौरागढ़ का क्षेत्र देश में कुमाऊँ के नाम से जाना जाता है। यह वह क्षेत्र है जो पर्यटकों, तीर्थयात्रियों एवं व्यवसायियों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। वास्तव में किसी क्षेत्र का ओद्यौगिक विकास करने से पूर्व यह आवश्यक है कि वहां यातायात के साधनों का विकास किया जावे। बिना विकसित यातायात के माल, मानव एवं मशीनरी इच्छित स्थान पर नहीं पहुँचाई जा सकती है। यातायात के सम्पूर्ण साधनों में मोटर यातायात ही सबसे उपयुक्त साधन है। कुमाऊँ में अपार वन सम्पदा है, खनिज एवं धातुओं का विशाल भण्डार पृथ्वी के गर्भ में छिपा हुआ है जिसके विदोहन के लिए मोटर यातायात के अभाव में विशेषज्ञों के तकनीकी ज्ञान एवं उद्योगपतियों के साहस का उपयोग संभव नहीं हो पाया है। यहां की प्राकृतिक बनावट के आधार पर रेल एवं वायुयानों का प्रयोग नहीं हो पाता। अतः सड़क यातायात ही विशिष्ट साधन के रूप में प्रयोग किया ज ता रहा है। पंचवर्षीय योजनाओं में यद्यपि सरकार ने इस क्षेत्र के उत्थान के लिये नवीन सड़कों का निर्माण कार्य प्रारम्भ किया परन्तु फिर भी यहां मोटर मार्गों का भारी अभाव है। अभी भी कई क्षेत्र ऐसे हैं जो मोटर यातायात सेवाओं से पूर्णतया वंचित हैं। इसका प्रमुख कारण सड़क यातायात विकास कार्यों में आने वाली समस्यायें हैं। कुमाऊँ क्षेत्र में सड़क विकास कार्यों में आने वाली समस्याओं का अध्ययन निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है :—

भौगोलिक :–

तराई एवं भावर के भाग को छोड़कर शेष सम्पूर्ण भू-भाग पर्वत श्रंखलाओं से घिरा हुआ है जिन्हें काटकर सड़कों का निर्माण करना अत्यन्त कठिन होता है किसी पहाड़ को काटकर एक बार सड़क बना लेने पर भी कुछ ही समय में पहाड़ों के टूटने से वह यातायात के अयोग्य हो जाती है। फलतः सड़कों के स्थायी विकास में विलम्ब होता है। किसी सड़क का निर्माण करने से पूर्व जो विशेषज्ञ प्रारम्भिक जॉच करते हैं, वे इस बात का ध्यान रखते हैं कि सड़क भीषण पक्की चट्टानों

के मध्य होकर न गुजरने पावे क्योंकि चट्टान जितनी पक्की होगी उस पर सड़क बनाना उतना ही अधिक खर्चीला होगा। अतः कम पथरीले पहाड़ों के मध्य से होकर ही सड़कों का निर्माण किया जाता है लेकिन प्रारम्भिक जांच में सावधानी रखने पर भी कई स्थानों में भीषण चट्टानें आ जाती हैं। उन्हें काटकर सड़क बनाना अधिक खर्चीला होता है। ऐसे स्थानों में नीचे से दीवार देकर सड़क की चौड़ाई बढ़ाई जाती है। परन्तु फिर भी ऐसे दुर्गम स्थानों पर दो तरफा यातायात सम्भव नहीं हो पाता। फलतः प्रति मोटर लागत मूल्य अधिक आ जाता है। साथ ही पहाड़ी क्षेत्र में मोटर मार्ग के घुमावदार होने के कारण दो स्थानों के मध्य दूरी कम होने के स्थान पर अधिक हो जाती है। यद्यपि सड़क यातायात के अन्य साधनों की अपेक्षा समय की बचत अवश्य होती है। उदाहरण के लिये काठगोदाम से नैनीताल पैदल मार्ग से १६ किलोमीटर है जबकि मोटर मार्ग से ३५ किलोमीटर। इतना ही नहीं बल्कि भौगोलिक परिस्थितियों के कारण सड़कों के घुमावदार होने और वर्षा ऋतु में प्रायः कोहरा छाये रहने से चालक को लगभग १० मीटर से अधिक दूरी पर कोई चीज नहीं दिखाई देती फलतः यातायात की गति धीमी हो जाती है। उदाहरण के लिये मोटर बस द्वारा काठगोदाम से पिथौरागढ़ [१८० किलोमीटर] पहुंचने में लगभग १० घण्टे लगते हैं जबकि इससे कम समय में कोई काठगोदाम से लखनऊ लगभग ३८४ किलोमीटर की दूरी मोटर बस द्वारा तय कर सकता है।

अधिक यातायात लागत :—

स्थान-स्थान पर पहाड़ों एवं घाटियों की विद्यमानता के कारण पर्याप्त सावधानी रखने पर भी मोटर मार्ग में उतार-चढ़ाव आ ही जाते हैं। अतः खराब एवं उतार-चढ़ाव वाली सड़कों के कारण डीजल, पैट्रोल, चिकनाई तेल व मरम्मत के खर्च बढ़ जाते हैं, भार वाहन क्षमता कम हो जाती है वाहनों का तीव्र गति से ह्रास होता है और उनकी गति कम होती है। इससे वाहनों के कुल व्ययों में वृद्धि हो जाती है तथा वस्तुओं एवं सेवाओं का लागत मूल्य बढ़ जाता है। यही कारण है कि पर्वतीय क्षेत्र में किराये भाड़े की दरें मैदानी क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक ऊँची हैं और सड़कें आवागमन के लिये कष्टप्रद होती है। न्यादर्श सर्वेक्षण के आधार पर कुमाऊँ क्षेत्र में चलने वाली राज्यीय सड़क यातायात निगम के वाहनों के व्ययों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि सन् १९८०–८१, १९८१–८२, तथा १९८२–८३ वर्षों में कुल व्ययों का क्रमशः २९, २७ तथा २८ प्रतिशत केवल ह्रास एवं मरम्मत पर व्यय हुआ[1] जो अन्य व्ययों की तुलना में बहुत अधिक है। एक सर्वेक्षण के आधार पर तकनीकी विशेषज्ञों का कथन है कि टायर एवं ट्यूब के शीघ्र नष्ट होने में चालक भी उतने ही उत्तरदायी होते हैं जितनी ये कच्ची सड़कें। उनका कहना है कि यदि वाहन की गति पर नियन्त्रण रखा जाये तथा रोकते समय वाहन धीरे-धीरे रोका जाय तो टायर एवं ट्यूब अपेक्षाकृत कम घिसते हैं। चढ़ाई, उतार एवं मोड़ों में वाहनों को मोड़ने पर विभिन्न आवश्यक कल पुर्जों में अधिक ह्रास होता है और कभी-कभी टूट भी जाते हैं जिससे वाहनों पर होने वाले वित्तीय व्यय बढ़ जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप यातायात लागत बढ़ जाती है तथा इसका भार यात्री एवं माल वाहक को सहन करना पड़ता है।

कम भार वाहन क्षमता :—

वाहनों की भार वाहन क्षमता देश के विभिन्न क्षेत्रों में वहां की सड़कों एवं पुलों की स्थिति के आधार पर भिन्न-भिन्न है। इसी भिन्नता के कारण भारत में अन्तर्राज्यीय यातायात को प्रोत्साहन नहीं मिल पाया है क्योंकि अधिक भार वाहन वाले क्षेत्रों से कम भार वाहन वाले क्षेत्रों में वाहनों के आते ही उनके चालान होने का भय रहता है। भौगोलिक परिस्थितियों के कारण उत्तर प्रदेश के इस पर्वतीय क्षेत्र में तो वाहनों की भार वाहन क्षमता अत्यन्त कम है। उदाहरण के लिए (क) यहां की सड़कों में स्थान-स्थान पर पुल एव पुलिया अत्यन्त कमजोर हैं जिन पर अधिक भार वाहन वाली गाड़ियों के प्रयोग करने से उनके टूटने का डर रहता है। (ख) यहाँ की सड़कें उतार-चढ़ाव वाली हैं जिस पर अधिक भार वाले वाहनों के चलाने से उनके पीछे को लुढ़कने का भय बना रहता है। (ग) कई स्थानों पर मोड़ अत्याधिक घुमाव वाले हैं यहाँ वाहनों में अधिक भार लादकर उन्हें मोड़ना संभव नहीं हो पाता तथा (घ) यहाँ अधिकाँश सड़कें कम चौड़ी एवं कच्ची हैं जिनमें अधिक भार वाले वाहनों को चलाने से उनके धसने का भय बना रहता है।

मैदानी क्षेत्रों में चलने वाली मोटर बसों में यात्रियों के लिए बैठने का स्थान न हो तो वे स्टेन्डिग टिकट लेकर भी यात्रा कर सकते हैं। एक मोटर बस में सामान्यतया ६ स्टेन्डिग यात्रियों का प्रावधान होता है जबकि पर्वतीय क्षेत्र में चलने वाले वाहनों में स्टेन्डिग यात्रा का प्रावधान बिलकुल नहीं होता। मानव की तरह माल वाहन क्षमता भी यहाँ प्रायः सीमित है। नियमानुसार यहाँ एक मोटर ठेले में अधिकतम ५५ कुन्टल माल ढोया जा सकता है जबकि मैदानी क्षेत्रों में इसकी क्षमता ८० कुन्टल होती है। भार वाहन क्षमता को सीमित करने के उद्द्श्य से ही पर्वतीय क्षेत्र में चलने वाले वाहनों की लम्बाई, चौड़ाई एवं कुछ स्थानों में ऊँचाई भी सीमित की गई है। भार में हल्की वस्तुओं को मदानी क्षेत्रों में वाहन की बॉडी में काफी ऊपर तक हो लादा जाता है। सामान्यतया पर्वतीय क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले मोटर वाहनों की लम्बाई एवं चौड़ाई क्रमशः १३.७५ फुट और ७.५ फुट होती है तथा अधिकतम १० फुट ऊँचाई तक माल लादा जा सकता है जबकि मैदानी क्षेत्रों में वाहनों की लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई क्रमशः १७ फुट, ८ फुट तथा १३ फुट तक होती है।[2]

अत्यधिक कर भार :–

भारत में मोटर वाहनों पर करों की वसूली केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार एवं स्थानीय संस्थाओं द्वारा की जाती है। केन्द्रीय सरकार मोटर वाहनों, उनके पुर्जों, मोटर स्प्रिट और अन्य सामान पर कर लगाती है और भारत में बने स्प्रिट, डीजल, मोटर गाड़ियों, उपकरणों, टायर व ट्यूब पर भी उत्पादन कर लगाती है। मोटर वाहन कर जांच समिति ने यह अनुमान लगाया[3] था कि उपरोक्त करों के रूप में भारत सरकार हल्की मोटर गाड़ी पर ७१६ रुपये, मझली मोटर गाड़ी पर २८२ रुपये और भारी मोटर गाड़ियों पर ३६६६ रुपये तथा ३२ सवारी वाली मोटर बस पर ५०८३ रुपये, ५२ सवारी वाली मोटर बस पर ८२८८ रुपये कर के रूप में वसूल करती हैं। राज्य

सरकारें भी अपने-अपने राज्य में प्रयोग की जाने वाली मोटर वाहनों पर गाड़ी कर, माल कर, यात्री कर, परमिट शुल्क, मोटर वाहन, स्प्रिट, कलपुर्जों तथा वाहन से सम्बन्धित अन्य सामग्री पर बिक्रीकर वसूल करती है। प्रत्येक राज्य में इन करों की रकम भिन्न-भिन्न है। केन्द्रीय एव राज्य सरकारों की तरह स्थानीय संस्थायें भी पहियाकर, यात्री कर, माल कर, अड्डा कर, चुंगी आदि लगाती हैं। पर्वतीय क्षेत्र की अधिकांश नगरपालिकायें बड़ी मात्रा में यात्री कर एवं माल कर वसूल करती हैं। ये सम्पूर्ण कर कुल सचालन व्ययों के २५ से ३५ प्रतिशत तक हो जाते हैं। करों की इस अधिकता के कारण ही यहाँ मोटर यातायात का उचित विकास नहीं हो पाया है।

उद्योगों का अभाव :—

पर्वतीय क्षेत्र में कुशल सड़क यातायात की कमी के कारण उद्योगों का विकास नहीं हो पाया है। यहाँ पर्यटन वनों एव खनिज पदार्थों पर आधारित उद्योगों के विकास हेतु पर्याप्त प्राकृतिक साधन उपलब्ध हैं परन्तु अभी तक कुछ स्थानों को छोड़कर यहाँ उद्योगों की उचित संख्या में स्थापना नहीं हो पाई है। उदाहरण के लिये कुमाऊँ में मध्यम व बड़ी आकार की औद्योगिक इकाईयों में से लगभग ८८ प्रतिशत औद्योगिक इकाईयाँ तराई एव भावर वाले क्षेत्र में विद्यमान हैं। इसी प्रकार छोटे आकार की ८१ प्रतिशत इकाईयां भी नैनीताल जनपद के तराई एवं भावर के क्षेत्र में स्थापित हैं। अतएव यह आवश्यक प्रतीत होता है कि कुशल सड़क यातायात के विकास द्वारा स्थानीय उपलब्ध संसाधनों द्वारा बड़े पैमाने पर उद्योगों की स्थापना की जा सकती है। पर्वतीय क्षेत्र में मसूरी, नैनीताल, रानीखेत एवं अल्मोड़ा पर्यटन केन्द्रों के अतिरिक्त बहुत से ऐसे सौन्दर्य स्थल हैं जिसका विकास पर्यटकों के आकर्षण हेतु किया जा सकता है और इस प्रकार प्रति वर्ष लाखों रुपये की आय प्राप्त की जा सकती है। उदाहरण के लिए सन् १९८३ में २.८५ लाख पर्यटक[1] केवल नैनीताल नगर से आये। इनके द्वारा औसतन १०० रुपये व्यय किया हुआ मानने पर नगर के विभिन्न सम्बन्धित व्यक्तियों को लगभग २.८५ करोड़ रुपये की आय प्राप्त हुई। इसी प्रकार यातायात साधनों के माध्यम से अन्य नगरों में पर्यटकों के लिए रहने एव मनोरजन सम्बन्धी सुविधायें उपलब्ध कर अधिकतम आय प्राप्त की जा सकती है। पर्यटन उद्योग की ही तरह यहाँ का अधिकाँश भाग वनों से घिरा है। इनमें विभिन्न प्रकार की कीमती लकड़ी और जड़ी-बूटियां पाई जाती हैं जिनका बहुत बड़ा भाग देश के विभिन्न स्थानों को भेज दिया जाता है। इनके अतिरिक्त आयुर्वेद में वर्णित अन्य कई जड़ी-बूटियाँ यहाँ विद्यमान हैं जिनके सही आँकड़े उपलब्ध न हो पाने के कारण वास्तविक मात्रा व मूल्य नहीं दिये जा सकते किन्तु मेरे अनुमान से इनका मूल्य भी लगभग ५० लाख रुपये होगा। अत: यातायात साधनों के विस्तार से माँग वाले बाजारों तक पहुँच सम्भव होगी, श्रम एव पूँजी की सुलभ प्राप्ति होगी और अन्ततः उपलब्ध संसाधनों द्वारा उद्योगों का विस्तार होगा।

वित्तीय कठिनाइयां :—

पूंजी किसी भी व्यवसाय का जीवन रक्त होता है। सामान्य व्यवसायों की तरह वाहन का व्यवसाय करने के लिए साहसी को प्रारम्भ में वाहन क्रय करने हेतु स्थाई पूंजी और तत्पश्चात

समय-समय पर उसकी मरम्मत हेतु कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। भारत में मोटर व्यवसाय का लगभग ९५ प्रतिशत भाग निजी व्यक्तियों के हाथ में है जिन्हें दैनिक कार्यों की पूर्ति हेतु वित्तीय कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कुछ साहसी सहकारी समितियों के रूप में कार्य करते हैं। पर्वतीय क्षेत्र में इस प्रकार की दो प्रमुख समितियां-कुमाऊँ मोटर ऑनर्स यूनियन लिमिटेड तथा गढ़वाल मोटर ऑनर्स यूनियन लिमिटेड कार्यरत हैं। अन्य सभी साहसी प्राय: एकाकी रूप में कार्य करते हैं जो संगठित नहीं होते। अत: दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इन्हें सदैव वित्तीय संस्थाओं एवं देशी महाजनों पर निर्भर रहना पड़ता है जिनकी ऋण की शर्तें अत्यन्त कठिन होती हैं अतएव धनाभाव के कारण मरम्मत का कार्य उचित प्रकार नहीं हो पाता और और वाहन की कार्यक्षमता गिर जाती है। स्टेट बैंक ऑफ इन्डिया द्वारा यद्यपि ऋण प्रदान किया जाता है किन्तु इसकी ऋण की शर्तें भी अत्यन्त कठिन हैं जिसके कारण यहाँ मोटर वाहनों का उचित विकास नहीं हो पा रहा है।

सामान्य समस्यायें :—

वन विभाग द्वारा भूमि के हस्तांतरण एवं वृक्षों के निस्तारण में विलम्ब किये जाने तथा सड़क निर्माण की दिशा में भूमि अधिग्रहण की वर्तमान प्रणाली के कारण भी सड़क निर्माण कार्य की प्रगति में दुष्प्रभाव पड़ता है। वाहनों की मरम्मत व निरीक्षण सम्बन्धी कार्यशालाओं की भारी कमी है। उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम के पास प्रमुख स्टेशनों पर अवश्य ही कार्यशालायें हैं, किन्तु निजी संस्थाओं एवं मालिकों को अपनी वाहनों की मरम्मत कराने हेतु पर्याप्त कष्ट का सामना करना पड़ता है। उदाहरण स्वरूप सम्पूर्ण कुमाऊँ क्षेत्र में वाहनों की विशिष्ट मरम्मत का कार्य केवल हल्द्वानी में ही सम्भव है। यदि कोई वाहन बागेश्वर में खराब हो जाय तो उसे ठीक कराने हेतु हल्द्वानी ही लाना होता है। ग्रामीण सड़कों के निर्माण का उत्तरदायित्व ग्राम पंचायतों पर होता है। ये सड़क विकास आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वित्तीय साधन जुटाने में असमर्थ रहती हैं। तकनीकी योग्यता वाले व्यक्तियों के ज्ञान का प्रयोग नहीं कर पातीं तथा विभिन्न ग्राम पंचायतों में समन्वय का अभाव रहता है। एक बार किसी सड़क का निर्माण कर लेने के पश्चात उसकी ओर उदासीनता बरती जाती है जिससे कुछ ही समय में वह यातायात के अयोग्य हो जाती है। इसलिये सड़क निर्माण का कार्य ग्राम पंचायतों से हटाकर एक अलग विभाग स्थापित कर उसे सौंप दिया जाना चाहिए। इस विभाग में तकनीकी योग्यता रखने वाले व्यक्तियों को सम्मिलित कर स्थाई श्रमिक वर्ग की भर्ती की जाय। इससे निष्पक्षतापूर्ण तरीके से मार्गों के निर्माण को प्रोत्साहन मिलेगा।

लोगों का यह कथन कि पर्वतीय क्षेत्र में बिखरी जनसंख्या एवं उद्योगों की कमी के कारण सड़क यातायात का विकास नहीं हो पाया पूर्णतया निराधार प्रतीत होता है। जनता ऐसे स्थान पर बसती है जहाँ उसे जीवन यापन सम्बन्धी सुविधायें उपलब्ध हों। ये सुविधायें तभी प्राप्त हो सकती हैं जबकि कुशल यातायात साधन सुलभ हों यही कारण है कि आज ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर जनता की प्रवासी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। अत: जनता की अस्थिरता को रोकने के लिये

बिखरी जनता को अच्छी सड़कों के माध्यम से जोड़ा जाना चाहिये। बिखरी जनता की तरह कुशल सड़क यातायात के अभाव में उद्योगों की स्थापना कर पाना कठिन है। सड़कों का विकास पहले किया जाना चाहिये और तत्पश्चात कुशल यातायात साधनों द्वारा ही उपलब्ध संसाधनों से उद्योगों की स्थापना की जा सकती है। माल एवं यात्री यातायात की आवश्यकता की पूर्ति हेतु विद्यमान मोटर निर्माण इकाईयों द्वारा पूर्ण क्षमता के साथ उत्पादन करना चाहिये और कुछ नवीन इकाइयों की स्थापना को भी प्रोत्स हित किया जाना चाहिए। अधिक उत्पादन के लिए एक अच्छा उपाय यह भी हो सकता है कि विद्यमान निर्माणी उद्योगों द्वारा वाहनों के उत्पादन की न्यूनतम सीमा निर्धारित कर उन्हें अधिक उत्पादन पर करों में छूट, वित्तीय एवं सामान्य सुविधायें प्रदान की जानी चाहिए। ताकि प्रत्येक इकाई पूर्ण क्षमता से उत्पादन कार्य कर सके। इस प्रकार वाहनों की संख्या में बृद्धि होने से राष्ट्र प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होगा। निजी वाहन चालकों को वाहन खरीदने उसकी मरम्मत एवं नवीनीकरण हेतु वित्तीय कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। अतएव वित्तीय संस्थाओं को चाहिए कि सरल शर्तों पर ऋण प्रदान कर निजी वाहन मालिकों को सड़क यातायात का अधिक विकास करने हेतु सक्रिय सहयोग दें। इसके अतिरिक्त इन छोटे एवं मध्य वर्ग के निजी वाहन मालिकों की सहायता हेतु एक सड़क यातायात वित्तीय निगम की स्थापना की जानी चाहिए।

श्रोत :-

१- राज्य सड़क यातायात निगम के क्षेत्रीय कार्यालय, नैनीताल से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर गणना की गई है।
२- सम्भागीय यातायात कार्यालय से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर गणना को गई है।
३- मोटर गाड़ी अधिनियम, १९६२ संशोधित १९७३
४- पर्यटन कार्यालय नैनीताल से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर गणना की गई है।
५- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ द कुमाऊँ। सार्वजनिक निर्माण विभाग।
६- उत्तर प्रदेश, वार्षिक अंक १९६८ तथा १९७८

—[०]—

उत्तर प्रदेश की उच्च शिक्षा के विकास में महाविद्यालयों का योगदान

सतोशचन्द्र गुप्त
शिक्षा निदेशक (उच्च शिक्षा) उत्तर प्रदेश

डॉ० शर्मा, डॉ० गोइन्दी, विभिन्न राजकीय महाविद्यालयों से आये प्रतिनिधिगण, सम्मानित नागरिको, देवियों और सज्जनो ! राजकीय महाविद्यालयों के शिक्षकों ने जिस एकेडेमिक सोसाइटी की स्थापना की है, उसका आज से प्रथम अधिवेशन आरंभ हो रहा है। इस अधिवेशन की अध्यक्षता हमारे विद्वान् शिक्षा सचिव को करनी थी, किन्तु वे कुछ कारणों से यहाँ पधार नहीं सके। उनका संदेश अभी पढ़ा गया है। अधिवेशन का उद्‌घाटन करने के लिए रुहेलखंड विश्वविद्यालय के कुलपति जी भी न पधार सके, अत: यह कार्य मुझे करना पड़ा। अधिवेशन की उद्‌घाटन वेला में अभी मैंने जो दीप प्रज्ज्वलित किया है, वह सदा प्रज्ज्वलित होता रहे।

एकेडेमिक सोसाइटियों के अधिवेशनों की परम्परा है कि सोसाइटी का अध्यक्ष किसी विषय पर अपने विचार व्यक्त करता है। हालांकि मेरा क्षेत्र ३० वर्ष तक वनस्पति विज्ञान में अध्ययन व अध्यापन रहा है, परन्तु पिछले छः वर्षों से मैं इस प्रदेश के विभिन्न महाविद्यालयों से प्रशासनिक रूप से सम्बद्ध हो गया हूं, अतः आज का विषय मैंने इस प्रदेश में "उच्च शिक्षा के विकास में महाविद्यालयों का योगदान" चुना है। प्रदेश में प्रथम इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना वर्ष १८८७ में हुई थी। उससे पूर्व इस प्रदेश में केवल ५ महाविद्यालय थे, जिनमें आगरा कालेज, आगरा, सेण्ट जान्स कालेज, आगरा, बरेली कालेज, बरेली, क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर एवं मेयोर सेन्ट्रल कालेज, इलाहाबाद थे। ये महाविद्यालय पूर्व में कलकत्ता विश्वविद्यालय से एफ० ए० व स्नातक उपाधि हेतु सम्बद्ध थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना के वाद ये महाविद्यालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हो गये तथा अन्य भी जो महाविद्यालय १९२१ तक स्थापित हुए वे भी इसी विश्वविद्यालय से सम्बद्ध होते गये।

आगरा कालेज वर्ष १८२३ में राजकीय संस्था के रूप में आरम्भ हुआ था। यह कालेज वर्ष १८५७ तक एक स्वायत्त संस्था था जो स्वयं अपना पाठ्यक्रम निर्धारित करता व सनद प्रदान करता था। परन्तु १८५७ से १९०१ तक यह कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९०२ से १९२६ तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय से और वर्ष १९२७ में आगरा विश्वविद्यालय की स्थापना हो जाने पर, आगरा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कर दिया गया। वर्ष १८८२ में इसका ट्रस्ट बनाकर इसका राजकीय स्वरूप समाप्त कर दिया गया। बरेली कालेज भी राजकीय संस्था के रूप में वर्ष १८३७ में आरम्भ हुआ था,

वर्ष १८६२ में कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हुआ परन्तु कतिपय कारणों से वर्ष १८७० से १८८३ तक बन्द कर दिया गया। बाद में वह १८८४ से प्राइवेट संस्था के रूप में पुनः आरम्भ हुआ और १८८८ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय, १९२७ में आगरा विश्वविद्यालय तथा वर्ष १९७५ से रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हुआ। सेण्ट जान्स कालेज, आगरा की स्थापना वर्ष १८५० में हुई और यह भी कलकत्ता, इलाहाबाद तथा अन्त में आगरा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध रहा। क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर भी आरम्भ में कई कठिनाइयों से निकला है। वर्ष १८६६ में इसे एम० ए० की सम्बद्धता कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्राप्त हुई परन्तु वर्ष १८८१ से १८९१ तक इस संस्था को बन्द कर देना पड़ा। वर्ष १८९२ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बद्धता मिलने पर यह पुनः आरम्भ हुआ परन्तु इलाहाबाद विश्वविद्यालय में वर्ष १९२१ से अपने विभाग आरम्भ हो जाने पर इसे वर्ष १९२२ में असम्बद्ध कर दिया गया। बाद में पुनः १९२७ में आगरा विश्वविद्यालय से सम्बद्धता प्राप्त कर यह आरम्भ हुआ। लखनऊ क्रिश्चियन कालेज, लखनऊ की स्थापना वर्ष १८८९ में हुई थी परन्तु वर्ष १९२१ में लखनऊ विश्वविद्यालय की स्थापना के पश्चात् इससे स्नातक कक्षायें हटा ली गईं और बाद में इसे १९३२ से पुनः स्नातक कक्षाओं की मान्यता प्राप्त हुई। लगभग यही इतिहास इयुविंग क्रिश्चियन कालेज, इलाहाबाद का भी है जिसकी स्थापना वर्ष १९०६ में हुई। वर्ष १९२१ और १९२२ में यहाँ पर स्नातकोत्तर कक्षायें भी रहीं परन्तु वर्ष १९२३ से स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षायें इलाहाबाद विश्वविद्यालय को स्थानांतरित कर दी गईं। बाद में वर्ष १९५१ से महाविद्यालय को केवल स्नातक स्तर की मान्यता मिली। सेण्ट एन्ड्रयूज़ कालेज, गोरखपुर की स्थापना वर्ष १९१६ में हुई थी और वह १९५६ तक स्नातकोत्तर स्तर तक पहुँच चुका था परन्तु वर्ष १९५७ में गोरखपुर विश्वविद्यालय की स्थापना होने पर इस महाविद्यालय से स्नातकोत्तर कक्षायें हटा ली गईं। ईसाबेला थाबर्न महिला कालेज लखनऊ का इतिहास भी गौरवपूर्ण रहा है। यह वर्ष १८८६ में कलकत्ता विश्वविद्यालय से एफ० ए० के लिये और वर्ष १८९४ में स्नातक उपाधि हेतु इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हुआ था। बाद में लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा इसे सम्बद्धता प्रदान की गई। मेरठ कालेज, मेरठ जिसकी स्थापना वर्ष १८९२ में हुई थी पहले इलाहाबाद फिर आगरा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध रहा है और अब मेरठ विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है। स्वतन्त्रता से पूर्व जो अन्य महाविद्यालय उच्च शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहे हैं वे हैं—डी० ए० वी० कालेज कानपुर (१९१९), वी० एस० एस० डी० कालेज, कानपुर (१९२१), महिला महाविद्यालय लखनऊ (१९३८), बलवन्त-राजपूत कालेज सम्प्रति राजा बलवन्त सिंह कालेज, आगरा (१९४०) तथा अमर सिंह कालेज, लखावटी, बुलन्दशहर (१९४१)।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् महाविद्यालयों की स्थापना में जनता का विशेष योगदान रहा है और वर्ष १९४६ तथा १९४७ में १३ नये महाविद्यालयों की स्थापना हुई जिनमें से एक आजमगढ़, एक वाराणसी, एक बलिया, तीन लखनऊ तथा शेष सात पश्चिम के जनपदों में थे। अगले १० वर्षों में नये महाविद्यालय धीमी गति से खुले। वर्ष १९५२ तथा १९५३ में एक-एक महाविद्यालय खुले और दोनों ही महिला महाविद्यालय थे। वर्ष १९५० में दो, वर्ष १९५४ में चार, तथा वर्ष १९५५ में पांच नये महाविद्यालय स्थापित हुए। वर्ष १९५१ महाविद्यालयों के इतिहास में विशेष स्थान इस कारण रखता है कि उत्तर प्रदेश शासन ने इसी वर्ष दो राजकीय महाविद्यालयों की स्थापना इस आकांक्षा से की थी कि यह महाविद्यालय आदर्श महाविद्यालय होंगे। ठाकुर देवसिंह विष्ट राजकीय महाविद्यालय नैनीताल ने पर्वतीय एवं रुहेलखण्ड क्षेत्र में और काशी नरेश राजकीय कालेज, ज्ञानपुर

(वाराणसी) ने पूर्वांचल में उच्च शिक्षा के प्रसार में दो दशक से भी अधिक समय तक अध्यापन एवं शोध कार्य में महत्वपूर्ण रोल अदा किया है। कालान्तर में राजकीय महाविद्यालयों की संख्या में वृद्धि होती गई और वर्ष १९७८ तथा १९७९ में तो क्रमशः ५ तथा ९ राजकीय महाविद्यालय खोले गये जिनकी स्थापना के पूर्व उनकी भूमि एवं भवन की कोई तैयारी नहीं की गई जिसके फलस्वरूप आज भी ये १४ महाविद्यालय भूमि और निजी भवन के विना असन्तोषजनक परिस्थितियों में चल रहे हैं। शासकीय एवं अशासकीय महाविद्यालयों की बढ़ती संख्या के कारण शासन ने "कालेज आफ एक्सीलेंस" के उद्देश्य से सर्व प्रथम जिन दो राजकीय महाविद्यालयों को स्थापना की थी, वे भी लक्ष्यपरास्त हो चुके हैं। वर्ष १९६० में इन महाविद्यालयों का दर्जा घटाकर अन्य सामान्य महाविद्यालयों के अनुरूप कर दिया गया था।

नये महाविद्यालयों की स्थापना की दृष्टि से वर्ष १९७३ सबसे आगे है। इस एक ही वर्ष में ३५ महाविद्यालयों की स्थापना हुई जिनमें से चार राजकीय महाविद्यालय थे। कुल ३५ नये महाविद्यालयों में से १५ ने गोरखपुर विश्वविद्यालय से, १० ने आगरा विश्वविद्यालय से, ५ ने कानपुर विश्वविद्यालय से, ३ ने मेरठ विश्वविद्यालय से तथा २ ने लखनऊ विश्वविद्यालय से सम्बद्धता प्राप्त की। वर्ष १९७१ में कुल २४, वर्ष १९५९ तथा १९७२ में प्रत्येक में २१, वर्ष १९६० में १९ एवं वर्ष १९६१, १९६६ तथा १९६९ में से प्रत्येक में १७ नये महाविद्यालयों की स्थापना हुई। वर्ष १९४६ के पश्चात् केवल १९८० ही ऐसा वर्ष है जिसमें किसी महाविद्यालय की स्थापना नहीं की गई। उत्तर प्रदेश शासन ने वर्ष १९८० में एक उच्च स्तरीय समिति का गठन किया था जिसकी संस्तुतियों पर शासन ने मई १९८१ में यह महत्वपूर्ण निर्णय लिया कि भविष्य में किसी भी नये महाविद्यालय को स्थापना के पूर्व-प्रस्ताव शासन द्वारा गठित "सोशल सर्विसेज़ इन्वेस्टमेंट बोर्ड" के सामने रखे जायेंगे जो उस क्षेत्र में उच्च शिक्षा की आवश्यकता एवं औचित्य, वित्तीय संसाधनों एवं पूर्व में उपलब्ध सुविधाओं की समीक्षा करेगा। बोर्ड के अनुमोदन के उपरान्त ही कोई नया महाविद्यालय स्थापित हो सकेगा या स्नातक महाविद्यालय परास्नातक दर्जा प्राप्त कर सकेगा। शासन के इस निणय के कारण वर्ष १९८१ से महाविद्यालयों की स्थापना पर जहाँ एक ओर नियंत्रण लगा है, वहाँ उच्च शिक्षा की सुविधा में क्षेत्रीय असमानता को दूर करने में भी सहायता मिली है।

सम्प्रति प्रदेश में कुल ४०१ महाविद्यालय हैं जिनमें ४८ राजकीय महाविद्यालय हैं। पर्वतीय क्षेत्र में, संघटक महाविद्यालयों को छोड़कर, २९ सम्बद्ध महाविद्यालय हैं जिनमें से २२ राजकीय महाविद्यालय हैं। गढ़वाल विश्वविद्यालय के तोन तथा कुमाऊ विश्वविद्यालय के दो संघटक महाविद्यालय भी राजकीय महाविद्यालय थे परन्तु इन विश्वविद्यालयों की स्थापना पर इन महाविद्यालयों को इन दोनों विश्वविद्यालयों को हस्तान्तरित कर दिया गया। प्रदेश के कुल महाविद्यालयों में से ८४ महिला महाविद्यालय हैं। लगभग १५० महाविद्यालयों में स्नातकोत्तर कक्षायें हैं, ९७ में शिक्षा प्रशिक्षण (बी० एड०), ३३ में विधि तथा २४ में कृषि संकाय है। वर्तमान में कुल छात्र सख्या लगभग ३.७५ लाख है जिनमें लगभग २० प्रतिशत छात्रायें हैं, जबकि वर्ष १९५०-५१ में महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों की कुल संख्या ३० हजार से कम थी। लगभग १३ हजार अध्यापक कार्यरत हैं जिनमें महिलायें लगभग १८ प्रतिशत हैं। अध्यापक-छात्र अनुपात १:२९ है। प्रदेश में, वर्तमान में, औसतन प्रत्येक २.८० लाख की जनसंख्या पर एक महाविद्यालय है जबकि वर्ष १९५०-५१ में प्रत्येक १५.८० लाख जनसंख्या पर एक महाविद्यालय था।

प्रदेश के १६ विश्वविद्यालयों में से ४ तकनीकी या कृषि विश्वविद्यालय हैं और एक संस्कृत विश्वविद्यालय है। शेष १४ विश्वविद्यालयों में से २ केन्द्रीय विश्वविद्यालय तथा काशी विद्या पीठ विश्वविद्यालय आरम्भ से ही अध्यापकीय विश्वविद्यालय रहे हैं। शेष ११ विश्वविद्यालयों में से लखनऊ, गोरखपुर, कुमाऊँ एवं गढ़वाल विश्वविद्यालय सम्बद्ध तथा अध्यापकीय स्वरूप के साथ आरम्भ हुए परन्तु शेष ७, जिनमें इलाहाबाद विश्वविद्यालय भी सम्मिलित है, सम्बद्ध विश्वविद्यालय के रूप में स्थापित किये गये थे लेकिन बाद में उनमें अध्यापन कार्य आरम्भ हुआ और सम्बद्ध महाविद्यालयों के विकास पर इसका गहरा प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। प्रादेशिक विश्वविद्यालयों के अपने विभाग में परम्परागत पाठ्यक्रमों में केवल ५५ हजार से कम छात्र हैं जो कि महाविद्यालयों की छात्र-संख्या की तुलना में केवल १५ प्रतिशत हैं। मेरठ, आगरा, रुहेलखण्ड, अवध तथा बुन्देलखण्ड मण्डलों में अभी अध्यापकीय विश्वविद्यालय नहीं है और वहाँ के छात्रों को महाविद्यालयों पर ही निर्भर करना पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों में यदि हम प्रदेश में उच्च शिक्षा का स्तर सुधारना चाहते हैं तो महाविद्यालयों की वर्तमान दशा को सुधारने की दिशा में गम्भीरता से विचार करना होगा।

वर्ष १९५३ में, सम्भवतः कुछ सुदृढ़ महाविद्यालयों का अपना शैक्षिक स्तर ऊँचा उठाने के लिये तत्कालीन आगरा विश्वविद्यालय अधिनियम १९२७ में संशोधन कर स्वायत्त महाविद्यालयों की स्थापना का प्रावधान किया गया था। वर्तमान उत्तर प्रदेश विश्वविद्यालय अधिनियम–१९७३ की धारा ४२ के अन्तर्गत भी स्वायत्त महाविद्यालयों की स्थापना का प्रविधान है। इस प्रविधान के अन्तर्गत यदि कोई महाविद्यालय पाठ्यक्रमों को अधिक उपयोगिता को दृष्टि से परिवर्तित करना तथा शैक्षिक एवं परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन कर अपने को अन्य महाविद्यालयों से ऊपर उठाना चाहता है तो वह स्वयं अपना शैक्षिक व परीक्षा कार्यक्रम निश्चित करने तथा चलाने के लिये स्वतन्त्र हो सकता है। शिक्षा आयोग १९६४-६६, जिसे कोठारी कमीशन भी कहते हैं, में भी स्वायत्त महाविद्यालयों की उपयोगिता पर बल दिया गया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग भी ऐसे महाविद्यालयों को, जो स्वायत्त घोषित होते हैं, अनुदान प्रदान करता है। इस प्रदेश में सर्वप्रथम स्वायत्त महाविद्यालयों की स्थापना के सम्बन्ध में प्रविधान किया गया था परन्तु खेद है कि पिछले ३० वर्षों में किसी भी महाविद्यालय ने स्वायत्त का दर्जा प्राप्त करने का औचित्य सिद्ध करते हुए उसके लिए प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया। यह प्रयोग शीघ्र किया जाना चाहिये। यदि गंभीरतापूर्वक पाठ्यक्रमों की रचना की जाये और शिक्षकों की लगन का सहयोग प्राप्त हो तो प्रदेश में महाविद्यालयों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ सकते हैं।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने १० वर्ष पूर्व पाठ्यक्रमों की पुनर्रचना कर कुछ उपयोगी एवं व्यवसायिक पाठ्यक्रमों के समावेश पर बल दिया था। इस दिशा में भी हमारे महाविद्यालयों एवं शिक्षकों ने गंभीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया। परम्परागत पाठ्यक्रम एक साधारण छात्र को कोई दिशा नहीं दे पाते हैं। छात्र स्नातक उपाधि प्राप्त कर अपने को किसी व्यवसाय या कार्य के लिये प्रशिक्षित अनुभव नहीं करता है। वह अपने परिवार के तथा क्षेत्र के व्यवसाय से हट जाता है और अपने वातावरण में अपने को फिट नहीं पाता है। अतः यह आवश्यक है कि वर्तमान परम्परागत तीन पाठ्यक्रमों के स्थान पर छात्र को विकल्प दिया जाये कि वह परम्परागत पाठ्यक्रमों के साथ एक ऐसा पाठ्यक्रम भी ले सके जो उसके परिवार एव क्षेत्र की आवश्यकता के अनुरूप हो, जिससे वह उपाधि प्राप्त कर यदि परास्नातक कक्षा में प्रवेश नहीं लेता तो भी अपने को अपने वातावरण

में अधिक प्रशिक्षित व उपयोगी पा सके। उदाहरण स्वरुप पर्वतीय क्षेत्र में वनस्पति विज्ञान तथा रसायन विज्ञान के साथ छात्र यदि "हार्टिकल्चर एवं फ्रूट प्रिजर्वेशन" या 'सोशल फोरेस्ट्री" का अध्ययन करता है तो वह स्नातक होने पर अपने को अपने क्षेत्र में अधिक उपयोगी अनुभव करेगा। इसी प्रकार कला संकाय का छात्र 'आफिस मेनेजमेंट एवं फाइलिंग' या 'ग्राम विकास एवं सहकारिता जैसे एक पाठ्यक्रम का यदि अध्ययन करता है तो निश्चित रूप से वह उसके लिए उपयोगी सिद्ध होगा। परन्तु ऐसे पाठ्यक्रमों को कुशलतापूर्वक चलाने के लिये हमें महाविद्यालय के परिसर से बाहर भी झांकना होगा। क्षेत्र की आवश्यकता देखना होगी, व्यवसाय में सफल व्यक्तियों से सलाह लेनी होगी और अध्यापन में उनकी सहायता भी करनी होगी। हमारी फैकल्टी को भी कक्षाओं, प्रयोगशालाओं एवं पुस्तकालयों से बाहर निकलना होगा और नये आयाम सीखने के लिये तैयार रहना पड़ेगा। कुशल व्यवसायिक व्यक्तियों की अंशकालीन कर्मचारी या अतिथि वक्ता के रूप में सेवा लेनी होगी। इस सबके लिए हमारे अध्यापकों को जो महाविद्यालय की सीमा में सिमटते जा रहे हैं और समाज से अपने को पृथक समझने लगे हैं, अपना दृष्टिकोण बदलना होगा।

मुझे पूरा विश्वास है कि हमारे शिक्षक समय की पुकार के अनुसार अपने में परिवर्तन लायेंगे और एक बार पुनः महाविद्यालयों को उस गरिमापूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित करेंगे जहां वे वर्ष १९५० में और उससे पहले थे।

जयहिन्द !

फ़ॉर्म - ४

१- प्रकाशन का नाम	:	शोध पत्रिका, राजकीय महाविद्यालय एकेडेमिक सोसाइटी
२- प्रकाशन की अवधि	:	षट्मासिक
३- मुद्रक का नाम व पता	:	शंकर प्रिंटिंग वर्क्स, रामपुर
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
४- प्रकाशक का नाम	:	डॉ० ब्रजमोहन लाल तिवारी, सचिव-कोषाध्यक्ष
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	महाविद्यालय विकास अधिकारी, शिक्षा निदेशालय उच्च शिक्षा, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद
५- प्रधान संपादक	:	डॉ० ऋषिकुमार चतुर्वेदी
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	राजकीय रज़ा महाविद्यालय, रामपुर
६- स्वामित्व	:	उत्तर प्रदेश राजकीय महाविद्यालय एकेडेमिक सोसाइटी शिक्षा निदेशालय, उच्च शिक्षा, उ० प्र०, इलाहाबाद

मैं ब्रजमोहन लाल तिवारी, सचिव कोषाध्यक्ष, उ० प्र० राजकीय महाविद्यालय एकेडेमिक सोसाइटी, घोषित करता हूं कि उपरिलिखित तथ्य मेरी जानकारी के अनुसार सही हैं।

ब्रजमोहन लाल तिवारी
सचिव कोषाध्यक्ष

शोधपत्रिका

उत्तर प्रदेश राजकीय महाविद्यालय एकेडेमिक सोसाइटी

JOURNAL
UTTAR PRADESH GOVT. COLLEGES ACADEMIC SOCIETY

खंड २, अंक १, १९८५
Vol. 2 No. 1, 1985

इलाहाबाद
ALLAHABAD

अनुक्रम

CONTENTS

भारत में शिक्षा के बढ़ते सोपान [i]
—सतीश चंद्र गुप्त शिक्षा निदेशक [उच्च शिक्षा]

CHEMISTRY

1. A Chemical Study of Some Mixed Ligand Complexes of Cobalt (ii) 1
—Sunita Sharma
2. Chemical Constituents of Some Anticancer and Antitumor Plants of Euphorbia Genera 6
—N. C. Gupta and R. K. Baslas

PHYSICS

1. Defects and Grain Boundaries in Pollycrystalline Si Solar Cell 10
—S. C. Sah

BOTANY

1. Status of Oak-Pine-Sal Forest At The Transitional Zone of Garhwal Himalaya 13
—N, P. Chandra Rao, K. S. Negi and N. S. V. Prasad Rao
2. Effects of Growth Regulators on Different Eco-Physiological Processes in Groundnut 21
—A. K. Goyal and V. K. Jain

MATHEMATICS

1. A Real Inversion Theorem for A Generalization of Stieltjes Transform 25
—N. Joshi and *J. M. C. Joshi*

HINDI

1. रीतिक़ालीन साहित्य और जीवन-मूल्य 30
—राजमणि शुक्ल
2. उर्दू कवियों की हिन्दवी रचनाएँ 36
—ऋषिकुमार चतुर्वेदी

ENGLISH

1. Jane Austen's Male Characters in Her Feminine World 43
—Raka Gupta
2. Influences on Dr. Mulkraj Anand 46
—Jay Pal Singh
3. Life Offers to Deny—Hardy And Tryphena 52
—Azra Begum

POLITICAL SCIENCE

1. गढ़वाल में हरिजन नेतृत्व--पौड़ी एवं चौन्दकोट विकासखंडों के आधार पर एक राजनैतिक-वैज्ञानिक अध्ययन — 58
—ए० के० चंदोला
2. सुरक्षा के परिप्रेक्ष्य में भारत-पाक संबंध — 65
--राजेन्द्र कुमार गुप्त
3. The Ficci and National Movement — 71
--*L. M. Joshi*

HISTORY

1. The Rebellion of The Qaramitah And The Mulahidah During The Reign of Razia — 74
—*O. P. Gupta*
2. तुज़ुक-ए-जहाँगीरी में वर्णित हिन्दू समाज — 79
—अशोक कुमार शाही
3. उत्तराखण्ड के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण में रामकृष्ण-मिशन की भूमिका — 84
—अवनीन्द्र कुमार जोशी

ECONOMICS

1. जनसंख्या गतिविज्ञान : प्रकृति एवं संरचना — 89
--शिवनारायण गुप्त

GEOGRAPHY

1. Perception of Environmental Setup in Singhbhum and its Environs — 96
--*Shiv Raj Singh*

SANSKRIT

1. कालिदास वर्णित सरल एवं देवदारु वृक्ष — 101
--भवानीदत्त कांडपाल

COMMERCE

1. Planning For Housing — 106
--*Farhat Husain and S. N. Pandey*
2. स्वतंत्र भारत में कृषि उत्पादकता—एक मूल्यांकन — 109
—जे. आर. गुप्त

भारत में शिक्षा के बढ़ते सोपान[1]

सतीश चन्द्र गुप्त
शिक्षा निदेशक (उच्च शिक्षा) उत्तर प्रदेश

राजकीय महाविद्यालय एकेडेमिक सोसाइटी के पदाधिकारी एवं सदस्यगण, देवियो तथा सज्जनों। इस एकेडेमिक सोसाइटी के द्वितीय अधिवेशन में आज आपके बीच आकर मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है। जिस उत्साह से विभिन्न राजकीय महाविद्यालयों से लगभग 100 डेलिगेट आये हैं, उससे मुझे विश्वास हो चला है कि इस सोसाइटी का भविष्य उज्ज्वल है और इसमें स्थिरता आ रही है। इस सोसाइटी के माध्यम से आपको एक शैक्षिक मंच प्राप्त हुआ है और शोध कार्य करने की प्रेरणा मिली है।

सामान्य रूप से किसी सोसाइटी के अध्यक्ष द्वारा अपने विषय विशेष में भाषण दिया जाता हैं परन्तु मैंने वनस्पति शास्त्र का विषय न चुनकर आजकल चर्चित नई शिक्षा नीति का विषय लिया है। पूर्व इतिहास के सन्दर्भ में हमारे सामने क्या कोई नये उद्देश्य हैं, यही मेरी आज की वार्ता का आधार है।

शिक्षा पर बल तथा गुरूओं का आदर हमारी संस्कृति व परम्परा रही है। राजघराने और अभिजात्य वर्ग के नवयुवक गुरूओं के पास जाकर शिक्षा ग्रहण करते थे। प्राचीन काल में ब्राह्मणों की विद्वत् परिषदों का उल्लेख भी मिलता है। बाद में शिक्षा केन्द्रों की स्थापना तीर्थ स्थानों के समीप होने लगी। कुछ विश्वविद्यालय भी स्थापित हुए जैसे बिहार में छटी शताब्दी पूर्व तक्षशिला शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। पाणिनि, कौटिल्य, चरक यही के स्नातक थे। बिहार का नालंदा विश्वविद्यालय विश्वविख्यात शिक्षा केन्द्र रहा है जिसका विवरण चीनी यात्री ह्वेन सांग ने भी किया है और यहाँ अध्ययन भी किया है। काठियावाड़ में बल्लभी, दक्षिण में कांची, बंगाल में नादिया, मालवा में उज्जयिनी और बिहार में विक्रमशिला उच्च शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र रहे हैं जिनमें चीन, तिब्बत, कोरिया आदि देशों से विद्वान तथा छात्र अध्एन करने हेतु आये थे। वाराणसी भी प्राचीन काल से शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। इन केन्द्रों में वेद और वेदांग, जिसमें गणित तथा ज्योतिष भी था, का अध्ययन प्रमुख था। बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में संस्कृत शिक्षा का माध्यम था और अर्थशास्त्र, दर्शन, आयुर्वेद, धनुर्विद्या, शल्य शास्त्र, सर्व विद्या आदि का भी ज्ञान दिया जाता था।

ग्यारहवीं शताब्दी में तुर्कों के आगमन के पश्चात् शिक्षा पद्वति के माध्यम तथा पाठ्यक्रम में परिवर्तन आया। प्रारम्भिक शिक्षा मसजिदों में दी जाने लगी। उच्च शिक्षा के लिये मदरसे स्थापित किए गये जिनमें लाहौर, दिल्ली, बदायूँ, रामपुर व जौनपुर के मदरसे प्रमुख केन्द्र थे। मुगलों ने इस परम्परा को कायम रखा और आगरा तथा फ़तेहपुर सीकरी भी शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र बने। इन केन्द्रों में धर्म, तर्क शास्त्र, व्याकरण तथा इतिहास जैसे विषय पढ़ाये जाते थे। इस अवधि में हिन्दुओं के शिक्षा केन्द्र भी स्थापित होते रहे और

---

१. राजकीय महाविद्यालय एकेडेमिक सोसाइटी के वार्षिक अधिवेशन में दिनांक 8.11.1985 को दिया गया अध्यक्षीय भाषण।

काशी, नादिया, मथुरा, प्रयाग, हरिद्वार व अयोध्या शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र बने । महिला शिक्षा भी प्रचलित थी जिनमें गुलबदन, रूपमति, मुमताज महल, नूरजहाँ, जहाँ आरा, जेबुन्निसा आदि अपने समय की विदुषियां रही हैं ।

ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने प्रारम्भ में शिक्षा के प्रसार के प्रति ध्यान नहीं दिया परन्तु बाद में परिस्थिति वश उनको शिक्षा के प्रसार के प्रति धन व्यय करने पर विवश होना पड़ा । भारत में वर्तमान शिक्षा पद्धति के इतिहास का आरम्भ हम वर्ष 1813 से मान सकते हैं जबकि ब्रिटिश शासन द्वारा चार्टर एक्ट की धारा 43 के पारित होने के कारण ईस्ट इन्डिया कम्पनी को प्रतिवर्ष भारत में शिक्षा के विकास के लिए बाध्य होना पड़ा । इस अधिनियम में कहा गया था कि ईस्ट इन्डिया कम्पनी द्वारा साहित्य के पुनर्जीवन व विकास करने, विद्वान लोगों को प्रोत्साहित करने तथा विज्ञान की जानकारी तथा विकास के लिये यह धन व्यय किया जायेगा । आरम्भ में कम्पनी द्वारा इस धन को संस्कृत तथा अरबी साहित्य के मुद्रण, संस्कृत एवं अरबी की पाठशालाओं व मदरसों, छात्रवृत्तियों व इन भाषाओं के विद्वानो पर व्यय किया जाने लगा । जब लार्ड टी० बी० मकॉले भारत में गवर्नर जनरल की कार्य परिषद् में विधि सदस्य होकर आये तो उनको शिक्षा परिषद का अध्यक्ष भी बनाया गया । तत्कालीन शासन ने लार्ड मकॉले से शिक्षा के विकास के सम्बन्ध में उनके विचार भी जानना चाहे जो कि एक लम्बे पत्र में उन्होने वर्ष 1835 में प्रस्तुत किए जो कि "लार्ड मकॉलेज मिनिट ऑन एज्यूकेशन" के नाम से जाने जाते हैं ।

अपने उपरोक्त पत्र में मकॉले ने उस समय शिक्षा तथा उसके विकास पर किये जा रहे व्यय पर कटाक्ष किया है । उन्होंने पाया कि 20 हजार रुपया प्रतिवर्ष केवल संस्कृत व अरबी के पुराने अभिलेखों के प्रकाशन पर व्यय किया जा रहा है परन्तु उनको क्रय करने वाला कोई नहीं है । तीन वर्ष में 60 हजार रुपया व्यय किया गया परन्तु केवल एक हजार रुपये की पुस्तकें बिकी । सतहत्तर अरबी छात्रों पर 500 रुपया प्रतिमाह छात्रवृत्ति के रूप में व्यय किया जा रहा था जबकि अपने व्यय से अरबी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या नगण्य थी । जन साधारण द्वारा प्रयोग में आने वाली स्थानीय भाषाओं में कोई साहित्य न था और संस्कृत व अरबी की पुस्तकों में इतिहास व विज्ञान का अभाव था । उसने इस बात की तुलना की कि प्राचीन योरपियन भाषायें हालांकि ग्रीक व रोमन थी, परन्तु उनके माध्यम से शिक्षा का विकास नहीं किया जा रहा था बल्कि अंग्रेजी भाषा में साहित्य, कविता, इतिहास व आधुनिक विज्ञान का समावेश हो चुका था जिसके माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्य में ज्ञान का विकास हो रहा था । अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ही दक्षिण अफ्रीका व आस्ट्रेलिया में शिक्षा की प्रगति हो रही थी । वह ऐसे व्यक्तियों से सहमत न था जिनका कथन था कि चूंकि केवल संस्कृत तथा अरबी भाषाओं में हिन्दू व मुस्लिम कानून व धार्मिक नियम दिये गये हैं अतः इन्हीं भाषाओं के माध्यम से शिक्षा दी जानी चाहिये । मकॉले का तर्क था कि केवल धार्मिक आधार पर संस्कृत व अरबी को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया जा सकता है । उसने इन भाषाओं में दिये कुछ उपदेशों का परिहास भी किया जैसे कि एक गधे के स्पर्श के पश्चात् शुद्धि किये जाने की विधि अथवा एक बकरी की हत्या करने के पश्चात् प्रायश्चित स्वरूप किन-किन मंत्रों का उच्चारण करना आवश्यक है, आदि । उसके अनुसार यह सब लिखने के लिये राजकोष से धन दिया जाना अपव्यय था । लार्ड मकॉले ने कुछ ऐसे भी वाक्य अपने पत्र में लिखे जिनके कारण उसकी अत्याधिक आलोचना होती है । जैसे कि उसने कहा कि आंग्ल भाषा के माध्यम से हम भारत में एक ऐसा वर्ग बना सकते हैं जो कि रंग व खून से भारतीय हो परन्तु अपनी रुचि, आचार विचार, नैतिकता व बौद्धिक रूप से आंग्ल हो । उसका सुझाव था कि तब प्रशिक्षित ऐसे बुद्धि वर्ग के

ऊपर यह छोड़ दिया जाये कि वह भारतीय भाषाओं को समृद्ध करे और पाश्चात्य ज्ञान व इतिहास का प्रसार करे।

तत्कालीन गर्वनर जनरल लार्ड विलियम बेटिन्क ने लार्ड मकॉले के पत्र को पूर्ण रूप से स्वीकृत करते हुए निम्नलिखित आदेश दिए :—

(1) कि भविष्य में शासन की ओर से पाश्चात्य साहित्य व विज्ञान के प्रसार के लिए आंग्ल भाषा माध्यम होगी और भविष्य में ऐसी शिक्षा हेतु ही अनुदान दिया जायेगा।

(2) कि उपरोक्त का मन्तव्य यह नहीं होगा कि किसी भारतीय शिक्षा संस्था को समाप्त कर दिया जाए। यह भी आदेश किया गया कि आदेश के समय जिन विद्वानों अथवा छात्रों को अनुदान मिल रहा था वह मिलता रहेगा परन्तु भविष्य में न नई छात्र वृत्ति दी जायेगी और न किसी विद्वान प्रोफेसर की सेवा निवृत्ति पर उसके प्रतिष्ठानी को वित्तीय सहायता उपलब्ध होगी।

(3) कि भविष्य में संस्कृत व अरबी भाषा में पुस्तकों के मुद्रण हेतु राजकोष से अनुदान उपलब्ध न होगा।

(4) कि इस प्रकार जो धन शिक्षा के प्रसार के लिए उपलब्ध होगा वह भविष्य में केवल आंग्ल साहित्य व इतिहास की शिक्षा जो कि अंग्रेजी भाषा के माध्यम से दी जायेगी, पर व्यय किया जायेगा!

इस प्रकार मार्च 1835 के उपर्युक्त आदेश ने भारत में शिक्षा का एक नया अध्याय खोल दिया जो कि वर्तमान शिक्षा पद्धति का प्रारम्भ कहा जा सकता है।

उपर्युक्त आदेश के पश्चात् ब्रिटिश शासन काल तथा उसके पश्चात् स्वतन्त्रता के बाद भारतीय शासन व शिक्षाविदों का ध्यान निरन्तर शिक्षा में उन्नति करने की ओर जाता रहा है। वर्ष 1935 के आदेश के पश्चात् ब्रिटिश शासन ने प्राथमिक शिक्षा से विश्वविद्यालयीय तक शिक्षा की पद्धति निश्चित करने के सम्बन्ध में अपना उत्तरदायित्व अनुभव करना आरम्भ कर दिया। निश्चित शिक्षा नीति निर्धारित करने का कार्य सर चार्ल्स वुड को दिया गया जिसने अपना प्रतिवेदन वर्ष 1854 में प्रस्तुत किया जो कि "वुड्स डिस्पेच" के नाम से जाना जाता है। उसने जनपद की आम भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाये जाने पर बल दिया परन्तु ऐसी शिक्षा उन शिक्षकों के माध्यम से दिये जाने पर भी बल दिया जो कि अंग्रेजी के माध्यम से आधुनिक साहित्य, विज्ञान व इतिहास का ज्ञान रखते हों और जिनमें अंग्रेजी के माध्यम से हो रहे विकास का ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता हो। इसके लिए आंग्ल ज्ञान को भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने पर भी बल दिया गया जिससे पाश्चात्य साहित्य व ज्ञान का अधिक से अधिक भारतीय जनता लाभ उठा सके। इस प्रकार अंग्रेजी व भारतीय भाषाओं पर वुड के द्वारा समान रूप से बल दिया गया। वुड ने इस बात पर भी बल दिया कि शासन शिक्षा संस्थायें नहीं चला सकता, विशेष रूप से उच्च स्तरीय शिक्षा संस्थायें, अतः ऐसी संस्थायें या तो बन्द कर दी जायें अथवा उनको स्थानीय प्रबन्ध समितियों को हस्तांतरित कर दिया जाए। इसी का परिणाम था कि आगरा कालेज जो कि वर्ष 1823 में एक राजकीय स्वायत्त: संस्था के रूप में आरम्भ हुआ था, वर्ष 1882 में एक ट्रस्ट को सौंप दिया गया तथा बरेली कालेज जो कि वर्ष 1837 में एक राजकीय महाविद्यालय के रूप में आरम्भ हुआ था वर्ष 1870 में बन्द कर दिया गया परन्तु बाद में 1884 में प्राइवेट संस्था के रूप में पुनः विकसित हुआ।

वुड ने धर्म निर्पेक्ष शिक्षा पर भी बल दिया और कहा कि बाइबिल को पुस्तकालयों में उनके लिये उपलब्ध कराया जा सकता है जो उसे पढ़ना चाहें। जो उसके सम्बन्ध में ज्ञान या शिक्षा प्राप्त करना चाहें उनके लिए अध्यापन विद्यालय के समय के पूर्व अथवा बाद में किया जाये। शिक्षकों के प्रशिक्षण तथा नार्मल स्कूलों के खोले जाने पर भी बल दिया गया। महिलाओं को अच्छी शिक्षा दिये जाने पर वुड ने बल दिया और राय साहब मगुन भाई करम चन्द्र द्वारा 20 हजार रुपया दान देकर अहमदाबाद में एक कन्या स्कूल खोले जाने की प्रशंसा की। भारतीय छात्रों की उच्च शिक्षा व चिकित्सीय शिक्षा ग्रहण करने की तीव्र क्षमता को देखते हुए उसने भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना पर भी बल दिया। उसने विशेष रूप से भारतीय आम जनता को तीव्र गति से शिक्षित करने पर बल दिया और कहा कि इस ओर अधिक से अधिक प्रयास करने एवं अनुदान दिये जाने की आवश्यकता है।

भारत में शिक्षा नीति पर वुड डिस्पेच प्रथम प्रतिवेदन था जिसमें प्राथमिक शिक्षा से विश्वविद्यालयीय स्तर तक की शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया था और इसने भारतीय शिक्षा नीति का मूल आधार बनाया है। इसी कारण वुड्स डिस्पेच को "मेगना कार्टा ऑफ इंगलिश एज्यूकेशन इन इन्डिया" भी कहा जाता है।

वुड्स डिस्पेच के कारण भारत में वर्ष 1857 में कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई के प्रथम 3 विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। लाहौर में वर्ष 1869 में तथा इलाहाबाद में वर्ष 1887 में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। धार्मिक शिक्षा देने वाली मिशिनरी संस्थाओं को अनुदान देना बन्द कर दिया गया जिससे मिशनरियों में बेचैनी हुई और अन्त में उन्होंने वर्ष 1878 में लन्दन में आन्दोलन हेतु "जनरल काउंसिल ऑफ एज्यूकेशन इन इन्डिया" की स्थापना की। विश्वविद्यालयीय शिक्षा की तुलना में आम शिक्षा का कम विकास हुआ। उस समय हाई स्कूल, जो कि मेट्रिकुलेशन कहलाता था, की परीक्षा विश्वविद्यालयों के द्वारा ली जाती थी और उच्च शिक्षा केवल बालकों के लिये ही खुली थी। प्रथम बार वर्ष 1877 में कलकत्ता वि० वि० ने अपने दरवाजे छात्राओं के लिये भी खोल दिये और बाद में मद्रास ने वर्ष 1881 में और बम्बई विश्वविद्यालय ने वर्ष 1883 में छात्राओं के ऊपर से प्रतिबन्ध हटा दिया। इस प्रकार महिला शिक्षा की भी आधार शिला सुदृढ़ हो गई। परन्तु मिशनरियों के बढ़ते दबाव के कारण शिक्षा नीति पर पुनर्विचार करने के लिये लार्ड रिपन ने प्रथम भारतीय शिक्षा आयोग का गठन दिनांक 3-2-1882 को किया जिसके अध्यक्ष सर विलियम हन्टर तथा सात भारतीयों सहित 20 सदस्य थे। इसे हन्टर कमीशन भी कहा जाता है।

प्रथम शिक्षा आयोग ने प्राथमिक शिक्षा व नार्मल स्कूलों के फैलाव पर बल दिया। प्रत्येक जनपद में मॉडल स्कूल के रूप में एक हाई स्कूल खोले जाने की आवश्यकता बताई। माध्यमिक स्तर की शिक्षा को दो भागों में बाँटने का सुझाव दिया — एक व्यवसायी शिक्षा तथा दूसरी जिसके माध्यम से उच्च शिक्षा में प्रवेश किया जा सके। उच्च शिक्षा हेतु अनुदान दिये जाने के मानक निर्धारित किये गये। महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिये और अधिक अनुदान दिये जाने पर बल दिया गया। आयोग ने मिशनरी द्वारा शिक्षा में किये जा रहे कार्य को मान्यता दी और अन्य अनुदानित संस्थाओं को मान्यता दी परन्तु उनका प्रशासन व उच्च शिक्षा में अधिपत्य स्वीकार नहीं किया। अशासकीय शिक्षा संस्थाओं के प्रबन्धतंत्र को अधिक स्वतंत्रता दिये जाने का सुझाव दिया गया और उनको स्वतंत्रता प्रदान की कि वे चाहे जिस माध्यम से शिक्षा प्रदान कर सकते हैं। यह भी संस्तुत किया गया कि शिक्षा संस्थाओं के निरीक्षण कार्य के लिये ऐसे भारतीयों जो

कि आवश्यक अर्हता रखते हैं, को अधिक संख्या में भर्ती किया जाये। शासन के द्वारा हण्टर कमीशन की समस्त संस्तुतियां, केवल धार्मिक शिक्षा दिये जाने के सुझाव को छोड़कर, स्वीकार कर ली गई।

लन्दन विश्वविद्यालय के आधार पर भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई थी। वर्ष 1895 मे लन्दन विश्वविद्यालय के पुर्नगठन के फलस्वरूप भारतीय विश्वविद्यालयों के स्वरूप में भी परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की गई। तथापि दिनांक 27 जनवरी, 1902 को "इन्डियन युनिवर्सिटीज कमीशन" की स्थापना की गई। इस आयोग ने विश्वविद्यालयों की कार्य एवं अन्य समितियों के गठन, अध्यापकों के प्रतिनिधित्व के बढ़ाये जाने, कालेजों की मान्यता के मानक तथा छात्रावासों के बनाये जाने पर विशेष बल दिया। इस आयोग ने इन्टर को समाप्त कर मैट्रिक के स्तर को बढ़ाने तथा स्नातक पाठ्यक्रम को तीन वर्षीय करने पर भी बल दिया।

प्रथम अखिल भारतीय स्तर के शिक्षाविदों की एक बैठक तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन द्वारा शिमला में वर्ष 1901 में बुलाई गई जिसमें समस्त प्रदेशों के शिक्षा निदेशकों को भी आमंत्रित किया गया और 15 दिन तक 150 शिक्षाविदों ने विचार विमर्श किया जिसमें लार्ड कर्जन ने निरन्तर भाग लिया। इस सभा द्वारा 150 प्रस्ताव पारित किये गये। अन्य महत्वपूर्ण सुझावों के साथ शिक्षा प्रशिक्षण, रिक्रिएशन तथा छात्रों में अनुशासन पर बल दिया गया। धर्म निर्पेक्ष शिक्षा नीति का पुनः संकल्प लिया गया। लार्ड कर्जन ने उच्च शिक्षा में अत्याधिक रुचि दिखाई और इन्डियन युनिर्वासिटीज कमीशन की संस्तुति के आधार पर दिनांक 4 मार्च, 1904 को "इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल" के द्वारा प्रथम "इन्डियन युनिर्वासिटीज एक्ट" पारित कराया।

नेशनल कौंशिल ऑफ एज्यूकेशन (1906) ने मातृ-भाषा के माध्यम से शिक्षा दिये जाने पर बल दिया परन्तु अंग्रेजी को अनिवार्य विषय बनाये रखने की भी संस्तुति की। धर्म निर्पेक्ष शिक्षा को अपनाते हुए कहा गया कि इस देश की महान परम्पराओं के अनुसार समस्त धर्मों को पूर्ण सम्मान दिया जाना चाहिये।

बड़ौदा के गायकवाड़ ने सर्व प्रथम अपने राज्य में वर्ष 1906 में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा घोषित की थी। उसी के आधांर पर गोपाल कृष्ण गोखले जो कि पूना के फर्गूसन कालेज के प्राचार्य तथा इन्डियन नेशनल कांग्रेस के अध्यक्ष रहे थे तथा इम्पीरियल लेजिस्लेशन के सदस्य थे, ने वर्ष 1910 में अनिवार्य शिक्षा पर एक बिल प्रस्तुत किया परन्तु कुछ आश्वासनों पर वापस ले लिया। पुनः दिनांक 16 मार्च, 1911 को को बिल प्रस्तुत किया गया जिसपर दिनांक 18 व 19 मार्च, 1912 को बहस हुई परन्तु 13 पक्ष तथा 38 विपक्ष में मत आने के कारण पारित न हो सका। फिर भी शासन ने अनिवार्य शिक्षा को सिद्धान्त रूप में मान्यता देने व इस पर कार्यवाही करने का आश्वासन दिया। अस्तु दिनांक 21 फरवरी, 1913 को शिक्षा नीति पर एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसके द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में भी शिक्षा के प्रसार का निर्णय लिया गया तथा पाटशालाओं व मकतबों को भी अनुदान दिया जाना स्वीकार किया गया। शिक्षकों के रिफ्रेशर कोर्स तथा अध्यापक छात्र अनुपात 30 से 40 पर बल दिया गया। उस समय देश में केवल 5 विश्वविद्यालय व 185 कालेज थे। अतः उनमें वृद्धि करने तथा विश्वविद्यालयों में शिक्षा विभागों की भी स्थापना की संस्तुति की गई। उद्योग व व्यवसाय सन्बन्धी विषयों के समावेश पर भी बल दिया गया। यह भी संस्तुत किया गया कि प्रत्येक प्रदेश में उच्च शिक्षा हेतु न्यूनतम एक विश्वविद्यालय भी खोला जाये।

वर्ष 1917 में भारत सरकार ने लीड्स युनिवर्सिटी के कुलपति डा० एम० ई० सेडलर की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया जो कि "कैलकटा युनिवर्सिटी कमीशन" कहलाता है। इस आयोग ने समस्त विश्वविद्यालयों तथा मुख्य शिक्षा केन्द्रों को निरीक्षण किया और 17 माह पश्चात् वर्ष 1919 में 13 खण्डों में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसकी मुख्य संस्तुतियों में इन्टर तक की शिक्षा को विश्वविद्यालयों से पृथक करने व तीन वर्षीय डिग्री कोर्स करने, हाईस्कूल व इन्टर बोर्ड पृथक से स्थापित करने, विद्या परिषद का गठन करने, पूर्णकालिक वैतनिक कुलपति की नियुक्ति करने तथा अंर्तविश्वविद्यालयी बोर्ड के गठन करने एवं मातृ भाषा के माध्यम से शिक्षा दिया जाना था। इन संस्तुतियों ने अगले कई दशक तक हमारे विश्वविद्यालयों के गठन के सम्बन्ध में मार्ग दर्शन किया।

सर फिलिप हार्टोग की अध्यक्षता में गठित समिति (1928-29) ने मुख्य रूप से इस बात पर चिन्ता व्यक्त की कि माध्यमिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्रों को विश्वविद्यालयीय शिक्षा में प्रवेश कराने का होता जा रहा है और विश्वविद्यालयों में ऐसे छात्रों के प्रवेश के कारण जो कि उच्च शिक्षा के लिए योग्य नहीं है, अनुशासन व शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है। अतः इन्डिस्ट्रियल व व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की ओर अधिक संख्या में छात्रों को डाइवर्ट करना आवश्यक है।

वर्ष 1935 में एक अधिनियम के माध्यम से भारत सरकार ने शिक्षा को केन्द्र व प्रदेशों में विभाजित कर दिया जिसके आधार पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस तथा मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, केन्द्रीय विश्वविद्यालय बनाये गये। केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की संस्तुति पर तकनीकी शिक्षा के विशेषज्ञ एबट एवं वुड को बढ़ती हुई शिक्षित बेरोजगारी पर परामर्श देने के लिए वर्ष 1936 में आमंत्रित किया गया। इन्होंने संस्तुत किया कि कम से कम हाई स्कूल तक शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषा होना चाहिए, ग्रामीण क्षेत्रों के स्कूल अपने वातावरण व पर्यावरण से अधिक जुड़े हों, व्यवसायिक शिक्षा के पूर्व सामान्य शिक्षा दिया जाना आवश्यक है, न्यूनतम कक्षा आठ तक सामान्य शिक्षा दी जानी चाहिए और कुछ स्कूलों में कृषि की शिक्षा अवश्य दी जाए।

वर्धा में अक्टूबर 1937 में महात्मा गांधी ने शिक्षा के सम्बन्ध में एक राष्ट्रीय स्तर की बैठक की और भारतीय शिक्षा नीति बनाने हेतु डा० जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में एक समिति गठित की। इस समिति की रिपोर्ट मार्च 1938 में प्रकाशित की गई। इस समिति ने मातृ-भाषा में शिक्षा दिये जाने, सात वर्ष तक अनिवार्य व निशुल्क शिक्षा दिए जाने तथा शिक्षा को हस्त उद्योग, उत्पादकता तथा बच्चे के पर्यावरण से जोड़ने पर बल दिया। इस समिति ने साढ़े पांच घण्टे के प्रतिदिन के अध्यापन कार्यक्रम में 3 घण्टे 20 मिनट हस्त कौशल तथा शेष संगीत, चित्रकला, गणित, भाषा, सामाजिक व सामान्य विज्ञान तथा व्यायाम हेतु निश्चित किया इस समिति ने यह भी अपेक्षा की कि शिक्षा संस्थायें वर्ष में 288 दिन तथा प्रति माह न्यूनतम 24 दिन खुलनी चाहिए।

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने वर्ष 1944 में भारत में शिक्षा की सोचनीय स्थिति के आंकड़े प्रकाशित किए। प्रति व्यक्ति शिक्षा पर कम बजट एवं अशिक्षित व्यक्तियों की बढ़ती हुई संख्या पर चिन्ता व्यक्त की गई। अनिवार्य शिक्षा के साथ प्रौढ़ शिक्षा पर भी बल दिया गया। माध्यमिक शिक्षा को दो धाराओं में विभाजित करने तथा स्नातक शिक्षा तीन वर्षीय करने पर बल दिया गया।

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के तुरन्त पश्चात् भारत सरकार ने विश्वविद्यालयीय शिक्षा के उत्थान हेतु डा० राधा कृष्ण की अध्यक्षता में युनिवर्सिटी एज्यूकेशन कमीशन का वर्ष 1948 में गठन किया। इस आयोग ने अगस्त 1949 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में शिक्षा के उद्देश्य की विस्तार से व्याख्या की गई तथा नैतिक शिक्षा, समाज के साथ सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता, राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता, नेतृत्व व अंतर्राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत करने व अनुशासन स्थापित करने पर बल दिया गया। इस आयोग ने यह भी संस्तुत किया कि शिक्षकों के 4 टियर होने चाहिए, वर्ष में न्यूनतम 180 वास्तविक शिक्षण दिवस हों। तीन वर्षीय डिग्री कोर्स व तकनीकी, चिकित्सा, कृषि, वाणिज्य व विधि के पृथक व्यवसायिक पाठ्यक्रम हों। छात्रों का प्रशासन में अधिक योगदान हो जिससे उनमें उत्तरदायित्व की भावना हो। त्रिभाषायी फार्मूला प्रस्तावित करते हुए एक राष्ट्रीय भाषा के विकास पर बल दिया गया परन्तु यह स्पष्ट किया गया कि यह विभिन्न कारणों से संस्कृत भाषा नहीं हो सकती है।

शिक्षा के विकास हेतु संसाधनों पर सुझाव देने हेतु वर्ष 1950 में गठित समिति ने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के उपरान्त वर्तमान शिक्षण शुल्क की दरों में वृद्धि की संस्तुति के साथ ऐसे मेधावी छात्र जो शुल्क देने में असमर्थ हों, के लिए शुल्क मुक्ति में वृद्धि की संस्तुति की।

भारतीय संविधान (1950) की धारा 30 के द्वारा अल्प संख्यक शिक्षा संस्थाओं को विशेष अधिकार प्रदान किया गया है। धारा 343 द्वारा हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा का स्तर दिया गया परन्तु धारा 345 के द्वारा प्रदेशों को अपनी प्रादेशिक भाषा के चुनाव की छूट भी दी गई तथा धारा 350 ए के द्वारा यह अपेक्षा की गई कि प्रत्येक प्रदेश छात्रों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करेगा।

भारत सरकार ने वर्ष 1951 में श्री बी० जी० खेर की अध्यक्षता में प्राथमिक शिक्षा पर एक समिति गठित की तथा सितम्बर 1952 में डा० ए० लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग गठित किया। अक्टूबर 1956 में डा० सुनील कुमार चटर्जी की अध्यक्षता में संस्कृत आयोग गठित किया। धार्मिक व नैतिक शिक्षा पर विचार करने हेतु श्री श्री प्रकाश की अध्यक्षता में वर्ष 1959 मे एक समिति का गठन हुआ जिसने राष्ट्रीय प्रेम व सर्व धर्म ज्ञान पर बल दिया। इसके द्वारा स्नातक पाठ्यक्रमों में गौतम बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, सुकरात, शंकराचार्य, रामानुज, महावीर, कबीर, नानक. गांधी जैसे धार्मिक व आध्यात्मिक महापुरुषों की जीवनी का अध्ययन प्रस्तावित किया तथा अंतराष्ट्रीय दर्शन का अध्यापन संस्तुत किया। विभिन्न धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन व उनका इतिहास स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के रूप में सुझाया गया। सामाजिक सेवा कार्य उच्च शिक्षा का एक विशिष्ठ अंग बनाये जाने पर बल दिया गया।

श्री देव आनन्द कुमार, सदस्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अध्यक्षता में छात्र अनुशासनहीनता पर विचार करने हेतु गठित समिति ने विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों में योग्यता व श्रेष्ठता के आधार पर प्रवेश किए जाने पर बल दिया। वर्ष 1960 में शिक्षा मंत्रियों की एक बैठक में देश में भावनात्मक बिखराव पर चिन्ता प्रकट की गई और भावनात्मक एकता पर विचार करने हेतु डा० सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई। इस समिति ने सुझाव दिया कि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी

का अध्यापन क्षेत्रीय लिपि या रोमन लिपि में किया जा सकता है परन्तु हाई स्कूल स्तर पर देवनागरी लिपि ही रखी जाए । अखिल भारतीय भ्रमण, अध्यापकों का आपसी आदान-प्रदान, ओपन एयर ड्रामा, सामूहिक गान तथा एन० सी० सी०, सांस्कृतिक कार्यक्रम जैसे कार्यों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए । प्रवेश व छात्रवृत्तियां जातीयता पर आधारित न होकर श्रेष्ठता पर आधारित होनी चाहिए ।

शिक्षा आयोग (1964-66) जो कि छठवां आयोग था, का गठन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष डा० डी० एस० कोठारी की अध्यक्षता में किया गया । इस आयोग के लगभग आधे सदस्य विभिन्न अन्य देशों के थे । अपने 21 माह के कार्य में इस समिति ने विभिन्न वर्गों के लगभग 9000 व्यक्तियों से विचार विमर्श किया और लगभग 100 दिन विभिन्न विश्वविद्यालयों व शिक्षा संस्थाओं में जाकर छात्रों, प्रबन्धकों, शिक्षकों तथा शिक्षाविदों से विचार विमर्श किया । इस आयोग ने शिक्षा के प्रत्येक पहलू पर अपने विचार व्यक्त किए । इसने कार्य अनुभव (वर्क एक्सपीरियन्स) व वोकेशनल पाठ्यक्रमों पर बल दिया, 10+2+3 शिक्षा पद्धति की संस्तुति की, शिक्षा संस्थाओं में कार्य दिवसों को बढ़ाये जाने की आवश्यकता बताई तथा शिक्षा संस्थाओं के समूह बनाये जाने पर बल दिया जिसमें उच्चतर संस्था के साथ निम्न स्तर की संस्थाओं को सम्बद्ध करने का प्रस्ताव था । मेधावी छात्रों का आरम्भ से ही चुनाव करने पर बल दिया गया । पत्राचार के माध्यम से शिक्षा के प्रसार का सुझाव भी रखा गया । इस आयोग ने यह भी अपेक्षा की कि शासन उनकी संस्तुतियों के आधार पर एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्धारित करेगी । अतः वर्ष 1967 में एक समिति गठित की गई जिसमें पहली बार देश के समस्त मुख्य राजनीतिक दलों ने मिलकर शिक्षा नीति पर एक दस्तावेज तैयार किया जिसे केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति ने अंतिम स्वरूप दिया और वर्ष 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई । इस नीति के द्वारा कोठारी कमीशन की अधिकांश संस्तुतियाँ स्वीकार कर ली गई और पिछले दो दशक में यही नीति इस देश में शिक्षा की प्रगति व पद्धति की आधार शिला रही है ।

ग्रामीण उच्च शिक्षा से सम्बन्धित एक समिति ने वर्ष 1969 में ग्रामीण शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की संस्तुति की जिसमें ग्राम विकास सम्बन्धित पाठ्यक्रम हों । केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा वर्ष में दिसम्बर 1970 में मुक्त विश्वविद्यालय (ऑपन युनिवर्सिटी) पर सेमिनार किया । डा० पी० डी० शुक्ला की अध्यक्षता में गठित 10+2+3 समिति ने विस्तार से माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम की रूप रेखा बनाई जिसमें रोज़गार परक पाठ्यक्रमों पर विशेष ध्यान दिया गया ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने उच्च शिक्षा पर एक "पालिसी फ्रेम" 1978 में तैयार किया । इसने तीन वर्षीय पाठ्यक्रम की रूप रेखा का भी सुझाव दिया जिसमें फाउन्डेशन कोर्सेज, कोर कोर्सेज, एप्लाइड कोर्सेज तथा समाज सेवा सम्बन्धी कार्य का सुझाव दिया । सम्बद्ध कालेजों के विकास हेतु अधिक विकास अनुदान पर बल दिया गया । स्वायत्त महाविद्यालयों की स्थापना तथा संस्थाओं को और अधिक शैक्षिक स्वतन्त्रता दिये जाने पर भी बल दिया गया जिससे क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्यक्रम गठित हो सके और उनका अध्यापन किया जा सके । ज्ञान के प्रसार का उत्तरदायित्व उच्च शिक्षा संस्थाओं व विश्वविद्यालयों पर डाला गया । यह सुझाव दिया गया कि विश्वविद्यालयों को कालेजों व स्कूलों में प्रसार व्याख्यानों व प्रशिक्षण देने का उत्तरदायित्व लेना चाहिये । समाज के प्रति उनको अपना उत्तरदायित्व अनुभव करना चाहिये । इस पालिसी फ्रेम में यह भी सुझाव दिया गया कि अधिकांश सेवाओं में प्रवेश हेतु डिग्री की आवश्यकता समाप्त करने पर शासन द्वारा गम्भीरता से विचार करना चाहिये ।

ऊपर मैंने जिन समितियों व आयोगों की चर्चा की, सब ही के द्वारा महिला शिक्षा तथा उनको शिक्षित करने की सुविधा देने और उनके लिये संसगत पाठ्यक्रम बनाने पर बल दिया गया था। कई समितियां केवल महिला शिक्षा सुझाव देने हेतु ही गठित की गई। श्रीमती दुर्गा बाई देशमुख की अध्यक्षता में एक महिला शिक्षा समिति वर्ष 1957 में गठित की गई जिसने वर्ष 1959 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। उसने राष्ट्रीय व प्रादेशिक स्तर पर महिला शिक्षा परिषदों का गठन किये जाने का भी सुझाव दिया। प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिये आर्थिक रूप से पिछड़े परिवारों को कुछ विशेष सुविधा दिये जाने, ग्रामीण अंचल में महिला शिक्षिकाओं को निवास की सुविधा तथा ग्रामीण भत्ता दिये जाने, जहाँ सम्भव हो महिलाओं को अंशकालीन रूप से सेवा में लिये जाने, महिला प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में हाईस्कूल तक की सुविधा दिये जाने तथा समाज सेवी संस्थाओं द्वारा महिला शिक्षा का अभियान चलाये जाने के लिये सहयोग लिये जाने का सुझाव दिया गया। नेशनल काउन्सिल फार वीमेन एज्यूकेशन के द्वारा मई 1963 में "गर्ल्स एज्यूकेशन एण्ड पब्लिक कापरेशन" पर मद्रास के तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री एम० भक्तवत्सलम की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई जिसने अपनी रिपोर्ट वर्ष 1964 में प्रस्तुत की और उसे वर्ष 1965 में प्रकाशित किया गया। इस समिति ने संस्तुत किया कि कन्या शिक्षा संस्थाओं के खोलने में, भवन निर्माण में, महिला शिक्षा के प्रचार आदि में जन सहयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। प्रदेशों को छात्राओं की संख्या बढ़ाने हेतु विशेष अभियान चलाने चाहिये। महिला शिक्षिकाओं को रहने के निवास स्कूलों के समीप दिये जाएँ। महिला छात्रावास बढ़ाये जाएँ। महिलाओं की आवश्यकताओं को देखते हुये पाठ्यक्रम बनाये जायें आदि। महिला पाठ्यक्रम पर परामर्श देने के लिये नेशनल काउन्सिल फार वीमेन एज्यूकेशन ने श्रीमती हन्सा मेहता की अध्यक्षता में एक समिति दिनांक 1 दिसम्बर को गठित की जिसने वर्ष 1964 में अपनी संस्तुतियां प्रस्तुत की। इसने प्राथमिक स्तर पर पाठ्यक्रम में छात्राओं के लिये किसी विभाजन की संस्तुति नहीं की परन्तु इस पर बल दिया कि प्राइमरी स्कूलों में केवल महिला ही शिक्षिका नियुक्त की जाएँ जबकि मिडिल स्कूल स्तर पर पुरुष व महिला शिक्षक साथ-साथ हों। माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम भिन्न हों जिनमें छात्राओं के पाठ्यक्रम में गृह विज्ञान, ललित कला, संगीत आदि का समावेश हो। सेक्स एज्यूकेशन मिडिल व माध्यमिक स्तर पर दिया जाना चाहिये। माध्यमिक व उच्च शिक्षा स्तर पर महिला व पुरुष जन शक्ति की आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम गठित किये जाने चाहिये।

केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने दिनांक 22 सितम्बर, 1971 को डा० श्रीमती फलरेणू गुहा की अध्यक्षता में "स्टेट्स ऑफ वीमेन" पर विचार करने हेतु एक समिति का गठन किया जिसने अपनी रिपोर्ट दिसम्बर 1974 में प्रस्तुत की। इस समिति ने प्राथमिक शिक्षा से उच्च शिक्षा तक विस्तार से अपने सुझाव दिये। इस समिति ने कक्षा 10 तक छात्र व छात्राओं के लिये समान पाठ्यक्रम संस्तुत किये। प्राईमरी स्तर पर साधारण सुई का काम, संगीत, नृत्य दोनों लिंग के छात्रों के लिये अनिवार्य बताया। माध्यमिक स्तर पर छात्राओं को व्यवसायिक पाठ्यक्रम चुनने की स्वतन्त्रता तथा उच्च शिक्षा स्तर पर क्षेत्रीय आधार पर ससंगत पाठ्यक्रम बनाये जाने पर बल दिया गया। छ: से 14 वर्ष तक की आयु की छात्राओं के लिये शिक्षा अनिवार्य की जाये तथा इसके लिये अभिभावकों को प्रेरित किया जाये कि प्रत्येक 6 वर्ष की कन्या पाठशाला में भेजी जाये। जनजाति बहुल क्षेत्रों में चलते फिरते स्कूलों पर भी विचार किया जाये। यदि छात्राओं को निःशुल्क ड्रेस, दोपहर का खाना, पुस्तकें आदि दी जायँ तो यह अभिभावकों के लिये कन्याओं को स्कूल भेजन क लिय भारी प्रोत्साहन हो सकता है। केरल में इसके अच्छे परिणाम निकले हैं जहां सर्वाधिक महिला शिक्षा है। न्यूनतम 50 प्रतिशत महिला शिक्षक भी इस अभियान में सहायक हो सकती हैं।

सेक्स एज्यूकेशन मिडिल स्कूल से ही दी जाने की संस्तुति की गई है। माध्यमिक शिक्षा के अन्त तक महिलाओं के लिये निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था तथा अनौपचारिक शिक्षा को सुदृढ़ किये जाने पर बल दिये जाने की संस्तुति की गई।

सह शिक्षा के सम्बन्ध में भी उपरोक्त समितियों तथा अन्य समितियों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। इस बात पर सब सहमत हैं कि मिडिल स्कूल तक तथा उच्च शिक्षा में सह शिक्षा होनी चाहिये। "स्टेट्स आफ वीमेन" समिति ने तो यह भी विचार व्यक्त किया है कि समस्त स्तरों पर सह शिक्षा हमारा लक्ष्य होना चाहिये परन्तु माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर क्षेत्रीय भावनाओं के अनुरूप अभी पृथक कन्या विद्यालय स्थापित किये जाएँ। उनकी यह भी संस्तुति है कि उच्च शिक्षा स्तर पर पृथक महिला महाविद्यालयों की स्थापना को हतोत्साहित किया जाना चाहिये। इस समिति ने यह भी संस्तुति की है कि पुरुष माध्यमिक स्कूलों में छात्राओं के प्रवेश पर प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिये परन्तु ऐसे विद्यालयों में महिला शिक्षिकायें भी सेवा में रखी जानी चाहिये।

शिक्षा के उपर्युक्त संक्षिप्त इतिहान से विदित होता है कि शिक्षा नीति, शिक्षा पद्धति, प्राइमरी से उच्च शिक्षा स्तर तक के प्रसार व शिक्षा संस्थाओं के लिये संसाधन जुटाने तथा संस्थाओं के प्रशासन पर निरन्तर वर्ष 1854 से चिन्तन होता रहा है। कोठारी आयोग ने तो वह भी सुझाव दिया था कि प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात् प्रगति का मूल्यांकन व बदलते वातावरण के अनुसार परिवर्तन की आवश्यकता होगी। अनिवार्य शिक्षा, निशुल्क शिक्षा, नैतिक शिक्षा, सर्वधर्म व महापुरुषों के दर्शन के तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता, महिला शिक्षा, रोजगार परक पाठ्यक्रमों का समावेश, सीमित तथा श्रेष्ठता के आधार पर प्रवेश, वर्क एक्सपीरिएन्स तथा ससंगत पाठ्यक्रम, आटानोमस स्कूल व कालेज, मुक्त विश्वविद्यालय तथा अनौपचारिक शिक्षा, स्नातक उपाधि की अनिवार्यता को सेवा से पृथक किये जाने, शिक्षा संस्थाओं में कार्य दिवस व अनुशासन की समस्याओं पर निरन्तर चिन्ता व्यक्त की जाती रही है और समस्या के हल हेतु सुझाव दिये जाते रहे हैं। लेकिन परम्परागत शिक्षा की स्थिति में बहुत सुधार नहीं आया है, बल्कि इसके गिरते स्तर, स्थिर पाठ्यक्रमों व अनुशासनहीनता राष्ट्र के लिये चिन्ता का विषय बनता जा रहा है।

हमारे युवा प्रधान मंत्री श्री राजीव गांधी ने प्रधान मंत्री का कार्यभार ग्रहण करने पर 12 दिसम्बर 1984 को राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए कहा था कि वे अपनी जनता को भारत की सबसे बड़ी निधि समझते हैं और हमें इसका आभास प्रत्येक व्यक्ति व परिवार को कराना है। इसके लिए परिवार कल्याण, संतुलित आहार, महिलाओं व बच्चों के कल्याण, बीमारी की रोकथाम, प्राथमिकता व प्रौढ़ शिक्षा, खेलकूद तथा संचार जैसे कार्यक्रमों को वरीयता के आधार पर अभियान के रूप में चलाना होगा। उन्होंने कहा था कि शिक्षा नीति में परिवर्तन की आवश्यकता है जिससे वह राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रीय उत्पादक कार्यों में प्रभावकारी रोल अदा कर सके। उन्होंने यह भी संकेत किया कि वे वर्तमान शिक्षा नीति की सम्परीक्षा करायेंगे और उस पर जनमत संग्रह करेंगे। वर्ष 1984 के चुनाव के पश्चात् पुनः प्रधान मन्त्री का पद ग्रहण करने के पश्चात् दिनांक 5 जनवरी, 1985 को श्री राजीव गांधी ने राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए शिक्षा के महत्व पर अधिक चर्चा की और नई तकनीकी का शिक्षा में प्रयोग, सेवाओं से डिग्री को प्रथम किए जाने, मुक्त विश्वविद्यालय के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति तक उच्च शिक्षा सुलभ कराने तथा शिक्षा को उत्पादकता व समाज से जोड़े जाने जैसे महत्वपूर्ण बिन्दुओं को उन्होंने उठाया। प्रधान मन्त्री ने दिनाँक 23 जनवरी, 1985 की राज्य सभा को सम्बोधित करते हुए शिक्षा में परिवर्तन पर बल दिया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पेरिस में यूनेस्को को सम्बोधित करते हुए भी दिनांक 7 जून 1985 को तथा दिनांक 17 जून को जनेवा में 'इन्टरनेशनल लेबर आर्गेनाइजेशन' को सम्बोधित करते हुए उन्होंने शिक्षा व शिक्षा पद्धति पर चर्चा की। श्री राजीव गाँधी द्वारा शिक्षा नीति के परिवर्तन में रुचि दिखाये जाने के फलस्वरूप सम्पूर्ण देश

में एक तीव्र प्रतिक्रिया हुई और जनवरी 1985 में उनके कार्यालय में प्रत्येक वर्ग के जनसमुदाय से व्यक्तिगत रूप व परिषदों की ओर से सुझाव के लगभग 1000 पत्र प्राप्त हुए जिसमें शिक्षक, छात्र, शिक्षाविद, शिक्षा प्रबन्धक, उद्योगपति, साधारण व्यक्ति तथा शिक्षक संघ आदि का प्रतिनिधित्व सम्मिलित है। केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने एन० सी० ई० आर० टी० तथा नीपा की सहायता से शिक्षा की वर्तमान स्थिति, उद्देश्य तथा हमारे सामने जो चुनौतियाँ हैं, पर एक परिपत्र तैयार किया जिसे लोक सभा के सामने दिनांक 19 अगस्त, 1985 को प्रस्तुत किया गया। बाद में दिनांक 29 तथा 30 अगस्त, 1985 को शिक्षा मन्त्रियों ने उस पर विचार किया एवं उस पर विस्तार से जन साधारण में वितरित कर उनके सुझाव प्राप्त करने का निर्णय लिया गया।

उत्तर प्रदेश में भी शिक्षा नीति के सन्दर्भ में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। शासन के द्वारा शिक्षा की चुनौती नीति सम्बन्ध परिप्रेक्ष्य'' की कई हजार प्रतियाँ अंग्रेजी, हिन्दी तथा उर्दू में छपवा कर निशुल्क वितरित की। जिलाधिकारियों तथा जिला विद्यालय निरीक्षकों के सहयोग से प्रत्येक जनपद में गोष्ठियां की गई जिनमें विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों ने भाग लिया तथा अपने सुझाव दिये। उच्च शिक्षा संस्थाओं ने भी इसमें सक्रिय भाग लिया। समस्त विश्वविद्यालयों, 100 से अधिक महाविद्यालयों तथा दो उच्च शिक्षा क्षेत्रीय कार्यालयों के द्वारा शिक्षा के प्रत्येक पहलू पर गोष्ठियां की गई। प्रादेशिक स्तर पर 'कार्यकारी दल' प्राइमरी से उच्च शिक्षा तक प्रौढ़ शिक्षा, महिला शिक्षा, शिक्षक प्रशिक्षण, वित्तीय संसाधन आदि के संबंध में गठित किये गये। इन कार्यकारी दलों ने विभिन्न गोष्ठियों में व्यक्त विचारों का विश्लेषण किया और प्रतिवेदन तैयार किया जिस पर नवम्बर 1 से 3, 1985 को लखनऊ में तिलक हाल में विचार विमर्श किया गया। प्रांतीय स्तर की इस गोष्ठी में विभिन्न परिषदों, वर्गों, शिक्षा विदों तथा जनता के प्रतिनिधियों ने अपने अपने विचार व्यक्त किये और सुझाव दिये। इन सुझावों को अब संकलित कर केन्द्रीय सरकार को भेजा जायेगा जहाँ इसी प्रकार प्रत्येक प्रदेश से सुझाव प्राप्त होंगे। इस प्रकार शिक्षा नीति के सम्बन्ध में पूरे राष्ट्र में एक जन जागरण की प्रक्रिया अपनाई गई है और नीति बनाने से पूर्व आम जनता से पूछा गया है कि वह किस प्रकार की शिक्षा अपने बच्चों को दिलाना चाहती है। छात्र-छात्राओं से पूछा गया है कि उनकी शिक्षा से क्या अपेक्षा है। व्यवसाय से जुड़े व्यक्तियों ने बताया है कि उनको किस प्रकार की जन शक्ति की आवश्यकता है।

परन्तु नई शिक्षा नीति का स्वरूप चाहे जो हो, अध्यापक की भूमिका सदैव प्रमुख रही है और रहेगी। चाहे जैसी नीति बना दी जाए, यदि अध्यापक द्वारा उसका सचाई के साथ कार्यान्यिवयन नहीं किया जाता है तो कोई परिवर्तन आने वाला नहीं है। अब तक हुई गोष्ठियों से जो विभिन्न विचार व्यक्त किये गये उनमें यह भी है कि बहुत से विद्यालयों, महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में कुछ अध्यापक कक्षाओं में जाते ही नहीं हैं। उनमें से बहुत से अपने व्यक्तिगत व्यवसाय, कोचिंग संस्थाओं व प्राइवेट ट्यूशन को अधिक महत्व देते हैं। भौतिक वाद की प्रवृत्ति अध्यापन कार्य में भी बढ़ रही है। हम गुरु की परम्परा तथा महिमा को भूलते जा रहे हैं। आज हमारा शिक्षक अपने छात्रों को अपने व्यक्तित्व द्वारा प्रभावित करने में अपने को असमर्थ समझने लगा है। जब हममें ही नैतिकता, विद्वता तथा आचरण का अभाव होगा तो छात्रों को परीक्षा में उत्तीर्ण कराने के अतिरिक्त और अधिक हम क्या कर सकेगें। पूर्व में भी अध्यापक आर्थिक दृष्टि से कमजोर रहा है परन्तु उसमें आत्मबल, नैतिकता तथा नेतृत्व का अभाव न था। उसने छात्रों को शिक्षा देने के साथ-साथ समाज को नेतृत्व भी प्रदान किया है। उसने अपने धन के बल पर नहीं बल्कि अपने गुणों के आधार पर समाज से आदर प्राप्त किया है। अतः मुझे पूर्ण आशा है कि जब हम एक नई शिक्षा नीति व समाज में शिक्षा के माध्यम से परिवर्तन की बात कर रहे हैं, हम शिक्षक अपने उत्तरदायित्व व कर्त्तव्यों के पालन में पीछे नहीं रहेगें!

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 1, P. 1-5
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-१, पृ० १-५

A CHEMICAL STUDY OF SOME MIXED LIGAND COMPLEXES OF COBALT (II)

Mrs. SUNITA SHARMA.
Department of Chemistry, M. B. Govt. P. G. College, Haldwani (Nainital) U. P.

सारांश

हाइड्राजीन और इसके डेरीवेटिव्ज रसायनशास्त्र के यौगिक निर्माण के क्षेत्र में एक बहुत ही रोचक भूमिका निभाते हैं क्योंकि ये जातियां किसी धातु आयन से बहुत सारे अलग अलग तरीकों से जुड़ सकती हैं। कोबाल्ट (II) के मिकस्ड लीगेंड यौगिकों में ये यूनीडेन्टेट जाति की तरह व्यवहार करते हैं। चुम्बकीय और लीगेंड फील्ड स्पेक्ट्रा के आंकड़े इन यौगिकों के हाई-स्पिन आक्टाहीड्रल रचना की पुष्टि करते हैं। तत्व परीक्षण से $Co(L)_2(A)_2$ सूत्र का प्रतिपादन होता है। इन यौगिकों में एलीफेटिक अम्ल (A) प्राथमिक तथा हाइड्राजीन्स द्वितीयक लीगेंड की तरह प्रयोग किये जाते हैं।

ABSTRACT

Hydrazine and its derivatives play a very interesting role in the field of co-ordination chemistry because of the variety of ways in which these species can be bonded to the metal ion. In the mixed ligand cobalt (II) complexes, these species act as unidentate ligand. The magnetic and ligand field spectral data are in confirmity with the high-spin octachdral structure of these complexes. On the basis of elemental analysis the complexes have been formulated as Co $(L)_2$ $(A)_2$. In these complexes aliphatic acid(A) is used as a primary ligand and hydrazines as secondary ligand.

INTRODUCTION :

In the previous studies the author (1. 2) has synthesised and characterised some new mixes ligand complexes of Ni (II). and cu (II). In the present communication the complexes of Co (II) with hydrazine (hy), dimethyl hydrazine (Me_2hy) and dicarboxylic acids have been prepared and studied. The complexes are found to be high-spin octahedral in structure.

EXPERIMENTAL :

All the chemicals used were of Anal R grade. Hydrazine (Fluka) and dicarboxylic acids were used as supplied while the pure dimethyl hydrazine was prepared from dimethyl hydrazine hydrochloride as reported earlier (3). The salts and complexes of Co (ii) were synthesised by the methods of Battistoni et. al (3) and sharma (4).

RESULTS AND DISCUSSION :

The elemental analysis confirms the formula Co $(L)_2$ $(A)_2$ where L=hy or Me_2hy and A=oxalato, malonato or citrato ions (Table-1). The complexes are stable and insoluble in most of the organic solvents.

In the i. r. spectra of these complexes ν asy and ν sym of Coo appear at=1600 Cm— and 1410 Cm—1 respectively which indicate that the oxygen atom of the Carboxylato group takes part in the coordination (5). On complexation there is only a slight shift in NH_2-vibrations towards lower frequency (6. 7.). In these complexes hy and Me_2hy behave as unidentate Ligand (8) In low vibrational spectra a number of strong and medium bands are observed in the region 490-310 cm—1 which are assigned to ν (M-N) and ν (M-O) (Table-1) by comparing the spectra of free acids, their metal salts and hy and me_2hy complexes (9). Due to the formation of m-o bond C-o bond is more lengthened and C=O bond is shortened resulting in the shift of (C-O) stretching and C=O stretching to lower and higher frequencies respectively.

The magnetic moment data (4.79 to 5. 10 EM) show that all these complexes have three unpaired electrons indicating a high-spin octahedral configuration (10) (Table-1).

Octahedral Co (ii) ions have the ground term $^4T_{1g}$; three transitions are usually observed in its complexes $^4T_{1g}$ (F) ——→ $^4T_{2g}$ (F)(ν_1); $^4T_{1g}$ (F)—→$^4A_{2g}$ (F) (ν_2) and $^4T_{1g}$ ——→ $^4T_{1g}$ (p) (ν_3). In lower symmetry viz., D_{4h} the ν_1 band is observed to split into two components
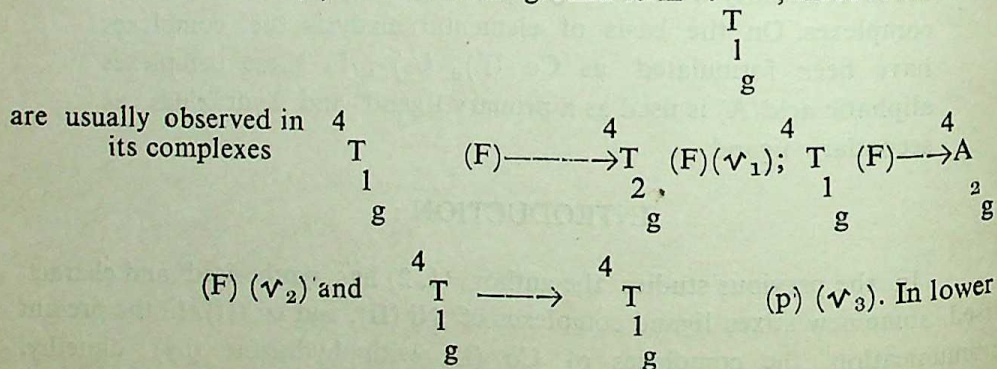
(11) ($^4B_{2g}$; ^4E_g). ν_3 is also expected to split into $^4A_{2g}$ and ^4E_g (P). The ν_2 transition in octahedral stereochemistry. Sometimes transforms to $^4B_{1g}$ in D_{4h} symmetry. The electronic spectra of Co (ii) complexes show bands in the region 6370-7270 cm^{-1} (ν_1) 8580-9250cm^{-1} (ν_2) accompained by a shoulder in most of the cases in 15,040-17,240 cm^{-1} region and the third transition (ν_3) has been found to split in most of the cases and their absorption bands appear in the 17, 290-18,600 cm^{-1} regions. These transitions (Table-2) have been assigned on the basis of D_{4h} symmetry.

From the magnetic moment values and electronic spectral data it has been concluded that the cobalt (ii) complexes of these ligands have high-spin octahedral configuration.

ACKNOWLEDGEMENTS.

The author is thankful to C.S.I.R., New Delhi for financial assistance, Dr. P. C. Jain, Department of Chemistry, Meerut College Meerut for valuable suggestions and Dr. M.K Rastogi. Principal, M. B. Govt. P. G. College, Haldwani for providing Lab. facilities.

TABLE—1

Analytical data, magnetic moments and i. r. absorption frequencies (cm^{-1}) of the complexes of Co (II).

Compound	Found (Calcd.) Metal%	C%	H%	N%	γ eff B.m.	ν (N-N)	ν (M-N) ± (O-C=O)	ν (M-O) ± ring deff.
Co $(hy)_2$ $(OX)_2$	19.41	15.24	2.84	18.74	4.79	920s	480sbr	310s
	(19.71)	(15.76)	(2.67)	(18.40)				
Co $(hy)_2$$(succ)_2$	16.96	26.94	4.78	15.62	4.88	930s	422s	340m
	(16.64)	(27.04)	(4.50)	(15.78)			460s	
Co$(hy)_2$$(mal)_2$	17.94	22.92	3.42	17.24	4.99	935m	488m	340s
	(18.02)	(22.35)	(3.67)	(17.13)				

$Co(hy)_2(cit)_2$	11.73	28.88	3.31	11.56	5.05	930m	485s	324m
	(11.51)	(28.53)	(3.97)	(11.21)				
$Co(Me_2hy)_2(ox)_2$	16.42	26.98	2.34	15.98	4.97	935m	490s	320s
	(16.60)	(27.01)	(2.25)	(15.77)				
$Co(Me_2hy)_2(succ)_2$	14.62	34.44	5.81	13.88	4.96	940m	432s	336m
	(14.34)	(34.67)	[5.84]	(13.62)			464s	
$Co(Me_2hy)_2(mal)_2$	15.24	31.65	5.43	14.81	5.10	940m	480w	330w
	(15.38)	(31.33)	(5.22)	(14.62)				
$Co(Me_2hy)_2(cit)_2$	10.13	34.38	5.16	10.23	4.97	920m	476m	330m
	(10.54)	(34.24)	(5.01)	(10.01)				

TABLE—2

Electronic spectral data of cobalt [ii] complexes.

Complex	$^4T_{2g} \longrightarrow$				
	$^4E_{2g_1}$	$^4E_{g_2}$	$^4B_{1g}$	$^4E_{g_3}$	$^4A_{2g}$
$Co(hy)_2(ox)_2$	6,940	9,010	16,390sh	18,500	23,810
$Co(hy)_2(succ)_2$	6,370	8,580	15,040sh	18,260	23,610
$Co(hy)_2(mal)_2$	6,480	8,730	15,270sh	17,290	23,530
$Co(hy)_2(cit)_2$	6,470	8,730	—	—	20,620
$Co(Me_2hy)_2(ox)_2$	7,270	9,250	16,390sh	18,600	23,530
$Co(Me_2hy)_2(succ)_2$	6,990	9,010	17,240sh	18,500	23,670
$Co(Me_2hy)_2(mal)_2$	7,120	9,220	—	18,180	23,530
$Co(Me_2hy)_2(cit)_2$	7,140	9,190	—	—	20,830

REFERENCES :

[1] Sharma [Mrs] Sunita, Jour. U.P. Govt. Acad. Soc., 1984-85. Vol. I, 16-20.

[2] Sharma [Mrs] Sunita, Proc. Nat. Acad. Sci., India, 1985-86, 55[56 [A] (in press)

[3] Sharma [Mrs] Sunita, ph. D. Thesis, "Spectra and Electronic structure of some metal complexes of hydrazine and its Deriviatves." Meerut University, Meerut, 1982

[4] Battistoni, C. Ciullo, G., Mattogona, G., Monaci, A. and Tarli, F., Gazz. Chim. Italiana, 1971, 101,661.

[5] Flett, M.st., J. Chem. Soc. 1951, 1962.

[6] Giguera, P. A. and Liu, I. D., J. chem, phys. 1952, 20,136

[7] During J. R., Chatterjee, S., Castere, J. M. and Odom J.D., J. Inorg. Nucl. Chem., 1972, 34, 1805

[8] Sacconi, L. and sadatin, A. J. Inorg, Nucl. Chem; 1963, 25. 1389.

[9] Bertin, E. P., Nakagawa, I., Mizushima, S., Lane. J. J. and Quagliano, J. V., J. Amer. Chem. Soc., 1950, 80. 525.

[10] Figgis, D. N. and Nyholm, R. S. J. Chem. Soc., 1959, 338.

[11] Agnew N. H. Collins, R. J. and Larkworty L. F., J. Chem. Soc. [DaltonTrans] 1970. 292.

—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1, P. 6-9
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-१, पृ० ६-९

CHEMICAL CONSTITUENTS OF SOME ANTICANCER AND ANTITUMOR PLANTS OF EUPHORBIA GENERA

N. C. GUPTA AND R. K. BASLAS°
Department of Chemistry, Govt. P. G. College, Agastyamuni Chamoli (U.P.)

सारांश

यूफोरबिया मिलि चेस डेस मायलिन्स, यूफोरबिया टिरूकाली लिन एवं यूफोरबिया लेक्टिया हेम से अनेक डाई व ट्राई टर्पीन्स, स्टीरोयड्स एन्थोसायनिस, फ्लेबोनोयड्स तथा लम्बी श्रृंखला वाले प्राथमिक एल्कोहल्स प्राप्त किये गये। उक्त सभी की उपस्थिति क्रोमेटोग्राफी एवं स्पैक्ट्रोग्राफी के आंकड़ों के आधार पर की गयी है।

ABSTRACT

Several di-& tri terpenses, steroids, anthocyanins, flavonoids and long chain primary alcohols have been isolated from Euphorbia millii ch. Des. Moulins, E. tirucalli L. and E. Lactea Ham. These were identified by employing various techniques of chromatography and by spectroscopic studies.

Euphorbia is a large genera of the family Euphorbiaceae, representing hundreds of species, are distributed in Europe, Africa and Asia, mostly in temperate region, except in Arctic region. The various species may be herbs, shrubs or small trees of different habitat containing latex. Various species of this genera have been examined for their chemical constituents present in them and also for theirbiological aciivity.

The different air dried powdered parts of these plants were extracted with petroleum ether (60-80^{c}) and ethyl alcohol (98%). Compounds isolated by the usual method i. e. fractional crystallisation and were separated by preparative TLC and column chromatography and their identification have been confirmed by Co-TLC, mmp, IR, UV, NMR & MS with authentic samples.

The anticancer and antitumor activity of these plants is due to the presence of various di—& tri terpene phorbol derivatives.

°Head of Chemistry Deptt. Govt, Raza P. G. College, Rampur, U. P.

TABLE-1. COMPOUNDS ISOLATED FROM EUPHORBIA MILLII, E. TIRUCALLI & E. LACTEA.

Plant	Part	Solvent used for extraction	Compounds Isolated	Reference
1--Euphorbia millii Ch.	Stem	Petroleum ether	B Sitosterol	4
Des. Moulins		(60-80°)	β-Amyrin acetate	5
			Euphorbol	6
			Euphorbol hexacosonoate	7
			24-Methylene cycloartenol	8
			Tinyatoxin	9
			Ingenol triacetate	10
			12-Deoxyphorbol-13, 20-diacetate	9
	Defatted Stems	Ethanol	Delphi nidin-3, 5—diglucoside	11
			Tulipanidin-3, 5-diglucoside	11
			Kaempferol	12
	Leaves	Pet. ether (60-80°)	24-Methylene cycloartenol	8
			B-sitosterol	4
			Euphol	6
			Euphorbol	6
			12-Deoxy 4 β hydroxy phorbol 13-dodecanoate–20–acetate	13
2—E. tirucalli Linn	Root	Pet. ether (60-80°)	Euphorbol	6
			Euphorbol hexacosonoa te	7
			n—Hexacosanol	14
			12-Deoxy phorbol-13-O-phenyl acetate-16-O-a-methyl butyrate-20-acetate	15
			Taraxerone	16
			20-O-Acetyl resiniferonol-9, 13, 14-orthophenyl acetate	17
			Tinyatoxin	9
			Tulipanidin-3, 5-diglucoside	11
			Cyanidin—3, 5—dig'ucoside	11

	Bark	Pet. ether (60-80°)	Cycloartenol	18
			24-Methylene cycloartenol	8
			β—Sitosterol	4
			Taraxerone	16
			Ingenol triacetate	10
			Euphorbol	6
			12-Deoxy-4 β-hydroxy phorbol—13-phenyl acetage-20-acetate	9
3-E. Lactea Ham	Aerial Parts	Pet. ether (60-80°)	24-Methylene cycloartenol	8
			Euphorbol hexacosonoate	7
			Tinyatoxin	9
			Ingenol triacetate	10
			12-Deoxy-phorbol-13 (2-methyl butyrate)-20-acetate	19
			12-Deoxy-4 β-hydroxy-phorbol -13-dodecanoate 20-acetate	13
			Resiniferonal-9, 13, 14-ortho Phenyl acetate.	17
	Root	Pet. ether (60-80°)	24—Methylene cycloartenol	8
			Euphorbol hexacosonoate	7
			Tinyatoxin	9
			12-Deoxy phorbol 13, 20-diacetate	9

REFERENCES :

1. Baslas, R. K. & Agarwal, R. , *I. J. Pharm. Sci*, 1980, 42 (2), 66.
2. Baslas, R. K. & Agarwal, R. , *I. J. C. Sec. B*, 1980, 19 (8), 717.
3. Baslas, R. K. & Agarwal, R. , *Current Sci*. 1980, 49 (8), 311.
4. Jain, T. C. & Banks, C. M. can, *J. Chem.*, 1968, 46, 2325
5. Aynehchi, Y. , Mozatabah, M. & Yazdizadeh, K. ,*J. Pharm Sci*, 1971, 60, 292.
6. Rishl, A. K. , George, A. & Kapoor, R. , *Planta medica*, 1979, 35, 193.
7. Azimov, M. A. ,*Khim Prir Soedin*, 1970, 4, 2136.
8. Lavie, D. & Jain, M. K. , phytochemistry, 1968. 7. 657.
9. Evans, F. J. & Schmidt, R. J. *Phytochemistry*, 1976, 15, 333.

10. Zechmeister, K. , Brandl, E. , Hoppe, W. , Hecker, E. , opferkuch, H. J. & Adol W. , *Tetrahedron Lett.* , 1970, 47, 4075.

11. Sen, D. N. , Sharma, K. D. & Chawan, D. D. , *Current Sci* , 1970, 39, 4075.

12. Gupta, R. K. & Mahadevan, V. , *Indian J. Pharm.* , 1967, 29, 152.

13. Kinghorn, A. D. & Evans, F. J. , *J. Pharm. Pharmac.* , 1975 27, 329.

14. Pradhan, B. P. & Khastgir, H. N. , *J. Indian Chem.* Soc. , 1969, 46. 331.

15. Schmidit, R. J. & Evans, F. J. , *Experimentia,* 1977, 33, 1197.

16. Hui, W. H. & Sung, M. L. , *Aust. J. Chem.* , 1968, 21, 2137.

17. Schmidt, R. J. & Evans, F. J. , *Phytochemistry,* 1978, 17, 1436.

18. Panscorbo, S. & Hammer, R. H. , *J. Pharm. Sci.* , 1972, 61, 954.

19. Schmidt, R. J. & Evans, F. J. , *Lloydia,* 1977, 40, 225.

—

Jour. U. P. Govt. College. Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1, P. 10-12
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-१, पृ० १०-१२

DEFECTS AND GRAIN BOUNDARIES IN POLLY-CRYSTALLINE Si SOLAR CELL

S. C. SAH
Deptt. of Physics, Govt. Raza P. G. College, Rampvr

सारांश

सामान्य उपयोग के लिये कम लागत में सिलि्फोन सोलर सेल प्राप्त करने हेतु हाल में की गयी ग्रोथ तकनीक की प्रगति की समीक्षा की गयी है तथा सिलिकोन सब्स्ट्रेट में डिफेक्ट्स एवं ग्रेन बाउन्ड्रीज के कारण फोटो-वोल्टिक ह्रासों की विवेचना की गयी है ।

ABSTRACT

Recent advances in growth techniques for obtaining low cost pollycrystalline Si Solar Cell have been reviewed and photovoltaic losses due to the defects and grain boundaries are discussed.

During the recent years though significant advances have been made in increasing the efficiencies of Solar Cells, several varities of materials have been used including Cdszns, GaAs/ GaAlAs, only Si Solar Cells/panels have advance to the level of large scale production. Therefore much emphasis has been given to reduce the cost of the material used. Pollycrystalline Si (Solar grade Si-Si of low purity) shows much potential in this direction. As it possesses desirable physical and chemical properties (abundance, stability etc.) while it shows great promise of reduced cost due to simple growing techniques. The main disadvantage of using pollycrystalline Si as a solar substrate is that the efficiencies obtained are lower than that with pure Si. These facts have attracted many scientists to investigate the different growing techniques, electronic and physical process taking place due to the presence of defects/ grain boundaries and effect of grain size in fabrication of a pollycrystalline Si Solar Cell. [8,10]. Recent advances in growth techniques show that the efficiences of pollycrystallinc Si solar cell can approach that of a single crystal cells (7, 10%) by having a degree of control over defects and impurities. Most of the following techniques are high speed growth techniques relative to single growth of a crystal. Various techniques for growing potentially low cost pollycrystalline Si substrates have been developed.

(1) Thin Film—A Si film is deposited on a substrate of lower grade Si or other material. A large no. of techniques via expitaxial growth, Dip coating or SCIM on ceramic or graphite substrates have been used. [1, 2]

(2) Ignot Techniques—It is basically a casting process where a melt is allowed to cool and solidify. Wacker silso, Heat exchanger method (HEM) and SEMIX are the techniques utilizing casting. Wacker silso is produced by Germany. HEM technique allows to draw excellent crystals without movement and is one of the most promising. [3, 4, 5]

(3) Sheet Si—Techniques for rapid growth of thin Si ribbons as EFG, RTR, web dendrite have been developed. Si in this form is very well suited for Solar Cells. The EFG (Edge defined film-fed growth) process uses a graphite die to shape the melt at the growing interface. Recently Taylor described very attractive polygonal ribbons which supress edge effects. [6] Webdendrite is essentially a seeded growth from the melt contained in a crucible : spaced dendrites are used to control ribbon width and they result in multiple twinning within the ribbon thickness.[7] RTR (ribbon to ribbon process) involves two steps CVD deposition of Si film on M O substrate, and laser annealing of the film which has been detached from the substrate due to freezing contraction. [9] Ultrafast quenching, ribbon from cylinder, ribbon from powder are the techniques in earlier development stages.

The above techniques may give acceptable material for solar cells. When a solar cell is fabricated the presence of defects and grain boundaries introduces increased recombination of the carrier in the base region, which in turn reduces the minority carrier diffusion length Ln and short circuit current density Jsc. There are also generation, recombination and tunneling processess take place in the space charge region. Moreover defects and grain boundaries (g/b's) crossing the junction can act as shunts. These processes lead to a fall in open circuit voltage (Voc) and fill factor (FF.), So to have a good solar cell of high efficiency, the defect/gb's density must be low.

In wacker silso grain sizes range from fraction of a millimeter for small grain substrates to few millimeters for large grain substrates. In the middle of the casting most grains are columnar. As the grain size increases intra-grain defects predominantly dislocations start to appear whose density vary from grain to grain. RTR have very large grains from few millimeter wide and running nearly the whole length of the ribbon=12". Dislocation density ranges fom 10^5 to 10^6 Cm^{-2}.

In pollycrystalline substrate having low impurity content, the photovoltaic losses are due to the structural defects. In small grain substrates having

low intragrain densities the grain boundary effects limit the cell parameters Voc, Jsc, FF. In a columnar structure of grain boundaries having grain size dg, the junction space charge region penetrates along the grain boundaries instead of being flat. The minority carrier diffusion, length Ln is reduced if dg∠1 mm. The dependence of Ln en dg has been studied by Fossum. Ln decrease for small grains causing a reduction of cell efficiency. [11] In coherent (large angle) grain boundaries reduce efficiency very much while coherent g/b's (small angle) as well as twins do not. As the grain size increases inter-agrain defects dominates and control the cell performance: Baghdadi studied the dependence of Ln on dislocations and found that good solar cells could be obtained if dislocation density is lower than 10^6 Cm^{-2} and twin density lower than 10^3 Cm^{-1} [12]. The segregation of impurities in grain boundaries which can be viewed as impurity traps have little effect on efficiency. Thus in large grain substrates defects density variation from grain to grain and presence of dislocation boundaries also affects the cell response.

The photovoltaic losses can be determined for various types of defects/gb's and if only one defect is present a detailed experimental work can help for predicting cell parameters for a given density. The effect of nature of defects/gb's on cell parameter vary from substrate to substrate and its experimental study may give valuable information for evaluating the potential of pollycrystalline si solar cell.

REFERENCES

1. T. L. , Chu, etal. IEEE Trans. Electron Devices, Ed–24, 1977, 442.
2. S. B. Schuldt, J. D. Heaps etal. Proc 15 th IEEE photovoltaic specialists conference, 1981, 934.
3. C. P. Khattak and F. Schmid, proc. 14 th IEEE photovoltaic specialists conference, 1980, 484.
4. J. Lindmayer, Proc. 12 th IEEE photovoltaic specialists conference 1976.
5. J. Lindmayer and Z. C. Putney, 14 th IEEE photovoltaic specialists conference, 1980, 208.
6. Taylor, 14 th IEEE photovoltaic specialists conference 1981,
7. R. G. seiderostricker, R. H. Hopkins, J Cryst Growth 50 (1980) 221.
8. B. L. Sopori, Proc of SPIE vol 248 Role of Electro-optics in photovoltaic enery conversion, 1980, 8.
9. Proc 13th TEEE photovoltaic Sp. Conf. Washington 1978, 363.
10. H. C. Card and E. Yang IEEE, Trans, Electron Devices Ed–29, 1977, 397.
11. Fossum, Proc of 14 th IEEE photovoltaic specialist conference Sni Diego, p. 184, 1980.
12. Baghadadi, Proc of 13 th IEEE P S C Washington 1978.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1. P. 13-20
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६ खंड-१ पृ० १३-२०

STATUS OF OAK-PINE-SAL FOREST AT THE TRANSITIOAL ZONE OF GARHWAL HIMALAYA,

N. P. Chandra Rao, K. S. Negi and N. S. V. Prasad Rao
Deptt. of Botany, Govt. P. G. College, Kotdwara

सारांश

लैन्सडाउन वन-प्रभाग की दो विभिन्न ऊँचाइयों वाले अंचल में उनके उत्तर-पूर्वी एवं दक्षिण-पश्चिमी ढलानों पर स्थित वन उपज की पारिस्थिति की अवस्था के अन्तर एवं मृदा में पाये जाने वाले कार्बन एवं ह्यूमस की मात्रा का अध्ययन ।

ABSTRACT

Differences in the forest vegetation of 'North-East Facing Slope' (NEFS) and 'South-West Facing Slope' (SWFS) at two sites situated at two elevations in Lansdowne forest division have been noted for phytosociological, soil carbon and humus status.

INTRODUCTION

Lansdowne forest division being one of the important forest divisions of Western Himalayas comprises a variety of vegetations in the altitudinal range of 500 to 2000 m above MSL. The vegetation of this region is interesting in its ecological features as it represents a sort of temperate climate in the sub-tropical zone. The major topographical features are known to play a significant role in determining the structural characters of the vegetation [Whittaker, 1956, 1960; Whittaker and Niering, 1965). Killingbeck and Wali [1978], while working on North Dakota Gallery Forest revealed the importance of slope angle and slope position on the plant distribution. Little information is, however, available on the seasonal Fluctuations in the carbon and humus content of the forest soil, Schnitzer and khan [1972] have reviewed in detail the methods used in the physical and chemical analysis of humus and its influence on the regeneration of vegetation, The present study was carried out to evaluate the differences in the forest vegetation at the lower and upper altitudinal Zones with their respective NEFS and SWFS. In addition, seasonal fluctuations in the humus and carbon contents in the soil was also studied.

STUDY AREA AND METHODS

Outer Himalayan ranges exhibit low local relief and are not influenced by large bodies of water. The Lansdowne forest area covering 4846 ha. lies about 45 km. North-East of Kotdwara [29° 37' to 30° 8' North Latitude and 78° 10' to 78° 43' east longitude], with an altitude ranges from 500 m to 2000 m. The average rainfall [annual] is 2168,5 mm, the months of June, July, August and September are the wettest accounting for more than 75% annual precipitation. After September each year, the temperature starts declining reaching the minimum in January. Average maximum temperature ranges between 37°C and 15°C while the average minimum temperature between 20°C and 10°C in summer and winter seasons respectively. Limestone, quartzite and shale are the principal rock types. A group of sedimentaries comprising of phyllites, quartzites and calcareous quartzite or siliceous limestone also occur in the area [Puri, 1950].

The two study sites were located on the either side of Bhadalikhal in Lansdowne forest range [site I at higher elevation. i. e., 1500-2000 m and site II at lower elevation, i. e., 1000- 1500 m which were spreaded over 10 km. in distance). On each site, the two selected slopes are referred as NEFS and SWFS. Further, each slope was sub-divided into upper hillocks and lower ravinous area.

The phytosociological analysis of the forest was performed by using 10 x 10 m. quadrats. The size of the quadrat was determined by species-area curve following the methods of Braun- Blanquet (1932), and Misra and Puri (1954). On each of the two sites, a total of 100 quadrats were studied for each of the two slope positions. On each of the sites, the number of the quadrats was fixed according to Kershaw (1973). Diversity index in the presently studied forests was calculated following the method of Mc Intosh (1967). Soil samples were collected at monthly intervals from January, 1983 to December, 1983. Surface (O-5.0 cm. depth) and sub-surface (5.0-10.0 cm. depth) soil samples taken from each of the slope at each of the two sites were analysed for organic carbon and humus content by Walkey and Black's rapid titration method (Piper, 1944) and De Sigmond's method (Pandeya *et al.*, 1968), respectively.

RESULTS AND DISCUSSION

The vegetation at site I comprised 19 tree species. Out of these, *Celtis tetrandra* and *Viburnum cotinifolium* were confined to SWFS and 8 species viz., *Alnus nepalensis, Juglans regia, Bombax ceiba, Cedous deodara, Acer oblongum, Fraxinus micranthus, Cinnamomum tamala* and *Carpinus viminea* Were restricted to the NEFS. Common apecies on both the slope positions were *Quercus incana,*

Rhododendron arboreum, Lyonia ovalifolia, Myrica nagi, Pyrus pashia, Machilus duthiei, Ficusroxburghii, Cornus macrophylla and *Zanthoxylum alatum*. Though the distribution of individual species among the different abovementioned tree species was irregular, on the basis of the Importance Value Index (IVI), *Q. incana* was found to be the dominant one on both the slopes (Table— A).

The vegetation at site II comprised 20 tree species. Out of these, the 5 species confined to SWFS were *Cinnamomum tamaia, Machilus duthiei, Ougenia oogeinensis, Emblica officinalis* and *Zanthoxylum alatum*, and the 11 species restricted to the NEFS were *Shorea robusta, Terminalia alata, Dalbergia si ssoo, Bauhinia variegata Acacia catechu, Albizzia procera, Aegle marmelos, Celtis tetrandra, Zizyphus glabrata, Sapium insigne* and *Tectona grandis*. The 4 common species on both the slopes were *Pinus roxburghii, Toona ciliata, Diospyros tomentosa* and *Madhuca indica*. On the basis of IVI value *Pinus roxburghii* and *Shorea robusta* were dominant on SWFS and FEFS respectively (Table 1 B).

At both the sites, the total tree density on NEFS positions (590 trees ha^{-1} at site I and 730 trees ha^{-1} at site II) was comparatively greater than the total tree density on SWFS positios (410 trees ha^{-1} at site I and 540 trees ha^{-1} at site II) At site I, the total basal cover on SWFS (46.9 m^2 ha^{-1}) was higher than that on NEFS (25.0 m^2 ha^{-1}); at site II. only minor differences in the total basal cover were found on the two slope positions (86.0 m^2 ha^{-1} on SWFS and 87.5 m^2 ha^{-1} on NEFS). SWFS exhibits exposure to winds and rain, so the marked difference appeared in the vegetation. On an average across the slope, the site II had greater density (635 trees ha^{-1}) with higher basal cover (86.75 m^2 ha^{-1}) than that of site I (500 trees ha^{-1} with basal cover 35.95 m^2 ha^{-1}). One of the factors might be altitudinal gradient (site I located at higher elevation than that of site II), which influencess the distribution pattern and occurrence of vegetation in these areas.

The basal cover of presently studied oak forest was slightly higher (with lower density) than the oak forests reported from other parts of the world, viz., oak forest of New York, 15.6 m^2 ha^{-1} with 1850 stems ha^{-1} (Whittaker and woodwell, 1969); mixed oak forest of Belgium, 21.2 m^2 ha^{-1} with 1500 stems ha^{-1} (Devigneaud and Denaeyer-De Smet, 1970); and oak forest of Minnesota (Reiners, 1972b). Inspite of this, the vegetation was least diverse at site I as compared to site II (Table 2).

The type of ecosystem that develops in a particular area is determined by climate, vegetation and soil which are fundamentally inter-related with one another. The soil type determines the type of vegetation but its character at the same time is moulded by the vegetation, particularly by the amount and nature of soil orgenic matter, which is found during the decomposition of plat litter. Humus, the amorphous polymeric organic matter, is a highly stable organic

component of soil with very slow rate of its decay. The present study indicated that there was a marked seasonal fluctuation in the carbon and humus contents throughout the year and low lying and shady areas (NEFS) possessed their greater concentration than those of exposed, more elevated slopes (SWFS). Local variation in microclimate, topography, soil condition and vegetational cover are the some important aspects which could be responsible for the differences in organic matter in different slopes (Table 3). Other reassons for these differences could be comparatively greater protection of NEFS from wind and run-off than those of SWFS. Further, the surface soil possess higher concentration of carbon and humus in the surface than in the sub-surface soils (Table 3) also indicated slow rate of decomposition of organic matter. The physical and chemical properties of soil, regulated by organic carbon and humus content can elicit sharp discontinuities in plant distribution. Woody plant species showing marked edaphic preferences are very common in temperate woodland ecosystem (Spurr and Barnes, 1980).

Table 1A. PHYTOSOCIOLOGICAL ANALYSIS OF THE FOREST SITE I.
(Quercus-Rhododendron community)

Name of the species	Density trees ha—¹	A/F ratio	Total basal cover m² ha—¹	IVI
SWFS				
Quercus incana	100.0	0.280	26.38	100.5
Rhododendron arboreum	60.0	0.08	12.13	60.5
Myrica nagi	60.0	0.04	1.19	30.5
Lyonia ovalifolia	40.0	0.25	1.22	25.7
Celtis tetrandra	30.0	0.08	1.13	16.4
Pyrus pashia	30.0	0.08	0.30	14.6
Machilus dnthiei	10.0	0.10	3.21	12.6
Viburnum cotinifolium	20.0	0.05	0.42	12.4
Ficus roxburghii	30.0	0.30	0,23	11.1
Cornus macrophylla	20.0	0.20	0.23	8.6
Zanthoxylum alatum	10.0	0.10	0.51	6.9
NEFS				
Quercus incana	120.0	0·03	10.96	81.3
Rhododendron arboreum	90.0	0.04	2.20	36.2
Lyonia ovalifolia	80.0	0.03	1.61	32.2
ALnus nepalensis	40.0	0.03	1.91	24.2
Juglans regia	30.0	0.03	2.28	21.5

Ficus roxburghii	20.0	0.05	3-02	20.3
Cornus macrophylla	60.0	0.06	0.43	19.2
Machilus duthiei	30.0	0.08	0.58	12.3
Bombax ceiba	20.0	0.05	0.32	9.6
Cedrus deodara	10.0	0.10	0.79	7.3
Acer oblongum	20.0	0.20	0.27	6.9
Myrica nagi	20.0	0.20	0.12	6.3
Fraxinus micranthus	10.0	0.10	0.15	4.7
Cinnamomum tamala	10.0	0.10	0.10	4.5
Carpinus viminea	10.0	0.10	0.09	4.5
Pyrus pashia	10.0	0.10	0.17	4.4
Zanthoxylum alatum	10.0	0.10	0.06	4.4

Table 1B. Phytosociological analysis of the forest site II. (Shorea-Pinus community)

Name of the species	Density trees ha-1	A/F ratio	Total basal cover m^2 ha^{-1}	IVI
		SWFS		
Pinus roxburghii	160.0	0.04	27.39	83.1
Toona ciliata	110.0	0.02	18.69	66.2
Zanthoxylum alatum	120.0	0.06	19.80	59.8
Emblica officinalis	70.0	0.01	12.30	50.9
Madhuca indica	30.0	0.05	6.30	12.7
Cinnamomum tamala	20.0	0.05	0.21	10.4
Machilus duthiei	10.0	0.10	0.72	5.9
Ougenia oogeinensis	10.0	0.10	0.50	5.6
Diospyros tomentosa	10.0	0.10	0.10	5.1
		NEFS		
Shorea robusta	170.0	0.03	29.15	75.8
Pinus roxburghii	90·0	0.06	11.42	36.3
Terminalia alata	50.0	0.06	15.15	32.3
Dalbergia sissoo	90.0	0.06	4.14	28.0
Diospyros tomentosa	20.0	0.10	7.79	25.9
Toona ciliata	60.0	0.07	3.77	20.7
Bauhinia variegata	70.0	0.17	4.57	20.4
Acacia catechu	30.0	0.17	5.27	15.6
Albizzia procera	30.0	0.17	4.21	14.4
Acgle marmelos	30.0	0.08	0.67	10.4
Celtis tetrandra	30.0	0.05	0.69	8.9
Zizyphus glabrata	20,0	0.05	0.38	8.5
Madhuca indica	20.0	0.10	0.13	5.5
Sapium insignee	10.0	0.10	0.09	4.2
Tectona grandis	10.0	0.10	0.04	4.1

Table 2. Diversity Index of two forest communities.

Name of the species	Site I	Site II
Acacia catechu	—	24.50
Acer oblongum	19.49	—
Aegle marmelos	—	24.50
Albizzia procera	—	24.50
Alnus nepalensis	27.57	—
Bauhinia variegata	—	37.42
Bombax ceiba	19.49	—
Carninus viminea	13.78	—
Cedrus deodara	13.78	—
Celtis tetrandra	23.87	24.50
Cinnamomum tamala	13.78	—
Cornus macrophylla	39.99	—
Dalbergia sissoo	—	42.43
Diospyros tomentosa	—	24.50
Emblica officinalis	—	37.42
Ficus roxburghii	30.82	—
Fraxinus micranthus	13.78	—
Juglans regia	23.87	—
Lyonia ovalifolia	47.75	—
Machilus duthiei	27.57	14.14
Madhuca indica	—	31.62
Myrica nagi	39.99	—
Ougenia oogeinensis	—	14.14
Pinus roxburghii	—	70.71
Pyrus pashia	27.57	—
Quercus incana	64.65	—
Rhododendron arboreum	53.39	—
Sapium insigne	—	14.14
Shorea robusta	—	58.31
Tectona grandis	—	14.14
Terminalia alata	—	31.62
Toona ciliata	—	58.31
Viburnum cotinifolium	19.49	—
Zanthoxylum alatum	19.49	48.99
Zizyphus glabrata	—	20.00

Table 3. Percent concentration of organic carbon and humus. (% mean±SE).

Month	Surface soil (0—5.0 cm)		Sub-surface soil (5.0—10.0 cm)	
	NEFS	SWFS	NEFS	SWFS
Organic carbon				
January	3.54±0.28	4.41±0.46	1.20±0.22	1.76±0.37
February	2.44±0.30	5.07±0.54	1.10±0.23	1.70±0.38
March	2.49±0.28	5.01±0.48	1.11±0.19	1.65±0.23
April	2.51±0.25	5.10±0.44	1.13±0.18	1.63±0.35
May	2.52±0.25	5.38±0.39	1.16±0.18	1.66±0.23
June	2.54±0.26	5.40±0.38	1.17±0.15	1.70±0.31
July	3.55±0.27	5.45±0.40	1.18±0.18	1.74±0.29
August	3.14±0.34	6.02±0.39	1.24±0.18	1.79±0.29
September	4.29±0.33	6.20±0.38	1.24±0.24	1.83±0.37
October	3.45±0.30	6.79±0.30	1.31±0.21	1.84±0.32
November	2.90±0.33	5.72±0.30	1.33±0.23	1.78±0.31
December	3.25±0.28	5.64±0.38	1.30±0.20	1.74±0.29
Humus content				
January	1.41±0.11	2.75±0.28	0.54±0.13	1.24±0.12
February	1.41±0.12	2.73±0.27	0.49±0.1)	1.18±0.12
March	1.38±0.08	2.68±0.27	0.46±0.15	1.13±0.14
April	1.36±0.08	2.66±0.27	0.43±0.12	1.11±0.12
May	1.33±0.10	2.60±0.26	0.43±0.08	1.07±0.13
June	1.31±0.10	2.57±0.25	0.45±0.10	1.04±0.14
July	1.37±0.12	2.91±0.22	0.52±0.15	1.16±0.15
August	1.41±0.11	2.85±0.28	0.58±0.15	1.16±0.17
September	1.47±0.14	2.85±0.45	0.64±0.15	1.32±0.17
October	1.57±0 18	3.46±0.39	0.66±0.17	1.52±0.18
November	1.51±0.13	3.11±0.31	0.61±0.17	1.33±0.14
December	1.46±0.17	2.81±0.20	0.59±0.19	1.27±0.12

ACKNOWLDGEMENTS

The authors are indebted to the MAB Research Project, sanctioned by the Department of Environment, Government of India, for financial assistance during the course of present study.

REFERENCES

Braun—Blanquet, J. 1932, Trans rev, Mc Graw Hill. New York.

Duvigneaud, P, and Denaeyer-De Smet, 1970, Analysis of Temperate Forest Ecosystems, Springer-Vergang, New York, pp 199-225,

Kershaw, K. A. 1973. Quantitative and Dynamic Plant Ecology. The English Languge Book Society and Edward Arnold (Publi,) Ltd,, London, 308 p.

Killingbeck, K. T, and M. K. Wali, 1978, Oikos. 30; 29-60

Mc Intosh, R. P. 1967, Ecology. 48 (3) : 392-404.

Misra, R. and G. S. Puri, 1954, Indian Manual of Plant Ecology. English Book Depot, Poona. 315 p.

Pandeya, S. C., G. S. Puri and J. S. Singh, 1968. Research methods in Plant Ecology, Asia Publishing House, Bombay, 272 pp.

Piper, C. S. 1944, Soil and Plant analysis, New York.

Puri, G. S. 1950, J. Indian Bot. Soc. 29 (1).

Reiners, W, A, 1972b, Ecol, Monogr, 42 : 71-94.

Schnitzer, M. and S. U. Khan, 1972, Humic substances in the environment. Marcel Dekker, New York.

Spurr H. Stephen and Burton V. Barnes. 1980, Forest Ecology. John Wiley & Sons, New York, 687 pp.

Whittaker, R. H. 1956. Ecol, Monogr, 26 : 1-80.

Whittaker, R. H 1960. Ecol. Monogr, 30 : 279-338.

Whittaker, R. H. and W. A. Neiring, 1965, Ecoiogy, 46 : 429-452.

Whittaker, R. H. and Woodwell, 1969. J; Ecol. 57 : 155-174.

—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1, P. 21-24
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-१, पृ० २१-२४

EFFECT OF GROWTH REGULATORS ON DIFFERENT ECO-PHYSIOLOGICAL PROCESSES IN GROUNDNUT (Arachis nypogaea Linn.) VAR. Г-25.

Ashwani Kumar Goyal and Vijay Kumar Jain
Department of Botany, Govt. P. G. College, Kotdwar.

सारांश

इस अध्ययन में वृद्धि हारमोंस आई० ए० ए०; जी० ए०-३; २,४-डी० व एम० एच० का प्रयोग १० व ५० पी पी एम सांद्रता में छिड़क कर किया गया। इसमें जी० ए०-३ वृद्धि हारमोन ने मूँगफली की कुल उत्पादकता, फल उत्पादन, दाने का प्रतिशत नाइट्रोजन, फासफोरस, प्रोटीन व ऊर्जा संरक्षण क्षमता अत्यधिक रूप से बढ़ा दी। २,४-डी० व एम० एच० वृद्धि ह्रासक होने के बावजूद, जैव धनात्मक प्रभाव प्रदर्शित करते हैं।

ABSTRACT

A study was made of foliar spray treatments of four different growth regulators, I. A. A., GA 3,2,4-D and MH in10 and 50ppm cocentrations on eco-physiological processes of groundnut. GA3markedly enhanced total net production, fruit production, shelling percentage nitrogen, phosphorus, protein and energy conserving efficiency. 2,4-D and MH inspite of being inhibitors, showed biopositive effccts.

INTRODUCTION

The use of growth regulators in increasing crop yields has been widely accepted. Krishnamurty (1972), Castro and Bergmann (1975) and Rao (1975) studied an effect of different growth regulators on various processes of different crops. However, no work has been carried out to study the ecological efficiencies of ground nut to application of different growth regulators. The present investigation, therefore, envisages comparative study of rate of drymatter production, fruit production, shelling percentage, contents of nitrogen. phos-

phorus and protein and energy conserving effiiciency (ECE) by the application of IAA, GA 3,2,4-D and MH in 10 and 50 ppm concentratin.

MATERIALS AND METHODS

The seeds of groud nut were sown in the field and spray treatments of different growth regulators were given to the plant when they were 8,50 and 75 day old after emergence. Water sprayed plants were treated as control. Fifteen plants from each field were periodically oprooted at an interval of 25 days from sowing till maturity. Biomass, productivity (0dum, 1960) chemical analysis (Piper, 1942); Misra, 1968) and energy conserving efficiency were measured till harvesting.

RESULTS AND DISCUSSION

In the present investigation growth regulators enhanced rate of drym matter production considerably. High rate of dry matter production was observed in GA 10 ppm plants which amounted to 19.32g/m²/day (24208.8Kg/ha/season). It was 169.63% higher than control. These results are in confirmity with the findings of Rakitin *et. al.* (1971) and Kumar (1979).

In general, growth regulators also increased the fruit biomas and production of seeds. Among different treatments GA 10 ppm produced 7800Kg/ha fruits against 2400 Kg/ha in control. 2,4-D treatments reduced groundnut fruit yield by 15% Highest shelling percentage was observed with MH 50ppm (69.34%) as compared to control (57.56%). IAA proved ineffective. Similar results were also recorded by Wort (1966), Castro and Bergmann (1973) and Ketchersid *et. al* (1978).

Mineral composition of groundnut plants also found to be affected by the application of growth regulators. Maximum increase in nitrogen content was observed in GA 10ppm treated plants (519.3 Kg/ha) as compared to control (138.0 Kg/ha). These results find support with work of Deb and Mazumdar (1976). Protein content corresponded with the nitrogen Content (Table 1.).

GA 10/ppm treatment accumulated the highest harvestable energy (7668.60x 10^4K cal/ha) in the form of net productivity as compared to control. The value for 2,4-D 10ppm treatment was similar to control. Energy Conserving Efficiency (ECE), the main functioning attribute, was considerably influenced by growth regulators. GA 10ppm increased ECE by 221, 42% over control. The increase in ECE due to the application of growth regulators showed a postitive correlation with nitrogen, phosphorus, pretein and energy values. These results are in agreement with findings of Dwivedi (1975).

TABLE—1

Effect of growth regulators on different eco-physiological processes of groundnut.

Treatment	Total net production kg/ha/125D	Dry matter production g/m²/day	Fruit biomass kg/ha	Shelling percentage	Total N production kg/ha	Total P production kg/ha	Protein yield kg/ha	Energy production kcal/ha x 10^4	Energy conserving efficiency (%)
(T1)	8978.4	7.20—	2400.0	57.56	138.0	0.202	862.8	2423.76	0.168
	±448.92	±.36	±187.2						
(T2)	23928.0	19.20	5400.0	57:89	220.8	0.382	1380.0	4541.64	0.324
	±478.56	±2.30	±200.0						
(T3)	20827.2	16.68	6600.0	48.78	315.6	0.544	1972.8	5943.48	0.420
	±504.35	±1.98	±240.0						
(T4)	24200.8	19.32	7800.0	56.63	519.3	0.760	3247.2	7668.60	0.540
	±481.04	±2.32	±240.0						
(T5)	12625.2	10.08	4200.0	67.00	316.8	0.539	1980.0	5518.32	0.396
	±417.3	±0.80	±210.0						
(T6)	9796.8*	7.80*	2040.0*	67.03	133.2	0.245	832.8	2416.80	0.168
	±484.29	±0.36	±190.0						
(T7)	10356.0*	8.28*	4320.0	50.51	212.4	0.391	1327.2	3757.92	0.264
	±490.8	±0.42	±210.0						
(T8)	17949.6	14.40	5400.0	51.02	300.0	0.538	1995.6	5973.84	0.420
	±509.4	±1.02	±200.0						
(T9)	13246.8	10.56	3840.0	69.34	276.0	0.654	1725.6	6206.04	0.444
	±423.6	±2.34	±215.0						

T1=CONTROL; T2=IAA 10 ppm; T3=IAA 50 ppm; T4=GA_3 10 ppm; T5=GA_3 50 ppm; T6=2, 4-D 10 ppm; T7=2, 4-D 50 ppm; T8=MH 10 ppm and T9=MH 50 ppm; D=day. *Not significant at 5% level.

ACKNOWLEDGEMENT

Authors are thankful to principal and head of Botany department of this college for providing necessary facilities.

REFERENCES

Castro, P. R. C. and E. C. Bergmann (1973). Anais do Escola Superior de Agricultura, "Luiz de Queroz", 30 : 21-34.

Deb. B. and B.C. Mazumdar (1976) Plant Sci., 8 : 32-37.

Dwivedi. R. S. (1975) Curr. Sci , 44 : 564-566.

Ketchersid, M. L., T. E, Boswell and M. G. Merkle (1978). Sci., 5 : 367-369.

Kumar, A. (1979) JIBS 58 Suplinent. 78

Misra, R. (1968). "Ecological Work Book" Oxford IBHPub. Co. Calcutta.

Odum, E. P, (1960). Ecology, 41 : 34-49.

Piper, C. S. (1942) "Soil and Plant Analysis". Hans Pub. Bombay.

Rao, S. P. (1975). J. Agric. Res., 9 : 121-126.

Wort, P. J, (1966). Proc. Int. symp. Pl. and stimulation, Sofia. 341-353.

—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1. P. 25-29
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६ खंड-१ पृ० २५-२९

A REAL INVERSION THEOREM FOR A GENERALIZATION OF STIELTJES TRANSFORM

N. JOSHI and J. M. C. JOSHI*
Department of Mathematics, Govt. Degree College, Jaiharikhal

सारांश

प्रस्तुत प्रपत्र में जे० एल० अरोरा [३] द्वारा परिभाषित स्टील्जे रूपान्तर के एक व्यापकीकरण हेतु एक वास्तविक प्रतिलोमन प्रमेय की उपपत्ति दी गयी है ।

ABSTRACT

In this papar, we establish a real inversion theorem for a generalized stieltjes transform introduced by J. L. Arora [3].

1. INTRODUCTION

J. L. Arora [3] has introduced a generalization of Stieltjes transform in the form

$$(1.1)\quad \phi(s)=\int_{0}^{\infty}\frac{1}{(s^{m}+y^{m})^{\lambda}}\, f(y)\,dy,\ \lambda,\ m,\ s>0$$

In a paper, we have given some theorems showing its convergence, asymptotic and order properties. This paper deals with a real inversion theorem for this transform. In order to establish this theorem, we have first put (1.1) in the form of the convolution transform defined by Hirschman and Widder [2] and then have used the inversion formula given by the same authors as following.

The convolution transform with kernel G (x) of the function ϕ (x) into f (x) is defined as

$$(1.2)\quad f(x)=\int_{-\infty}^{\infty} G(x-t)\,\phi(t)\,dt$$

*Principal, Govt. Degree College, Narayan nagar (Pithoragarh).

The corresponding inversion function E (x) which serves to invert the transform is defined by the equation

$$(1.3)\ [E(x)]^{-1} = \int_{-\infty}^{\infty} G(y)\, e^{-xy}\, dy$$

2. THEOREM.

If ϕ (s) be defined by (1.1), f(s) E L (o,∞) and the integral (1.1) Converges, then

$$(2.1))\quad \lim_{n\to\infty} (-1) \frac{n-1\ mT(\lambda)}{nT(n+1)T(n+\lambda)}\, s^{n+1+\lambda-\frac{1}{m}} D^{n+1} s^{1-\lambda}$$

$$D^{n+1} \phi(s^{1}/m)_{/s=ym} = f(y),$$

s70

Proof. From (1.1), we have

$$\phi(s) = \int_{0}^{\infty} \frac{1}{(s^{m}+y^{m})^{\lambda}} f(y)\, dy$$

Substituting $y=e^{\frac{y}{m}}$ and $s=e^{\frac{s}{m}}$ in the above, we get

$$e^{s(\lambda-\frac{1}{m})} \phi(e^{\frac{s}{m}}) = \frac{1}{m} \int_{-\infty}^{\infty} \frac{e^{-(s-y)/m}}{(1+e^{-(s-y)})^{\lambda}} f(e^{\frac{y}{m}})\, dy$$

or

$$(2.2)\ \psi(s) = \frac{1}{m} \int_{\infty}^{\infty} \frac{e^{-(s-y)/m}}{(1+e^{-(s-y)})^{\lambda}} g(y)\, dy$$

where

$$\psi(s) = e^{s(\lambda-\frac{1}{m})} \phi(e^{\frac{s}{m}}) \text{ and } G(\lambda) = f(e^{\frac{y}{m}})$$

Now (2.2) is in the form of (1.2), therefore using (1.3) inversion function E (x) is given by

$$[E\quad(x)]^{-1} = \frac{1}{m}\int_{\infty}^{\infty} \frac{e^{-y(x+\frac{1}{m})}}{(1+e^{-y})\lambda}\,dy$$

$$= \frac{1}{m}\int_{O}^{\infty} \frac{y^{x+\frac{1}{m}--1}}{(1+y)^{\lambda}}\,dy$$

$$= \frac{1}{m}\,\frac{T(x+\frac{1}{m})\;T(\lambda-x--\frac{1}{m})}{T(\lambda)}$$

Provided $o\angle Re(x+\frac{1}{m})\angle\lambda.$

Now

$$E\,(D) = \frac{m\;T\,(\lambda)}{T\,(D+\frac{1}{m})\;T\,(\lambda--D--\frac{1}{m})}, D=\frac{d}{ds}$$

We know that [1]

$$(2.3)\quad T\,(z) = \lim_{n\to\infty} \frac{n^1\;n^2}{\prod_{k=o}^{n}(z+k)}$$

$$(2.4)\quad \frac{T\,(z--n)}{T\,(z)} = (--1)^n\,\frac{T\,(-z+1)}{T\,(--z+n+1)}$$

and

$$(2.5)\quad \frac{T\,(z+a)}{T\,(z+b)} \backsim z^{a--b}\qquad, z\to\infty$$

Using the results (2.3), (2.4) and (2.5), We obtain

$$E\,(D) = \lim_{n\to\infty}\,(-1)^{n--1}\,\frac{m\,T\,(\lambda)}{nT(n+1)T(n\pm\lambda)}\prod_{k=o}^{n}(D-\lambda+\frac{1}{m}--k)\;(D+\frac{1}{m}\pm k)$$

Also we have [2, p. 66]

$$[2.6]\ \prod_{k=o}^{n} (D+a+k)\ [e^{-(a+n)x}\ F[e^x]\ ] = e^{-(a-1)x}\ F^{n+1}\ (e^x),$$

$$(2.7)\ \prod_{k=o}^{n} (D+a-k)\ [e^{-ax}\ F(e^x)\ ] = e^{(n+1-a)x}\ F^{n+1}\ (e^x)$$

Using the results (2.6) and (2.7), we get

$$E\ (D)\ \ [e^{s(\lambda-\frac{1}{m})}\ \phi\ (e^{\frac{s}{m}})] = \lim_{u\to\infty} (-1)^{n-1} \frac{m\ T\ (\lambda)}{nT(n+1)T(n+\lambda)}$$

$$e^{s(n+1+\lambda-\frac{1}{m})}\ D_1^{\ n+1}\ e^{s(1-\lambda)}$$

$$D_1^{\ n+1}\ e^{s(n+\lambda)}\ \varphi\ (e^{\frac{s}{m}}) = f\ (e^{\frac{s}{m}}),\quad \text{Where } D_1 = \frac{d}{des}.$$

Returning to original variables, we get

$$(2.8)\ \lim_{n\to\infty}\ (-1)^{n-1} \frac{mT(\lambda)}{nT(n+1)T(n+\lambda)}\ s^{n+1+\lambda-\frac{1}{m}} D^{n+1}$$

$$s^{1-\lambda} D^{n+1}\ s^{n+\lambda}\ \phi(s^{\frac{1}{m}})\Big|_{s=y^m} = f(\ y).$$

Which proves the theorem.

Example. Suppose

$$f\ (y) = y^{r-1}\quad ,\ 0\angle r\angle m\lambda$$

Then

$$\phi\ (s)\ = s^{r-m\lambda}\ \frac{T\ (\frac{r}{m})\ T\ (\lambda-\frac{r}{m})}{mT(\lambda)},$$

$$s^{1-\lambda}\ D^{n+1}\ s^{n+\lambda}\ \varphi\ (s^{\frac{1}{m}}) = \frac{T(\lambda-\frac{r}{m})\ T(\frac{r}{m}+n+1)}{m\ T\ (\lambda)}\ s^{\frac{r-}{m}-\lambda},$$

$$s^{n+1+\lambda-\frac{1}{m}} D^{n+1}\ s^{1-\lambda} D^{n+1}\ s^{n+\lambda}\ \phi\ (s^{\frac{1}{m}})$$

$$= \frac{T(\lambda-\frac{r}{m})\ T\ (\frac{r}{m}+n+1)\ T\ (\frac{r}{m}-\lambda+1)}{m\ T\ (\lambda)\ T\ (\frac{r}{m}-\lambda-n)}\ s^{\frac{r-1}{m}},$$

and

$$\lim_{n \to \infty} (-1)^{n-1} \frac{m\, T(\lambda)}{nT(n+1)\, T(n+\lambda)}\, s^{n+1+\lambda-\frac{1}{m}} D^{n+1}\, s^{1-\lambda} D^{n+1}$$

$$s^{n+\lambda} \phi \left(s^{\frac{1}{m}} \right)$$

$$= \lim_{n \to \infty} (-1)^{n-1} \frac{T\left(\lambda - \frac{r}{m}\right) T\left(\frac{r}{m} + n + 1\right) T\left(\frac{r}{m} - \lambda + 1\right)}{n\, T(n+1)\, T(n+\lambda)\, T\left(\frac{r}{m} - \lambda - n\right)} s^{\frac{r-1}{m}}$$

Finally, using the results [2.4] and [2.5], We get

$$\lim_{n \to \infty} (-1)^{n-1} \frac{T\left(\lambda - \frac{r}{m}\right) T\left(\frac{r}{m} + n + 1\right) T\left(\frac{r}{m} - \lambda + 1\right)}{n\, T(n+1)\, T(n+\gamma)\, T\left(\frac{r}{m} - \lambda - n\right)} s^{\frac{r-1}{m}} \Bigg|_{s = y^m} = y^{r-1}$$

$$= f(y),$$

Which illustrates the validity of the above theorem.

REFERENCES

[1] A. Erdelyi, W. Magnus, F. Oberhettinger and F. G. Tricomi, Higher Transcedental Functions. Vol. I, Mc Graw-Hill Book Co., New York, Toronto and London, 1953.

[2] I. I. Hirschman and D. V. Widder, The Convolution Transform, Princeton University Press, 1955.

[3] J. L. Arora. Publ. Math. Debrecen 20 [1973], 107-116.

—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1, P. 30-35
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-१, पृ० ३०—३५

रीतिकालीन साहित्य और जीवन-मूल्य

राजमणि शुक्ल
हिन्दी-विभाग, राजकीय रजा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर

सारांश

हिन्दी साहित्य का रीतिकाल हिन्दी आलोचना के प्रारम्भ से ही विवादास्पद रहा है। समीक्षकों की प्रायः यह धारणा रही है कि रीतियुग विलासिता और पतन का काल था और मूल्यों की दृष्टि से भक्तिकाल एवं उसका साहित्य जितना ही श्रेष्ठ रहा है, रीतिकालीन साहित्य उतना ही हीन। प्रस्तुत शोधपत्र में लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वस्तुतः रीतिकाव्य—जैसा कोई भी सत्काव्य जीवन-मूल्य की दृष्टि से नकारात्मक मूल्य का नहीं हो सकता। अतः रीतिकालीन साहित्य मूल्यों के पतन का साहित्य नहीं है।

ABSTRACT

Ritikala of Hindi Literature has remained Controversial from the very beginning of Hindi Criticism. Many renouned critics of Hindi have tried to prove that this was the period of downfall in the field of values and ideals in comparison of Bhakti kala, which was the period of highest vaiues of life. In the present paper the writer has tried to prove that Riti kala cannot be a period of negative values and of downfall in the field of morality and ideals.

हिन्दी-समीक्षा के क्षेत्र में आरम्भ से ही इस प्रकार की धारणा बन गई है कि मूल्यों की प्रतिष्ठा की दृष्टि से भक्ति-युग जितना ही उच्चकोटि का रहा है, रीति-युग उतना ही हीन। डॉ० राकेश गुप्त ने रीति-युग पर लगाये जाने वाले इन गम्भीर आरोपों का समाहार इस प्रकार किया है—

१. रीतिकाल घोर विलासिता का युग था। इस युग के राजा और सामन्त, जो श्रृङ्गारी कवियों को आश्रय देते थे, कामी, विलासी और आलसी थे।

२. रीतिकाल के कवि दरबारी और चाटुकार थे। उनकी भक्ति हार्दिक न होकर दिखावा मात्र थी।

३. रीतिकालीन कविता नारी-शरीर तक सीमित थी, जिसे भक्ति-शृङ्गार नहीं कहा जा सकता। यह अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा हुआ वासनामय लौकिक शृङ्गार है।

४. रीतिकालीन साहित्य का समाज पर बड़ा दुष्प्रभाव पड़ा है। इससे व्यभिचार और परकीयावाद को प्रोत्साहन मिलता है।[1]

डॉ० राकेश गुप्त ने इन आरोपों का विस्तार से खण्डन करते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि रीतिकाल नैतिक पतन और मूल्यों के ह्रास का काल नहीं था। न तो इस काल में रातों-रात कुछ ऐसा घटित हो गया था कि भक्तियुगीन मानसिकता में एकाएक इतना बड़ा परिवर्तन हो जाता और तत्कालीन उच्चतम जीवनादर्श रीति काल के शुरू होते ही एकदम जमीन चूमने लग जाते तथा न ही इस काल के कवियों ने काव्य-मर्यादाओं की सुदीर्घ भारतीय परम्परा को छोड़ कर किसी अन्य परम्परा का सूत्रपात किया, जिसमें भोगवाद को प्रश्रय देने का तनिक भी अवकाश होता।[2]

भारतीय मनीषा में जीवन के शाश्वत मूल्यों—पुरुषार्थ चतुष्टय आदि की अवधारणा आदि काल से चली आ रही है। धर्म, अर्थ और काम से आगे जिस अभीष्ट की परिकल्पना मनीषियों ने की है, वह है—मोक्ष, जिसे पाने के लिए हमें भौतिकता से ऊपर उठ कर आध्यात्मिक मूल्य को आत्मसात् करना होता है। भारतीय वाङ्मय में इसी मूल्य को—जीवन के सर्वोत्तम को, अनेक रूपों में व्याख्यायित किया जाता रहा है, चाहे वह पौराणिक आख्यानों के माध्यम से प्रबन्धात्मक अभिव्यक्ति हो या मुक्तक रचना अथवा और कुछ। परमतत्व की खोज हर युग के हर मनीषी, सन्त, कवि और विचारक ने की है।

संक्षेप में, जीवन-मूल्य वे मानदण्ड हैं, जिनके आधार पर हम किसी व्यक्ति के जीवन की सफलता-असफलता को मापते हैं या उसकी कीमत आँकते हैं। सभी कालों में मनुष्य की कीमत इसी बात से आँकी जाती रही है कि वह अपने संकुचित 'स्व' से मुक्त होकर दूसरों के लिए कितना जिया है। यही बात समाज और साहित्य पर भी लागू होती है। आचार्य शुक्ल के अनुसार, कविता की सार्थकता भी इसी बात में है कि वह हमें संकुचित स्व से ऊपर उठाकर हृदय की मुक्तावस्था प्रदान करती है, जहाँ हम शेष सृष्टि से तादात्म्य स्थापित करते हैं।[3] इस दृष्टि से कोई भी सत्काव्य जीवन-मूल्य की दृष्टि से नकारात्मक मूल्य (निगेटिव वेल्यू) का नहीं हो सकता। रीति-साहित्य भी हमें रसानुभूति कराकर निश्चय ही हृदय की मुक्तावस्था प्रदान करता है, इसलिए उसे मूल्यों के पतन का साहित्य नहीं माना जा सकता।

साहित्य का एक महत्वपूर्ण कार्य हमारी अनुचित एवं आन्तरिक वासनाओं का निष्कासन करके हमारे चित्त को निर्मल बनाना भी है। इसी को अरस्तू ने केथार्सिस या विरेचन कहा है।[4] रीतिकालीन साहित्य में भी शृङ्गार की अतिशयता सहृदय को पतन और विलास के मार्ग पर नहीं ले जाती, वरन् विरेचन की क्रिया द्वारा उसके चित्त का निर्मलीकरण करती है। फिर, शृङ्गार की यह परम्परा तो समस्त विश्व-साहित्य का प्रमुख अंग रही है। यदि हम रीतिकालीन साहित्य को शृङ्गारातिरेक के कारण तिरस्कृत करते हैं, तो फिर कालिदास, जयदेव, विद्यापति और सूर के साहित्य को भी हीन मानना होगा।

रीति-युग में श्रृङ्गार काव्य और अमरूक की प्राचीन परम्परा कृष्ण काव्य-धारा के साथ मिलकर एकरस हो चुकी थी।[५] इस प्रकार मूल्य की दृष्टि से हीन होने के स्थान पर वह अधिक समृद्ध और सम्पन्न हो गई थी। इस काल के कवियों की भक्ति-भावना और वैराग्य-भावना बहाना न होकर सच्चे हृदय की अनुभूति थी, यह बात अब भली-भाँति सिद्ध हो चुकी है।[६] मतिराम की राधा-कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ भक्ति का एक उदाहरण देखें, कवि के अनुसार जिन्हें राधा-कृष्ण प्रिय नहीं, उनकी आँखों में दस हजार मुट्ठी धूल—

राधा मोहन लाल को जा न भावत नेह।
परियो मुठी हजार दस ताकि आँखिनि खेह ॥[७]

देव कहते हैं कि अपूर्णताओं से भरी दुनिया में नाचते ही सारा जीवन बीत गया। सूर के 'अब हौं नाच्यो बहुत गुपाल' से कम वेदना इस छन्द में नहीं है—

साहिब अंध मुसाहिब मूक सभा बहिरी रंग रीझ को माच्यो।
× ×
देव तहाँ निधरे नट की बिगरी मति को सगरी निसि नाच्यो ॥[८]

इसी सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ मूल्य तो शाश्वत होते हैं और कुछ देश-काल-सापेक्ष। उदाहरणार्थ—बहुपत्नीव आज के युग में अच्छा नहीं माना जाता, किन्तु मध्य युग में वह सम्पन्नता का एक लक्षण था और उसे नीति-विरुद्ध नहीं माना जाता था। भिखारीदास ने "श्री भामिनि के भौन जो भोग्य भामिनी और"[९] कह कर इसी स्थिति का संकेत किया है। अतः रीति-साहित्य में बहुपत्नीव की मान्यता तद्युगीन मूल्य-दृष्टि से उचित ही है। दूसरी बात यह कि कवि ने उक्त कविता स्वकीया नायिका के सम्बन्ध में लिखी है, अतः इससे परकीयावाद को प्रश्रय न मिलकर स्वकीया के प्रति कवि की व्यापक दृष्टि का परिचय मिलता है।

यही बात राजाश्रय के सम्बन्ध में भी है। राजाश्रय को आज कवि के लिए हेय भले ही माना जाय, उस युग के आलोक में निष्पक्ष और पूर्वग्रहमुक्त होकर सोचने पर यह बात साफ हो जाती है कि रीति युग में यह गौरव का विषय था—राजा और कवि दोनों ही के लिए। अतः रीतिकालीन कवि को राजाश्रय के कारण मूल्यहीन मानना भी उचित नहीं है। इसी प्रकार रीतिकालीन कवि पर आश्रयदाता की झूठी प्रशंसा और चाटुकारिता का आरोप भी लगाया जाता रहा है। ये दोनों बातें निश्चय ही नकारात्मक मूल्य हैं, क्योंकि इनसे संकुचित स्व का, अहंकार का पोषण होता है और इनकी प्रेरणा शुद्ध स्वार्थ में से जन्म लेती है। किन्तु रीति कवियों ने आश्रयदाताओं की झूठी प्रशंसा या चाटुकारिता नहीं की। यदि ऐसा रहा होता तो बिहारी 'नहिं पराग नहिं मधुर मधु....'[१०] लिखकर महाराज जयसिंह का उद्‌बोधन करने के स्थान पर ऐसा दोहा लिखते जो विलासिता में उन्हें और भी अधिक निमग्न करने वाला होता। उक्त उद्‌बोधन से जयसिंह के हृदय का शुद्धीकरण ही हुआ और वे अपने कर्त्तव्य के प्रति एक बार फिर समर्पित हुए। इतना ही नहीं, देव और पद्माकर आदि ने भी आश्रयदाताओं के हाथ कभी अपना स्वाभिमान नहीं बेचा। रीतिकवियों के आश्रयदाता भी गुण-ग्राहक थे, जो इन कवियों के प्रति श्रद्धालु ही थे, अन्यथा भूषण की पालकी में महाराज छत्रसाल

कंधा लगा कर उनके प्रति अपना सम्मान क्यों व्यक्त करते ? दूसरी बात यह कि रीतिकवियों ने जिन राजाओं को अपने काव्य का विषय बनाया, वे उनकी रचनाओं में अवतरित होकर वास्तविकता के स्थान पर प्रवन्धकाव्य के पात्र हो गये । काव्य में जब सहृदय उनका वर्णन पढ़ता है तो उन्हें वीरता, शौर्य, दानशीलता, उदारता, गुणग्राहकता आदि उन गुणों से युक्त पाता है, जो शाश्वत मानव मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठित रहे हैं । मान की ऐसी मुक्तावस्था में पाठक का उन वास्तविक राजाओं से कोई सरोकार नहीं रह जाता, जिनका वर्णन काव्य में वह पढ़ता है । अतः इस दृष्टि से भी रीतिकाव्य को मूल्यों की दृष्टि से पतन या ह्रास का काव्य नहीं कहा जा सकता ।

रीतिकालीन काव्य का एक बड़ा भाग नीतिकाव्य भी है, जिसमें उच्च मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा तो है ही, व्यवहार-ज्ञान का विशद अनुभव भी समाहित है । चिन्तामणि का यह कथन कि विवेक के अभाव में राजा निन्दनीय है—आलोच्य विषय के आलोक में एक चौंकाने वाला उल्लेखनीय तथ्य है—

निंदत नृपति विवेक बिन, चरचा को है साथ ।[११]

मतिराम का यह कथन आज भी उतना ही प्रासंगिक है कि प्रशासन एवं राजनीति में आत्मनिर्भरता कितनी जरूरी है, जिसके अभाव में प्रशासक या राजा मंत्रियों के अधीन हो जाता है—फलतः सुख नहीं मिलता, शान्ति छिन जाती है—

मंत्रिन के बस जो नृपति, सो न लहत सुखसाज ।
मनहिं बाँधि दृग देत है, मनकुमार कौं राज ।[१२]

इसी प्रकार जीवन के शाश्वत मूल्य-सत्य के प्रति इन कवियों की निष्ठा और समर्पण द्रष्टव्य है—

झूठे ही जर जात हैं, याके साखी पाँच ।
देखी कै काहू सुनी, लगत साँच को आंच ।।[१३]

एक ओर पद्माकर के अनुसार अध्यवसाय और परिश्रम के बिना कुछ भी प्राप्य नहीं—

है सुख सम्पति सुमति तें, सुमति पढ़े तें होइ ।
पढ़ब होत अभ्यास तें, ताहि तजहु जनि कोइ ।।[१४]

तो दूसरी ओर बिहारी के अनुसार हम अपनी भौतिक आवश्यकताओं को कम किए बिना सुखी नहीं हो सकते । बिहारी की यह सोच सोलह आना भारतीय मूल्यों पर आधारित है, जिसकी उपयोगिता आज भी है—

पटु पाँखैं भखु काँकरै, सपर परेई संग ।
सुखी परेवा पुहमि में, एकै तुहीं बिहंग ।।[१५]

वस्तुतः रीतिकालीन कवि भी पूर्ववर्ती भारतीय कवियों की तरह ही पुरुषार्थ चतुष्टय, शिवेतरक्षति, कान्तासम्मितोपदेश को काव्य का उद्देश्य मानते थे और जीवन-मूल्यों के प्रति सत्यनिष्ठ थे। उदाहरण के लिए भिखारीदास ने निम्नांकित छन्द में उन्हीं काव्य-मूल्यों को मान्यता प्रदान की है, जो उच्चतम जीवन-मूल्य के रूप में सदैव स्वीकृत रहे हैं। ज्ञातव्य है कि कवि ने 'तुलसी-सूर' के 'तप-पुंज' के फल (मोक्ष) को ही सर्वोच्च मान्यता प्रदान की है—

> एक लहैं तप पुंजनि के फल ज्यों तुलसी अरु सूर गोसाईं।
> एक लहैं बहु संपति केसव भूषन ज्यों बरबीर बड़ाई।
> एकनिकों जस ही सों प्रयोजन है रसखानि रहीम की नाईं।
> दास कवित्तन की चरचा बुद्धिवंतन कों सुख दै सब ठाईं ॥[१६]

अतः काव्य-प्रयोजन की दृष्टि से भी यह कहना सर्वथा गलत है कि रीति कवियों के लिए काव्य आजीविका का साधन मात्र था। यह धारणा भी निरस्त हो जाती है कि मार्ग-दर्शन, सत्य की खोज अथवा उदात्त भावाभिव्यक्ति इन कवियों का लक्ष्य नहीं रहा। तुलसी के 'सुरसरि सम सब कहँ हित होई' जैसी-ही लोकमंगलकारी काव्य-मूल्य की अभिव्यक्ति का एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

> मन वच कर्मनि कै करं, सबही को उपकार।
> लहत सुकवि या जगत में, ज्यों सुरसरि की धार ॥[१७]

अन्त में निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि रीतिकाल में मूल्यों के ह्रास और नैतिक पतन की बात सर्वथा अनुचित है। वास्तव में उस युग में भारतीय मनीषा ने राजनैतिक दासता के बावजूद अपना मनोबल बनाए रखा और अपनी सांस्कृतिक थाती की भरपूर रक्षा की—जैसा कि डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का अभिमत है कि यद्यपि देश की सैनिक पराजय हुई और राजनीतिक सफलता की दृष्टि से देश ६०० वर्षों तक सिर नहीं उठा सका, किन्तु साथ ही समाज, धर्म और साहित्य की रक्षा के लिए जो आयोजन देश ने सफलता के साथ किया और जिसके फलस्वरूप राजनीतिक और सैनिक परतन्त्रता के रहते हुए भी देश की संस्कृति की रक्षा ६०० वर्षों तक हो सकी, यह संसार के इतिहास में एक असाधारण घटना है।[१८]

सन्दर्भ

१. डॉ० राकेश गुप्त एवं डॉ० ऋषिकुमार चतुर्वेदी—रीति-रस, रीतिकाव्य की भूमिका, ग्रन्थायन, अलीगढ़, सन् १९८१, पृष्ठ ११

२. डॉ० राकेश गुप्त-स्टडीज इन नायक-नायिका-भेद, अध्याय चार, ग्रन्थायन, अलीगढ़, सन् १९६७, पृष्ठ २६९-३१६

३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – चिन्तामणि-पहला भाग : कविता क्या है, इंडियन प्रेस प्रा० लि० इलाहाबाद, सन् १९७१, पृष्ठ ११३

४. अनुवादक डॉ० नगेन्द्र, महेन्द्र चतुर्वेदी—अरस्तू का काव्यशास्त्र, भूमिका भाग, दिल्ली, संवत् २०१४, पृष्ठ ८६
५. डॉ० राकेश गुप्त—स्टडीज इन नायक-नायिका-भेद, वही, पृष्ठ ३०९-३१०
६. डॉ० राकेश गुप्त एवं डॉ० ऋषि कुमार चतुर्वेदी—रीति-रस, वही, पृष्ठ ८७
७. संपादक स्व० कृष्णबिहारी मिश्र एवं स्व० ब्रजकिशोर मिश्र—मतिराम ग्रन्थावली-मतिराम सतसई, दोहा सं० ४, नागरी प्रचारिणी सभा-काशी, २०२१ वि०, पृष्ठ ३६९
८. सं० डॉ० पुष्पा रानी जायसवाल—देव ग्रन्थावली-भाग-एक, जगद्दर्शन, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९७४, पृष्ठ ३३
९. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—भिखारीदास ग्रन्थावली-प्रथम खण्ड-शृङ्गार-निर्णय, छन्द सं० ६३, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं० २०१३, पृष्ठ १०४
१०. सं० जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'—बिहारी रत्नाकर, ग्रन्थकार-शिवाला, बनारस, सन् १९६५, छन्द सं० ३२
११. कवि कुल कल्पतरु २।१३० चिन्तमणि कृत—सन्दर्भ-रीतिकालीन शृंगार-कवियों की नैतिक दृष्टि : डॉ० शकुन्तला अरोरा, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९७८, पृष्ठ २१८ से उद्धृत।
१२. सं० स्व० कृष्ण बिहारी मिश्र एवं स्व० ब्रजकिशोर मिश्र—मतिराम ग्रन्थावली, ललित ललाम, दोहा सं० ३१४, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०२१ वि०, पृष्ठ ३५२
१३. सं० डॉ० श्याम सुन्दर दास—सतसई सप्तक—रसनिधि सतसई, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १९३१, पृष्ठ २२१
१४. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—पद्माकर ग्रन्थावली-पद्माभरण, छन्द सं० १७४, नागरी प्रचारिणी सभा-काशी, सं० २०१६ वि०, पृष्ठ ५४
१५. सं० जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'—बिहारी रत्नाकर, वही, छन्द सं० ६१९
१६. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—भिखारी दास ग्रन्थावली-द्वितीय खण्ड, काव्य-निर्णय १।१०, ना० प्र० स०, काशी, सं० २०१४, पृष्ठ ४
१७. सं० नकछेदी तिवारी—चेतचन्द्रिका: गोकुलनाथकृत, भारत जीवन प्रेस—काशी, सन् १९८४, छन्द सं० १३
१८. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—मध्य देश, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५५ ई०, पृष्ठ २७१

—

Jour. U. P. govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1. P. 36-42
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६ खंड-१, पृ० ३६-४२

उर्दू कवियों की हिन्दवी रचनाएँ

ऋषिकुमार चतुर्वेदी,
हिन्दी विभाग, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय रामपुर

सारांश

इंशा अल्ला खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' जिस भाषा में लिखी उसे उन्होंने 'हिंदवी' कहा। यह भाषा-रूप एक ओर तो संस्कृत, अरबी, फारसी, तुर्की के क्लिष्ट शब्दों से और दूसरी ओर अवधी एवं ब्रज के प्रभाव से मुक्त जन-सामान्य की खड़ी बोली थी। इंशा के बाद भी अन्य अनेक प्रसिद्ध उर्दू शायर उर्दू के साथ-साथ इस भाषा-रूप में भी रचनाएँ करते रहे हैं। इस भाषा-रूप का विकास साहित्य को जन-जीवन के निकट लाने वाली तथा हिंदी-उर्दू की दूरी कम करने वाली कड़ी के रूप में किया जा सकता है और किया भी जाना चाहिये।

ABSTRACT

The form of language, in which Insha-Allah-Khan wrote his 'Rani ketki ki kahani', was called by him 'Hindwi'. This form of Language was free from the hard words of Sanskrit, Arabic, Persian and Turkish on one hand and from Awadhi and Braj dielects on the other. It was a Common form of Khari Boli. This form of language may be developed—should be developed rather—to bring literature nearer to common man and to combine Hindi and Urdu together,

---

सन् १८०० ई० के आसपास उर्दू के प्रसिद्ध शायर इंशा अल्ला खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' की रचना की। इंशा साहब ने कहानी लिखने का कारण इस प्रकार बतलाया है : एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ भी उसके बीच में न हो। × × × हिंदवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो। बस, जैसे भले लोग—अच्छों से अच्छे—आपस में बोलते-चालते हैं, ज्यों का त्यों, वही सब डौल रहे और छांव किसी की न हो।"[1] जैसा आचार्य शुक्ल ने लिखा है

कि उपर्युक्त पंक्तियों में इंशा ने अपनी भाषा को तीन प्रकार के शब्दों से मुक्त रखने की प्रतिज्ञा की है :

बाहर की बोली = अरबी, फ़ारसी, तुर्की ।
गँवारी = ब्रज भाषा, अवधी आदि ।
भाखा = संस्कृत के शब्दों का मेल ।[२]

इस प्रकार इंशा ने भाखापन अर्थात् संस्कृतनिष्ठता तथा मुअल्लापन अर्थात् अरबी-फ़ारसी आदि के शब्दों की भरमार तथा ब्रज और अवधी आदि बोलियों की गंध से मुक्त रखते हुए जिस खड़ी बोली में अपनी कहानी की रचना की, उसे हिन्दी गद्य के आरंभिक रूप का एक नमूना माना जाता है और इंशा को हिन्दी गद्य के आरंभिक चार स्तंभों में आदरपूर्वक स्थान दिया जाता है। इंशा ने अपनी इस भाषा को 'हिंदवी' नाम दिया। इस प्रकार 'हिन्दवी' हिन्दी का वह रूप है जिसका विकास उन दिनों हिन्दी भाषी प्रदेश के शिष्ट जन समुदाय की भाषा के रूप में हो रहा था और जिसमें अपनी मिट्टी की ताज़ा गंध थी; जो संस्कृत तथा अरबी-फ़ारसी आदि की बैसाखियाँ छोड़कर अपने पैरों खड़े होना सीख रही थी। इस भाषा की अपनी एक अलग मिठास और अपना एक अलग सौंदर्य है। इस भाषा की परंपरा आगे भी चलती रही और गद्य में ही नहीं, कविता में भी इसका प्रयोग हुआ। अनेक उर्दू कवियों ने इस भाषा में बड़ी सशक्त रचनाएँ की हैं। इसके कुछ उदाहरण यहाँ देखे जा सकते हैं।

इंशा ने 'रानी केतकी की कहानी' में कुछ ठेठ खड़ी बोली के पद्य भी उर्दू छंदों में रखे।[३] इंशा के ही समकालीन नज़ीर अकबराबादी हुए। यद्यपि नज़ीर साहब हिंदवी छुट और किसी बोली का पुट न रखने का व्रत लेकर नहीं चले किन्तु वे सच्चे अर्थों में जीवन से जुड़े हुए कवि थे, इसलिए उनकी कविता में स्थान-स्थान पर अनायास ही इस प्रकार की भाषा आ गई है; क्योंकि यह भाषा भी ठेठ जीवन से उठकर विकसित हुई है। नज़ीर ने जिस सादगी के साथ जीवन के मार्मिक सत्यों की अभिव्यक्ति की है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। देखिए, मौत के बारे में वे क्या कहते हैं :

दुनिया में अपना जी कोई बहला के मर गया
दिलतंगियों से और कोई उकता के मर गया
आक़िल था वो तो आपको समझा के मर गया
बेअक्ल छाती पीट के घबरा के मर गया
दुख पाके मर गया कोई सुख पाके मर गया
जीता रहा न कोई हर इक आके मर गया[४]

नज़ीर की 'बंजारनामा' कविता बहुत प्रसिद्ध हुई 'सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा', यह पंक्ति तो साधारण ग्रामीणों और पढ़े-लिखे शहरातियों, दोनों की ज़बान पर चढ़ी हुई मिलेगी। इसमें बंजारे के प्रतीक के माध्यम से जीवन की असारता और क्षण-भंगुरता को बड़े प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया गया है। कुछ पंक्तियाँ देखिए :

गर तू है लक्खी बंजारा और खेप भी तेरी भारी है
ऐ ग़ाफिल तुझसे भी चढ़ता इक और बड़ा व्योपारी है
क्या शक्कर मिसरी कंद गरी क्या साँभर मीठा खारी है
क्या दाख मुनक्का सोंठ मिरच क्या केसर लौंग सुपारी है
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा[५]

नज़ीर की रचना 'आदमीनामा' में भी इस भाषा की बानगी देखी जा सकती है :

(i) किसकिस तरह की चीजें बेचे है बना बना
और मोल ले रहा है सो है वो भी आदमी

(ii) सब आदमी भी करते हैं मुरदे के कारोबार
और वो जो मर गया है सो है वो भी आदमी

(iii) अच्छा भी आदमी ही कहाता है ऐ नज़ीर
और सब में जो बुरा है सो है वो भी आदमी[६]

नज़ीर की 'कन्हैया जी का खेलकूद' नामक कविता की भाषा को भी 'हिंदवी' ही कहा जा सकता है। इसमें कृष्णलीला का गान नज़ीर ने जिस तन्मयता के साथ किया है वह बेजोड़ है :

तारीफ़ करूँ अब मैं क्या क्या उस मुरली अधर बजैया की
नित सेवाकुंज फिरैया की और बनबन गऊ चरैया की
गोपाल बिहारी बनवारी दुख हरना मेहर करैया की
गिरधारी सुंदर श्याम बरन और हलधर जू के भैया की
यह लीला है उस नंदललन मनमोहन जसुमति छैया की
रख ध्यान सुनो दंडौत करो जय बोलो किशन कन्हैया की[७]

इंशा के लगभग सौ वर्ष बाद उत्पन्न हुए ख्वाज़ा अल्ताफ़ हुसेन हाली भी अपने देश की मिट्टी में रसे-बसे कवि थे। उनका 'मुनाजाते बेवा'[८] नामक एक काव्य मिलता है। 'मुनाजाते बेवा' अर्थात् विधवा की फ़रियाद। इस काव्य की भाषा भी वही है, जिसे इंशा ने 'हिंदवी' का नाम दिया था। इस काव्य में विधवा पहले ईश्वर की स्तुति करती है और फिर अपनी बेबसी और बेकसी का मार्मिक वर्णन करती है। ईश्वर-स्तुति का एक नमूना देखिए :

जोत है तेरी जल और थल में। बास है तेरी फूल और फल में।
हर मन में है तेरा बसेरा। तू पास और घर दूर है तेरा ॥[९]

यह भाषा पानी की तरह बहती है और तीर की तरह असर करती है, इस बात का सहज ही अनुभव किया जा सकता है। निम्नलिखित पंक्तियों में विधवा की व्यथा की कैसी मार्मिक अभिव्यक्ति है :

त्योहारों का आये दिन आना । और सबका त्योहार मनाना ।
वो चैत और फागुन की हवाएँ । वो सावन भादों की घटाएँ ।
वो गरमी की चाँदनी रातें …
किससे कहूँ किस तौर से काटीं । खैर कटीं जिस तौर से काटीं ।[१०]

वह विधवा प्यास से तड़पती हिरनी की तरह तृप्ति खोजती है, लेकिन उसे केवल जलती हुई रेत ही मिलती है :

रेत में ज़र्रे देख चमकते । दौड़ पड़ी मैं झील समझ के ।
चारों खूँट नज़र दौड़ाई । पर पानी की बूंद न पाई ।[११]

तात्पर्य यह कि यद्यपि इंशा के बाद 'हिंदवी' नाम देकर प्रतिज्ञापूर्वक इस भाषा में रचना करने का अन्य कोई उदाहरण फिर नहीं दिखाई देता, फिर भी इस भाषा में रचना करने की परंपरा बीसवीं शताब्दी तक बराबर चलती रही है । उर्दू के प्रसिद्ध रोमांटिक कवि अख्तर शेरानी की एक लंबी कविता है—'ओ देस से आने वाले बता किस हाल में है याराने वतन' । देश और जन्मभूमि के कण-कण से गहन परिचय और आत्मीयता की गंध इस कविता में प्राणवायु बन कर समा गई है । कवि अपने 'देस' से आने वाले मित्र से कैसी उत्कंठा से पूछता है—'ओ देस से आने वाले बता किस हाल में है याराने वतन ।' और फिर अपने उस याराने वतन की एक-एक चीज़ के बारे में पूछता है—क्या अब भी वहाँ वह सब वैसा ही है, जैसा मैं छोड़ आया था ? कुछ पंक्तियाँ देखिए :

क्या अब भी वहाँ वैसी ही जवाँ और मदभरी रातें होती हैं
क्या रात भर अब भी गीतों की और प्यार की बातें होती हैं
वो हुस्न के जादू चलते हैं वो इश्क की घातें होती हैं
ओ देस से आने वाले बता किस हाल में है याराने वतन

× × × ×

क्या अब भी महकते मंदिर से नाकूस की आवाज़ आती है
क्या अब भी मुक़द्दस मस्जिद पर मस्ताना अदा थर्राती है
और शाम के रंगीं सायों पर इक अलमस्ती छा जाती है
ओ देस से आने वाले बता किस हाल में है याराने वतन[१२]

इन पंक्तियों में नाकूस (शंख) तथा मुक़द्दस (पवित्र) जैसे शब्दों को छोड़कर कोई कठिन शब्द नहीं आया है । इस प्रकार की भाषा को भी 'हिंदवी' का ही एक रूप माना जा सकता है, जिसमें कहीं-कहीं कुछ कठिन शब्दों के आ जाने पर भी भाषा की सुबोधता और सादगी में कोई अन्तर नहीं पडता । इसके विपरीत आरज़ू लखनवी की निम्नलिखित ग़जल में विशुद्ध हिंदवी के दर्शन होते हैं :

सच भी बुरा वो जिसको सुनकर लोग कहें तू झूठा है
जिसका लुटाया सबने पाया मुझको उसी ने लूटा है
तारा टूटा सबने देखा ये नहीं देखा एक ने भी
किसकी आँख से आँसू टपका किसका सहारा टूटा है।[१३]

बीसवीं शताब्दी में ही आरज़ू लखनवी नामक उर्दू शायर यद्यपि अपनी भाषा की क्लिष्टता के लिए प्रसिद्ध हैं किंतु उनके 'सुरीली बाँसुरी,[१४] नामक संकलन की रचनाएँ 'हिंदवी' की परंपरा में ही आती हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

(क) छाती से उठे भाप कि गरमा के चले साँस
जब आग लगी है तो पता देगा धुआँ आप
हां हाँ वही चाहत वही चाहत की कहानी
मैं तो कहूँ सौ ढंग से सुनते हैं कहाँ आप[१५]

(ख) साँस टूटी मिट गया सारा घमंड
फुसफुसे तागे पे था कितना घमंड।[१६]

ऐसा प्रतीत होता है कि खड़ी बोली के साहित्य-क्षेत्र में प्रवेशकाल से इस प्रकार की भाषा में साहित्य रचना का चलन आरंभ हो गया था। तभी तो इंशा ने उर्दू के ख्यातिप्राप्त साहित्यकार होने के बावजूद इसमें रचना करने की आवश्यकता समझी। तुलसी ने एक ज़माने में संस्कृत के स्थान पर भाषा (जिसे इंशा ने 'भाखा' कहा है) में काव्यरचना की तो पंडितों ने उनका उपहास ही नहीं, घोर विरोध भी किया। किंतु तुलसी ने दृढ़तापूर्वक घोषणा की—'भाषाबद्ध करब मैं सोई' या 'भाषा निबन्धमति मञ्जुलमातनोति'।[१७] तुलसी जनजीवन तक पहुँचना चाहते थे, इसलिए वे जनता की 'भाषा' के अतिरिक्त और कोई माध्यम नहीं अपना सकते थे। किंतु इंशा तक आते-आते यह 'भाखा' भी संस्कृतनिष्ठता के कारण क्लिष्ट प्रतीत होने लगी थी। भाषाओं के विकास की परंपरा ही यह रही है : संस्कृत>पाली>अपभ्रंश>आधुनिक आर्यभाषाएँ—सभी एक के बाद एक इसलिए विकसित हुईं कि पूर्ववर्तिनी भाषा किताबी होकर जनजीवन से कट गई। अतः जनजीवन से निकलकर दूसरी भाषा सामने आई। एक भाषा के किताबी हो जाने पर दूसरी भाषा काव्यक्षेत्र में जीवन की ताज़गी लेकर पदार्पण करती रही। खड़ी बोली 'हिंदवी' का उद्भव भी इसी नियम के अंतर्गत हुआ। किंतु यह इस नियम का अपवाद भी सिद्ध हुई क्योंकि जहाँ पूर्वोल्लिखित भाषाएँ एक के बाद दूसरी का स्थान लेती रहीं वहाँ 'हिंदवी' 'भाखा' की स्थानापन्न नहीं बन सकी। संभवतः आरंभ में ही इस हिंदवी का प्रचलन बढ़ता देख मुंशी सदासुखलाल नियाज़ ने 'रस्मो रिवाज भाखा का दुनिया से उठ गया' कहकर खेद प्रकट किया था।[१८] इससे प्रतीत होता है कि हिंदवी नामक इस भाषा रूप को इसके उद्भव काल में ही अधिक मान्यता नहीं मिली थी। बाद में भी हिन्दी के कवि-लेखकों ने इसे बड़े पैमाने पर व्यवहार-योग्य समझा हो, इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता। केवल राधेश्याम की रामायण अवश्य मूलतः इसी भाषारूप को लेकर चलती दिखाई देती है; यद्यपि उसमें संस्कृत शब्दों की भी कमी नहीं है किंतु मूल ढाँचा उसका हिंदवी का ही

है। इसीलिए उसकी संस्कृत, या यों कहें कि तत्सम, शब्दावली भी अत्यंत सरल है; और कहीं कहीं तो उसमें विशुद्ध हिंदवी के दर्शन होते हैं :

भाई दो लड़के राम लषण इस दंडक वन में आये हैं।
हमराह एक सीता नामी सुकुमारी नारी लाये हैं।
बाँके हैं और लड़ाके हैं गोया शमशीर उन्हीं की हो।
यों पंचवटी में रहते हैं जैसे जागीर उन्हीं की हो।[१८]

उपर्युक्त पंक्तियों में 'शमशीर' शब्द अवश्य हिन्दवी की प्रकृति के कुछ प्रतिकूल पड़ता है; शेष शब्दावली हिंदवी छुट और किसी बोली का पुट न होने की घोषणा करती प्रतीत होती है। इसी हिंदवीपन के कारण राधेश्याम की रामायण खड़ी बोली का सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य सिद्ध हुई है। खड़ी बोली में रामकथा को लेकर और भी काव्य लिखे गये; वे हिन्दी साहित्य का गौरव बने यह अलग बात है, किंतु जनजीवन से जुड़ सकने की, जनकाव्य बन सकने की क्षमता उनमें न आ सकी। इसका मूल कारण उनकी भाषा की संस्कृतनिष्ठता ही थी। तात्पर्य यह कि 'हिंदवी' के इस रूप को यदि हिंदी के समर्थ कवियों ने व्यापक स्तर पर अपनाया होता तो कबीर, सूर और तुलसी की लोक जीवन से जुड़ी काव्यरचना की परंपरा का निर्वाह बीसवीं शती की हिन्दी कविता में भी होता रहता। खड़ी बोली की काव्य-परंपरा 'पद्मावत' और 'रामचरित मानस' जैसा एक भी लोकप्रिय काव्य नहीं दे सकी। ऐसी स्थिति में उर्दू कवियों की हिन्दवी रचना की उक्त परंपरा को अवश्य ही सराहनीय कहा जायेगा। इन लोगों ने कम से कम काव्य भाषा को लोकभाषा के निकट लाने के प्रयास तो किये। हिन्दी या उर्दू को यदि सच्चे अर्थों में जन सामान्य के लिए कोई कृति देनी है तो हिन्दवी का रास्ता उसके लिए खुला हुआ है।

आभार

विषय को सुझाने और उसकी सामग्री उपलब्ध कराने के लिए लेखक रज़ा लाइब्रेरी रामपुर के उपनिदेशक श्री अकबर अली खाँ अर्शीज़ादा का आभारी है।

सन्दर्भ

१. रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० २००७ वि०, काशी, पृ० ४१७
२. वही, पृ० ४१७-४१८
३. वही, पृ० ५९७
४. नज़ीर अकबराबादी (जीवनी और संकलन), राजपाल एंड संस, दिल्ली, १९५९, पृ० ७२
५. वही, पृ० ७६
६. वही, पृ० ९१
७. वही, पृ० ९७

८. ख्वाज़ा अल्ताफ़ हुसेन हाली, मुनाजाते बेवा, हाली प्रेस, पानीपत
९. वही, पृ० १
१०. वही, पृ० ६
११. वही, पृ० ६
१२. सं० ज़मीर अहमद हाशमी––औराके गुल, रज़ा लाइब्रेरी, रामपुर, १९४४, पृ० ७८
१३. वही, पृष्ठ १०
१४. आरज़ू लखनवी, सुरीली बांसुरी, बंबई, दोयम एडीशन
१५. वही, पृ० ४१
१६. वही, पृ० ५३
१७. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस, गीता प्रेस गोरखपुर, श्लोक ७. चौपाई ३०।१
१८. रामचंद्र शुक्ल—-हिंदी साहित्य का इतिहास, वही, पृ० ४१६
१९. राधेश्याम रामायण, श्रीं राधेश्याम पुस्तकालय, बरेली, १९८०, अरण्य कांड, पृ० ३

———

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1, P. 43-45
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-१, पृ० ४३-४५

JANE AUSTEN'S MALE CHARACTERS IN HER FEMININE WORLD

RAKA GUPTA
Dept. of English, Govt. Raza P. G. College, Rampvr

सारांश

जेन ऑस्टन के उपन्यास नायिका प्रधान उपन्यास हैं। पुरुष प्रधान समाज की झलक उनके उपन्यासों में नहीं मिलती। इसका अर्थ यह नहीं कि वह पुरुष जगत से अनभिज्ञ थीं। अपितु उन्होंने मूल रूप से पुरुष-चरित्रों का चित्रण अपने उपन्यासों में उनके विशेष कथानक और संरचना को ध्यान में रखते हुए नहीं किया।

ABSTRACT

Jane Austen's novels are novels with heroines. She leaves the purely masculine world untouched not because she was ignorant of and unfamiliar with it, but because she regarded it superfluous to her theme and detrimental to the very fabric and structure of her novels.

Like shakespeare's comedies, the novels of Jane Austen are novels with heroines. She concentrates on her female characters, particularly heroines. In every novel of Jane Austen, there is a central character e. g. Elizabeth in 'Pride and Prejudice', Anne Elliot in 'Persuasion', and fanny Price in 'Mansfield Park', who represents the novelist's point of view. And so it is quite natural that even when she presents her male world, it is a world Judged through a woman's point of view.

Again it is true that Jane Austen leaves the purely masculine world untouched. She does not allow us to peep long in the personal lives of her men. She only presents them as fathers, uncles, brothers, neighbours, cousins and lovers to the female characters and not in their Capacities of lawyers, sailors, trades men, farmers or divines. They are shown as leading an easy life—gossiping, playins or dancing with young damsels—always at leisure. They never seem to worry about their daily bread. There is hardly a scene where a woman is not present, and if ever there is, Jane Austen takes recourse to narration.

All this is true but all the same it does not mean that Jane Austen does not include the purely masculine world because she was a woman and a spinster, leading a secluded life in a village and as such was unfamiliar with the masculine world. It is far from truth. Even though her world of experience was limited to a small area, yet it was full of real men of flesh and blood, busy in their daily pursuits In. her own family she had her father and her six brothers-- out of whom two belonged to Navy at a time of naval warfare, two belonged to church, and one inherited a large estate—who were all close to her. She shared their experiences. She herself was a woman of academic interests and was thoroughly familiar with the authors of her own time and of the past. And so to believe that one half of the world could be totally excluded from the vision of as keen an observer of life and manners as Jane Austen, is not only difficult and unwarranted but painful too.

If Jane Austen kept the purely masculine world out of her novels, it is because she chose to do so. She was writing on the theme of love and marriage and so, as per the requirements of her theme, Darcy or Bingley, went worth or knightley, were important to her basically as lovers and prospective husbands rather than as sailors or tradesmen or land lords. The opening lines of 'Pride and prejudice'—"It is a truth universally acknowledged, that a single man in possession of a good fortune, must be in want of a wife."[1]—are a frank and straight forward avowal of this fact. That Darcy is a rich, proud, strong and intelligent man who managed his household and his estates well, is evident from the novel. To go into the details and intricacies of the way he managed his estates, or how he dealt with different people, was out of context and beside the point. His timely intervention in the Lydia-wickam episode is ample proof of the fact that he deals with a situation cleverly and intelligently and could rise to the occasion. What is true of Darcy is true of other male characters too. Whether they succeed or fail in their respective fields or professions, whether they are sane or foolish or comical in their life or manners, whether they are proud, prejudiced, corrupt and vicious, or benevolent, good and gentlemanly, has been sufficiently made clear in the novels. To explain every time why they were so and how, was considered mundane and unnecessary by her, and actually it could have proved fatal to the comedy of her novels. The magic touch of Jane Austen's delicate and delightful irony, perfectly discriminated even her most commonplace characters from each other. It was her process of selection, recombination and heightening of incident and character that turned her observations of real life into the comedy of manners. The unnecessary insertion of wholly masculine world could have defeated her very purpose of novel writing.

Jane Austen was above all an artist and art requires selection. She hardly presents a scene or character that is ir-relevant to her theme and plot. And so

she confined herself to a particular aspect of masculine life as she understood it to be artistically relevant and necessary. She consciously excluded the purely masculine world from her novels because she regarded it superfluous to her theme and detrimental to the very fabric and structure of her novels, and not because she was ignorant of and unfamiliar with it.

REFERENCE

1. Jane Austen : "pride and Prejudice".--Allahabad, Rupa & Co, 1983, P. 15.

—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1, P. 46-51
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-१ पृ० ४६-५१

INFLUENCES ON Dr. MULK RAJ ANAND

JAY PAL SINGH
Department of English, Govt. P. G. College, Ramnagar (Nainital)

सारांश

भारतीय अंग्रेजी साहित्य के महान उपन्यासकार डा० मुल्कराज आनन्द भारतीय एवं पाश्चात्य प्रभाव की विचित्र उपज हैं। भारतीय सामाजिक परिस्थितियों तथा भारतीय उपन्यास के महान स्तम्भों—टैगोर, प्रेमचन्द एवं शरतचन्द्र ने उनको अत्यधिक प्रभावित किया है। उनकी उपन्यास विधा को भी पाश्चात्य उपन्यासकारों—जेम्स ज्वाइस, चेखोव, टाल्स्टाय एवं डिकिन्स ने प्रभावित किया है।

ABSTRACT

Dr. Mulk Raj Anand, one of the greatest Indo-English novelists, is a typical product of Eastern and Western influences. Indian social conditions and the great stalwarts of Indian novel like Tagore, Premchand and Sarat Chandra greatly influenced him. His fictional art was also influenced by James Joyce. Chekov, Tolstoy and Dickens.

Mulk Raj Anand, an Indian Daedalus, enjoys the reputation of being a stalwart in the field of Indo-English literature. Born in Dec. 1905, Anand lived in the most turbulent epoch in the history of modern India. Infact, it was an era of great political, social, economic and literary changes that left its stamps on Mulk Raj Anand and made him a novelist of social and national awareness. National awakening is an outstanding feature of this period. The British government inposed anti-national policy for the suppression of Indians and generated a feeling of racial bitterness and disharmony. The English educated Indians could not forbear this sordid state for long and they rose in rebellion against British government, which soon intensified into active agitation.

Indo-English novel of this period was greatly influenced by national consciousness and feeling or freedom from British rule. During the Gandhian era the movement for freedom became broad-based and attracted the

novelists. Under the stewardship of Mahatma Gandhi, India witnessed revolutionary changes in political, social, economic and cultural life. At the same time, western literature, thought and values began to influence Indian life and literature. The growing contact with Western life, thought and an eagerness for cultural revival of the past coupled with an interest in contemporary Indian life stimulated Indian art and literature. Dr. Mulk Raj Anand is a typical prouct of East-West encounter and his novels are infused with Indianness. Premila Paul remarks about the 'nfluence of Indianness in his novels :

"His novels undoubtedly project a lively image of India, the details of which both reflect and imply his passionate concern with its social reality. They exemplify a realistic sensibility which is capable of plumbing the very depths of human personality and social structure."[1]

The social awakening pioneered by Raja Rammohan Roy, resulted in abolition of Sati-pretha Widow-marriage, the introduction of Sarda Act, and the gradual removal of the sufferings of the untouchables. The social renaissance influenced great leaders and thinkers like Ramkrishana Param Hans, Vivekanand, Dayanand Saraswati, Sri Aurobindo, Mahatama Gandhi, Radhakrishanan and Mulk Raj Anand.

The introduction of Western culture also enabled Indians to learn about the glory of their ancient culture Western scholars like Sir William Jones, Goethe and Max Muller interpreted Indian scriptures and high-lighted its beauties. Following the examples of Western intellectuals, Indians were also fascinated by their own heritage and many Indian writers strove to interpret the art and culture of India with a feeling of self-respect. From early childhood, Mulk-Raj Anand imbibed love and respect for ancient Indian culture, which played subsequently a significant role in the formulation of his philosophy of life. Anand himself explains :

"So that the kind of humanism, in which I believe, the kind of world I hope for···is yet, integral to the Indian tradition in whith I grew up".[2]

It is evident that Anand's humanism has been derived from his love for Indian tradition. The Indian humanist thinkers—Vivekanand, Aurobindo, Premchand, Tagore, Gandhi and Iqbal drew his attention and left an imprint on his philosophy of life. Western writers and thinkrs also fascinated him and exercised a remarkable influence on him.

Above all, Mulk Raj Anand was highly influenced by the freedom movement. Although he spent most of his time in England, yet the events at home left their impact on him. The movement of Gandhian Salt Satyagraha,

the Three Round Table conferences, the Government of India Act of 1935, the introduction of Provincial Autonomy of 1937, the Gandhian movement for Harijan Welfare and basic Education, the involvement in the war in 1939 and the split in the Congress inflenced Anand's fictional art and he gave expression to them in his political novels. K. R. S. Iyengar points out :

"He wrote of the people, for the people, and as a man of the people. It may be said that these early novels reveal an aim and a sense of direction much as an avalanche or a flood shows a fury of momentum, a surge of force, a heady rush towards the goal. Evidently a novelist in a hurry who must say all that he has to say as quickly and as effectively, as he can."[3]

The three stalwarts of Indian fiction, Rabindra Nath Tagore, Munshi Premchand and Sarat Chandra Chatterjee who too had been influenced by Gandhian idealogy and freedom movement, inspired Anand. Tagore's humanism, Premchand's boundless sympathy for the underdog and the realism and Sarat Chandra's remarkable knowledge of the human heart highly influenced both the thinking and the fictional art of Anand. His novels are imbued with the feeling of nationalism, socialism and humanitarianism. In the words of H. M. Williams :

"Mulk Raj Anand was able to unite nationalism with socialism into one humanitarian movement, a single revolt against oppression."[4]

Although Premchand and Sarat Chand were the pioneers of social realism in Indian fiction, yet Indian fiction lacked in the stark realism of Chekov, Gorki and Zola. Indo-English fiction was not properly developed especially from the point of view of technique and craftsmanship. The great Russian writers, Puskin, Tolstoy and Zola strongly influenced Anand. He writes :

"In Indian we have always looked to the most intense Russian literature inspite of the old censorship of the alien rulers that prevailed untill 1947. Apart from Puskin, Gogol, Tolstoy, Dostoevsky, Chekov and Gorki we took some sparks from the fires that raged in Mayakovsky, Yesenin anl Fikhanov. We read voraciously into the epic novels of Sholokhov and many others.[5]"

Tolstoy's *War and Peace* awakened him to the possibilities of the epic novel. The great English novelist James Joyce also fascinated him and his 'Stream of consiousness' technique influenced his first novel *Untouchable*. Anand read Joyoe's *Port rait of the Artist As a Young Man, Ulysses* and parts of *Work in Progress* and was fascinated by them.

Anand's shorter fiction was shaped by the ancient Indian fables of the *Panchatantra*. Punjabi folk tales, the short stories of Tolstoy and Gorki, the prose poems of Turgenev and the fables of Theodore Powys.

Besides the political, social and literary milieu, Anand also imbibed other influences. His parents, his early days in caste and superstition-ridden Punjab, his close acquaintance with the underdog and his education both in India and England formulated his fictional art. His novels are really born of the union of his experience and his imagination. His father, Lal Chand. was a heriditary craftsman who rose to the rank of a Head clerk in the British Indian regiment. His father was noted for his rational thinking and he did his best for his son's intellectual development. Anand read English novels like Reynold's *Mysteries of the Court of London* and *Pope Joan*, Haggard's *She*, Marie Corelli's *Sorrows of Satan*. Hardy's *Tess*, Thackeray's *New Comers*, Dickens' *David Copperfield* and Doyle's *Sherlock Holmes Series*. These works enabled Anand to acquire a taste for fiction in English and later on influenced his fictional art. At college he read Shakespeare and with the help of professor G. W. Harvey he read Galsworthy's *Forsyte Saga*, Arnold Bennett's *old Wives Tales* and H. G. Wells' *The History of Mr. Polly*. He also read the English translations of victor Hugo, Dumas and Tolstoy.

His mother, Ishwar Kaur, belonged to a humble peasant family of Punjab. She was a loving mother who took great care to nourish her son's inborn imaginative faculty with mythological fables and folk tales. Anand was shocked at the death of his lovely cousin and playmate, Kaushalya at the age of nine. It was the first important crisis of his life which shook his faith in divinity and turned him into an atheist. His faith in established institutions, both religious and social, was undermined. Anand inherited deep human sympathy and compassion from his mother and it enabled him to findout a social order which would ensure justice, freedom, equality and hope to the down-trodden.

Anand was very sensitive by nature and kept himself aloof from his playmates. It strengthened his contemplation and observation of life which greatly helped him in making a realistic assessment of human society about which he wrote in his novels. In his early childhood Anand was fascinated by Englishmen and their way of life. His farher was loyal to British rule in India and he wanted to instil the feeling of subservience in them. As Anand grew up he began to dislike it and wanted to develop an independent outlook. As a result he was eventually alienated from his father.

Anand, the champion of the underdog spent his early years in rural punjab. The social evils and superstitions did not appeal to him and violating all social norms he befriended with the children of the out-castes who were calously

and inhumanly treated by caste-Hindus. These social discriminations and evils made him a staunch supporter of the poor and the exploited. Just as Sir Walter Scott wrote about the life in Border Scotland in his *Waverlay Novels* and Hardy about the peasantry in Doretshire in his *Wessex Novels,* he writes about the sorrows and sufferings of the underdog in convention-ridden Punjab of pre-independence days. In this connection Anand writes in the preface of *Two Leaves and a Bud* :

—"The world I knew best was the microcosm of the peasants and outcastes and soldiers and working people, Of course, I am of my time, and the atmosphere of the thirties, with its hangover from crisis, influenced me most strongly." [6]

Anand's imagination was fired by revolutionary ardour quite early in life. In this respect he was influcnced by his maternal grandfather, Nihal Singh, by uncle Dev Dutt's stories of Indian patriots such as Lala Lajpat Ray and Lala Hardayal. As he grew up, his early revolutionary fervour turned into nationalistic feelings.

Women exercised dominant influence on Anand's early life, He loved women in all their moods even at the early age of four. Women aroused sensuous feelings in him. In *Seven Summers* Anand presents a vivid discription of his ailing brother.

At Khalsa College Amritsar, Anand exhibited interest in national affairs. He had read Mahatama Gandhi's *Hind Swaraj* while at school. He actively partcipated in the Civil Disobedience Movement of 1921 and was imprisoned for a short term. He fled to Bombay where he turned a journalist and began writing notes and reviews for the *Bombay Chrnocle.* A review article of Iqbals's *The Secret of the Self* is his most important publication during this period. On his father's persuasion he returned to Amritsar where he came under the spell of Annie Basent and joined the students' Strike against the British government.

Anand's love affairs with Yasmin at Amritsar made his father furious and disgusted. With the help of Iqbal and Lala manmohan, the principal of Khalsa College, he was sent to England in Sept. 1925.

Summing up the major influences on Anand's early life, Saros Cowasjee writes that the death of Kausalya Anand's beautiful cousin, which turned him an atheist, the ostracism of his aunt Devaki for being friendly with a Muslim womnn, which resulted in her suicide and his arrest and caning by the police for innocently breaking the curfew during the Jallianwala Bagh Massacre in 1919, moulded his thinking into revolutionary channels and later on made him a social rebel. [7]

REFRENCES

1. Premila Paul : The Novel of Mulk Raj Anand : A Thematic Study: (Delhi, Stering Publishers pvt. Ltd, 1983). p. 1
2, Mulk Raj Anand : Apology for Heroism (Bombay, Kutub Publishers, 1953) p. 80
3. K. R. S. Iyengar, : Indian Writing in English, (New Delhi, Sterling Publishers Pvt. Ltd. 1984), p. 333
4. H. M. Williams : Indo-Anglian Literature 1800-1970, A Survey, New Delhi, Orient Longman, 1976, p. 47
5. Mulk Raj Anand : Modernism in Indian and Soviet Literature, Contemporary Indian Literature (1966. No 5). p. 10
6: Mulk Raj Anand : Preface of Two Leaves and a Bud, (New Delhi, Orient Paperbacks, 1952) p. 2
7. Saros Cowasjee : So Many Freedoms : A study of the major Fiction of Mulk Raj Anand, New-Delhi, Oxford University Press, 1977. p. 9

—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1, P. 52-57
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-१, पृ० ५२-५७

LIFE OFFERS TO DENY—Hardy and Tryphena

Km. AZRA BEGUM
Dept. of English. Govt. P. G. College, Pithoragarh.

सारांश

अंग्रेजी उपन्यासकार और शायर टामस हार्डी की पहली, पर नाकामयाब मोहब्बत का उसकी जज्बाती जिन्दगी पर क्या असर पड़ा, इस शोध-पत्र में हार्डी की शायरी में उसकी महबूबा ट्रिफिना स्पार्क के चित्रण पर प्रकाश डाला गया है ।

ABSTRACT

The present paper presents an analysis of Hardy's first love-affair with Tryphena sparks, and shows how it left indelible impression on Hardy's psychic-life. It also examines Hardy's poems inspired by his first love.

'It is better to have loved and lost, than never to have loved at all'—observed the poet. Thomas Hardy also loved and lost, and the sense of having lost his first-love haunted him. The present paper proposes to analyse, in the light of Hardy's poems, his relations with Tryphena.

It seems, In Hardy's case, that an early transference of the libido from the mother to the sister had occured. This determined Hardy's later love-life also. His attachment to his sister lasted for a life time. As she had been his closest companion, profound was his grief at the death of his sister. "He regarded their relationship as a spirtual marriage'[1] In the poem 'Conjecture,' Hardy speaks of Mary literally as a third wife :

"If there were in my life-Kalender
No Emma, Florence, Mary,
What would be my existence now
A hermit's ? Wanderer Weary ?"

The grouping together of wives and sisters indicates the possibility of infantile fixation of the libido on the sister Mary, who unconsciously continued for Hardy to be the model of the beloved and the wife, hampering at each stage

the attainment of Compatibility in matrimony, and guiding Hardy's relationships in love towards ambivalence-love-hate relationship. The younger sister, being both the object of jealousy as one who snatched from the child his mother's exclusive affection, and at the same time the object of love as his only playmate, gave to Hardy's attitude towards her an ambivalence and also marked his response to his first-love Tryphena. It was a love-hate relationship the attraction and repulsion working almost simultaneously, and then rendering passionate-love in romance, as impossible, as mutual harmony and understanding in matrimonial life. Hardy's first love, his romance with Tryphena illustrates this.

With the single exception of the poem '*Thoughts of Phena,*' Hardy did not allude directly to the object of his first-love. Even in his self-written biography, he made no reference to Tryphena-directly or obliquely. She was ostensibly Hardy's first-cousin, but actually she was his niece, for she was the illegitimate daughter of Hardy's mother-Jemima Hardy. 'There is evidence that Jemima bore Children before her marriage to Hardy's father, Thomas Hardy, the second, of Higher Bockhampton. The writer Hardy was the third of that place.'[2]

Hardy exercised great caution in omitting the mention of Tryphena in his biography. The details of Hardy's first secret-love were discovered by Lois Deacon. Subsequent biographers of Hardy also accepted most of the details provided by Lois Deacon, and regarded Tryphena as a highly influential, though long-concealed factor in Hardy's life and works between 1867 to 1873. Hardy courted Tryphena, loved her, and for five years they remained engaged to each other. At that time, Tryphena was just sixteen years old-eleven years junior to Hardy. The lovers defying the prohibitions imposed by their parents, met secretly, and perhaps plighted their troth privately. Hardy makes a direct refernce to this in the poem '*A poor Man and a Lady.*'

"We know it was not a valid thing
And only sanct in the eyes of God"

Hardy was yet to discover that the girl whom he regarded to be his cousin was in reality a true blood-relation his niece. This tragic discovery must have come to him as a heart breaking blow.

In the poem '*Neutral Tones,*' he says :

"Since then keen lessons that love deceived
And wrings with wrong, have shaped to me
Your face, and the God-curst sun, and a tree
And a pond edged with grayest leaves."

Another irony of circumstance that acted as a set-back to Hardy's first-love was his introducing Tryphena to Horace moule, who was the son of the vicar of Fordington, and was himself a scholar. He was twenty years senior to Tryphena. In 1869, when Tryphena was undergoing teacher's training in London, she met Moule, who had also been Hardy's old friend and mentor. In *Jude the obscure*. 'Hardy narrates the story clearly, and blames himself endlessly because he had been personally responsible for placing his young cousin under the tutelary care and guidance of his trusted mentor and friend. Moule himself was not aware of the ties that existed between Hardy and Tryphena, and fell in love with her. When Hardy came to know about the relationship between Moule and Tryphena, an estrangement followed. Thus Hardy's first-love came to a tragic end. Moule committed suicide in 1873, and in 1877 Tryphena married Charles Gale. Hardy also married Emma in 1874. As Mrs. Philpott observes:" The unhappiness in the lives of these five people was interwoven. Indirectly, it all stemmed from the love of Tryphena and Hardy, a love which was blighted by ironic circumstances. Tryphena and Hardy parted to make unsatisfactory marriages-with Emma for Hardy, and Charles Gale for Tryphena five unhappy people whose lives were torn by Immanent Will."

In Lois Deacon and Terry Colman's 'Providence and Thomas Hardy', a new hypothesis has been presented; that the love-affair of Hardy and Tryphena resulted in he birth of their son Randy in 1858. It also reveals that Hardy and Tryphena were actually uncle and niece, and that there had been some more illegitimate births in the family. Coleman advances the view that Tryphena was the illigimate daughter of the elder sister Rebecca, and that Rebecca was herself the natural dughter of Jemmimal Hardy's mother. The knowledge that his beloved was actually his blood-relation, must have caused bitter remorse in Hardy, and the feeling of guilt associated with his first love-affair took deep roots in his psyche, and determined the relation with other sex, even in matrimony.

In 1962. Stevens cox interviewed Mrs. Bromwell, the daughter of Tryphena. During the course of the interview, the following conversation, as reported by Cox, took place :

Cox : Did Hardy and Tryphena have a child ?

Mrs. Bromwell : I've told you quite enough. We are not going to wash all our dirty linen in public. You know too much already"[3]

The hypothesis that Hardy's affair with Tryphena brought to them a son has, however, not been conclurively established. Subsequent criticism has also striven to refute this. In 'The Satire of circumstance—the poem '*The Place on*

the Map describes a situation in which the beloved reveals to the lover a pregnancy. Sonctified by matrimony, it would have been a source of joy to the parents, but a child born out of wedlock is a stigma :

"She informed what would happen by and by
For the wonder and the wormwood of the whole
Was that in what realms of reason would have joyed
Our double soul
Wore a timid tragic light
Under order-keepings vengeful control.

The same 'Order-keeping control—' the social taboomakes the lives of Jude and Sue Bridehead a misery, because their children, born out of wedlock are unacceptable to the society.

It has also been suggested that the illegitimate child attributed to Hardy was really fathered by Moule, and that Hardy lacked the virility to be afather Robert Gittings has, in 'Young Thomas Hardy' suggested that Hardy was impotent. It is as hard to refute this charge as to substantiate it. In his Will drawn in 1922, Hardy made the provision for 'the first child of mine who shall atain the age of twenty one years.[4] Is it to be deduced that Hardy drew up the will first to delude the future generations ? To present such devious arguments would be illogical. Indeed to pronounce judgment on the virility of a long-dead author would be too presumptous. It would be like surmising what song the Sirens sang.

The love-trio, on which the theme of Hardy's novels is based, is really a variation on the love-triangle-Hardy, Tryphena and Moule-the Young Hardy had actually found himself in. Some of the novels were directly inspired by this love-tragedy. In the preface to 'Jude the Obscure,' Hardy observes that the circumstances of the novel were suggested by the death of a woman in 1890 (It Was the year of Tryphena's death) The heroine of 'Jude the obscure,' Sue Bridehead-the cousin and the beloved of Jude is a protrait of Tryphena. Hardy's critics have established that other heroines of his novels have also been ambellished by Hardy with some or the other trait of his beloved Tryphena. Fancy Day, the heroine of 'under the Greenwood Tree,' Eustacia vye of 'Return of the Native,' Eathsheba Everdeen in 'Far From the Madding Crowd' are the projections of Tryphena, whose memory continued to haunt Hardy throughout life. So deep indeed was the impression cast on Hardy's inner life by his first love affair that he could neither suppress it, nor could make a frank confession of it before others. To find a safety valve for that repressed secret, Hardy expressed it, using artistic disguise ins his novels. "Working out his sad science of renunciation. Hardy bore himself tenderly and with long suffering during forty years of

increasing incompatibility with his wife, and after her death he expressed his regret in beautiful poems of remorse." As Hardy himself yearned for revelation, he made his poems the medium of expressing obliquely that experience of life which could not be obliteroted.

The shadow of his tragic-love and the light that Tryphena had been to his youth are artistically interwoven in many poems of Hardy. In '*The Christening* '*A Wife to Another*,' '*On a Heath*,' '*At Rusby Pond*,' *The Place on the Map*,' *The End of the Episode*,' '*Beyond the Last Lamp*,' '*Her Lover Bird*, '*Midnight on the great Western*,' '*The Revisitation*,' '*To a Motherless Child*,' and '*Her Immortality*' and in some poems of the '*Winter Words*,' Hardy unburdens his heart. These poems show how Tryphena remained Hardy's life-long love the beacon light.

It is an irony of life that she whose name signified the attribute of 'light-shining'-brought the darkness of frustrated love in Hardy's life. The name Tryphena is from the Greek word '*Phaenin*'-'to shine'. This expresses why in Hardy's poems light and various objects associated with light play a significant role. In the poem '*Thoughts of Phena*.' some words related to light as-'shining, 'enray' 'aureate nump,' 'day-star' and 'life-light' show how to the poet the presence of light denotes the symbolic presence of Tryphena.

In '*The Wind's Prophecy*,' Tryphena is a star : "I cry, there reigns the star for me." In '*When I set out for Lyonnesse*.' the poet imagines "And star-light lit my lonesomeness.' In '*He wonders about himself*' the poet feels :

"Shall I be watching the *stars* of heaven
Thinking one of them looks like thee"

Another poem '*In the seventies*,' makes the poet confess that :

"In the seventies I was bearing in my breast Penned-tight
Certain starry thoughts that threw a magic light"

In '*Memory and I*,' Hardy asks :

'O memory. where is now my love
That *rayed* me as a god above'

That the imagery of light was indicative of Tryphena is vouchsafed by Hardy-critics. "To Hardy, the loved one has the power to illuminate. Moreover, this aura of light emnating from the desired one, is created by the desiring lover himself. Falling out of love disperses this radiance leaving only an ordinary human being."[5]

REFERENCES

1. Gittings, Robert : The Elder Hardy. p. 68
2. Drabble, M. : The Genius of Thomas Hardy. p. 53
3. Cox, Stevens : Tryphena sparks & young Thomas Hardy (Thomas Hardy year Book) p. 29
4 Cox, Stevens : Elusive Mr. Hardy (Thomas Hardy year Book) p. 11
5. Miller : Thomas Hardy : Distancc & Desire. p. 39

—

Jour. U. P. Govt. College Acad Soc. 1985-86, Vol. 1. P. 58-64
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६ खंड-१, पृ०५८-६४

गढ़वाल में हरिजन नेतृत्व

पौड़ी एवं चौन्दकोट विकास खण्डों के आधार पर एक राजनैतिक-वैज्ञानिक अध्ययन

ए० के० चन्दोला
राजनीति विज्ञान विभाग, रा० म० वि०, चौबट्टाखाल

सारांश

प्रस्तुत शोध निबन्ध में पौड़ी गढ़वाल स्थित पौड़ी एवं चौन्दकोट बिकास खण्डों की क्षेत्रीय विकास समितियों के हरिजन नेतृत्व पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। नेतृत्व एक व्यक्ति या समूह की वह क्रिया है जो अन्य लोगों के कार्यों को प्रभावित व निर्देशित करती है। इन विकास समितियों में वर्तमान हरिजन नेतृत्व राजनीतिक रूप से सक्रिय एवं सत्ता पक्ष से जुड़ा हुआ है।

ABSTRACT

An attempt has been made in this paper to bring to light the Schedule caste Leadership in the block development Committees in Pauri and Chondkot blocks, which are situated in Pauri Garhwal. Leadership is the activity of an individual or group which influences, guides activities of other people. The present Schedule Caste leadership in these block development Committees are politically act·ve and mostty affiliated with ruling party.

उत्तर प्रदेश के मानचित्र में गढ़वाल उत्तर दिशा में स्थित है। इस मण्डल का कुल क्षेत्रफल ३००३३ वर्ग कि० मी० है। यह पाँच जनपदों-देहरादून, चमोली, टेहरी, उत्तरकाशी एवं पौड़ी जनपदों से मिल कर बना है। प्रस्तुत शोघ निबन्ध में पौड़ी एवं चौन्दकोट विकास खण्डों को अध्ययन के लिए चुना गया है। ये पौड़ी-गढ़वाल के गढ़वाल हिमालय की मध्यवर्ती लघु हिमालय श्रेणियों में दक्षिणवर्ती मध्यम श्रृंखलाओं में स्थित हैं। यह एक पर्वतीय क्षेत्र है जिसकी औसत ऊँचाई ११०० से १४०० मीटर के मध्य में है, इस क्षेत्र में औसतन तापमान १२° से० से ३०° से० तक रहता है।

पौड़ी विकास खण्ड नगर में स्थित है जो मण्डल की राजधानी भी है जबकि चौंन्दकोट विकास खण्ड दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्र में स्थित है, इन विकास खन्डों की क्षेत्रीय विकास समितियों में हरिजन नेतृत्व का अध्ययन ही प्रस्तुत शोध निबन्ध का उद्देश्य है।

चौन्दकोट विकास खण्ड की सम्पूर्ण जनसंख्या ग्रामीण है । इसमें अनुसूचित जाति जनजाति का प्रतिशत ७.१८% है । इसकी तुलना में पौड़ी विकास खण्ड में ७०% ग्रामीण एवं ३०% शहरी जनसंख्या है तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति का प्रतिशत ११.९% है । गढ़वाल के अधिकांश गांवों में हरिजन लोग सवर्ण जातियों के साथ ही रहते हैं यद्यपि हरिजनों के मकान सवर्ण लोगों के मकान से दूर बसे होते हैं । आर्थिक रूप से भी गढ़वाल का हरिजन समुदाय अत्यधिक पिछड़ा हुआ है । ७५% हरिजन स्वरोजगार से अपनी जीविका अर्जित कर रहे हैं, आय के साधन अत्यधिक सीमित हैं ।

नेतृत्व का अध्ययन राजनीति विज्ञान का प्रारम्भ से ही एक प्रमुख और मूल विषय रहा है क्योंकि नेतृत्वहीन किसी भी सामाजिक इकाई का कार्य प्रभावशाली ढंग से नहीं हो सकता, सामाजिक समूह स्वतः ही कार्य नहीं करते हैं, इन समूहों को अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए जहाँ एक ओर अनुशासन और निश्चित संरचना की आवश्यकता होती है वहीं दूसरी ओर ऐसे नेतृत्व का महत्व भी स्वीकार किया जाता है जो आवश्यकता के अनुसार उसे सामाजिक समूह का मार्ग निर्देशित भी कर सकें, नेतृत्व को समूह में एक जोड़ने व अनुशासन स्थापित करने वाली शक्ति माना जाता है ।[१]

नेतृत्व को परिभाषित करते हुए आर्डवे ट्वीड लिखते हैं कि व्यक्तिओं के कार्यों को प्रभावित करना ताकि वांछित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके, नेतृत्व है ।

नेतृत्व के संदर्भ में डी० सैन्डरसन का मत है कि सर्वसम्मति होने पर भी बिना नेता के कोई भी समाज प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य नहीं कर सकता। यदि समाज को एक इकाई के रूप में कार्य करना है तो उसमें मान्य एवं विश्वस्त नेताओं का होना आवश्यक है, सामुदायिक क्रियाओं को निर्देशित तथा समाज के विकास के लिए उस समाज में नेता का होना आवश्यक है । यदि कोई नेतृत्व नहीं है तो समाज के लिए कोई बोल नहीं सकता है और उसका विकास नहीं हो सकता है ।'[२]

हरिजन नेतृत्व से यह अभिप्राय है कि हरिजन समुदाय के कुछ व्यक्तियों द्वारा जो बौद्धिक एवं भौतिक रूप से उस समुदाय के अन्य लोगों से उच्च हैं, उनके द्वारा उस सम्पूर्ण समुदाय का मार्ग निर्देशन करना इस विपन्न समाज को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गतिशील बनाने के लिए यह आवश्यक है कि इनकी बागडोर योग्य नेतृत्व के हाथों में हो । प्राचीन गढ़वाल के हरिजन समाज में नेतृत्व को चमत्कारिक शक्तिओं से परिपूर्ण माना जाता था । इसलिए तान्त्रिक एवं ओझा लोगों द्वारा सम्पूर्ण हरिजन समाज का पथ प्रदर्शित किया जाता था ।[३]

विकास क्षेत्रों में अपने समाज का प्रतिनिधित्व करने के लिए हरिजन नेताओं को क्षेत्रीय विकास समिति में स्थान दिया गया है । नेतृत्व का स्वरूप परम्परागत है, जिसमें अधिक आयु, अल्पशिक्षित एवं सम्पन्नता के कारण ये नेता गढ़वाल में अपने समाज के प्रतिनिधि हैं । आजादी के पश्चात् गढ़वाल के ग्रामीण एवं शहरी हरिजन नेतृत्व की बागडोर उन्हीं लोगों के हाथ में रही जो आजादी से पूर्व सक्रिय थे । इन हरिजन नेताओं ने इस क्षेत्र के विकास में अपना बहुमूल्य योगदान दिया है । श्री जयानन्द भारतीय ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर गढ़वाल में १९२४ में

डोलापालकी आन्दोलन तथा १९२८ में सर्वदलित बोर्ड की स्थापना की थी तथा हरिजनों को नेतृत्व प्रदान किया था।[४] हरिजन नेता श्री मुताड़ी लाल आजाद हिंद फौज के सदस्य रहे तथा उत्तराखन्ड में स्वाधीनता आन्दोलन में इनका सक्रिय योगदान रहा है।[५]

वर्तमान समय में गढ़वाल के हरिजन नेतृत्व के स्वरूप में परिवर्तन हो रहा है। हरिजन नेतृत्व में युवा लोग आ रहे हैं किन्तु इनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है, नेतृत्व के परिवर्तन का यह काल संक्रमण का काल है, क्योंकि बुजुर्ग एवं परम्परागत हरिजन नेता सुगमता से युवा हरिजन नेतृत्व को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है।

प्रस्तुत शोध निबन्ध को तैयार करने के लिए राजनीति विज्ञान की नवीनतम अन्तर्विषयी व्यवहारवादी पद्धति को अपनाया गया है, जिसमें पौड़ी जनपद को प्रथम स्तर पर बहुस्तरीय बिना ब्यवस्था निर्देशन के द्वारा विकास खन्डों में बाँटा गया है। विभिन्न स्तरों के आधार पर दो विकास खन्डों, पौड़ी एवं चौन्दकोट जो क्रमशः शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में हैं अध्ययन के लिए चुना गया। विकास खण्डों में स्थित क्षेत्रीय विकास समितियों के मनोनीत हरिजन नेताओं का राजनैतिक अध्ययन करने के लिए व्यक्तिगत साक्षात्कार एवं प्रश्नावलियों का उपयोग किया गया। प्रश्नावलियों का प्रकार खुले प्रकार का था जिसमें उत्तरदाता को अपना उत्तर प्रस्तुत करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी गयी। हरिजन समुदाय का अध्ययन करने के लिए असहभागी अवलोकन प्रणाली अपनायी गयी, द्वितीयक आंकड़ों की प्राप्ति के लिए शासकीय एवं अशासकीय संदर्भ ग्रन्थों एवं स्थानीय समाचार पत्रों की सहायता ली गयी है। इस प्रकार इस विधि से गढ़वाल के हरिजन नेतृत्व के सम्बन्ध में मुख्य खोज इस प्रकार रही।

हरिजन नेतृत्व की राजनैतिक सहभागिता—क्षेत्र के सर्वांगीण विकास के लिए स्वतन्त्रता के पश्चात् देश के प्रत्येक विकास खन्ड के अन्तर्गत क्षेत्रीय विकास समितियाँ गठित की गयी हैं, इनमें उस विकास खन्ड के समस्त ग्रामों के प्रधान, महिला एवं सामाजिक कार्यकर्त्ता एवं कुछ हरिजन नेता सदस्य होते हैं, ये सदस्यगण चुनाव द्वारा या सर्वसम्मति से एकमत होकर अपना प्रमुख चयनित करते हैं। प्रमुख समिति की बैठकों का सभापतित्व करता है। खन्ड विकास अधिकारी इस समिति का पदेन सदस्य होता है। प्रत्येक ३ माह में एक बार अनिवार्य रूप से समिति की बैठक होती है। जिसमें क्षेत्र के विकास पर चर्चा होती है। पौड़ी एवं चौन्दकोट विकास खन्डों की क्षेत्रीय विकास समितियों के हरिजन नेताओं का अध्ययन एवं उनकी राजनैतिक सहभागिता तालिका नं० १ में स्पष्ट है :—

तालिका से यह स्पष्ट है कि इन विकास खण्डों में हरिजन नेता सत्ताधारी इन्दिरा कांग्रेस से बहुमत की संख्या में सहभागिता व्यक्त कर रहे हैं, जिसका कारण इस दल का योग्य नेतृत्व एवं श्रेष्ठ विचार धारा का होना पाया गया। साथ ही इस दल का सत्ता में होना भी इसका प्रमुख कारण है क्योंकि सत्ता पक्ष से जुड़ना प्रत्येक राजनीतिज्ञ की आकांक्षा होती है, चौन्दकोट की तुलना में पौड़ी विकास खन्ड में सत्ता पक्ष के पश्चात् लोकदल की स्थिति अच्छी है तथा विपक्षी दल जनता पार्टी का भी क्षे० वि० स० में प्रतिनिधि है जिसका कारण चौन्दकोट विशुद्ध ग्रामीण क्षेत्र की अपेक्षा पौड़ी शहरी क्षेत्र में बुद्धिजीवी मानसिकता, शिक्षा का अच्छा स्तर एवं सक्रिय राजनैतिक कार्यकलापों का पाया जाना है। यदि विपक्षी दल हरिजन समुदाय

के हितों के लिए सृजनात्मक कार्य करें तो इस क्षेत्र में वे इन्दिरा कांग्रेस का अच्छा विकल्प बन सकते हैं । चौन्दकोट में हरिजन नेताओं का विपक्षी दलों से सीमित सहभागिता का कारण इस ग्रामीण क्षेत्र में विपक्षी दलों का उचित संगठन एवं प्रचार प्रसार न होना है । यहीं कारण है कि यहाँ निर्दलीय हरिजन नेता का भी अस्तित्व है । इन्दिरा कांग्रेस से इन विकास खण्डों में हरिजन नेताओं की सहभागिता का प्रतिशत भी बहुत अधिक है। युवा प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी पौड़ी के हरिजन नेताओं में ७५% लोकप्रिय हैं, वहीं चौन्दकोट में लोकप्रियता का प्रतिशत ५०% है इसका कारण पौड़ी में बुद्धिजीवी एवं शिक्षित हरिजन नेतृत्व है और हरिजन समुदाय में शिक्षा का प्रतिशत ३९% है । चौन्दकोट का हरिजन नेतृत्व अल्प-शिक्षित, ग्रामीण है जिसमें शिक्षा का प्रतिशत २४% है ।[६] लोकप्रियता में कमी का एक प्रमुख कारण इस ग्रामीण क्षेत्र में आधुनिक संचार साधनों का अभाव होना है, साथ ही विकास योजनाएं शहरी क्षेत्रों में अपेक्षाकृत ज्यादा महत्वपूर्ण ढंग से लागू होती हैं । ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में जागरूकता एवं यातायात साधनों का अभाव भी ग्रामीण क्षेत्रों में होना इसका कारण है ।

क्षे० वि० स० में यद्यपि हरिजन नेता कम संख्या में हैं किंतु ये सक्रिय रूप से राजनीति से जुड़े हुए हैं । यह इस तथ्य को उजागर करता है कि गढ़वाल का हरिजन नेतृत्व राजनीतिक रूप से जागरूक है ।

क्षेत्रीय विकास समितियों में हरिजन नेतृत्व—स्वतन्त्रता के पश्चात् विभिन्न खण्डों में गठित क्षेत्रीय विकास समितियाँ वे स्थल हैं जहाँ समाज के अन्य वर्गों के नेताओं के साथ हरिजन नेता भी क्षेत्र के विकास के लिए अपना योगदान देते हैं, साथ ही अपने समुदाय की समस्याओं को प्रशासनिक अधिकारियों के समक्ष उन बैठकों में रखते हैं जो इसमें भाग लेते हैं । हरिजन नेतृत्व के रूप का अध्ययन क्षे० वि० स० के संदर्भ में तालिका नं० २ में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है ।

प्रस्तुत तालिका के अनुसार पौड़ी विकास खन्ड की क्षेत्रीय विकास समिति में अधिकांश हरिजन नेता समिति की बहसों में भाग लेते हैं । प्रशासनिक अधिकारी सक्रिय, सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित एवं शिक्षित हरिजन नेताओं को उचित महत्व देते हैं । सत्तापक्ष के सक्रिय कार्यकर्त्ता होने के कारण इन हरिजन नेताओं की समस्याओं का प्रशासन उचित समाधान भी कर रहा है । इस विकास खन्ड में सक्रिय हरिजन नेताओं का प्रतिशत भी अधिक है । इसकी तुलना में चौन्द-कोट विकास खन्ड में अधिकांश हरिजन नेता विकास बहसों में कम भाग लेते हैं । अल्पशिक्षा, विकास कार्यक्रमों की उचित जानकारी न होना दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्र तथा हरिजन नेतृत्व में कम जागरूकता का पाया जाना इसका कारण है । यही कारण है कि प्रशासनिक वर्ग भी इनको अधिक महत्व नहीं देता है ।

ग्रामीण क्षेत्र की अपेक्षा शहरी क्षेत्र में हरिजन नेता विकास समितियों में अपना महत्व-पूर्ण योगदान दे रहे हैं, नेतृत्व की इस विविधता के कारण ही चौन्दकोट की अपेक्षा पौड़ी का हरिजन समाज अधिक विकसित है ।

तालिका नं० १

१	२	३	४	५	६	७
विकास खन्ड का नाम (क्षे० वि० स० में कुल सदस्य)	क्षेत्रीय विकास समिति में कुल हरिजन नेता	हरिजन नेताओं की विभिन्न दलों के साथ सदस्यता	क्षे० वि० स० के कुल सदस्यों में हरिजन नेताओं का प्रतिशत	हरिजन नेताओं की विभिन्न दलों के साथ सहभागिता का प्रतिशत	इ० का० से सहभागिता का कारण १—नेतृत्व २—विचारधारा ३—पारिवारिक पृष्ठभूमि	कुल इ० का० हरिजन नेताओं में श्री राजीव गांधी के समर्थक (प्रतिशत)
पौड़ी कुल सदस्य १२५	७	इ० कांग्रेस—४ लोकदल—२ जनतापार्टी—१ अन्य—×	५.६%	इ० कां०—५७.४% लोकदल—२८.५% जनतापार्टी—१४:१% अन्य—×	१—७५.% (४ में से ३ सदस्य) २—२५% (कुल ४ में से १ सदस्य) ३—×	कुल ४ में से ३ इ० का० हरिजन नेता श्री गांधी के समर्थक लोकप्रियता ७५%
चौन्दकोट ८०	८	इ० कांग्रेस—६ लोकदल—१ जनता—× अन्य—१ (निर्दलीय)	१०%	इ० का०—७५% लोकदल—१२.५% जनता—× अन्य—१२.५% (निर्दलीय)	१—(६ में ४ सदस्य इ० का०) ६७% २—६ में १ सदस्य १६.५% ३—६ में १ सदस्य १६.५%	कुल ६ में से श्री राजीव गान्धी के समर्थक ३ हरिजन नेता लोकप्रियता ५०%

तालिका नं० २

१	२	३	४	५	६	७
विकास खंड का नाम क्षेत्रीय विकास समिति के कुल सदस्य	क्षेत्रीय विकास समिति में कुल हरिजन नेता	हरिजन नेताओं द्वारा समिति की बैठक में योगदान १—श्रोता के रूप में २—वक्ता के रूप में	प्रशासन द्वारा हरिजन नेतृत्व को महत्व १—कुल नेताओं को महत्व २—कुल नेताओं की उपेक्षा	समिति में उपस्थित कुल हरिजन नेताओं द्वारा सक्रिय सहयोग	क्षे० वि० स० के हरिजन नेताओं में सक्रिय हरिजन नेताओं का प्रतिशत	क्षे० वि० स० के कुल सदस्यों में हरिजन नेताओं का प्रतिशत
पौड़ी (१२५)	७	१—२ २—५	१—४ २—१	४	५७.१%	५.६%
चौन्दकोट (८०)	८	१—५ २—३	१—२ २—१	२	२५%	१०%

प्रस्तुत शोध निबन्ध यह व्यक्त करता है कि गढ़वाल की राजनीति में यद्यपि हरिजन नेताओं को कम स्थान मिला है किन्तु विकास समितियों के माध्यम से यह हरिजन नेतृत्व शहरी क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभा रहा है। ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में राजनीतिक दलों और विशेष कर सत्ता पक्ष से जुड़कर हरिजन नेता विकास योजनाओं से अपने समुदाय को लाभान्वित कर रहे हैं तथा सक्रिय राजनीति से जुड़े हुए हैं जो यह व्यक्त करता है कि गढ़वाल का हरिजन नेतृत्व सक्रिय एवं जागरूक है।

सन्दर्भ

१. आर्डवे—ट्वीड, द आर्ट आफ लीडरशिप—एन वाई, (न्यूया०) मैकग्राहिल १९७३, पृ० ४.

२. डी० सैन्डरसन—रूरल सोसियालाजी एन्ड रूरल सोसियल आरगानाइजेशन, न्यूयार्क १९४२, पृ० ६८९-६९०

३. डबराल शिवप्रसाद—अलकनन्दा उपत्यका के निवासी, पृ० ३२.

४. ५, भक्त दर्शन—गढ़वाल की दिवंगत विभूतियाँ, पृ० ४५०, ७०६

६. सांख्यिकी पत्रिका, जनपद पौड़ी गढ़वाल १९८२ अर्थ एवं संख्या प्रभाग, राज्य नियोजन संस्थान, उत्तर प्रदेश

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1. P. 65-70
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६ खंड १, पृ० ६५-७०

सुरक्षा के परिप्रेक्ष्य में भारत-पाक संबंध

राजेन्द्र कुमार गुप्ता
राजनीतिशास्त्र विभाग, राजकीय रजा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर

सारांश

आज भारत को चारों ओर से खतरा है। वह ऐसे पड़ोसियों से घिरा हुआ है जो सुरक्षा पर बहुत अधिक खर्च करते हैं, एक तरफ रूस में अफगानिस्तान है तथा दूसरी तरफ डिएगोगर्सियो में अमेरिका पूरे दम खम के साथ विद्यमान है। पाकिस्तान अपनी सैनिक तथा परमाणु तैयारियों को छिपाने के लिए भारत के साथ सम्बन्ध सुधारने हेतु अव्यावहारिक प्रस्ताव प्रस्तुत कर रहा है। आधुनिकतम हथियारों तथा परमाणु बम की ओर अग्रसर पाकिस्तान के साथ संबंध सुधारने में भारत को बहुत सतर्क रहना होगा।

ABSTRACT

Today, India is in danger from all Sides. It is surrounded by the countries incurring high expenditure on defence including USSR in Afghanistn and U. S. A in Diogogarcia. India's immediate neighbour Pakistan is proposing something which she knows, is totally impractical. India has to be extremly vigilant while Continuing its efforts to normalise its relations with Pakistan in view of sophosticated arms being acquired by Pakistan. At the same time India has to be cautious against Pakistan's nuclear preparations.

इस समय हमारे देश की सीमाओं पर लगभग चारों ओर से जितना खतरा व्याप्त है उतना बँगला देश प्रकरण के उपरांत कभी नहीं रहा। एक ओर विदेशी हथियारों के बल पर अन्दर की बेचैनी से उग्र बना पाकिस्तान हमारे लिए निरन्तर खतरा बना हुआ है तो दूसरी ओर चीन अपनी पारम्परिक चिकनी चुपड़ी बातों के साथ हम पर गृद्धदृष्टि जमाये हुए है, साथ ही तीसरी ओर हिन्द महासागर के जल को रौंदते हुए अमरीकी तथा अन्य विदेशी युद्ध-पोत एवं निकटस्थ सैनिक अड्डे हमारी सुरक्षा के लिए खतरे का सकेत दे रहे हैं। श्री लंका भी अब मित्र देश नहीं रहा, आंतरिक विवाद में भारतीय हस्तक्षेप की काल्पनिक आशंका से ग्रस्त होकर और अमरीकी तथा पश्चिमी शक्तियों का सहारा लेकर वह भी हमें आँखें

दिखाने लगा है। जिस बाँगला देश का अस्तित्व ही भारत की सहायता से सम्भव हो पाया था उसके भी तेवर अब बदल गये हैं।

भारत की सुरक्षा के लिए इस समय सबसे बड़ा खतरा पाक की ओर से ही है, प्रारम्भ से ही वह भारत के प्रति एक स्पष्ट शत्रुता के भाव से ग्रसित रहा है, १९४७ में उसने कवालियों की आड़ में कश्मीर पर आक्रमण किया और वहाँ का बहुत सा क्षेत्र अब भी उसके कब्जे में है। उसके बाद १९६५ तथा १९७१ में उसने पुनः हम पर आक्रमण किये। भारत को अपने प्रभाव क्षेत्र में सम्मिलित करने तथा नीचा दिखाने के लिए ही विदेशों से बड़ी मात्रा में उसने हथियार बटोरे। १९५४ में जब पाक अमेरिका के साथ सैनिक सन्धियों में बँध गया तो अमेरिकी हथियारों में और अधिक वृद्धि हो गयी। १९७१ में पाक विभाजन के बाद उसकी सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकतायें बहुत कम रह गयी थीं और तदनुसार यह अपेक्षा की गयी थी कि वह अपने सुरक्षा व्यय को कम करेगा किन्तु हुआ इसके विपरीत[1]। १९६४-६५ में उसका जो रक्षा व्यय १ अरब २९ करोड़ रुपये का था वह विभाजन के बाद १९७३-७४ में ४ अरब २३ करोड़ रुपये और १९७७-७८ में ९ अरब १५ करोड़ रुपये का हो गया। उसके बाद भी अब तक उसकी सैन्य शक्ति में तीनगुनी तक की वृद्धि हो चुकी है। मिलिटरी बैलेंस, लंदन १९८३-८४ के अनुसार भारत में प्रति व्यक्ति रक्षा व्यय केवल ८ डालर था, जबकि पाकिस्तान का व्यय प्रति व्यक्ति २० डालर था[2]। वर्ल्ड मिलिटरी एंड सोशल एक्सपेन्डीचर १९८२ के अनुसार सकल राष्ट्रीय उत्पादन का राष्ट्रीय सुरक्षा पर व्यय करने वाले १४१ राष्ट्रों में भारत का स्थान ७०वाँ तथा पाकिस्तान भारत से कहीं बहुत ऊपर है, इसी तरह सुरक्षा व्यवस्था पर प्रति व्यक्ति होने वाले व्यय के प्रतिशत में भारत का स्थान जहाँ १४१ राष्ट्रों में ११७वाँ है वहाँ पाकिस्तान का ९६वाँ है।[3]

विश्व के अनेक देशों से पाकिस्तान ने हथियार बटोरे हैं तथा इन हथियारों में काफी बड़ी मात्रा उन हथियारों की है, जो उसे मुफ्त प्राप्त हुए हैं अथवा नाम-मात्र के मूल्य पर प्राप्त हुए हैं। पाकिस्तान के सामने वैसे भी हथियारों के लिए धन की कमी नहीं रहती। धर्म के नाम पर अरब देशों से काफी बड़ी मात्रा में उसे आर्थिक सहायता मिलती रहती है। अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप के नाम पर हथियार दिये जाने से उत्पन्न परिस्थिति हमारे सामने एक समस्या है, आज अमेरिका से सहायता प्राप्त करने वाले देशों में पाक का मिस्र के बाद द्वितीय स्थान है। अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को ३.२ मिलियन डालर की सहायता देने के साथ-साथ नाम मात्र के मूल्य पर अति आधुनिकतम परिष्कृत अस्त्र शस्त्र उपलब्ध कराये जा रहे हैं। यह कहने से यह समस्या समाप्त नहीं होती कि पाकिस्तान इतना छोटा देश है कि वह भारत जैसे विशाल देश पर आक्रमण करने का खतरा नहीं उठा सकता, इसलिए भारत को इस खतरे से आशंकित नहीं होना चाहिए। पिछले ३७ वर्षों के अनुभवों को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता, इस अवधि में पाकिस्तान ने तीन बार भारत के विरुद्ध आक्रमण का दुःसाहस किया है। असलियत यह है कि पाकिस्तान में जब भी भीतरी उथल-पुथल मची है उसने अपनी जनता का ध्यान बँटाने के लिए बाहर सैनिक अभियान छेड़ा है, खासकर भारत के विरुद्ध। १९७१ में भारत के हाथों हुई अपनी पराजय का बदला लेने की

तमन्ना अभी भी पाकिस्तानी सेना के मन में है। अफगानिस्तान की हालत तथा वहाँ रूस की उपस्थिति यह एक तथ्य है जिसका हमें ख्याल रखना होगा, यों तो जाहिराना तौर पर पाक ने इसी बहाने अमेरिका से हथियार प्राप्त किये हैं परन्तु यह कल्पना करना मुश्किल है कि अफगानिस्तान में रूसी फौजों के मौजूद रहते पाक उनका उपयोग करने का साहस करेगा। पाकिस्तानी शासक बड़ी तत्परता से यह बताने की कोशिश कर रहे हैं कि उनका इन हथियारों का भारत के विरुद्ध प्रयोग करने का कोई इरादा नहीं है, परन्तु अमेरिका से प्राप्त होने वाले अधिकांश हथियारों का प्रयोग अफगान सीमा पर नहीं किया जा सकता।[४] चीन तथा अरब राष्ट्र पाक के मित्र देश हैं, अतः पिछले अनुभव के आधार पर यह सम्भव है कि ज्यों ही पाक शासकों को यह महसूस होगा कि अब बड़ी ताकत का प्रयोग भारत के विरुद्ध किया जा सकता है, तभी वह वैसा कर बैठेंगे। अमेरिका पाक को अति आधुनिकतम हथियार देने तक ही सीमित नहीं है वरन् अमेरिका द्वारा पाकिस्तान में दूर संवेदनशील खुफिया उपकरण लगा दिये गये हैं, जो अमेरिकी विशेषज्ञों के नियंत्रण में समूचे क्षेत्र की सैन्य सम्बन्धी सूचनायें एकत्र कर रहे हैं। इन परिष्कृत उपकरणों की सहायता से पाकिस्तान सैकड़ों किलोमीटर दूर से भारत की सैनिक गतिविधियों की जानकारी रख सकता है। इस तरह से अमेरिका पाकिस्तान के बीच क्षेत्र की सैनिक सम्बन्धी जानकारी के आदान-प्रदान का भारत की सुरक्षा पर गम्भीर खतरा है। महाशक्तियों को प्राप्त होने वाली सैन्य सम्बन्धी जानकारी का यदि एक भी हिस्सा तृतीय विश्व के देशों जैसे भारत व पाक को उपलब्ध करा दिया जाये तो सम्बन्धित देश की सामरिक क्षमता में एक गुणात्मक परिवर्तन आ जाएगा।[५]

परम्परागत हथियारों के अतिरिक्त पाकिस्तान द्वारा परमाणु बम बनाने की क्षमता भी हासिल कर ली गयी है। अमरीकी कांग्रेस में अल्पसंख्यक सचेतक सीनेटर एलनक्रस्टन ने एक पन्द्रह पेजी दस्तावेज प्रस्तुत किया जो १० अमेरिकी विशेषज्ञों के विश्लेषण तथा सूचनाओं पर आधारित था। सीनेटर क्रस्टन के अनुसार पाक ने ४५ किग्रा हथियार स्तर का उच्च परिशोधित यूरेनियम उत्पादित करने की क्षमता हासिल कर ली है, जबकि १६ किग्रा यूरेनियम से एक परमाणु विस्फोटक शीर्ष का निर्माण किया जा सकता है। क्रस्टन ने एक बात विशेष जोर देकर कही है कि पाक आणविक कार्यक्रम में कहीं भी परमाणु ऊर्जा के शांति पूर्ण तथा असामरिक कार्यक्रमों को स्थान नहीं दिया गया है।[६] ऐसी ही आशंका न्यूक्लियर कंट्रोल इंस्टीयूट, वाशिंगटन के निर्देशक डा० लेवेथल भी अमेरिकी सीनेट की विदेशी मामलों की समिति को दे चुके हैं।[७] इसी के साथ-साथ लाहौर के समाचारपत्र 'नवाए-वक्त' में प्रकाशित साक्षात्कार में पाकिस्तानी आणुविक वैज्ञानिक डा० कादर खान ने यूरेनियम परिशोधन में दक्षता का दावा ही नहीं वरन् यह भी कहा कि सरकार चाहे तो हम परमाणु बम भी बना सकते हैं। इस प्रकार की सूचनाएँ मिली हैं कि चीन द्वारा भी पाकिस्तान को आणविक शस्त्रों के विकास में सहायता उपलब्ध करायी जा रही है। तथा अपनी 'फोर्थ वेपन टेस्ट तकनीक' भी पाकिस्तान को उपलब्ध करायी है। उपलब्ध तथ्यों के प्रकाश में यह स्पष्ट रूप से माना जा सकता है कि या तो पाक ने २० के० टी० क्षमता का बम बनाने में सफलता प्राप्त करली है अथवा इस ओर अग्रसर है।[८]

इस सन्दर्भ में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि पाकिस्तान ने अपनी अस्सी प्रतिशत सेना भारतीय सीमा पर लगा रखी है तथा आरक्षित सैनिक टुकड़ियों को अग्रिम सैनिक पंक्तियों द्वारा बदल दिया गया है ।[६]

भारतीय सेना को भ्रम में डालने के लिए पाकिस्तानी सेना ने अपनी सिग्नल व्यवस्था में कुछ इस प्रकार के परिवर्तन किये हैं कि भारत को कोई निश्चयात्मक सूचना न मिल सके तथा भारतीय सेना पाकिस्तान के आकस्मिक आक्रमण का अनुमान न लगा सके ।[६]

अकाली समस्या के सन्दर्भ में भी पाकी रवैया शत्रुतापूर्ण रहा है, पंजाब के आतंकवादियों को पाक द्वारा प्रशिक्षित किया जा रहा है तथा पंजाब में सैनिक कार्यवाही के अनेक सक्रिय उग्रवादियों को पाक ने शरण दी है ।[१०] भारतीय विमानों के अपहरणकर्ताओं के विरुद्ध कोई भी कार्यवाही न किया जाना या कार्यवाही में ढील देना पाकिस्तान के अमित्रतापूर्ण रवैये का ही द्योतक है ।

पाकिस्तान के द्वारा परस्पर एक दूसरे के आणविक प्रतिष्ठानों के निरीक्षण तथा दक्षिण एशिया को परमाणु हथियारों से मुक्त क्षेत्र बनाने के प्रस्ताव भारत से किये जा रहे हैं । यदि उपरोक्त दोनों प्रस्तावों का सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन किया जाए तो वे निरर्थक तथा अव्यावहारिक प्रतीत होते हैं । एक ओर पाकिस्तान दक्षिण एशिया सम्बन्धी मामलों में चीन को भी सम्मिलित करने पर जोर देता है, परन्तु दक्षिण एशिया को परमाणु हथियारों से मुक्त क्षेत्र बनाने में चीन को शामिल नहीं करता । इस बात का पाकिस्तान के पास कोई उत्तर नहीं है कि जब चीन दक्षिण एशिया का देश है तो दक्षिण एशिया को परमाणु मुक्त क्षेत्र बनाने में चीन को क्यों नहीं शामिल किया जाता ।[११] पाकिस्तान का परस्पर आणविक प्रतिष्ठानों के निरीक्षण का प्रस्ताव भी बिल्कुल अव्यावहारिक है, क्योंकि विश्व के किसी भी स्थान पर इस व्यवस्था को लागू नहीं किया जा सका है । प्रथम बार रूस ने रसायनिक हथियारों के परीक्षण के सम्बंध में इस प्रस्ताव को मान्यता दी है । अमेरिका तथा रूस के बीच अब तक जितने भी इस प्रकार के समझौते हुए हैं उनमें उपग्रहों आदि के माध्यम से बिना एक दूसरे के क्षेत्रों का अतिक्रमण किये प्रतिष्ठानों का निरीक्षण किया गया है । चूँकि भारत तथा पाकिस्तान के पास इस तरह की उपग्रह व्यवस्था नहीं है अतः एक दूसरे के प्रतिष्ठानों का केवल प्रत्यक्ष निरीक्षण ही किया जा सकता है । भारत में समस्त परमाणु कार्यक्रम परमाणु ऊर्जा आयोग के अन्तर्गत चलाये जा रहे हैं । तथा भारत के समस्त प्रतिष्ठानों का निरीक्षण ऊर्जा आयोग के समस्त प्रतिष्ठानों को देखकर किया जा सकता है । इसके विपरीत पाकिस्तान में डा० अब्दुल कादर खान की गतिविधियाँ पाक परमाणु ऊर्जा आयोग के अन्तर्गत न होकर सीधे रक्षा मंत्रालय के अन्तर्गत हैं । अतः पाकितान के आणविक प्रतिष्ठानों का निरीक्षण करना आवश्यक होगा । क्या प्रति उत्तर में पाकिस्तान भी भारत के सुरक्षा प्रतिष्ठानों के निरीक्षण की माँग नहीं करेगा ।[११] इसके अतिरिक्त यह भी एक तथ्य है कि दोनों देशों में आणविक क्रियाकलापों के क्षेत्र में समान स्थिति नहीं है । भारत ने इस क्षेत्र में बहुमुखी प्रगति की है । इस प्रकार कोई भी देश अपने अनुसन्धान एवं विकास की जानकारी अन्य देश को देना नहीं चाहेगा ।[४]

पाकिस्तान के प्रस्तावों का सावधानी पूर्वक अध्ययन करने से यह विदित होता है कि पाकिस्तान इस प्रकार के प्रस्ताव प्रस्तुत करता है जो अव्यावहारिक होते हुए भी भारतीय जनता के अल्पशिक्षित वर्ग को अपील कर सके ।[११] पाकिस्तान के द्वारा अमेरिकी हथियारों की आपूर्ति के साथ-साथ भारत के अनाक्रमण संधि की बात जोर शोर के साथ की जाती है परन्तु इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता कि इस प्रकार का प्रावधान शिमला समझौते में पहले से ही मौजूद है । इसके विपरीत भारत के दोनों देशों के मध्य व्यापार का विस्तार करने, समाचार पत्रों एवं पुस्तकों का आदान प्रदान करने तथा एक दूसरे के देशों में यात्रा नियमों को आसान बनाने जैसे प्रस्तावों पर पाकिस्तान द्वारा कोई ध्यान नहीं दिया जाता ।[८] सुरक्षा सम्बन्धी क्षेत्र में अनेक ऐसे कदम हैं जिनका अनुकरण करके दोनों देशों के मध्य सामरिक विश्वास का सृजन किया जा सकता है—जैसे आंशिक परीक्षण निषेध सन्धि १९६९ जिस पर भारत ने बीस बरस पहले ही हस्ताक्षर कर दिये थे, जबकि पाकिस्तान ने आज तक नहीं किये हैं ।[८] पाकिस्तान की अनेक ऐसी गतिविधियाँ हैं जिनके कारण भारत में चिंता होना स्वाभाविक है जैसे पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा अमेरिका के फोर्ड डेट्रिक नामक स्थान पर रसायनिक युद्ध का प्रशिक्षण लेना ।[८] जबकि भारत व पाकिस्तान दोनों जेनेवा प्रोटोकोल १९६३ के संधिकर्त्ता देश हैं जिसमें रसायनिक हथियारों के सम्बन्ध में सर्वप्रथम प्रयोग न करने की घोषणा की गई है ।

ऐसा जान पड़ता है कि अभी भी पाकिस्तान के शासकों की दिलचस्पी अपने प्रजाजनों को धोखा देने, उनकी वैध आकांक्षाओं को कुचलने और ऊपर से सहयोग का दिखावा करके भारत व दूसरे देशों की आंखों में धूल झोंकना है । ऐतिहासिक आधार पर यदि हम पाकिस्तान की भूमिका का मूल्यांकन करें तो स्पष्ट होता है कि जब १९६५ में भारत व पाकिस्तान कच्छ के क्षेत्र पर वार्ता कर रहे थे तभी पाकिस्तानी शासकों द्वारा 'आपरेशन जिब्राल्टर' किया गया । इसी तरह १९७१ में तात्कालीन शासक याहिया खाँ ने शेख मुजीबुर्रहमान से वार्ता के दौरान ही बंगला देश में आवामी लीग को कुचलने के लिए तीन डिवीजन सेना भेज दी । इससे स्पष्ट है कि पाकिस्तान का भारत से सम्बंध सुधारने का प्रयास भारत को शान्ति प्रयासों में उलझाये रखने की एक चाल है । जिसकी आड़ में पाकिस्तान सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली बन कर भारत व उसके हितों को अधिकतम हानि पहुँचा सके । भारत को पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध सुधारने की कोशिश करनी चाहिए मगर पाकिस्तान की वास्तविकताओं की उपेक्षा करते हुए नहीं । आज के खतरों और वास्तविकताओं के प्रति भारत को जागरूक रहना होगा तथा अधिक से अधिक अच्छे सम्बन्ध बनाने के लिए प्रयत्न करते रहते हुए भी बुरी से बुरी स्थिति के लिए तैयार रहना होगा ।

सन्दर्भ

1. शर्मा योगेश चन्द, 'दैनिक हिन्दुस्तान' 2 फरवरी 1984 ।
2. माथुर योगेश बी०, धर्मयुग 15 जनवरी 1984 पृष्ठ 8
3. Subrahmanyam, K., Times of India 27 March 1984
4. Sawhney, R. G. 'Times of india, 16th April 1984

5. Sawhney, R. G. Times of india' 18th April 1984
6. व्यास, अवधेश, धर्मयुग 5 अगस्त 1984 पृष्ठ 13.
7. स्वतंत्र भारत 28 अक्टूबर 1984 पृष्ठ 1.
8. Subrahmanyam· k. Times of India' 28th July 1984
9. Kocher. H. Jesse. 'PROBE INODIA' December 1983
10. कौल जवाहर लाल, दिनमान 14-20 अक्टूबर 1984
11. Subrahmanyam. k· 'Times of India' 27th July 1984

———

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1, P. 71-73
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-१, पृ० ७१-७३

THE FICCI AND NATIONAL MOVEMENT

Lalit Mohan Joshi
Lecturer in Political science, K. N. Govt. P. G. College, Gyanpur

सारांश

यह शोधपत्र 'फेडेरेशन ऑफ इन्डियन चैम्बर ऑफ कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री' की स्वतन्त्रता आन्दोलन की भूमिका पर प्रकाश डालता है। 'फिसी' का मुख्य लक्ष्य था—देश में विदेशी धन के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकना। अपने व्यापारिक और औद्योगिक लाभ की चिंता न करके 'फिसी' ने स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लिया।

ABSTRACT

This research article describes the role played by Federtion of Indian Chambers of Commerce and Industry during the national movement. The main objective of the FICCI was to counter the influence of foreign capital on the government and so to win concession for India. It involved itself in the national movement even at the cost of business and commercial interest.

The federation of Indian Chambers of Commerce and Industry played an important role during the Indian national movement. At the time of its birth in 1927, the freedom struggle was at its peak. The FICCI became embroiled in political issues almost after its creation when congress began its second major civil disobedience campaign in 1930.[1] The primary objective of the FICCI was to Counter the Influence of foreign Capital on the government and so to win Concession for India. It had to deal with two conflicting institutions—the British government and Indian national Congress.[2] In those days Indian business was at its begining, simultaneously the nation was on the road to freedom. In such a critical situation the FICCI supported national movement without any hesitation.

Most of the leaders of the FICCI were the followers of Mahatama Gandhi. They include, G. D. Birla; Purshotam Das Thakur Das, Shri Ram; G. L. Mehta; M. Jamal Mohammed Sahib and Wal chand Hira chand.

During 1930 the FICCI supported Indian leaders. Mahatama Gandhi addressed the karachi session of the FICCI in 1931. In that eventful session, Purshotam Das Thakur Das, then president of the FICCI, stated "Indian commercial Community was in no way behind anyother section in seeking the substance of *Swaraj* for our country."[3] Mahatama Gandhi wanted industrialists to make the congress their own,[4] He concluded by saying "With your moral and intellectual Co-operation heartily rendered, our demand for *Swaraj* would be absolutely irresistible,"[5]

Before the commencement of Round Table conference, the FICCI called upon the government to declare that the proposed conference would frame a constitution for the establishment of such a status of independence as was enjoyed by Australia and Canada.[6] The FICCI took the decision that none of its representative should attend the conference, unless Mahatama Gandhi was released from prison. The FICCI directed its representatives to follow the guidance of Mahatama Gandhi. When Mahatama Gandhi was sent to prison in 1932, the federation decided that its representative, Purshotam Das Thakur Das, should not serve on the consultative Committee of the Round table conference.[7] The FICCI demanded the release of Mahatama Gandhi and that of other political leaders. in 1933, In his presidential address, Wal Chand Hira Chand laid stress on need for patronising Indian goods.[8]

In 1942, When many congrers leadess were in prison, the FICCI remarked that it viewed with grave concern and anxiety, the political situation in the Country and warned the government : "their repressive policy involving suppression of the rule of law had so accentuated the growing feeling of bitterness and estrangement between the people and the authorities that it was unsurpassed in the history of Britsh administration."[9]

When Churchill made the charge that manufacturing and financial interests were behind the congress, Sri G. L. Mehta, the then President stated "They were an integral part of the national movement and were fully in accord with the essentials of the congrers demand for freedom and transfer of power."[10]

The federation did not recognize Simon Commission and took no part in its deliberations. The FICCI also did not see the Cripps mission, the FICCI supported congress directly and indirectly. Indian Commercial organisation, although they are not identified with any particular party, are an integral part of the national movement and are in full accord with the national demand for full sovereignty and transfer of power from British to Indian hands.[11]

Undoubtedly the FICCI involved itself in the national movement even at the cost of business and commercial interests.

REFERENCES

1. Kochanek. A. Stanley : Business and Politics in India, University of California. Berkeley, Los Angles. P. 159.
2. Weiner Myron : The Politics of Scarcity, Asia Publishing House, Bombay. p. 124.
3. Silver Jublee Souvenir (FICCI-New Delhi) 1952, p. 63
4. Ibid p. 63
5. Ibid p. 63
6. Ibid p. 218
7, Ibid p. 218
8. Ibid p. 62
9. Ibid p. 219
10. Ibid p. 219
11. Ibid p. 212-13

—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1. P. 74-78
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६ खंड-१, पृ० ७४-७८

THE REBELLION OF THE QARAMITAH AND THE MULAHIDAH DURING THE REIGN OF RAZIA

Om P. Gupta

Department of History, Raza Govt. P. G. College, Rampur

सारांश

[रजिया के शासन काल में क़रामतियों व मुलाहिदों का सैनिक षड्यन्त्र परिस्थितिजनक प्रमाणों के संदर्भ में, एक ऐतिहासिक तथ्य है किन्तु हमारे समकालीन इतिहासकार, मिनहाज ने जानबूझ कर मौलाना नूर तुर्क को विद्रोहियों का नेता सिद्ध किया है, क्योंकि मिनहाज नूर तुर्कों के प्रति द्वेष की भावना रखता था। यद्यपि तुर्की सुल्तान विधर्मियों के कट्टर शत्रु थे, तथापि क़रामतियों व मुलाहिदों का विनाश राजनीतिक था धार्मिक नहीं।]

ABSTRACT

Coup d' etat led by the Qaramitah and the Mulahidah during the reign of RAZIA is a historical fact supported by circumstancial evidences, but Maulana Nur Turk is deliberately proved to be the leader of the rebels by our contemporary historian Minhaj who was bitterly hostile towards him. Though the Turkish Sultans had been avowed enemies of the hereties yet the persecutions of the Qaramitah and the Mulahidah was political and not religious.

Sultan Razia's reign of 3 years and 6 months is notable not only for administrative innovations, but also for religio-political revolt of the Qaramitah[1] and the Mulahidah,[2] According to Minhaj-us-Siraj : 'A Carmathian scholar, Nur Uddin Turk, generally known as Nur Turk, gathered together one thousand supporters from Delhi, Gujrat, Sindh and Doab. They began to condemn Hanafi and Shafi'i doctrines, and called the Sunni Ulama 'Nasibi' and 'Murji. On 6 Rajab 634/5 March 1237, they entered the Jama Masjid from two directions and started killing the people who had assembled there to offer their Friday prayer. When confusion spread, some persons from the city-Nasiruddin, Aitam Balrami and Amir Nasiri came armed with spears, steel

caps and shields. They fought with the 'Mulahidah', while the people threw stones at them from the roof of the mosque and despatched them all to hell. Thus at last the tumult was al layed.'[3]

The truth of Coup d' etat of the Qaramitah and The Mulahidah can not be denied. Undoubtedly the Sunni Turks were destined to lay down the foundation of Delhi Sultanet in 1206 A. D., but the Shia Muslims of Ismaili sect had established their political sway over Sindh and Multan many hundred years before them, and were closely affiliated to the Fatimide Caliphs of Egypt.[4] Mahmud of Ghaznin while returning from Somnath in 1025 A. D,, defeated an Ismaili prince of Mausurah, the old capital of Sindh.[5] Muizzuddin Ghori wrested Multan from Carmathians in 1175 A. D, and appointed his own governor, Ali Karmakh.[6] The final extention of Delhi's sovereignty and the mighty sword of Kutbuddin and Iltutmish sang a funeral requiem over the grave of the Carmathians but their ghost appeared in Gujrat and even in Doab.[7] Their political centre s were destroyed and their united strength was dispersed, but the sparks of political aspiration of the sect remained alive. Thus in order to avail the circumstances, when the let loose forces of factions and dissenters were dominating the political scene and the Crown of Delhi was tossing over the heads of Iltutmish's successors, turn by turn, 'the Qaramitah made a final bid for power through a coup d' etat in Razia's reign',[7]

However, Nur Turk's connection with the above said rebellious hereties (Qaramitah & Mulahidah) of Delhi, Gujrat, Sindh and Doab, seems to be the fabrication of Minhaj. Amir Hasan Sijji, the compiler of the discourses of the Shaikh Nizam Uddin Aulia, says that Shaikh himself said, in one of his mystic gatherings, 'that Maulana Nur Turk was purer than the water of the sky (rain). :

Maulana Nur Turk az ab-i-asman pakeezatarbud.[8] He (Maulana Nurturk) had cherished a great feeling of contempt for the Ulemas of Delhi, for he found them lost in worldly pursuits (Aludah-i-Duniya). And because of this reason, the Ulemas of Delhi (deliberately) attributed to him so many things.[9]

Minhaj was one of such ulemas of Delhi, who were bitterly condemned by Nur Turk. May be, this rising of the carmathians in Delhi had nothing to do with the Maulana Nur Turk. Minhaj accused him of initiating this trouble for which, probably, he was not at all responsible[10] Prof. K. A. Nizami claims that Nur Turk was not one of the Mulahidah and his arguements are tenable and can not be contradicted.[11]

Mr. Entyoven in his article- 'Khojas' subscribed to Tribes and Castes of Bombay (II, p, 217-207) "suggests that Nur Turk is no other than Nur Satagur

the first Khoja missionary"[12] But this identification is not accepted by S. H. Hodivala because the chronology is undoubtedly shaky and the legendary discription of Nur satagur in 'knoja vratant' does not inspire confidence.[13] Mohd. Ikram of Pakistan has also tried to juxtaposed the Nur turk with Nursatgur, but mostly imitating the tone of Enthoven.[14]

A thorough perusal of the event will lead to various ambiguous and self-contradictory explanations. Nur turk is said to have instigated the Qaramitah and Mulahidah, but he was off the scene at the very proper moment of action. The only potent plea, to my mind, inferred from Minhaj's own statement is this that, if Nur Turk was the leader of the rebels, how he was spared from the slaughter at the hands of the Zealous Sunni Muslims. If it was a well founded fact that Nur Turk was mainly responsible for the up rising, he too would have been, along with the followers despatched to hell, or would have been publicly executed but he got scot free. It is a time honoured fact, that the leaders' are always considered to be a more potent danger than their followers.

Both Maulana Nur Turk's presence at Delhi, and the rising of the Qaramitah & the Mulahidah. there at, are true historical realities, but have their own independent identity and the one is not at all, connected with the other. It is our chromicler who has juxtaposed both the realities at one place out of sheer personal grudge with Nur turk.

The dye in which the turks were moulded was cast in the furnace of orthodox Islam. The Shia-Sunni political and religious rivalries date back to the early history of Islam. The persecuction of the sunni world by the Ismailee Shias under the patronage of Fatimide caliphs at Egypt (909-AD-to 990 AD) had been, for all the times, the cause of the bleeding scars in the hearts of the orthodox Sunnis. The Qaramitah leader, Abu Tahir plundered the Sacred city, Mecca in Jan. 1930, made a terrible slaughter of the Sunnis and carried off the sacred Black-stone (Huzurul Aswad) and other sacred relics.[15] Such painful memories were more than enough to infuriate the Sunnis of Turkish blood. Further, the murder of Muizzuddin Ghori, the founder of Sunni-Muslim-Empire in India by a Qaramitah 'turned the Mamluke state as severe avowed enemy of the Ismaili heretics. The hatred and feeling of revenge cheristed by the Turks had found expression in the previous history also. Amir Hasnak, the minister in the life time of Amir Mahmud (of Ghaz min) caused an envy in the heart of his rival, Imam Busuhal, who, later on, hatched a sinister Sedition to get Hasnak executed. He instigated Masud, the son of Mahmud to put Hasnak to death. Amir Masud, when asked the reason and justification. Imam Busuhal said, "What greater reason can there be than this, that he is a karmathian, and he received a *Khilat* from the Egyptian (The

fatimide caliphas)....who shall reconcile our lord to this dog of a karmathian, who must be gibbeted as ordered by the commander of the faithful. Karmathian should be executed and stoned.[16]

The reign of Razia is notable for the persecutions of the Muslims by the Muslims. Moreover the Turkish Sultans under the auspices of the Abbaside Caliphs were "morally compelled to lead an open hostitely and to take stern on meas are against hertics,"[17] However the persecution of the Shia-heretics in the reign of Razia is less motivated by religious fanaticism and more, it was directed by political realism of saving the govt. falling in to the hands of the Rebels.[18]

The rising was not a civil Commotion started by one particular sect involving the other. It was Coup d' etat to capture Delhi, the seat of the Turkish or Muslim Sultanat in India. It was a ill-hatched plot that ended in a disasterous catastrophe. To quel the sinister move of the rebels with all the might, had always been, the duty of the Govt. The persecution of the rebellions Qaramitah and the Mulahidah was a political exigency. We do not find even a single evidence to prove that Razia, ever organized a state wide fanatical hunt to eleminate the Shia-heretics.

REFERENCES

1, Qaramitah : A sect of Ismailis which derived its name from its founder, Hamdan Qaramat or Karamat who pretended to be a prophet. Qaramitah sought their end by violence. He rose and began an open unrelenting war upon ruling powers, in the year 891 A-D, Browne, E. C. : Alitrary History of Persia, Vol. I, London, 1925 (Reprint) p. 391-415. And Elliot & Dowson : History of India Vol. II. Allahabad 1969 (Reprint) p. 571-74).

2. Mulahidah : Anotorious branch of the Ismailis or heretics of par excellence or unpious heretics. (Browne, E. G, Ibid 392-408)....For the Ismailians the wider term Mulahidah (heretics) is often used (Elliott & Dowson, Ibid p. 572),

3. Minhaj-us Siraj : Tabqat-i-Nasiri (persian Text) Biblothica Indica, Calcutta 1864, p. 190.

4. Habibullah ABM : Foundation of muslim Rule in India. Allahabed 1976 (Revd. Edn.) p. 248.

5. Daudpota U. M. : Comprehensive History of India Vol- V New Delhi, 1970 p. 1117.

6, Minhaj-us Siraj : Ibid, p. 116,

7. Rizvi, S.A.A. : A Cultural History of India Etd. A.L. Basham, London, 1980 p. 282,
8. Ala-i-Sizzi, Amir ,Hasan : Fawa'-i-d ul-Fu'ad (Persian Text) Lucknow, 1303 A H., p. 190
9. Ala-i Sizzi Amir Hasan : Ibid, p. 199.
10. Nizami, K. A. : The Life & Times of Shaikh Farid-U'D-DIN GANJ-i-SHAKAR, Aligarh, 1955., p, 31. fn. 6.

Some of the arguements of Prof. K. A. Nizami are :—

11. (1) Mulahidah scholar would not have been reverentially mentioned by scholars like Amir Kurd and Shaikh Abdul Haq Muhaddith of Delhi as Maulana Nur Turk (2) Had he been a Mulahidah, Baba Farid would not have gone to attend his sermon. There is not a single instance in the medieval literature of Sunni mystics associating with the Mulahidah Scholar. For detail see, The life and times of Shaikh Farid Ganz-i-Shakar, p. 31, fn 6
12, Hodivala, S. H. : Commentary on Elliot & Dowson's History of India Vol. II Introduction by Mohammad Habib and Supplement by K. A, Nizami, Aligarh 1952 (Reprint) p. 272.
13. Hodivala S. H. : Ibid, p. 272.
14. Ikram. Shaikh Muhammad : Ab-i-Kausar (Urdu), Lahore, 1982, 9th Edn, p. 343,.
15. Browne, E. G. : Ibid p. 403.
16. Baihaki, Abul Fazl : Tarikh-i-Subuktgin : (History of India Vol. II of Elliot & Dowson p. 88-100.
17. Nizami, K. A. : Ibid p. 31, fn. 6.
18. Minahaj has used the World-'*Baghwai*' (Rebels) for the Qaramitah & the Mulahidah. This World clearly suggests that the heretics organized a revolt to capture the power and that is why they stormed at '*Dar-ul-mulk*' (Delhi). (Tabqat-i-Nasiri, p. 190).

—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1. P. 79-83
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६ खंड- १ पृ० ७९-८३

तुजुक-ए-जहाँगीरी में वर्णित हिन्दू समाज

अशोक कुमार शाही
इतिहास विभाग, का० न० राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर (वाराणसी)

सारांश

तुजुक-ए-जहाँगीरी जहाँगीर बादशाह (१६०५-१६२७ ई०) द्वारा लिखित आत्मकथ्य है, जो ऐतिहासिक स्रोतग्रंथ के रूप में भी विख्यात है। इसमें जहाँगीर के शासन के प्रथम १७ वर्षों की घटनाओं का वर्णन तिथि-क्रम पूर्वक किया गया है। इसी ग्रंथ में हिन्दू समाज व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं पर भी प्रकाश डाला गया है। मुस्लिम सम्राट द्वारा उल्लिखित इन विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शान्ति-व्यवस्था के इस प्रशांत युग में दोनों जातियाँ परस्पर प्रभावित होती रहीं, साथ ही हिन्दू समाज की पुरातन मान्यताएँ १७वीं सदी तक यत्किंचित परिवर्तित रूप में बनी रहीं।

ABSTRACT

Tuzuk-a-Jahangiri is an autobiography of Emperor Jahangir. In this Historical book the events of first 17 years of his reign are elaborated choronologically. In the book some important features of Hindu socity are discribed. These statements by a Muslim ruler Jahangir express that in the age of peace and prosperity both Castes influenced each-other and the primitive values of Hindu society prevailed up to this period,

जहाँगीरकालीन भारतीय समाज मुख्यतः हिन्दू और मुसलमान इन दो जाति वर्गों में विभक्त था। इस समय गिनती के ईसाई धर्मावलम्बी भी थे, परंतु उनका सामाजिक अस्तित्व नगण्य था। हिन्दू धर्म अपनी व्यापकता एवं समन्वयशीलता के लिए विख्यात रहा है, परंतु इस्लाम धर्म के साथ उसका सामाजिक-धार्मिक दृष्टि से अन्तर बना रहा। दीर्घ काल से साथ रहने के कारण दोनों जातियाँ एक दूसरे के निकट आयीं तथा परस्पर प्रभावित भी किया। सहृदय, सुरुचिसंपन्न, उच्चकोटि का चित्र प्रेमी, प्रकृतिसौन्दर्य उपासक, खगमृग-वृक्ष-विज्ञानी, संग्रहकर्त्ता, विशद वर्णनकार और सबके ऊपर पक्का जिज्ञासु, निसर्ग निरीक्षक और प्रज्ञावादी[1] जहाँगीर बादशाह ने अपने समकालीन हिन्दू समाज की विभिन्न विशेषताओं को अपनी आत्म-कथा में वर्णित किया है।

हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के तानेबाने में कई मानव परिवार प्राचीन काल से ही सम्मिलित थे। पुरा काल से ही हिन्दू सामाजिक संगठन का मूल आधार वर्ण-व्यवस्था थी, जिसके अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चार वर्णों का अस्तित्व रहा। जहाँगीर के विवरण से यह ज्ञात होता है कि समकालीन हिन्दू समाज में भी इस वर्ण-व्यवस्था का अस्तित्व आधार रूप में था। जहाँगीर ने वर्ण-व्यवस्था के बारे में विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार—

"हिन्दुओं के चार वर्ण हैं। इनमें से प्रत्येक वर्ण अपने नियमों के अनुसार कार्य करता है। सर्वप्रथम वर्ण ब्राह्मणों का है अर्थात् उन लोगों का जो अद्वितीय ब्रह्म को जानते हैं। उनके कर्तव्य छः प्रकार के हैं— धार्मिक ज्ञान प्राप्त करना, दूसरों को शिक्षा देना, अग्नि की पूजा करना अर्थात् यज्ञ करना, लोगों से अग्निपूजा या अग्निहोत्र करवाना, अनिवार्य रूप से विवश लोगों की सहायता करना तथा दान लेना। दान लेने का दिन इन लोगों के लिए विशेष रूप से निश्चित है।"[२]

"दूसरा वर्ण क्षत्रियों का होता है। उनका कर्तव्य उत्पीड़ित लोगों की उत्पीड़कों से रक्षा करना है। इस वर्ण की तीन परंपराएँ हैं—उनको धार्मिक ज्ञान का स्वयं अध्ययन करना चाहिए। वे अग्नि की पूजा करते थे तथा वे दान देते थे, परंतु स्वयं दान नहीं ले सकते थे चाहे वे निर्धन ही क्यों न हो।[३]

"तीसरा वर्ण वैश्य है, इनकी यह परंपरा है कि ये उपर्युक्त दोनों वर्णों—ब्राह्मण तथा क्षत्रिय की सेवा करते हैं। इनका कार्य कृषि और क्रय-विक्रय है। ये ऐसे कार्यों में लगे रहते हैं जिनसे लाभ हो और ये ब्याज कमाते हैं।"[४]

"चौथा वर्ण शूद्रों का है, जो हिन्दुओं में सबने नीच जाति है। ये सबके सेवक हैं और ये ऐसे कार्य से लाभान्वित नहीं होते जो अन्य वर्णों के लिए निर्दिष्ट हैं।"[५]

वर्ण व्यवस्था के इन सैद्धान्तिक पक्षों की विवेचना के साथ जहाँगीर ने आश्रम व्यवस्था का भी अपनी आत्मकथा में उल्लेख किया है। हिन्दू सामाजिक संगठन में आश्रम व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ऐसा स्वीकार किया जाता है कि प्रारंभ में आश्रमों की संख्या तीन थी।[६] वानप्रस्थ एवं संन्यास दोनों को ही एक आश्रम के अन्तर्गत रखा गया था। परन्तु हिन्दू धर्मशास्त्रों जैसे-गौतम धर्मसूत्र[७] आपस्तम्ब धर्मसूत्र,[८] विष्णु धर्मसूत्र[९] में चार आश्रमों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा परिव्राजक का उल्लेख प्राप्त है।

हिन्दू समाज में प्रचलित आश्रम व्यवस्था का उल्लेख करते हुए जहाँगीर ने लिखा है— "ब्रह्मचर्य आश्रम में ब्रह्मचारी बारह वर्ष की अवधि तक शारीरिक सुखों से दूर रहकर भिक्षाटन कर गुरु की अनुमति से भोजन करता है। इस समय वह वेदों के अध्ययन में व्यस्त रहता है।[१०] इस आश्रम की समाप्ति के बाद अपने गुरु व पिता की अनुमति से वह विवाह करता है तथा उसे अपनी पाँचों इन्द्रियों के सब सुखों का उपयोग करने की अनुमति प्राप्त हो जाती है।[११] अड़ता-

तीस वर्ष की आयु तक गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के बाद व्यक्ति अपने बंधु-बांधवों से और मित्रों से तथा अपरिचितों से भी पृथक् होकर सब सुखों के उपभोग को छोड़कर एकांतवास करता है तथा जंगल में रहता है । यह आश्रम वानप्रस्थ आश्रम है ।[१२]

वानप्रस्थ आश्रम के बारे में तुजुक-ए-जहाँगीरी में लिखा है—

"हिंदुओं का यह सिद्धान्त है कि गृहस्थ का कोई कार्य पत्नी के बिना भली-भाँति पूर्ण नहीं होता । अभी कुछ कार्य करना शेष रहता है इसलिए वह अपनी पत्नी को भी अपने साथ जंगल में ले जाता है । पत्नी के गर्भवती होने की अवस्था में वह जंगल में जाना स्थगित कर देता है, बालक के जन्म होने तथा ५ वर्ष की अवस्था प्राप्त होने के बाद अपने संबधियों को सौंपकर व्यक्ति अपना उद्देश्य पूर्ण करता है ।[१३]

संन्यास आश्रम के संबंध में जहाँगीर लिखता है "फिर वह अपने घर आकर पत्नी को अपने बच्चों, भाइयों और दामादों को सौंपकर अपने धार्मिक गुरु के पास जाता है और उसके समक्ष जनेऊ, अपने सिर के बाल आदि अग्नि में डालकर कहता हैं—"मैंने अपने संबंध त्याग दिये हैं यहाँ तक कि संध्या व अग्निहोत्र भी छोड़ दिया है, अपनी इच्छाओं का हृदय से उन्मूलन कर दिया है । वह अपनी आकांक्षाओं और इन्द्रियों के द्वार को बंद कर ईश्वर के चिंतन में लग जाता है । अन्य कोई कार्य नहीं करता हैं ।[१४]

इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य, ४८ वर्ष तक गृहस्थ, ६० वर्ष तक वानप्रस्थ तथा शेष जीवन संन्यास आश्रम के अन्तर्गत आता था । भारतीय धर्म-शास्त्रियों ने मनुष्य का जीवन एक सौ वर्ष मानकर चारों आश्रमों में प्रत्येक को पच्चीस वर्ष का निर्धारित किया था । धर्मशास्त्रियों और जहाँगीर द्वारा दिये गये विवरण में अन्तर का कारण संभवतः मनुष्य की आयु एक सौ वर्ष से कम हो जाने के कारण उस समय आश्रमों की व्यावहारिक रूप में परिवर्तित काल-अवधि है ।

वर्ण-आश्रम व्यवस्था एक आदर्श हिंदू समाज का सत्य है । जहाँगीर के काल तक आते-आते अन्य स्थापित मूल्य-व्यवस्थाओं के समान ही ये व्यवस्थाएँ भी परिवर्तित होती गयीं परंतु इन तथ्यों से यह प्रमाणित अवश्य होता है कि इस काल में भी वर्ण व्यवस्था तथा आश्रम व्यवस्था एक क्षीण और कम प्रचलित रूप में ही सही, पर विद्यमान निश्चित रूप से थी ।

तत्कालीन हिन्दू समाज में प्रचलित विभिन्न धार्मिक क्रियाविधियों के बारे में जहाँगीर कोई विवरण नहीं देता, परंतु बाल्यावस्था के महत्वपूर्ण संस्कार—उपनयन[१५] के बारे में सविस्तार उल्लेख करता है । तुजुक-ए-जहाँगीरी में लिखा है—"ब्राह्मण के घर में उत्पन्न बच्चे को सात वर्ष तक ब्राह्मण नहीं कहा जाता है । जब वह आठ वर्ष का हो जाता है तब ब्राह्मणों की एक सभा की जाती है, फिर मूंज की सवा दो गज लंबी मूंजी या रस्सी बनायी जाती हैं और इस पर मंत्र पढ़कर इसके तीन भाग किये जाते हैं तथा विश्वसनीय लोगों द्वारा इसको बच्चे की कमर में बाँध दिया जाता है । कोमल रस्सों की जुन्नार (जनेऊ) बनाकर बालक के दायें कंधे[१६]

से लटका दिया जाता है। पुनः आत्मरक्षा के लिए उसको एक गज लंबा डंडा दे दिया जाता है, तत्पश्चात् उसको बारह वर्ष तक के लिए एक ब्राह्मण को सौंप दिया जाता है जो उसको अपने घर रखकर वेदों के अध्ययन में लगा देता है।[१७]

हिन्दू समाज एवं धर्म के प्रति जहाँगीर के मन में आदर भाव था। वह हिन्दू मंदिरों के दर्शन के लिए प्रयाण करता था, तथा विभिन्न हिन्दू विद्वानों से मिलकर प्रसन्न होता था। वैष्णव धर्म के संत जदरूप[१८] के प्रति जहाँगीर के मन में अतिशय सम्मान था। उसने इस संन्यासी की ईश्वर भक्ति, ज्ञान तथा सद् आचरण की प्रशंसा की है। इन संतों के प्रभाव में आने के कारण तथा अपनी बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा के धार्मिक कृत्यों के प्रति जिज्ञासा से ही उसने अपनी आत्मकथा में इन विवरणों को प्रस्तुत किया। वस्तुत. इन प्रस्तुतियों का महत्व तत्कालीन समाज व्यवस्था के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में तो है ही, यह उस 'विचारवान प्रबुद्ध निरंकुश शासक,[१९] के वैयक्तिक औदार्य को भी प्रकट करता है।

सन्दर्भ

१. राय कृष्णदास, भारत की चित्रकला, षष्ठ संस्करण, पृष्ठ ६२.

२. तुजुक-ए-जहाँगीरी, भाग—१, (अनुवाद) रोजर्स एवं वेवरिज, मुंशीराममनोहर लाल, १९७८, पृष्ठ २४४

३. वही. पृष्ठ २४४-२४५

४. वही, पृष्ठ २४५.

५. वही, पृष्ठ २४५.

६. छान्दोग्योपनिषद २।२३।१ में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ नामक तीन आश्रमों की ओर संकेत मिलता हैं। संभवतः इस उपनिषद ने संन्यास को चौथे आश्रम के रूप में स्वीकृत नहीं किया।—द्रष्टव्य है, पी० वी० काण, धर्मशास्त्र का इतिहास, (अनुवाद) भाग—१, तृतीय संस्करण, पृष्ठ ४६०.

७. ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षुर्वैखानसः ३।२

८. चत्वार आश्रमागार्हस्थ्यमाचार्यकुलं मौनं वानप्रस्थ्यमिति। २।९।२.

९. एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम्।

त्रिगुणं च वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम्॥ २६-६०

१०. तुजुक-ए-जहाँगीरी, पृष्ठ ३५७-३५८.

११. वही, पृष्ठ ३५८.

१२. वही, पृष्ठ ३५८.

१३. वही, पृष्ट ३५८.

१४ वही, पृष्ठ ३५९.

१५. (अ) "संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य।

शबर ३।१।३, उद्धृत, पी० वी० काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग २, तृतीय संस्करण, पृष्ठ १७६

(ब) 'संस्कारों का सामूहिक नाम विश्वास या आस्था है।'—डा० मोहन अवस्थी, हिन्दी रीति कविता और समकालीन उर्दू काव्य, सरस्वती प्रेस, १९७८, पृष्ठ १११

१६. तुजुक-ए-जहाँगीरी, पृष्ठ ३५७.

१७. वही, पृष्ठ ३५७.

१८. वही, पृष्ठ ३५५-५६ तथा, भाग-२, पृष्ठ ४९.

१९. डा० अशोककुमार शाही, जहाँगीरकालीन उत्तर भारतीय संस्कृति (अप्र० शोधग्रंथ) पृष्ठ २७.

———

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86 Vol. 1. P. 84-88
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६ खंड-१ पृ० ८४-८८

उत्तराखण्ड के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण में रामकृष्ण-मिशन की भूमिका

अवनीन्द्र कुमार जोशी
इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय, बेरीनाग

सारांश

प्रस्तुत लेख में स्वामी विवेकानन्द की उत्तराखण्ड यात्राओं के फलस्वरूप इस अंचल में रामकृष्ण मिशन एवं मठों की स्थापना के परिणामतः जन-जीवन में सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है।

ABSTRACT

The present article attempts to give a critical evaluation of the impact of Ramakrishna Missions and Maths, established in Uttarakhand, subsequent to Vivekananda's Visits, on the social and cultural Renaissance of the region

स्वामी विवेकानन्द उत्तराखण्ड में एकाधिक बार आए। सर्वप्रथम १८९० में नैनीताल तथा अल्मोड़ा, १८९७ तथा फरवरी १८९८ में अल्मोड़ा एवं नैनीताल और दिसम्बर १९०० में मायावती, सितम्बर १८९० में ही कर्ण प्रयाग, रुद्रप्रयाग, श्रीनगर एवं देहरादून तथा दूसरी बार नवम्बर १८९७ में स्वामी विवेकानन्द का देहरादून आगमन हुआ। उत्तराखण्ड में रामकृष्ण मिशन की उपलब्धियों का मूल्यांकन सही दृष्टि से करने के उद्देश्य से स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा एवं उद्देश्यों की विवेचना और उनकी व्यावहारिक परिणति पर विचार किया जाना समीचीन होगा। रामकृष्ण मिशन के प्रवर्त्तक के रूप में विवेकानन्द ने जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, वह एक भाष्यकार, उपदेशक, सुधारक एवं व्याख्याता के रूप में तो थी ही, पर इन सबसे महत्वपूर्ण थी विवेकानन्द की संगठन क्षमता। अपने भारत भ्रमण के दौरान विवेकानन्द जन-सामान्य की अज्ञानतापूर्ण धार्मिकता, हिन्दू पुरोहितों की अवसरवादिता, मध्य वर्ग के कायरतापूर्ण आडम्बर और राजघरानों की उदासीनता के प्रत्यक्ष संपर्क में आए। उन्होंने अनुभव किया कि सामाजिक कुलीनता की धारणा हिन्दू मानसिकता में गहरी पैठी हुई है। उन्होंने यह भी निश्चित किया कि केवल धर्म के माध्यम से ही हिन्दू सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया आरंभ की जा सकती है। हिन्दू जनता के लिए सामाजिक सुधार तभी सार्थक सिद्ध हो सकते हैं, जब वे धर्म के माध्यम से उन तक पहुँचें।[१]

विवेकानन्द ने धर्म को मानवतावादी लक्ष्यों एवं सेवा-भावना से जिस प्रकार संबद्ध किया, वह पाश्चात्य अवधारणा की अनुकृति मात्र न थी। भारतीय परम्परा में भी ब्राह्मणों की रूढ़िवादिता एवं कर्म-काण्ड के विरुद्ध कबीर, चैतन्य, निम्बार्क, नानक तथा अन्य सन्त भी मानव सेवा को धर्म की सच्ची अभिव्यक्ति बता चुके थे। उसी परम्परा में जाति-प्रथा तथा रूढ़िवाद का विरोध करने तथा धर्म की सार्थकता लोक-कल्याणकारी कार्यों में बताने के उद्देश्य से व्यावहारिक वेदान्त का प्रतिपादन विवेकानन्द ने किया। इसको सामयिक दृष्टि से सार्थकता देने के उद्देश्य से व्यावहारिक वेदान्त का प्रतिपादन करने के अतिरिक्त विवेकानन्द द्वारा पाश्चात्य अवधारणाओं का प्रयोग किया गया। दादाभाई नौरोजी ने ब्रिटिश शोषण तथा साम्राज्यवाद को भारत के अधः पतन एवं आर्थिक गरीबी का मूल कारण बताते हुए जिस आर्थिक राष्ट्रवाद को आगे बढाया, तथा बंकिम चन्द्र चटर्जी ने अपने उपन्यासों में विद्रोही संन्यासियों का चित्रण कर जागृत-हिन्दुत्व की जो परिकल्पना प्रस्तुत की, उसका प्रभाव भी विवेकानन्द के दृष्टिकोण पर देखा जा सकता है।

वेदान्तिक सिद्धांतों की व्याख्या करते समय विवेकानन्द ने दो प्रमुख मान्यताएँ प्रस्तुत कीं—पहला यह कि धार्मिक अनुभूतियां वैयक्तिक स्तर पर सार्थक होती हैं सामूहिक स्तर पर नहीं, दूसरा—धर्म का वास्तविक लक्ष्य आत्मानुभूति है। इस दृष्टि से धर्म को समाज की निर्धनता या देश के अधःपतन के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। विवेकानन्द की धारणा थी कि वास्तविक परिवर्तन तो आन्तरिक विकास है, जिसे बाह्य सुधारों से प्राप्त नहीं किया जा सकता।[२] आन्तरिक विकास तभी संभव है जब जन-साधारण को उनकी खोई अस्मिता वापस लौटाई जाय।[३] विवेकानन्द की दृष्टि में व्यक्ति जब तक अपने 'स्व' पर राज्य करना नहीं जानता, तब तक राजनीतिक स्वतन्त्रता निरर्थक है।[४]

यह भी इतिहास का एक संयोग ही कहा जाएगा कि जहाँ उत्तराखण्ड में आर्य समाज का आरम्भ नैनीताल नगर से हुआ, वहीं रामकृष्ण मिशन की स्थापना अल्मोड़ा से प्रारम्भ हुई। कुछ अर्थों में अल्मोड़ा परम्परागत रूढ़िवादिता एवं जातीय कट्टरता का प्रतिनिधित्व करता है, जब कि नैनीताल अपने मिश्रित समाज के कारण अपेक्षाकृत सहिष्णुता एवं नई चुनौतियों को स्वीकार करने की मनोवृत्ति का परिचय देता है। उत्तराखण्ड में रामकृष्ण मिशन का सूत्रपात स्वामी विवेकानन्द के देहरादून एवं अल्मोड़ा प्रवास से हुआ। अल्मोड़ा नगर में विवेकानन्द दो बार आए। प्रथम अपने अमेरिका-भ्रमण से पूर्व तथा दूसरी बार अपने विदेशी शिष्यों के साथ। मायावती आश्रम की स्थापना के पश्चात् स्वामी विवेकानन्द वहाँ भी रहे। अपने अल्मोड़ा प्रवास के दौरान विवेकानन्द ने इन पर्वतों को भारतीय-मानस की सर्वोत्तम स्मृतियां बताते हुए यह विचार व्यक्त किया था कि भारतीय धर्म के इतिहास से हिमालय को हटा दिया जाय तो शेष कुछ नहीं रहता।[५] अल्मोड़ावासियों ने विवेकानन्द को हिन्दू धर्म के पुनरुद्धारक के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए यह आशा व्यक्त की थी कि उनके प्रयासों से ही समाज में प्राचीन धर्म की स्थापना हो सकेगी। अल्मोड़ा ने इस प्रकार विवेकानन्द को धार्मिक क्रांतिकारी के रूप में नहीं, वरन धर्म के प्राचीन स्वरूप के उद्धारक के रूप में ग्रहण किया।

विवेकानन्द द्वारा कुमाऊं क्षेत्र में रामकृष्ण मिशन की स्थापना का उद्देश्य अपने पाश्चात्य शिष्यों को ब्रह्मचारियों और संन्यासियों के रूप में रखने के लिए एक उपयुक्त स्थल को विकसित करना था। यह विचार उन्होंने आलासिंगा पेरूमल को २० नवम्बर १८९६ को लिखे गए एक पत्र में व्यक्त किया है।[६] विवेकानन्द की दृष्टि में संन्यासियों का लक्ष्य जीवन से विरक्ति नहीं, वरन सांसारिक प्राणियों के कल्याण के लिए स्वयं को अर्पित करना था, इसी उद्देश्य से उन्होंने मायावती आश्रम से 'प्रबुद्ध भारत' का प्रकाशन आरंभ किया तथा अल्मोड़ा नगर में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से एक वृद्ध सभा की स्थापना भी की।

उत्तराखण्ड के सामाजिक जीवन से यहाँ के रामकृष्ण-मिशनों के सदस्य स्वयं को एकाकार नहीं कर पाए। रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों में बंगालियों का बाहुल्य था तथा प्रादेशिक श्रेष्ठता की भावना बंगाली मनोवृत्ति में विशेष रूप से विद्यमान है। आश्रम के संन्यासियों ने इस अंचल की सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध पहल करने की चेष्टा नहीं की। रामकृष्ण परमहंस की शिक्षा विवेकानन्द के समान प्रखर, प्रतिभाशाली व्यक्तित्व द्वारा प्रचारित किए जाने पर भी समाज को झकझोर कर न जगा सकी। विवेकानन्द के समकालीन व्यक्ति, जो उनसे प्रभावित एवं प्रेरित हुए थे, जनसामान्य पर अपनी पकड़ मजबूत न कर पाए। परिणामस्वरूप यह प्रेरणा बृहत्तर समाज के लिए कल्याणकारी कार्यों के रूप में पल्लवित न होकर केवल व्यक्तियों तक ही सीमित रही। उत्तराखण्ड में रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों और कार्यकर्त्ताओं का जन सम्पर्क मात्र औपचारिक रहा। उनके अधिकांश कार्यकलाप अपने आश्रम के भीतर ही सीमित रहे। विवेकानन्द के परवर्ती संन्यासी जिन्होंने प्रारंभिक वर्षो में इन आश्रमों के संचालन का दायित्व उठाया, निस्सन्देह समाज-सेवा तथा सुधार की भावना से प्रेरित थे, किन्तु धीरे-धीरे इन आश्रमों में वेदान्त के चिन्तक संन्यासी अपने पारलौकिक जीवन पर चिन्तन और बौद्धिक ऊहापोह में समय व्यतीत करने लगे। विवेकानन्द ने जिस आदर्श संन्यासी की कल्पना की थी, वह दलितों का उद्धारक, दीन दुखियों का मसीहा और समाज के इहलौकिक जीवन का पथ-प्रदर्शक था। यथार्थ स्थिति आदर्श से बहुत दूर हो चली। धूर्जटी प्रसाद मुकर्जी ने इस स्थिति का विवेचन करते हुए स्पष्ट किया है कि विवेकानन्द के प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व के बावजूद रामकृष्ण परमहंस की शिक्षाओं के प्रभाव ने हमारे सामाजिक जीवन के आधार को झकझोरने में सक्षमता प्राप्त नहीं की। कुछ व्यक्तियों ने अवश्य ही उनसे प्रभावित होकर प्रेरणा ग्रहण की, किन्तु जनसामान्य अपनी गहरी नींद से न जाग सका। इसका कारण यह था कि रामकृष्ण से प्रभावित व्यक्ति जन-सामान्य के जीवन तथा उनकी समस्याओं से स्वयं को सम्बद्ध न कर पाए।[७]

इस प्रकार उत्तराखन्ड में समाज-सुधार के क्षेत्र में रामकृष्ण-मिशन की कोई उल्लेखनीय उपलब्धियाँ नहीं रहीं। विवेकानन्द ने अपने शिष्यों को जन-साधारण के बीच शिक्षा एवं विज्ञान का प्रचार करने के लिये बार-बार स्मरण कराया था किन्तु उत्तराखण्ड में रामकृष्ण मिशन द्वारा शिक्षा-प्रचार की दिशा में कोई कार्य नहीं किया गया। जनसेवा का एक क्षेत्र जिसे रामकृष्ण मिशन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि कहा जा सकता है वह है—उत्तराखंड के पिछड़े क्षेत्रों में चिकित्सा-सुविधाओं का प्रसार। निस्पृह जनसेवा के इस क्षेत्र में अवश्य ही विवेकानन्द की प्रेरणा यहाँ के रामकृष्ण मिशनों में व्याप्त रही। इस सेवा का एक उज्ज्वल पक्ष यह भी है कि इसका

उद्देश्य न तो शासन से सम्मान या अलंकरण प्राप्त करना रहा और न मध्यवर्गीय मानसिकता की समाज सेवी संस्थाओं की भांति पुण्य अर्जित करना ही। काली कुमाऊँ के दुर्गम गांवों के बीच अवस्थित मायावती आश्रम के चिकित्सालय में उपलब्ध सुविधाएँ इसका प्रमाण हैं। एक अन्य दृष्टान्त सूखीढ़ांग (श्यामलाताल) स्थित रामकृष्ण मिशन का चिकित्सालय है जो वर्षों से इस अंचल के वासियों को चिकित्सा सुविधाएँ देता आया है। इन क्षेत्रों में ब्रिटिश काल में तो यातायात के साधन दुर्लभ थे ही, आज भी यहाँ के सरकारी अस्पतालों में डाक्टर, दवा तथा उपकरणों में से केवल एक ही उपलब्ध हो पाता है। रामकृष्ण मिशन के इन चिकित्सालयों ने जन-सेवा का जो महत्वपूर्ण कार्य इन क्षेत्रों में किया है, वह वास्तव में अद्वितीय है।

उत्तराखण्ड के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन पर यद्यपि रामकृष्ण मिशन का कोई उल्लेखनीय प्रभाव न पड़ा, किन्तु यहां के सांस्कृतिक पुनर्जागरण में रामकृष्ण मिशन की स्थापना ने एक परोक्ष प्रभाव के रूप में कार्य किया। १८९३ में स्वामी विवेकानन्द के साथ अल्मोड़ा आने पर भगिनी निवेदिता ने बोसी सेन की विवेकानन्द प्रयोगशाला की स्थापना की थी। बोसी सेन स्वयं रामकृष्ण मिशन के स्वामी सदानन्द के शिष्य थे। विवेकानन्द की १८९८ की अल्मोड़ा यात्रा में उनके साथ भगिनी निवेदिता, कलकत्ता के ब्रिटिश कान्सल की पत्नी श्रीमती पेटरसन, अमेरिका की श्रीमती ओली बुल तथा मैक्लायड आए थे। थियोसाफिकल सोसाइटी की श्रीमती ऐनी बेसैन्ट भी स्वामी विवेकानन्द से भेंट करने अल्मोड़ा आई थीं। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द के अल्मोड़ा आगमन से ही विभिन्न संस्कृतियों के प्रतिनिधि के रूप में प्रबुद्ध वर्ग का अल्मोड़ा प्रवास आरंभ हुआ। विवेकानन्द की शिक्षाओं के प्रति बंगाल के प्रबुद्ध वर्ग का रुझान उन्हें विवेकानन्द की साधना-स्थली-अल्मोड़ा-की ओर आकृष्ट करने लगा। इस आकर्षण में पर्वतों के नैसर्गिक सौन्दर्य और शान्ति ने अभिवृद्धि ही की। परवर्ती काल में प्रसिद्ध नर्तक उदयशंकर भी अपना सांस्कृतिक केन्द्र स्थापित करने के उद्देश्य से अल्मोड़ा आए। सिमतोला की पहाड़ी पर नैसर्गिक रंगस्थली बनाने की उदयशंकर की योजना यद्यपि मूर्तरूप ग्रहण न कर सकी किन्तु उनकी मण्डली के चार वर्ष के अल्मोड़ा प्रवास में देश के सुविख्यात नर्तक, गायक एवं विचारक अल्मोड़ा आए। केन्द्र से संबद्ध कलाकारों में अलाउद्दीन खां, अली अकबर खां, तिमिर वरन, कथकली के विशेषज्ञ शंकर नम्बूदरी, भारत-नाट्यम के मर्मज्ञ कंदप्पन पिल्ले, विष्णु दास सिराली के समान राष्ट्रीय ख्याति के व्यक्ति थे। नारायण राव व्यास तथा विनायक राव पटवर्धन का आगमन भी केन्द्र के कार्यक्रमों में भाग लेने हेतु हुआ। हरीन्द्रनाथ चटोपाध्याय एवं दिलीप कुमार राय भी इस अवधि में अल्मोड़ा आए। शीर्षस्थ कलाकारों एवं विचारकों का यह संगम एक क्षणिक सांस्कृतिक या बौद्धिक मनोरंजन मात्र न रह कर अल्मोड़ा नगर के वैचारिक तथा सांस्कृतिक धरातल पर एक स्थायी प्रभाव के रूप में सामने आया। अल्मोड़ा के स्थानीय व्यक्तियों में से भी कतिपय व्यक्ति सक्रिय रूप से केन्द्र से सम्बद्ध रहे, जिनमें कवि सुमित्रानन्दन पंत, चिरन्जी लाल साह एवं जीवन चन्द्र जोशी के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सांस्कृतिक गतिविधियों ने कलात्मक क्षितिज में नए आयाम जोड़े तथा प्रबुद्ध वर्ग को अपनी संस्कृति एवं लोककला को सही परिप्रेक्ष्य में देखने तथा उसे कलात्मक अभिव्यक्ति देने की सूझ बूझ दी। वर्तमान शताब्दी के पाँचवें दशक में अल्मोड़ा के लोक कलाकार संघ द्वारा उत्तराखण्ड की लोक-संस्कृति को कलात्मक अभिव्यंजना देने का जो कार्यक्रम प्रारंभ किया गया था, उसका प्रेरक तत्व उदयशंकर की

मंडली द्वारा निर्मित कलात्मक वातावरण ही था। स्थानीय प्रबुद्ध व्यक्तियों द्वारा इस प्रकार अपनी धरती एवं उसके जन जीवन से जुड़ने का यह प्रयास अंचल के सांस्कृतिक नवजागरण का द्योतक था। अतः रामकृष्ण मिशन आन्दोलन का परोक्ष प्रभाव कुमाऊँ के सांस्कृतिक नवजागरण पर पड़ा।

विवेकानन्द की शिक्षाओं का एक अन्य परोक्ष प्रभाव आंचलिक, क्षेत्रीय या अन्य संकीर्ण भावनाओं से सामाजिक चेतना को मुक्त कर उसे वैचारिक धरातल पर आधुनिकता की ओर उन्मुख करता रहा। उदात्तता, सहिष्णुता तथा सामंजस्य विवेकानन्द की विचारधारा के आधार रहे। उन्होंने भारत एवं पाश्चात्य देशों की सांस्कृतिक उपलब्धियों के विनिमय पर बल दिया तथा भारतीय चिन्तन के आदर्शों को पाश्चात्य आदर्शों से समन्वित कर उन्हें संकीर्णता से बचाया।[८] पूर्व एवं पश्चिम के सर्वोच्च आदर्शों का समन्वय, विज्ञान एवं धर्म तथा अध्यात्म एवं भौतिकता का समन्वय विवेकानन्द की विचारधारा की वह विशिष्टता रही जिसने भारत के लिए आधुनिकता की ओर अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त किया।[९] पाश्चात्य विचारक जूलियन हक्सले ने एक ऐसे संगठन की आवश्यकता भविष्य के समाज के निर्माण हेतु बताई थी जो विज्ञान की उदारवादिता एवं तर्किकता को धर्म की आस्था के साथ संयोजित कर सके, किन्तु स्वयं को भी धार्मिक कट्टरता एवं रूढ़िवादिता से बचाए रखे।[१०] इस दृष्टि से रामकृष्ण मिशन आन्दोलन ने सहिष्णुता, उदातता एवं आधुनिकता के मूल्यों को प्रतिपादित कर भारतीय समाज को उस संकीर्णता तथा अन्य दोषों से बचाया जो अन्यथा दयानन्द के वेदों की सर्वोच्चता तथा आर्यजनों की श्रेष्ठता के उद्घोष से समाज के चिन्तन को आच्छादित करती।

संदर्भ

१. द कम्पलीट वर्क्स आफ स्वामी विवेकानन्दः वाल्यूम ८ : पृष्ठ ७७
२. वही : वाल्यूम ३, पृष्ठ २१३ : वाल्यूम ५ पृष्ठ १९८
३. वही : वाल्यूम ४, पृष्ठ ३६८ : वाल्यूम ६, पृष्ठ ४२६
४. वही वाल्यूम ४ पृष्ठ ३६२.
५. विवेकानन्द : लेक्चरर्स फ्राम कोलम्बो टु अलमोड़ा, पृष्ठ २६२
६. विवेकानन्द : पत्रावली : द्वितीय भाग पृष्ठ ४६
७. मुकर्जी धूर्जटी प्रसाद : सोसियोलाजी आफ इन्डियन कल्चर, पृष्ठ २८
८. टैगोर रवीन्द्रनाथ : रवीन्द्र रचनावली : भाग XIII पृष्ठ ५५
९. रंगनाथानन्द : द रामकृष्ण मिशन : इट्स आइडियल्स एंड एक्टिविटीज, पृष्ठ २१
१०. हक्सले जूलियन : द चैलेंज आफ माडर्न साइन्स टु ह्यूमन एक्सन एन्ड बिलीफ, पृष्ठ १७२-७३

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1. P. 89-95
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६ खंड-१ पृ० ८९-९५

जनसंख्या गतिविज्ञान : प्रकृति एवं संरचना

शिवनारायण गुप्त
अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय, जखिनी, वाराणसी

सारांश

प्रस्तुत शोध-निबन्ध "जनसंख्या गति विज्ञान" विषय की वास्तविक प्रकृति एवं संरचना पर है जिससे एक साथ ही जनसंख्या तथ्य पर आधारित व्यवस्थित अनुशासन तथा किसी अन्य अनुशासन, यथा: अर्थशास्त्र के अन्तर्गत उप-अनुशासन पर प्रकाश पड़ता है।

ABSTRACT

The paper presents the true nature and structure of the field of Population Dynamics which is identifiable both as (a) One among sciences which are devoted to the study of population facts as a systematic discipline, as well as (b) as an existing sub-discipline within systematic economics, for example.

जनसंख्या गति विज्ञान ज्ञान की वह शाखा है जिसमें जनसंख्या परिवर्तन के सभी पक्षों तथा मानवीय प्रजननशीलता का नियमन[1] सम्मिलित हैं। यह कलाओं में प्राचीनतम तथा विज्ञान समूह में नवीनतम है। एक विद्वतापूर्ण विषय के रूप में इसकी प्रथम वैज्ञानिक प्रस्तुति, जिसे समस्या उपागम की संज्ञा दी जाती है, टॉमस राबर्ट माल्थस की कृति (१७९८)[2] से माना जाता है। वर्तमान युग में प्रस्तुत विज्ञान का अध्ययन-तल बहुआयामी हो गया है। इसका अध्ययन अर्थशास्त्र के अतिरिक्त अन्य सामाजिक विज्ञानों, मानविकी, चिकित्सा एवं भौतिक विज्ञानों के क्षेत्र में अब प्रस्तुत किया जा रहा है जिनमें प्रस्तुतीकरण का मंच, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यक्तिपरक, विषयपरक, संस्थापरक एवं व्यवहारपरक है। यहाँ जनसंख्या गति-विज्ञान का वर्गीकरण करते हुए उसकी प्रकृति एवं संरचना का एक विवेचन करना प्रस्तुत शोध-निबंध का मूल उद्देश्य है।

I

जनसंख्या गति विज्ञान का परम्परागत वर्गीकरण "विश्लेषणपरक" एव "समस्या प्रधान" है जिसके प्रारम्भ का श्रेय क्रमशः जोन ग्राण्ट[3] एवं टॉमस राबर्ट माल्थस को है। बाद में इसे हॉसर एवं डंकन (१९६९)[4] ने "जनांकिकीय विश्लेषण" एवं "जनसंख्या अध्ययनों का क्षेत्र" के

रूप में वर्गीकृत किया जिसमें प्रथम के अन्तर्गत जनांकिकीय विचरण एवं परिवर्तन तथा द्वितीय के अन्तर्गत जनांकिकी परिवर्तनों पर अन्य चरों, यथा आर्थिकचर, के पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या की जाती है। हौसर एवं डंकन द्वारा किया गया यह वर्गीकरण वर्तमान समय में प्रचलन में है, किन्तु इस सन्दर्भ में पुनः स्पष्टीकरण[५] की आवश्यकता है। इसका कारण यह कि प्रथम, जनांकिकी विश्लेषण एवं जनसंख्या अध्ययन के मध्य अन्तर करने हेतु अपनाया गया सिद्धान्त वैज्ञानिक नहीं है; द्वितीय, समाज-विज्ञानियों द्वारा अधीत "जनसंख्या-अध्ययन", जिनका तकनीकी सम्बन्ध जनांकिक चर से अधिक न होकर अन्य सामाजिक-आर्थिक चरों से है, उन्हें जनसंख्या अध्ययनों की कोटि में न रखकर अध्ययन विषयक उस समाज विज्ञान की एक प्रशाखा के रूप में देखा जाना चाहिए जिस चर को केन्द्रीय महत्व प्रदान किया गया है; एवं, तृतीय, ऐसे अध्ययन जिनमें जनसंख्या एवं अन्य चरों के मध्य प्राप्त संबन्धों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया हो, उन्हें दो रूपों में देखा जाता है। वह जिसका केन्द्र बिन्दु जनसंख्या तत्व है, तथा वह जिसका केन्द्र बिन्दु जनसंख्या के अतिरिक्त कोई अन्य चर (उदाहरण के लिए आर्थिक) हो। स्पष्टतः प्रथम प्रकार का विशेषण जनसंख्या गतिविज्ञान के स्थापित "जनांकिकी" विज्ञान से संबंधित है तथा द्वितीय प्रकार का विश्लेषण उन सामाजिक विज्ञानों का आंगिक संघटन है जिनका केन्द्रीय बिन्दु जनसंख्या न होकर कोई अन्य चर हो। ज्ञातव्य है कि उक्त दोनों वर्गीकरण काल और अथवा स्थान के सापेक्ष होंगे। इस आधार पर जनसंख्या गतिविज्ञान को निम्न चार शीर्षों में देखा जा सकता है :

१. व्यवस्थित अनुशासन (जनांकिकी) के रूप में जिसमें जनांकिकीविद द्वारा किया गया जनसंख्या विषयक तथ्यों का "विश्लेषणात्मक" प्रदर्शन, वर्गीकरण एवं माप प्रस्तुत किया जाता है।

२. कालिक अनुशासन (यथाः जनांकिकीय इतिहास, जनसंख्या समाजशास्त्र, जनसंख्या अर्थशास्त्र) के रूप में। उदाहरणार्थ जनसंख्या अर्थशास्त्र में अर्थशास्त्री द्वारा किया गया जनसंख्या विषयक समस्या प्रधान तथ्यों का प्रदर्शन कालिक परिप्रेक्ष्य में होता है।

२. स्थानिक अनुशासन (यथाः जनसंख्या भूगोल) के रूप में जिसमें भूगोलवेत्ता द्वारा किया गया जनसंख्या विषयक समस्या प्रधान तथ्यों का प्रदर्शन स्थनिक परिप्रेक्ष्य में होता है।

४. कार्यपरक अनुशासन (यथा चर्चा कार्यक्रम) के रूप में जिसमें जनांकिकी विदों, अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों, भूगोलवेत्ताओं, भेषजज्ञों आदि द्वारा सुझाए गए जनसंख्या विषयक तथ्यों का नियमन काल एवं स्थान दोनों के ही परिप्रेक्ष्य में शिक्षा, चिकित्सा एवं प्रशासनिक आधारों पर किया जाता है :

यह केवल संभावित ही नहीं बल्कि आवश्यक भी है कि हम जनसंख्या गतिविज्ञान के, वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर प्रस्तावित उक्त चतुर्भुजी वितरण को मान्यना प्रदान करें। इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण कालिक अनुशासन "जनसंख्या-अर्थशास्त्र" को व्यवस्थित विषय अर्थशास्त्र की एक

शाखा के रूप में देखा जाना चाहिए। यद्यपि इसके अध्ययन की परम्परा "जनसंख्या समस्या" के रूप में है। तीसरे, जनांकिकी जैसे स्वतंत्र विषय का उपयोग कालिक एवं स्थानिक दोनों ही अनुशासनों में किया जाना अपेक्षित है। जनांकिकी द्वारा जनसंख्या विषयक तथ्यों का किया गया यह पुनर्वितरण, बहुचक्रीय जनसंख्या अध्ययनों के अन्तर्गत एक द्वितीय चक्र के रूप में देखा जा सकता है। अंतिम, जनसंख्या गति विज्ञान के चौथे प्रस्तावित अनुशासन के अन्तर्गत शिक्षा एवं परिवार कल्याण हित मानवीय प्रजननशीलता एवं मरणशीलता पर नियंत्रण राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम, मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य कल्याण केन्द्रों आदि के माध्यम से "राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय चर्या एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अन्तर्गत विभिन्न देशों में प्रशासनिक, चिकित्सीय, जैव-चिकित्सीय, स्वास्थ्य एवं शैक्षिक आधारों पर सम्पन्न किया जाता है।

II

प्रस्तुत विज्ञान की प्रकृति मूलतः समस्या प्रधान एवं आर्थिक है जिसको सर्वप्रथम मान्यता प्रदान कराने का श्रेय माल्थस को है। उसके अनुसार मनुष्य में निहित प्रजनन शक्ति असीम एवं स्वाभाविक है। यदि इस पर स्वयं मानवीय प्रयत्नों द्वारा प्रतिबन्ध न लाया गया तो जनसंख्या में तीव्र वृद्धि से "विकास" में गतिरोध उत्पन्न होगा और जनसंख्या प्रगति की दृष्टि से एक निषेध बन जाएगी।

III

प्रस्तुत विज्ञान की संरचना दो आयामी है : व्यवस्थित एवं समाकलित, जिनका अलग-अलग विवरण इस प्रकार है—

व्यवस्थित—जनसंख्या मनोविज्ञान की व्यवस्थित संरचना विशुद्ध तार्किक एवं विश्लेषणपरक है। इस वैज्ञानिक प्रस्तुति का प्रमुख आधार जनसंख्यात्मक तथ्य होते हैं, जैसा कि तालिका १—१ से द्रष्टव्य है। इसमें कारण परिणाम सम्बन्धों की प्राप्ति और उनका समाधान सम्मिलित है। ये सम्बन्ध बल अथवा स्वतंत्र चर (चरों) तथा गति अथवा निर्भरित चर के मध्य प्राप्त होते हैं, जिन्हें न्यूटन के गति विषयक नियम कहते हैं। प्रथम नियम के अनुसार, पिण्ड प्रवृत्तिविहीन होती है यदि उस पर कोई कारणपरक प्रभाव न पड़े। उदाहरण के लिए जनसंख्या, जो स्वयं में प्रवृत्ति विहीन होती है यदि उस पर जैविक घटक मानवीय प्रजननशीलता एवं मरणशीलता और/अथवा सांस्कृतिक घटक आवास एवं प्रवास आदि का प्रभाव न पड़े। कारणपरक प्रभाव अथवा बल के माप की विधि पर न्यूटन के द्वितीय नियम से प्रकाश पड़ता है जिसके अनुसार दो बल अपना प्रभाव डालने में पूर्णतया स्वतन्त्र होते हैं, यथा: मानवीय प्रजननशीलता एवं मरणशीलता तीसरे नियम के अनुसार दोनों स्वतन्त्र बलों में एक प्रभावी बल होता है तो दूसरा प्रभावित बल तथा व्यवस्था के संतुलन की दृष्टि से ये दोनों बल आपस में बराबर होते हैं।

न्यूटन के प्रथम नियम का प्रभाव जनसंख्या गतिविज्ञान की संरचना पर एक निर्विवाद सत्य है। इस आधार पर तालिका १—१ का वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा सकता है :

तालिका १—१ : व्यवस्थित संरचना

१. जनसंख्या तत्व : आंशिक विश्लेषण

तथ्यों की प्रथम कोटि

१. मानवीय संख्या/जनसंख्या (निर्भरित चर)

२. मानवीय प्रतिदर्श (स्वतन्त्र चर)

अ—भौतिक यथा: लिंग, प्रजाति, उम्र आदि।

ब—आर्थिक अथवा जीवन स्तर, यथा: प्रतिव्यक्ति आय, राष्ट्रीय आय, सकल राष्ट्रीय उत्पाद, व्यवसाय आदि।

स—सामाजिक-सांस्कृतिक, यथा: राष्ट्रीयता, ग्रामीण-नगरीय आवास, भाषा, शिक्षा, साक्षरता, धर्म, परिवार का आकार, स्वास्थ्य, वैवाहिक स्थिति, रिवाज आदि।

तथ्यों की द्वितीय कोटि

अ—मानवीय प्रजननशीलता

ब—मरणशीलता

स—प्रवसन और/अथवा सामाजिक गतिशीलता

तथ्यों की अन्य कोटि

११. जनसंख्या तत्व : पूर्ण विश्लेषण

अतः (१) प्रथम कोटि के जनांकिकी तथ्य जनसंख्या के आकार एवं चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं। (२) द्वितीय कोटि के जनांकिकी तथ्य प्रथम कोटि के जनांकिकी तथ्यों, यथा: जनसंख्या के घटकों के रूप में देखे जा सकते हैं। (३) जनांकिकी तथ्यों, कि अन्य कोटि, उदाहरण के लिए समय, पहले द्वितीय कोटि पर अपना प्रभाव डालेगी तदोपरान्त प्रथम कोटि के तथ्यों को प्रभावित करेगी। एवं (४) जनांकिकी तथ्यों की इन कोटियों में सम्बन्धात्मक प्रभावों का विश्लेषण "आंशिक" एवं "पूर्ण" व्याख्या के आधार पर करना संभव है।

जनसंख्या गति विज्ञान की उक्त "जटिल" व्यवस्थित संरचना का चित्रण विषयगत विशिष्ट संरचना पर भी प्रकाश डाल सकता है, यदि काल सापेक्ष परिवर्तन-प्रक्रिया और अथवा सिद्धान्त पर ध्यान केन्द्रित किया जाय। इस संदर्भ में नोवेस्टीन (१९४५)[६] के "जनांकिकी संक्रमण" की अवधारणा (सिद्धान्त) अवलोकनीय है जो जनसंख्या के "स्थिर" अथवा उच्च" अथवा "निम्न" उन्मुखी अवस्थावार और दिशागत परिवर्तन के विश्लेषण के साथ ही आर्थिक विकास एवं औद्योगीकरण की प्रक्रिया पर भी प्रकाश डालता है।

समाकलित—जनसंख्या गतिविज्ञान की समाकलित संरचना चारों अनुशासनों का एक आदर्श किन्तु उपयुक्त संयोजन है। यहाँ संयोजन का तीन चरण प्रस्तावित है :

चरण १ : व्यवस्थित संरचना

I. अतीत की जनसंख्या—भूमि पर मनुष्य किस तरह बसा था ।

१. पूर्व-ऐतिहासिक
२. प्राचीन
३. मध्यकालिक

II जनसंख्या समूह

१. जनसंख्या का काल—सापेक्ष परिवर्तन
२. जनसंख्या का स्थान सापेक्ष वितरण
३. जनसंख्या की गतिशीलता एवं प्रवसन
४. जनाभाव एवं जनाधिक्य का घनत्व-पक्ष

III जनसंख्या का गुण एवं उसका अवधिगत वितरण

१. जनसंख्या का भौतिक गुण
२. जनसंख्या का सामाजिक—आर्थिक गुण

IV जनसंख्या की परिवर्तन-प्रवृत्ति

१. परिवर्तन की प्रकृति
२. भविष्य का दृष्टिकोण

V चर्या एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम-राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में

१. परिवार नियोजन कार्यक्रम
२. शिशु एवं मातृ कल्याण-साधन एवं सेवाएँ
३. अन्य

जनसंख्या गतिविज्ञान की समाकलित संरचना में चरण I का प्रस्तावित संयोजन हमारे नीतिगत ध्येय एवं विवेक पर निर्भर करेगा । यदि हमारा नीतिगत ध्येय जनसंख्या-अर्थशास्त्र से सम्बन्धित है जो कालिक अनुशासन की परिधि में आता है तो इस संदर्भ में जनसंख्या गति-विज्ञान की संरचना के अनेक संभावित संयोजन हो सकते हैं, उदाहरण के लिए :

१ जनसंख्या समूह (II) के संदर्भ में अतीत की जनसंख्या (I) प्रस्तावना का कार्य करेगी और जनसंख्या परिवर्तन (IV) काल सापेक्ष परिवर्तन की दिशा निर्धारित करेगा ।

२. प्रवृत्तिगत (IV) दिशा को नियमित करने का कार्य चर्या एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम (V) का नीतिपरक विश्लेषण प्रस्तुत करेगा और इस नीतिगत (V) विश्लेषण को ठोस तल प्रदान कराने का कार्य जनसंख्या के गुण एवं उसकी अवधिगत वितरण (III) पर निर्भर करेगा ।

३. उक्त २. के अवधिगत वितरण (III) के बाद जनाभाव एवं जनाधिक्य (II, ४) अवधारणा पर विचार किया जाय।

यहाँ समाकलित संरचना की दृष्टि से यह वैकल्पिक प्रस्ताव भी किया जा सकता है कि चरण १ में वर्णित विभागों एवं उपविभागों का सार्थक संयोजन तालिका १—१ में वर्णित तथ्यों की प्रथम, द्वितीय एवं अन्य कोटियों से भी की जाय :

१. जनसंख्या परिवर्तन के प्रत्यक्ष घटक जनसंख्या की गतिशीलता एवं प्रवसन (II, ३) का अन्य घटकों यथा: मानवीय प्रजननशीलता, मरणशीलता आदि) तालिका १—१ तथ्यों की द्वितीय कोटि) के साथ कालसापेक्ष अध्ययन प्रस्तुत किया जाय।

२. जनसंख्या परिवर्तन के परोक्ष सामाजार्थिक कारकों का विश्लेषण उक्त I के साथ किया जाय और जनसंख्या परिवर्तन विषयक भविष्य के दृष्टिकोण (IV, २) पर भी प्रकाश डाला जाय।

३. राष्ट्रीय स्तर पर उक्त २ पर विचार नीतिगत (V) विवेचन के साथ प्रस्तुत किया जाय।

चरण २ : काल एवं स्थान आयाम

वस्तुतः जनसंख्या तथ्य, जैसाकि चरण । में विवित है, दो अलग-अलग किन्तु सम्बद्ध आयामों—"काल" एवं "स्थान" से जुड़े हुए हैं। जनसंख्या गतिविज्ञान का कालिक अनुशासन जनसंख्या परिवनंन विषयक अध्ययन काल-सापेक्ष (लम्बवत) करता है तथा स्थानिक अनुशासन जनसंख्या परिवर्तन विषयक अध्ययन स्थान-सापेक्ष (क्षैतिजीय) करता है। किन्तु काल-सापेक्ष अध्ययन के साथ-साथ स्थान-सापेक्ष और स्थान-सापेक्ष अध्ययन के साथ-साथ काल-सापेक्ष अध्ययन का किया जाना वास्तविक जगत के अधिक निकट है। इसे काल-स्थानिक संश्लेषण कहेंगे।

चरण ३ : दस उपागम

जनसंख्या गतिविज्ञान के संदर्भ में चित्रित चरण I का प्रस्ताव, चरण । के साथ तालिका १—१ का संयोजन प्रस्ताव, चरण २ में काल अथवा स्थान [सापेक्ष विश्लेषणऔर कालस्थानिक संश्लेषण प्रस्ताव समाकलित संरचना की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालती है : समाकलित संरचना का एक जटिल प्रस्ताव,[८] जिसमें दस प्रतिमान संनिहित हैं, चरण ३ की विषय वस्तु है :

१. स्थानिक विचरण (१) और उसमें काल सापेक्ष परिवर्तन (२) : आंशिक एवं पूर्ण विश्लेषण में लागू, तालिका १—१।

२. स्थानिक सह-विचरण (३) और उसमें काल सापेक्ष परिवर्तन (४) : आंशिक एवं पूर्ण विश्लेषण में लागू, तालिका १—१।

३. क्षेत्रीयएकीकरण (५) और उसमें काल सापेक्ष परिवर्तन (६) : केवल पूर्ण विश्लेषण में लागू, तालिका १—१।

४. क्षेत्रीय विभेदीकरण (७) और उसमें काल सापेक्ष परिवर्तन (८) केवल पूर्ण विश्लेषण में लागू, तालिका १--१।

५. उप मैट्रिक्स का समावेश (९) और उसमें काल सापेक्ष परिवर्तन (१०) : उक्त १ से ८ तक प्रतिमान विश्लेषण में सहायक तथा केवल पूर्ण विश्लेषण में लागू, तालिका १-१।

[प्रस्तुत शोध निबन्ध के लेखन में डा० मिथिलेश श्रीवास्तव, रीडर, भूगोल विभाग, इलाहाबाद युनिवर्सिटी, का अमूल्य सुझाव प्राप्त हुआ है एतदर्थ मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।]

सन्दर्भ

१. मुरामाट्स्यु एवं हार्पर (संपा० १९६५) : "पापुलेशन डाइनामिक्स", कलकत्ता : आक्सफोर्ड एण्ड आई० बी० एच०, पृष्ठ २०४.

२. माल्थस (१७९८) : "एन एस्से आन द प्रिंसपुल आफ पापुलेशन", एण्टोनी फ्ल्यु द्वारा संपादित, इंगलैण्ड : पेनगुइन, १९७०.

३. ग्राण्ट, जोन (१६६२) : "नेचुरल एण्ड पोलिटिकल आब्जेर्वेसंस मेड अपान दि बिल्स आफ मार्टेलिटी", लन्दन।

४. हॉसर एवं डंकन (१९६९) : "ओवरव्यू एण्ड कनक्लुशंस इन दि स्टडी आफ पापुलेशन—एन इन वेण्टरी एण्ड अप्रेजल", न्यूयार्क : एशिया पब्लिशिंग हाउस।

५. श्रीवास्तव, मिथिलेश (दिसम्बर १९७६) : "आन दि स्टेट्स एन्ड स्ट्रक्चर आफ पापुलेशन ज्योग्राफी, नेशनल ज्योग्राफर, अक ११, सं० २, पृ० १७५-१८६.

६ गुप्त, शिवनारायण : "भारत में जनसंख्या- प्रवृत्ति, समस्या एवं प्रातिविधान", नाम शोध-निबन्ध दसवीं भारतीय समाज विज्ञान कांग्रेस २७-३० जनवरी, १९८५ इलाहाबाद युनिवर्सिटी में पठित।

७. नोटेस्टीन [१९४५] : "पापुलेशन : दि लांग व्यू", फूड फार दि वर्ल्ड, संपा० टी० डब्यु० शुल्ज, शिकागो।

८. पेरी, बी० जे० एल० [१९६४] : "एप्रोचेज टू रीजनल एनालिसिसः ए सिनथेसिस", अंक ५४.

—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1, P. 96-100
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-१, पृ० ९६-१००

PERCEPTION OF ENVIRONMENTAL SETUP IN SINGHBHUM AND ITS ENVIRONS

SHIVRAJ SINGH

Geography Department, Govt. Rajza P. G. College, Rampur

सारांश

प्रगतिशील मानव ने असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भूमि, वन, खनिज और वन्य जीवों का शोषण तथा वायु, जल एवं भोजन को प्रदूषित कर परिस्थितिकीय सौहार्द्र को गम्भीर खतरा उपस्थित कर दिया है। प्रस्तुत शोध पत्र सिंहभूमि और उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में संसाधनों का दुरुपयोग रोकने, समुचित उपयोग के लिए पुनर्प्रयोग करने और पर्यावरण सन्तुलन बनाये रखने हेतु लोगों में जागरूकता उत्पन्न करने के लिए एक प्रयास है।

ABSTRACT

Parabolic needs of progressing man have posed threat to ecological affinity by deteriorating the grandeur of environment through exploitation of land, forests, minerals and wild animals and the pollution of air, water and food. This research paper is a paradigm to insert awareness among people to 'prevent ' misuse,' abondon 'abuse' and introduce 're-use' for the 'proper use' of resources to maintain biospheric equilibrium.

Physical Setting

The study region is located from 22°N to 22° 55'N latitudes and from 85° 10'E to 86° 50'E longitudes in the southern part of Chotanagpur highlands of Bihar whereas extreme southern part comprising an area of 753 sq. miles of Mayurbhanj district (Orissa) is demarcated by Simlipal hills which act as the main axis of north and south ward flow of surface water. Singhbhum (4508 sq miles), in north, is surrounded by Ranchi and Manbhum whereas W. Bengal's political boundary encompasses it from the east. The entire region is drained by parenneal rivers like kharkai, Sanjai and Dalma river lfowing towards north, east and south respectively and S. Koel towards south.

The region, being the arena of exogenetic and endogenetic processes, aggrcgates the vare'gated landforms inheriting the structural complexities right frgm Archaean era to recent times, peculiar topographic expressions of structural mesas, batholithic domes, waterfalls, eroded anticlines, hummocks, incised meanders, donrs and tonrs, bare rocks and thickly covered vegetative canopy, their impact on man and man's delinquent response, in turn, have compelled the environmental scientists to think afresh who appreciate natural beauty and belieʌe in ecological existence.

Denudational Processes—Masonary Role in Environmental Planning

Denudational processes play an important role either in enhancing or diminishing the environmental grandeur as does the man, The sub-tropical monsoon climate confining three seasons of hot dry summer from March to June, wet summer season from June to October and winter season from November to February which present ideal conditions for mechanical and chemical weathering, fluvial processes and ultimately they have left their distinctive imprints in the central lowland resulting isolated dolerite dykes and narrow 'ghatis' between two parallel hills. Based on Peltier's scale (mean annual temperature and mean annual rainfall being 24.99°C and 1313 mm respectively) the region has experienced the influences of weathering, mass movement of scree and maximum Fluvial erosion. Appreciable range of temperature from 10.9°C (Dec) to 39.7°C (May), increasing velocity of winds from 7.2 kms/hr to 14.5 kms/hr, fluctuating moisture (from 36% in April to 81% in Aug.), Varying solar radiation (from 1,2 O,ktas in Dec. to 7.0 Oktas in August and July each) and tne evapotranspiration (from 75 in Dec. to 260 ETOS in May) have favoured intensive weathering operations in Gamharia and Ghatsila regions.

During rainy season prickly abundant rainfall on the heated superficial rocks accelerate rock decomposition and intensify leaching processes where soluble minerals are dissolved and removed by drainage water. These rivers in their upper reaches, which are in plateau areas, especially display high relative relief. extremely high drainage density narrow and deep valleys marked by strait gorges whereas the lower reaches exhibit wide valleys with low banks and extremely high sinvosity (Sanjai river near Nengtasai village).

Table—1

Existing and proposed Dams/Barrages under S. M P

Dams/barrages/ Schemes	River	Riverbed level (feet)	Catchment area (sq.kms)	Maximum flood discharge (cusecs)
Roro dam	Roro Gara	695.58	358.40	49,000
Sonua scheme	Sanjai	1119.00	115.20	43,250
Jharjhara dam	Bamni	1165.00	81.92	——
Torlo scheme	Torlo	998.00	51 20	24,000
Icha dam	Kharkai	742.00	2816.00	3,85,000
Ganjia barrage	Khorkai	—	—	(Proposed)

source—Water-Ways Deptt. Chaibasa, Singhbhum (Subarnarekha Multi-purpose project)

Soils and Minerals—Abusive exploitation

Laterite soils, deficient in organic matter, cover major part of the region were local adivasis cultivate maiz and millets in the accessible terraced pockets. Red, gravel, alluvial and sandy soils are broadly represented in the lower basins. Red. soil is largely of sandy-clayey composition and owing to the heavy rainfall, the rugged topography is higly affected by leaching, 30% of total arable land is under terraced farming which experiences severe soil erosion and mass movement leaving bare rocks pioneered by rugged scree lacking humus contents and thus casts the local inhabitants in dejection due to their own mal-practices and apathy towar dsland.

One- third of total estimated mineral resources (3500 million tons) lie in Singhbhum. The entire region is enriched in mineral resources as building stone, iron-ore, Copper deposits, bauxite and kyanite and Kolhan scries consisting unmetamorphosed shales, asbertos, lime-stone and conglomerates. TISCO and ISCO are authorised companies to excavate minerals at Noamundi, Pansira buru, Gua and Badam pahar. Haphzard open mining and unfilled pits cause devastation of vegetative cloak and the renunciated mineral remnants pollute the air and have posed threat for the settlement of adivasis living in the lap of nature from centuries,

Vegetation and Forests—Recklessly depleted components

Zerophyte shrubs and grasses in Deo, Chheria and Banki basins and dense forest canopy is found in the western parts, Dalma foot hills, Kharsanwan, Saraikela and Gamharia regions. Barbaric fashion of natural exploitation Occurs where the best timbers of paisal, tun, karam, shisham, Jamun, sal

(table—2) and trees yielding lac (kusum, palas and bair) and mahua yielding fragrant sweet flowers, unrotten wood thickly covered platean tracts have been recklessly exterminated, removal of natural vegetation in kharsan Wan, karaikela and Goilkera anchals has resulted the severe soil erosion.

Though these forests have come in government control by enactment of Bihar Private Forest Act (1946) and more is being done for their conservation and developmet by enhancing afforestation and plantation of rooted grasses but the chronological observations reveal that inspite of development initiatives the forert density is continuovsly declining (42% area is under forest cover as against of 54% in pre-independence period).

Eable—2

Tree species	Local nrmes	Use in	Agricultural/social forestsy			
1—Terminalia tomentosa	Jamun	Fu.	Ti	—	—	
2—Adina cardifia	Karam	Fu.	Ti	—	—	Abbreviation
3—Pterocarpus marsupium	Paisal	Fu.	Ti	—	—	Fu.=Fuel
4—Shorea robusta	Sal	Eu.	Ti	—	—	Ti,=Timber
5—Dyosphrus melanoxylon	Kend	Fu.	Ti	—	—	Fd=Fodder
6—Butea monosperma	palas	Eu.	Ti	Fz	—	Fz=Fertilizer
7—Calibrookia opposite folia	Shrubs	Fu.	Ti	—	—	
8—Wood fordia frutieosa		Fu.	Ti	—	—	
9—Imperata cylindrica	Grasses,	Fd.	—	Fz	—	
10—Pitalidium barlocioides		Fd.	—	Fz	—	

Air, Water and land—Moderately polluted elements

Air pollution has been accomplished through the pollutiou of gascs (Co_2) sulpher compounds water vapour, waste heat and methyle bromide) renunciated from chemical combustion from vehicular movement and wastes from factories (Jamshedpur, Chaibasa, and Rairangpur) which have raised respiratory diseases in Chotanagpur region (Karan, p. p: 1977).

Biological pollutants, infusion of excess energy and enterprising urbanisation have polluted the surface Water used by adivasis. Urban premises mark its higher percentage in Water and air than the rural surroundings.

The land inherits pollution through erosion, atmospheric disturbances, deforestation, overgrazing, forest fires, Channel manipulation, blasting of relief barriers rnd dynamiting the mining querries. The existing modifications in the environment have become the basic concern in a consideration to ecological affinity

Environmental Management--Integrated approach

Occasional occurence of natural Vagaries and human mal practices have cautioned natural scientists to look into causes, explain their effects and chalk-out some plans.

1. Existing big rivers have ample water supply throughout the year hence the erection of water reservoirs, earthen dams, and irrigation sites can eradicate the problems of soil erosion, abusive inundation and drinking water scarcity.

2. Industrial waste and chemical combustion need careful discharge by neutralizing their harmful elements.

3, General awareness for afforestation and permanent and Cheap alternative for fuel for adivasis.

4, Policies of land acquisition and proper Way of rehabilitation be implemented for those who become Prey to their lands when such schemes; dam sites, sancturies and industrial complexes are established.

5. Social awareness for environmental preservation be introduced among local inhabitants with a dictum that "A healthy mind needs a healthy body that thrives in the healthy environment."

REFERENCES

1. Arvill (1967) : Man and Environment. p. 229
2. Karan, p. p (1977) : Perception of Env. Pollution in chota nagpur National Geog. Vol. 12. P. 17—24·
3, Singh, S. R (1983) : Geomorphology of Kharkai Basin p. 62 (unpublished thesis) R. U. Bareilly
4, Kharkai bandh "Ek Samchhipt Parichaya" Jan. 1982 K B P Icha, Chaibasa.

—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1, P. 101–105
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-१, पृ० १०१–१०५

कालिदास वर्णित सरल एवं देवदारु वृक्ष

भवानीदत्त कांडपाल
संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, अगस्त्यमुनि

सारांश

कालिदास के अनेक प्रसिद्ध टीकाकारों ने उनके काव्य में वर्णित सरल और देवदारु के वृक्षों को एक दूसरे का पर्यात माना है। प्रस्तुत शोधपत्र में इस धारणा का खंडन करते हुए यह सिद्ध किया गया है कि 'सरल' चीड़ का तथा देवदारु देवदार का पर्याय है।

ABSTRACT

'Sarala' and 'Devdaru' trees, depicted in the poetry of kalidasa, have been mistaken as synonyms by Certain renowned critics of kalidasa. In the present paper the writer has tried to show that 'Saral1' is the pinus-longipolia and 'Devdaru' is cedrus-deodara,

संस्कृत के कवि सम्राट कालिदास ने अपनी प्रसिद्ध कृतियों-रघुवंश, कुमार-सम्भव ओर मेघदूत में हिमालय की वनस्पतियों का चित्रण करते समय सरल एवं देवदारु नामों का प्रयोग किया है। उनकी रचनाओं के प्रमुख टीकाकारों ने इन दोनों नामों को एक ही वनस्पति का पर्याय स्वीकार किया है। प्रसिद्ध संस्कृत टीकाकार मल्लिनाथ ने अपनी प्रमाणिक टीका संजीवनी में "सरलानां देवदारुद्रुमाणाम्" कहकर सरल का अर्थ देवदारु किया है। उन्हीं के अनुकरण पर डा० शिवराम शास्त्री ने मेघदूत की हिन्दी टीका में सरल का अर्थ देवदार लिखा है[1] पण्डित सीताराम चतुर्वेदी[2] पन्डित प्रद्युम्न पान्डेय[3] आदि टीकाकारों ने भी सरलद्रुम का अर्थ देवदार वृक्ष किया है। काव्य तीर्थ नारायण आचार्य ने भी अमरकोष की टिप्पणी में सरलद्रुम का यही देवदार अर्थ दिया है।४

इसके विपरीत इस लेख में आगे की जा रही छानबीन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कालिदास वर्णित सरल और देवदारु अलग-अलग वनस्पतियाँ हैं। टीकाकारों द्वारा सरल को देवदारु समझ बैठने की भ्रान्ति का कारण एवं उसका समाधान प्रस्तुत करने के साथ-साथ

नीचे सरल के देवदार से भिन्न चीड़ वृक्ष होने के सम्बन्ध में भी कुछ प्रमाण दिये जा रहे हैं—

१—रघु दिग्विजय प्रसंग में महाकवि ने सरल वृक्षों का हिमालय पर्वत पर उल्लेख करते हुए कहा है—

सरलासक्त मातङ्गग्रैवेयस्फुरितत्विषः ।
आसन्नोषधय्यो नेतुर्नक्तमस्नेहदीपिका ।। [रघु० ४।७५]

यहाँ सरल वृक्षों की चर्चा हिमालय के उस समतल भाग में की गई है जहाँ हाथी विचरण कर सकते हैं। इसी हिमालय क्षेत्र में महाकवि ने देवदारु द्रुमों का भी उल्लेख किया है[५] इसका कारण यह है कि दोनों हिमालय प्रदेश की वनस्पतियाँ हैं। हिमालय क्षेत्र में देवदार (Cedrus-deodara) से भिन्न चीड़ की दो प्रजातियाँ पायी जाती हैं—

१—पाइनस लॉंगीफोलिया (Pinus-longifolia)

२—पाइनस एक्सेलसा (Pinus-excelsa)

इनमें पाइनस लॉंगीफोलिया को "चीड़" तथा पाइनस एक्सेल्सा को "केल" नाम से जाना जाता है। चीड़ का स्वाभाविक विकास क्षेत्र हिमालय में लगभग २००० से ६५०० फिट की ऊँचाई वाला भाग है तथा देवदार का स्वाभाविक विकास क्षेत्र लगभग ७००० से ८५०० फिट ऊँचाई वाला भाग है।

चीड़ की केल नामक प्रजाति देवदार के ही विकास क्षेत्र में पायी जाती है।[६] इसलिए महाकवि द्वारा एक ही हिमालय क्षेत्र में सरल और देवदारु का उल्लेख किया जाना दोनों के एक ही वनस्पति होने के प्रमाण नहीं हैं।

२—महाकवि ने सरल एवं देवदारु वृक्षों से बहने वाले विशेष द्रव का उल्लेख करते समय सरल-वर्णन-प्रसंग में छाल उलट जाने पर तने से बहने वाले क्षीर की ओर संकेत किया है।[७] वस्तुतः चीड़ की जड़ों में कवकमूलता अर्थात जड़ों की नोक पर जाली जैसी बाढ़ अधिक होने से इसका वृक्ष पर्याप्त नाइट्रोजन, फासफोरस एवं पोटास एकत्र करके तने में अपने रेजिन अर्थात लीसा अधिक तैयार कर लेता है। अतः थोड़ी सी छाल कट जाने पर तने से यह लीसा टपकने लगता है। विशेष रूप से यह रेजिन चीड़ की पाइनस लोंगीफोलिया नामक प्रजाति में अधिक पाया जाता है। आजकल चीड़ के तने में घाव करके इस लीसे को पर्याप्त मात्रा में एकत्रित किया जाता है तथा उसे लीसा फैक्ट्रियों में संशोधित करके उससे तारपीन का तेल, विरोजा आदि तैयार किया जाता है। दूसरी ओर देवदारु वृक्षों में इस द्रव की मात्रा अत्यल्प होती है फिर भी नये कोपलों के टूटने पर स्वल्प द्रव टपक जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यक्ष दर्शन के कारण महाकवि इस तथ्य से अवगत थे। इसीलिए उन्होंने सरल की तने की रगड़ से तथा देवदारु के नवपल्लव से बहने वाले क्षीर का उल्लेख किया है।

३—सरलद्रुम के क्षीर से निकलने वाली रुचिर गन्ध का वर्णन करते हुए महाकवि ने कहा है—

कपोलकन्डूःकरिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम् ।
यत्र स्रुत क्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभीकरोति ।।[८]

इस प्रकार देवदारुद्रुमों का वर्णन करते समय भी "भित्वा सद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ता।"[९] आदि कहकर कवि ने उसके क्षीर से निकलने वाली सुमधुर गन्ध की चर्चा की है। वास्तव में इन दोनों वनस्पतियों के काष्ठ एवं द्रव से यह रुचिर गन्ध निकलने के कारण महाकवि ने दोनों के वर्णन प्रसंगों में इस सुगन्ध की चर्चा की है। अमरकोष में भी यद्यपि देवदारु और सरल दोनों के लिए एक ही पूतिकाष्ठ नाम का प्रयोग किया गया है तथापि दोनों का उल्लेख अलग-अलग किया है।[१०] यह अलग-अलग उल्लेख दोनों की पृथकता को बताने के लिए ही किया गया प्रतीत होता है।

४—चीड़ के प्रचुर तनों वाले गढ़वाल और कुमायूं क्षेत्र की स्थानीय भाषाओं में आज भी चीड़ को "सल" या सलु नाम से जाना जाता है जो सरल का ही अपभ्रंश है। चीड़ हिन्दी नाम भी सरल के "चीताद्रु" संस्कृत पर्याय का ही अपभ्रंश है।

वनोषधि चन्द्रोदय के अनुसार चीड़ का बंगला भाषा में 'सरल गच्छा' तथा काश्मीरी में 'साला' नाम है।[११] इन सभी नामों का उद्‌भव संस्कृत के "सरल" नाम से ही हुआ है। यह तथ्य भी चीड़ वनस्पति को ही सरलद्रुम सिद्ध करता है।

५—महाकवि ने सरलद्रुमों के संघर्षण से उत्पन्न होने वाली अग्नि का वर्णन करते हुए कहा है—

तं जेद्‌वायो सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा।
बाधेतोल्काक्षपित चमरीबालभारो दवाग्नि। [मेघ० १।७५]

तनों के संघर्षण से उत्पन्न होने वाली इस दवाग्नि का उल्लेख सरल के प्रसंग में तो किया गया है किन्तु देवदारु के प्रसंग में कहीं नहीं किया गया है। इसका कारण यह है कि चीड़ का ४०-५० मीटर ऊँचा तना मूल से बहुत ऊँचाई तक शाखारहित एवं लगभग समान मोटाई वाला होने से सूख जाने पर जब आँधी से टूटकर दूसरे वृक्ष से टकराता है तो संघर्षण से जंगल में आग लगने की बहुत अधिक सम्भावना रहती है, परन्तु देवदार का तना अपेक्षाकृत कम ऊँचाई से ही शाखायुक्त होने तथा मूल से सिरे की ओर धीरे-धीरे पतला होते जाने से जब टूटता भी है तो प्रायः सिरे से छोटे-छोटे टुकड़ों में भिन्न-भिन्न समय में टूटने से अग्नि प्रसार की सम्भावना नहीं रहती है। यह तथ्य भी उन्हें पृथक् वनस्पति सिद्ध करता है।

६—सरल और देवदारु दोनों एक ही पाइनेसी (Pinaceae) परिवार की वनस्पतियाँ होने से दोनों में यद्यपि अन्य भी अनेक समानताएँ हैं परन्तु दोनों की बाह्याकृतियों में पर्याप्त भिन्नता है। दोनों की पत्तियाँ सूच्याकार, नुकीली तथा त्रिदलीय होती हैं. किन्तु देवदार की पत्तियाँ ३-४ सेमी० लम्बी होती हैं, जबकि चीड़ की पत्तियाँ विभिन्न प्रजातियों में १०-१५ सेमी० से २०-२५ सेमी० तक लम्बी होती हैं। दोनों में फूल और फल के स्थान पर अलग-अलग नर और मादा शंकु निकलते हैं परन्तु सरल के नर और मादा शंकु देवदार की अपेक्षा काफी बड़े होते हैं। दोनों के नर शंकुओं में परागकोषों को धारण करने वाले अनेक बीजाण्ड-मणं लगे होते हैं तथा मादा शंकु काष्ठीय होते हैं। जो अनेक काष्ठीय शल्कपत्रों से बने होते हैं। इन शल्कपत्रों के भीतर शंकु के साथ पंखयुक्त बीज जुड़े रहते हैं परन्तु सरल के बीजाण्डमणं आदि अवयव भी देवदारु के इन्हीं अवयवों की अपेक्षा बड़े होते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कालिदास वर्णित देवदारु और सरल वृक्षों में पर्याप्त समानता होने पर भी ये दोनों एक ही वनस्पति के पर्यायवाची नहीं हैं। चीड़ वृक्ष ही कवि-वर्णित सरलद्रुम है। यद्यपि काव्यानन्दलोकबिहारी कवि को वृक्ष की जाति-प्रजाति से कुछ लेना-देना नहीं रहता है, तथा चीड़ की वनस्पति जगत में पाइनस लोंगीफोलिया (Pinus logifolia) नाम से प्रसिद्ध प्रजाति के तने के बहुत ऊँचाई तक शाखा रहित एवं सरल होने, इसी प्रजाति में संघर्षण से अग्नि उत्पन्न होने की अधिक सम्भावना रहने एवं स्थानीय भाषाओं में इसी के लिए आज भी सरल से उत्पन्न "सल" आदि नामों का प्रयोग होने से इसी को कालिदास वर्णित सरलद्रुम मानना अधिक तर्कसंगत है।

१—मेघदूत-मल्लिनाथ कृत संजीवनी टीका एवं शिवराज शास्त्री कृत हिन्दी टीका, साहित्य भन्डार सुभाष बाजार, मेरठ, संस्करण १९६७, पृष्ठ १२२।

२—कालिदास ग्रन्थावली-पं० सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़, तृतीय संस्करण १९६२, पृष्ठ ४९, २३२ एवं ४०५

३—कुमारसम्भव-व्याख्याकार पं० प्रद्युम्न पाण्डेय, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी—१ संस्करण १९७०, पृ० ३

४—अमरकोष, अमरसिंह, सम्पादक-नारायणराम आचार्य, निर्णय सागर मुद्रणालय बम्बई—२ द्वादश संस्करण १९५०, पृ० ३७

५—रघु० २/३६, ४/७६, कुमा० १/१५, १/५४, ३/४४, ६/५१, मेघ० २/५० [श्लोक संख्या सर्वत्र कालिदास ग्रन्थावली, सम्पादक-पन्डित सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़ के तृतीय संस्करण १९६२ के अनुसार दी जा रही है।]

6. Forest Flora-B. k. Gupta, 23-A, New Cannaught Place Dehra Dun, ed 1979, ages 515-18

७. कुमा० १/९, १/१५, मेघ० २/५०

८. कुमा० १/९

९. मेघ० २/५०

१०. क–भद्रदारुद्रुकिलिमं पीतदारु च दारु च ।

पूतिकाष्ठं च सप्तस्युर्देवदारुव्यथद्वयोः ॥

अमरकोष २/५/५३

ख–पीतद्रुः सरल; पूतिकाष्ठं च ।

अमरकोष २/५/५९

११. वनौषधि चन्द्रोदय-श्री चन्द्रराज भन्डारी, ज्ञान मन्दिर भानपुर इन्दौर, संस्करण १९५३.

—

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1, P. 106-108
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-१, पृ० १०६-१०८

PLANNING FOR HOUSING

FARHAT HUSAIN AND S. N. PANDEY
Department of Commerce, Govt. Degree College, Lalitpur

सारांश

आवास मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं में से एक है। सातवीं पंच-वर्षीय योजना में पहली बार इस समस्या को मान्यता दी गयी है। योजना के प्रस्तावों को प्रभावपूर्ण ढंग से लागू करने की आवश्यकता है। साथ ही निजी क्षेत्र को इस प्रकार प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है कि निजी बचतें मकानों के निर्माण की ओर प्रवाहित होने लगें।

ABSTRACT

Housing is one of the basic needs of human life. It is for the first time that Seventh Five year Plan has recognized the problem. There is a need to implement proposals of the plan effectively. Private sector should also to be encouraged so that private savings are diverted to construction of houses.

In fulfilling the basic needs of the population, housing ranks next only to food and clothing in importance. A certain minimum standard of housing is essential for healthy and civilised existence. The development of housing, therefore, must enjoy high priorty in a poor society such as ours, where housing amenities are far below the minimum standard that have been internationally accepted.[1]

It is perhaps for the first time in Indian planning that problem of housing has been duly recognised in the draft Seventh Five Year Plan. The area was hither to neglected. Earlier plans focussed mainly on sufficiency in food grains, industrial productions etc, Due importance was never given to the shortage of residential buildings. The result is that millions of people do not have a roof on the head.

As per the estimates of the National Building Organisation, housing shortage in 1981 was around 21 million dwelling units out of which 16 million in rural areas and 5 million in urban areas, which goes up to 24.7 million units (18.8 million in rural areas and 5.9 million in urban areas) in 1985. Additional housing requirements have been estimated at 16.2 million units during 7th plan period. Various acts and laws are in the way of housing activity. "While government has adopted numerous liberalisation policies to boost industrial production and encourage exports and bring about adoption of modern technology any encouragement has been given to encourage housing actvity, in the coutry. In the long term fiscal policy anounced by the Finance Minister, Government is silent with regard to housing programme"[2]

The magnitude of the problem is rather gigantic and needs a meaningful and systematic way to tackle it. All the sectors-public, private and Cooperative-should implement schemes to cope with the shortage of houses. Importance of private corporate and household sector has been recognized in the Seventh Plan. The estimated outlay in the five year period from private sector would be around Rr. 29,000 crores, while from public sector around Rs. 2,500 crores.[3] The Ministry of Urban Devlopment said in a recent note-"major part of the investment in housing has been coming from private sector"4

Some suggestions to improve the situation, are given below :—

1. Ministry of Urban Development has suggested to declare housing as an industry to ensure increased flow of financial resources in the sector. The Ministry's another suggestion is to set up a development council for housing industry and to f loat a national housing bank".[5]

2. Planning Commission has very rightly suggested to strengthening of the existing institution like housing and urban development Corporation, creation of new institutions like housing corporations and building societies and also the expansion of the Housing Finance Corporation Limited.

3. It is desirable for the Government to consider setting up a "Housing Commission" to assess the nation's current housing finance and also the various laws gov erning housing.[6]

4. It is also imperative that a widespread system, of housing finance was considered urgently since the present institutional framework can not cope with the problem effectively.

5. To encourage investment of private savings in construction following suggestions are worth mentioning :—

(a) Income derived for first few years from newly constructed housing, should be exempted from tax.

(b) Some incentives must be given for exempting investments made in new constructions.

(c) Construction companies engaged in the construction of group housing and multistoreyed residential apartments should also qualify for reliefs under section 80 H H and 80 I of Income-Tax Act.

(d) Rules regarding titles of flats and apartments, should be laid down/ modified particularly in metropolitan areas, For this, A Bill has been introduced in the budget session of 1986 of the Parliament, which is a welcoming step taken by the Government.

(e) Even, if, the person is not doing to live or use himself the newly constructed accomodation, his capital gains should be exempted, derived from such property.

6. Various Rent Control Acts enforced in various states should be suitably amended so as to encourage people to contruct houses for rental purposes.

7. Fiscal incentives should also be given to salaried persons to construct their own houses.

If the backlog in housing was to be reduced to any significant extent, it would be necessary to remove obstacles in the way of housing activity. The private sector should be enabled to take more interest by way of certain fiscal and financial incentives.

REFERENCES

1. Draft Seventh Five Year Plan 1985-90,
2. Ansal Sushil, Government's indefference towards Housing, economics Times, Feb. 20, 1986 P-4.
3. Document, Seventh Five Year Plan.
4. The Economic Times, New Delhi, Feb, 25, 1986, P-4.
5. Ibid, P-4
6. Venkatachalan M. P. Housing Development, Economic Times, Feb. 20, 1986.

—

Jour. U. P. govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 1. P. 109-116
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६ खंड-१, पृ० १०९-११६

स्वतन्त्र भारत में कृषि उत्पादकता—एक मूल्यांकन

जे० आर० गुप्ता

वाणिज्य विभाग, राजकीय पी० जी० कालेज, ऋषिकेश (देहरादून)

सारांश

प्रस्तुत लेख में स्वतन्त्रता के बाद भारतीय कृषि की उत्पादकता में जो परिवर्तन आंया है उसका विश्लेषण उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर किया गया है। फसली ढांचे में परिवर्तन, भूमि प्रयोग में परिवर्तन तथा विश्व के अन्य राष्ट्रों की तुलना में कृषि उत्पादकता कम है। इस सम्बन्ध में सुधार हेतु जो कदम उठाने की जरूरत है इनका भी विश्लेषण किया गया है।

ABSTRACT

In this article, the productivity of agriculture in India has been analysed on the basis of datas. The productivity of land improved under plans in India. But it is low when we compare it with other countries such as Canada, U. S. S. R., Japan and France. Therefore it is necessary for our country to improve the productivity of agriculture for the welfare of the nation.

भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास वास्तव में कुल ५७५९३६ गाँवों के विकास पर निर्भर करता है जहां देश की लगभग ८० प्र०श० जनसंख्या निवास करती है। ग्रामों के औद्योगिक ढांचे में परिवर्तन आवश्यक है तभी वहाँ के उपभोग स्तर, जीवन स्तर, और कल्याण में सुधार किया जा सकता है। कृषि पर हमारे देश की ६६ प्र०श० जनसंख्या निर्भर करती है जबकि जापान में २१ प्र०श०, फ्रांस में १४ प्र०श०, कनाडा में ८ प्र०श०, आस्ट्रेलिया में ८ प्र०श० तथा ब्रिटेन में ३ प्र०श० कृषि पर जनसंख्या का दबाव है।५ इसके अलावा कुल राष्ट्रीय उत्पादन में कृषि का भाग १९८३-८४ में भारत में लगभग ४० प्र०श० था जबकि जापान में १० प्र० श०, फ्रांस में ६ प्र० श०, आस्ट्रेलिया में ९ प्र०श० तथा ब्रिटेन में ३ प्र०श० है।

अतः स्पष्ट है कि अन्य राष्ट्रों की तुलना में भारतीय कृषि के विकास की परम आवश्यकता है। हालांकि नियोजन काल में बहुत कुछ कार्य कृषि विकास हेतु किए गए हैं, औद्यो-

गिक ढांचे में परिवर्तन आया है जिससे सकल राष्ट्रीय उत्पादन में कृषि उत्पादन का भाग कम हुआ है जैसे—१९५०-५१ में ५४ प्र०श०, १९६०-६१ में ५३ प्र०श०, १९७०-७१ में ४७ प्र०श०, १९७८-७९ में ४२ प्र०श० तथा १९८३-८४ में लगभग ४० प्र०श० भाग था। कृषि की क्रियाएँ प्रकृति की दया पर निर्भर करती हैं इसलिये कृषि पर से निर्भरता कम करके उद्योगों की ओर सरकार विशेष ध्यान दे रही है। क्योंकि सातवीं योजनाकाल १९८५-८९ के बीच में कृषि क्षेत्र में रोजगार ३·५ प्र०श० प्रतिवर्ष की दर से बढ़ेगा जबकि गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि दर ४·५ प्र०श० प्रतिवर्ष होगी। इसी प्रकार सकल उत्पादन मूल्य वृद्धि दर कृषि क्षेत्र में २·५ प्र०श० प्रतिवर्ष होगी और गैर कृषि क्षेत्र में ६·४ प्र०श० प्रतिवर्ष। छठीं योजना में रोजगार कृषि क्षेत्र में ४·३ प्र०श० प्रतिवर्ष की दर से बढ़ा है। जबकि सातवीं योजना में रोजगार वृद्धि दर ३·५ प्र०श० की होगी इसलिये कुछ अर्थशास्त्रियों ने इसे "कर्मरहित विकास" की संज्ञा दी है।[1] (दि इकानामिक टाइम्स १८ अप्रैल, १९८६) इसके बाद भोजन के लिए खाद्यान्न का उत्पादन कृषि द्वारा ही सम्भव है तथा उद्योगों के लिए कच्चा माल कृषि से ही मिलता है अतः कृषि का विकास भी आवश्यक है जो कृषि भूमि की उत्पादकता पर निर्भर करता है। कृषि उत्पादकता की पूर्ण जानकारी के लिए कृषि हेतु प्रयुक्त भूमि की मात्रा विभिन्न फसलों का बदलता हुआ क्षेत्रफल तथा प्रति हेक्टेयर उत्पादन, सरकार की नीतियों का उत्पादन पर प्रभाव एवं आवश्यक सुझाओं की व्याख्या यहाँ पर की जा रही है।

भूमि प्रयोग—

कृषि उत्पादकता की विस्तृत व्याख्या के लिये भूमि के विभिन्न प्रयोगों की विस्तृत व्याख्या तालिका सं० १ में की गई है। विवरण से स्पष्ट है कि १९५०-६१ में वनों का क्षेत्रफल ४०५ लाख हेक्टेयर हो गया। स्पष्ट है कि वनों से देश को अनेक लाभ होते हैं। उद्योगों के लिये कच्चा माल तथा भूमि कटाव को रोकता है। इसलिये देश में वन क्षेत्र में विस्तार किया गया है। खेती योग्य बंजर भूमि १९५०-५१ में २२९ लाख हेक्टेयर थी जो १९८३-८४ में १७१ लाख हेक्टेयर रह गई है। अर्थात इस भूमि का प्रयोग कृषि कार्यों में किया गया है। वृक्ष तथा बागों में कमी आई है। शुद्ध बोया क्षेत्रफल १९५०-५१ में ११८७ लाख हेक्टेयर था वह बढ़कर १९८३-८४ में १४५० लाख हेक्टेयर हो गया। इसी प्रकार इसी अवधि में सिंचित क्षेत्रफल २२६ लाख हेक्टेयर से ६२० लाख हेक्टेयर हो गया है।[1] स्पष्ट है कि भूमि प्रयोग ढांचे में लगातार परिवर्तन से उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पड़ रहा है। जिसका विवरण तालिका सं० ३ में दिया गया है। कृषि हेतु बोए गए क्षेत्रफल में वृद्धि के कारण राष्ट्रीय स्तर पर कृषि तथा ग्रामीण विकास को छठीं योजना में अधिक महत्व दिया गया था इसीलिए इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में १२५३९ करोड़ रुपये की व्यवस्था इस मद के लिए की गई थी जबकि योजना में केवल ४२१८ करोड़ रुपये ही इस मद पर व्यय किए गए थे।

तालिका सं० १

भूमि प्रयोग विवरण — दस लाख हेक्टेयर में

विवरण	वर्ष १९५०-५१	१९६०-६१	१९७३-७४	१९८३-८४
ग्रामीण खातों के अनुसार				
क्षेत्र	२८४·३	२९८·५	३०४·१	३०६·२
वन क्षेत्र	४०·५	५४·१	६५·७	६७·८
कृषि कार्य के लिए अनुपलब्ध	४७·५	५०·८	४१·२	३८·५
परती भूमि के अलावा				
बिना जोती भूमि	४९·४	३७·६	३४·०	३२·६
खेती योग्य बंजर	२२·९	१९·२	१७·१	१७·१
स्थाई चारागाह	६·७	१४·०	१२·८	१२·४
वृक्ष तथा बाग	१९·८	४·४	४·१	३·८
परती भूमि	२८·१	२२·८	२०·१	२४·०
शुद्ध बोया क्षेत्र	१२८·७	१३३·०	१४३·१	१४५·०
सकल बोया क्षेत्र	१३१·९	१५२·८	१६९·९	१६८·२
सकल सिंचित क्षेत्र	२२·६	२८·०	४०·३	६२·०

स्रोत—संकलित भारतीय अर्थव्यवस्था सम्बन्धी आधारभूत आंकड़े १९७८ द्वारा केन्द्रीय सांख्यकीय संगठन भारत सरकार तथा योजना जनवरी, फरवरी, १९८६, दि इकनामिक टाइम्स, २६ फरवरी १९८६ इन्डिया १९८४

मुख्य फसलें तथा क्षेत्रफल—

वर्तमान समय में भारत के विभिन्न राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों में मुख्य फसलें धान, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, मक्का, गन्ना, तिलहन, कपास, जूट, आलू, चना, अरहर तथा चाय है। इन फसलों के अलावा कुछ क्षेत्रों में सोयाबीन, मटर, रागी, पपीता, केला, तम्बाकू, सांवा, सनई, कोदों, उर्द, मूँग, अफीम, नारियल, अलसी, मोठ तथा रेंडी की फसलें भी बोई जाती हैं। कुछ प्रान्तों, में रबी, खरीफ के अलावा जायद गर्मी की फसल जिसमें ककड़ी, खीरा, तरबूज, लौकी, सब्जी आदि की खेती भी होती है। योजना काल में फसल चक्र में परिवर्तन आया है। खाद्यान्नों की फसलों के स्थान पर वाणिज्यक फसलों के क्षेत्र में वृद्धि हुई है। किसान उत्पादन बढ़ाने के लिए बहुफसली ढांचे का प्रयोग कर रहा है। क्षेत्रफल का विवरण तालिका सं० २ में दिया गया है। फसली क्षेत्र में परिवर्तन के मुख्य कारण स्थान विशेष में सिंचन सुविधाओं का विस्तार, अच्छे बीजों की उपलब्धता, विपणन सुविधाओं की व्यवस्था, उपज की खपत, कीटनाशक दवाओं की सुविधा, खाद के प्रयोग की उचित जानकारी आदि है।

राष्ट्रीय कृषि के फसल चक्र में परिवर्तन करने एवं कृषि को आधुनिक बनाने के लिये देश में १९ कृषि विश्वविद्यालय स्थापित किए गए हैं। राष्ट्रीय कृषि अनुसन्धान परिषद

१९२९ में स्थापित किया गया था। उसका पुनर्गठन करके उसके अधीन ३३ केन्द्रीय शोध संस्थान, ३ राष्ट्रीय शोध केन्द्र, ५ परियोजना निदेशालय तथा २३ राष्ट्रीय अनुसन्धान केन्द्र स्थापित किए गए हैं।[१०] इस संस्थाओं में उत्पादन विधि फसल चक्रों, फसल किस्मों, नवीन यन्त्रों, बीजों तथा सिंचन सुविधाओं आदि के सम्बन्ध में लगातार उत्पादन बढ़ाने के लिए शोध कार्य किए जा रहे हैं। देश के विभिन्न भागों के किसानों को नवीन तकनीकों एवं मशीनों का ज्ञान कराने के लिए प्रति वर्ष किसान मेलों का आयोजन किया जाता है। शुष्क खेती की वैज्ञानिक विधियों का विकास किया गया है। ऊसर जमीन के प्रयोग में सफलता प्राप्त की गई है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बदलते समय में भूमि का अधिक सदुपयोग करके राष्ट्रीय उत्पादन मे और अधिक वृद्धि सम्भव है।

तालिका सं० २

फसलों का बदलता हुआ क्षेत्रफल (हजार हेक्टेयर में)

फसल का नाम	वर्ष				
	१९५०-५१	६०-६१	७०-७१	८०-८१	८२-८३
चावल	३०८१०	३४१२८	३७५९२	४०१५२	३७७९४
गेहूँ	९७४६	१२९२७	१८२४१	२२२९७	२३१५१
मोटे अनाज	३७६७५	४४९६३	४५९५०	४१७८०	३९९८६
चना	७५७०	९२७६	७८९९	६५८४	७२२५
दालें	१९०९१	२३५६३	२२५३४	२२४५७	२२५८८
खाद्यान्न योग	९७३२१	११५५६१	१२४३१६	१२६६६७	१२३३१८
मूंगफली	४४९४	६४६३	७३२६	६३०१	७३४५
तिलहन	१०८२७	१३७८०	१५४१८	१५५५७	१६६४७
गन्ना	१७०७	२४१५	२६१५	२६६७	३२६५
कपास	५८८२	७६१०	७६०५	७८२३	८०७४
जूट तथा मेस्था	५७३	९०१	१०७६	१३००	१०२४
तम्बाकू	३५७	४०१	४४७	४५२	१५०
ज्वार	५४९५	९८१४	१७३७४	१५८०९	
बाजरा	२५९५	३२८३	१२९१३	११६५७	—
मक्का	१७२९	४०८०	५८५२	६००५	—
जौ	२३७०	२८१९	२५५५	१८०७	—

स्रोत—संकलित इन्डिया १९८४ पृ० २४४ तथा करेन्सी एन्ड फाइनेन्स रिपोर्ट १९८२-८३ का वाल्यूम २, पृ० १९

मुख्य फसलों की उत्पादकता—

फसलों के क्षेत्रफल में कृषक उत्पादकता के आधार पर परिवर्तन करता है। फसल की उत्पादकता भूमि के क्षेत्रफल तथा उस पर उत्पादन की मात्रा के द्वारा भौतिक रूप में निर्धारित

होती है। व्यावहारिक जगत में भौतिक मात्रा के साथ ही फसल का मूल्य भी ध्यान में रखा जाना आवश्यक होता है। क्योंकि उसी से कृषक का कुल आगम तथा कल्याण निर्धारित होता है। योजनाकाल में विभिन्न फसलों की उत्पादकता में परिवर्तन हुआ है जिसका विवरण तालिका सं० ३ में दिया गया है। उत्पादकता प्रति हेक्टेयर कुन्टल में दिखाई गई है। तालिका से स्पष्ट होता है कि चावल में उत्पादकता १९५०-५१ में ६.७ कुन्टल प्रति हेक्टेयर थी जो बढ़कर १९८४-८५ में १५.२ कुन्टल हो गई है। इसमें और अधिक वृद्धि के लिए १९८५ में एक विशेष चावल उत्पादन कार्यक्रम असम, बंगाल, उड़ीसा, बिहार, पूर्वी उ० प्र० तथा पूर्वी म० प्र० में प्रारम्भ किया गया है। सरकार ने इसके लिए २६ करोड़ रुपये की व्यवस्था की है। इसी अवधि में गेहूँ की उत्पादकता ६.६ कुन्टल प्रति हेक्टेयर से १७.५ कुन्टल हो गई है। इस वृद्धि में हरित क्रान्ति का ४१ प्र०श० तथा खाद का ७० प्र०श० योगदान है।

तालिका सं० ३

प्रमुख फसलों की उत्पादकता प्रति हेक्टेयर कुन्टल में—

फसलें	वर्ष						
	१९५०-५१	५५-५६	६०-६१	७३-७४	७८-७९	८१-८२	८४-८५
चावल	६.७	८.७	१०.१	११.५	१३.४	१३.०	१५.२
गेहूँ	६.६	७.१	८.५	११.७	१५.७	१६.९	१७.५
ज्वार	३.५	३.९	५.३	५.४	७.२	७.३	७.५
बाजरा	२.९	३.०	२.९	५.४	४.९	४.७	५.२
मक्का	५.५	७.०	९.३	९.६	१०.८	११.६	१०.९
जौ	७.६	८.२	८.८	९.०	११.६	११.५	—
चना	४.८	५.५	६.७	५.३	७.४	५.८	८.८
अन्य दालें	४.४	४.८	५.४	४.३	५.२	४.४	—
मूँगफली	७.८	७.५	७.५	८.४	८.५	५.४	—
कपास	०.९	०.९	१.३	१.४	१.७	१ ६	१.८९
जूट	१०.४	१०.८	११.८	१४.१	१३.१	१४.४	११.८
गन्ना	३३४.२	३२७.८	४५५.५	५११.६	५०१.६	५८३.०	५८३.०
तम्बाकू	७.३	७.४	७.७	१०.०	११.०	११.७	....
आलू	६९.२	६६.४	७२.५	८९.५	१२८.०	१३४.०	....
केला	१ ७.५	१२३.४	१३५.७	१४२.२	....	...	....
चाय	८.८	९.०	९.७	१३.१	१३.७	१४.१	....

स्रोत—भारतीय अर्थव्यवस्था सम्बन्धी आधारभूत आंकड़े १९७८ द्वारा केन्द्रीय सांख्यकीय संगठन योजना मन्त्रालय भारत सरकार तथा करेन्सी एन्ड फाइनेन्स रिपोर्ट ८२-८३ वाल्यूम २, पृ० १९, इन्डिया १९७४ पृ० २४४ए दि इकानामिक टाइम्स २६ फरवरी १९८६ दैनिक

हिन्दुस्तान इसी अवधि में ज्वार ३·५ कुन्टल से ७·५ कुन्टल, बाजरा २·६ कुन्टल से ५·२ कुन्टल तथा मक्का ५·५ कुन्टल से १०·६ कुन्टल, चना ४·८ कुन्टल से ८·८ कुन्टल, कपास ०·६ कुन्टल से १·८६ कुन्टल, जूट १०·४ कुन्टल से ११·८ कुन्टल, गन्ना ३३४·२ कुन्टल से ५८३ कुन्टल उत्पादकता प्रति हेक्टेयर हो गयी है। उत्पादकता वृद्धि नियोजन काल में अधिक हुई है क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन किए गए हैं। जैसे भू-स्वामित्व व्यवस्था में सुधार जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, लगान निर्धारण, सिंचाई के साधनों एवं सुविधाओं में वृद्धि, १९६३ में राष्ट्रीय बीज निगम की स्थापना, १७ राज्यों में एग्रो इन्डस्ट्रीज कारपोरेशन की स्थापना, कृषि फार्म निगम की १९६९ में स्थापना, कृषि हेतु विद्युत सुविधाओं के विस्तार के लिये विद्युतीकरण निगम की १९६९ में स्थापना, हरितक्रान्ति योजना के अन्तर्गत उन्नत किस्म के बीज, खाद, नवीन यन्त्र कीट नाशक दवाओं आदि का विकास, साख विस्तार के लिए २० बैंकों का राष्ट्रीयकरण, १९७५ में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शाखाओं का विस्तार, कृषि विपणन हेतु मन्डी समितिओं का गठन, राष्ट्रीय कृषि तथा ग्रामीण बैंक की राष्ट्रीय स्तर पर अधिक साख के लिये १२ जुलाई १९८२ को स्थापना, मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं की स्थापना आदि ऐसे कार्य हैं जो कृषि उत्पादकता बढ़ाने में सहायता कर रहे हैं। इन सुविधाओं के कारण भारतीय राष्ट्रीय आय १९५०-५१ में ९५३० करोड़ थी[२] जो बढ़कर १९८४-८५ में १९९९५९ करोड़ रुपये हो गयी तथा प्रतिव्यक्ति आय २६६·५ रुपयों से बढ़कर २३४:·८० हो गई है।[३] इसी अवधि में राष्ट्रीय पूंजी निर्माण की दर ६·८ से बढ़कर १७·४ प्र०श० हो गई है। कृषि विकास की वार्षिक दर १९५०-५१ में ०·५ प्र०श० थी वह बढ़कर १९७४ में २·१८ प्र०श० तथा १९८३-८४ में लगभग ४ प्र०श० हो गई है। सातवीं योजना में यह दर ४ प्र०श० अनुमानित की गई है।[४]

कृषि कार्यो एवं क्षेत्रों में विकास

कृषि क्षेत्रफल में विस्तार, मशीनीकरण प्रविधियों में सुधार के कारण कृषि कार्यों में निम्न प्रकार परिवर्तन हुआ है जो विकास के संकेतक हैं—

विवरण	१९५०-५२	१९८४-८५
१…खाद्यान्न उत्पादन	५२८ लाख टन	१५३६ लाख टन
२… उर्वरक प्रयोग	६९००० टन	९३ लाख मी० टन
३…. अधिक उपज के बीज का क्षेत्रफल	१५ लाख हे०	५६० लाख हे०
४… बहुफसली कार्यक्रम ७०-७१ में	४० लाख हे०	५६० लाख हे०
५…. सिंचाई के लिये विद्युत पम्पसेट संख्या	२००००	५२० लाख
६….. ट्रेक्टर मांग ७०-७१ में	४००००	२·५० लाख
७… सकल सिंचित क्षेत्र	२२६ लाख हे०	१६२० लाख हे०

कृषकों की फसल बाढ़, सूखे, ओलावृष्टि आदि से नष्ट हो जाती है। इस जोखिम से सुरक्षित रखने के लिये १९८५ में फसल बीमा योजना १६ राज्यों तथा एक केन्द्र शासित

प्रदेश में लागू की गई है। इस विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय कृषि में सुधार हो रहा है, लेकिन जब हम राष्ट्रीय उत्पादकता की तुलना अन्य राष्ट्रों से करते हैं तो ज्ञात होता है कि भारतीय कृषि की उत्पादकता बहुत ही कम है। जैसे भारत में चावल की उत्पादकता १५.२ कुन्टल प्रति हेक्टेयर जबकि जापान में ४८ कुन्टल, गन्ने की उत्पादकता भारत में ५८३ कुन्टल, जबकि हवाई मे १९६३, आस्ट्रेलिया में ६७४ कुन्टल, आलू की उत्पादकता भारत में १३४ कुन्टल, फ्रांस में १७६ कुन्टल, जापान में १७४, कनाडा में १६० कुन्टल प्रति हेक्टेयर है। इस निम्न उत्पादकता के कारण भारतीय किसानों का जीवन स्तर अन्य देशों के किसानों से निम्न है। इसमें सुधार के लिये निम्नांकित कार्यों में परिवर्तन एवं सुधार की आवश्यकता है।

१. कृषि में उत्पादन बढ़ाने के लिए नवीन यन्त्रों, तकनीकों का ग्रामीणों तक पहुँचाना एवं उसके संचालन के लिए समयानुसार सलाहकारी सुविधाओं का प्रबन्ध होना चाहिये।

२. साख सुविधाओं का देश में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा अन्य बैंकों की शाखाओं द्वारा जाल अवश्य बिछाया गया है लेकिन देश के विभिन्न क्षेत्रों में जैसे बिहार, उड़ीसा, राजस्थान एवं मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश में पर्याप्त मात्रा में साख उचित समय पर नहीं मिलती है और कृषकों की फसलें नष्ट ही जाती हैं। (२३-४-८६ नवभारत टाइम्स) अतः गरीब किसानों, मध्यम वर्गीय किसानों के लिये पर्याप्त साख की व्यवस्था आवश्यक है।

३. सामाजिक, धार्मिक जो पुरानी प्रथाएँ हैं उनमें परिवर्तन के लिये समाज में कुछ संस्थाओं का गठन किया जाय जो देश में इस कार्य को पूर्ण करें।

४. प्राकृतिक तत्व जैसे सूखा, बाढ़, ओलावृष्टि एवं अन्य कारणों से जो फसल नष्ट हो जाती है उसकी पूर्ति हेतु फसल बीमा योजना १९८५ से १६ राज्यों एवं केन्द्र शासित क्षेत्र की धान, गेहूँ, बाजरा, दलहन एवं तिलहन फसलों पर लागू की गई है।[६] योजना फरवरी १९८६। इसका विस्तार सभी राज्यों तथा अन्य महत्वपूर्ण फसलों में भी किया जाना चाहिये।

५. फसल की हानि का उचित भुगतान उचित समय में किसानों को हो जाय इसकी व्यवहारिक व्यवस्था पर ध्यान रखना भी आवश्यक है अन्यथा बीमा संस्थाओं के कर्मचारी ही कृषकों का माल हड़प ले जायेंगे।

६. कृषि आदाय तत्व (बीज, खाद, नवीन यन्त्र, कीटनाशक दवाएं) कृषकों को समयानुसार पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलते केवल बड़े किसान अधिकारियों से मिलकर इसका लाभ उठाते हैं, इसमें परिवर्तन की जरूरत है जिससे सीमान्त कृषक, मध्यमवर्गीय कृषक तथा बटाईदारों को लाभ हो सके।

७. सिंचाई सुविधाओं का विस्तार केवल कुल बोये गए क्षेत्रफल के ३० प्र०श० तक ही हुआ है। शेष में सिंचाई का कोई प्रवन्ध नहीं है। इसके लिये सिंचन सुविधाओं में और वृद्धि की जाय।

इसके साथ ही सिंचाई विभाग के कर्मचारी (ट्यूबवेल आपरेटर) समय पर छुट्टी ले लेते हैं या ट्यूबवेल बन्द कर गायब रहते हैं। इसमें भी सुधार किया जाय।

८. कृषि विकास की नीतियों का निर्धारण अधिकारियों द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में जाकर किसानों से सम्पर्क करके करना चाहिये।

९. अभिनव उपायों द्वारा जिसमें अधिक पूँजी लगाने की आवश्यकता नहीं है, जैसे मल एवं नालियों के पानी का सावधानी पूर्वक प्रयोग करके तथा विज्ञान एवं टेकनालाजी के सार्थक प्रयोग से कृषि उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है।

१०. कृषि पर आधारित उद्योगों का ग्रामीण क्षेत्रों में और अधिक विस्तार किया जाय जिससे ग्रामीण एवं शहरी बेकार लोगों को रोजगार मिल सकेगा।

११. गाँवों को अनुसंधानशालाओं से सीधे जोड़ा जाय।

१२. नवीन यान्त्रिकी को भारतीय परिवेश के अनुसार फिट किया जाना चाहिये।

१३. ग्रामीण क्षेत्र में नवीन उद्यमियों का विकास किया जाय ताकि वे गाँव में ही प्राप्त कच्चे माल पर आधारित उद्योगों को खोलें एवं ऐसे साधनों का विकास करें जिसकी उन्हें आवश्यकता हो।

इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र को वांछित प्रगति के स्तर पर लाने के लिए समुचित वैज्ञानिक तथा तकनीकी सेवाओं, सरकारी नीतियों एवं शासन तन्त्र को एक साथ मितव्ययिता के साथ समायोजित करने की सख्त जरूरत है। जब देश में कृषि, ग्रामीण उद्योग तथा ग्रामीणों की त्रिवेणी का समन्वित विकास किया जायेगा तो निर्माण एवं विकास क्रिया का ऐसा महास्रोत उत्पन्न होगा जिससे प्रगति, स्वावलम्बन, पूर्ण रोजगार तथा समृद्धि की धाराएँ फूट निकलेंगी।

अतः कृषि भूमि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए नवीन प्रौद्योगिकी की नवीन व्यूह रचना के अलावा कोई उपाय नहीं है। क्योंकि भूमि सीमित है। इसी के द्वारा देश की भूख, अभाव, बेरोजगारी तथा पिछड़ेपन जैसी भयंकर समस्याओं से लोगों का उद्धार किया जा सकता है।

सन्दर्भ

१. योजना, योजना मन्त्रालय भारत सरकार, फरवरी १९८६
२. दि इन्डियन इकानमी द्वारा पी० चौधरी पृ० ६०
३. दि इकनामिक टाइम्स २६ फरवारी १९८६
४. "योजना" फरवरी १९८६, योजना मन्त्रालय, भारत सरकार
५. कुलश्रेष्ठ आर० एस०, औद्योगिक अर्थशास्त्र
६. योजना, फरवरी १९८६
७. भारतीय अर्थव्यवस्था सम्बन्धी आधारभूत आँकड़े १९७८ द्वारा केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन योजना मन्त्रालय भारत सरकार
८. करेन्सी एन्ड फाइनेन्स रिपोर्ट १९८२-८३ वाल्यूम २, पृ० १९
९. दि इकनामिक टाइम्स १८ अप्रैल १९८६
१०. इन्डिया १९८४ पृ० २४४-२५५

———

शोधपत्रिका

उत्तर प्रदेश राजकीय महाविद्यालय एकेडेमिक सोसाइटी

JOURNAL

UTTAR PRADESH GOVT. COLLEGES ACADEMIC SOCIETY

खंड २, अंक २, वर्ष १९८५
VOL. 2, No. 2, 1985

इलाहाबाद
ALLAHABAD

शोध–पत्रिका

उत्तर प्रदेश राजकीय महाविद्यालय एकेडेमिक सोसाइटी

अंक २, १९८५

JOURNAL

Uttar Pradesh Govt. College Academic Society

Vol. 2, 1985

विषय सूची

CONTENTS

CHEMISTRY

1. A search for the natural hypoglycamic principle, Chromatographic examination of stem bark of Ficus Religiosa Linn. 117
   R. K. Baslas & Roohi Agha
2. Equation of State and Evaluation of Isothermal compressibility of Liquid metals at their melting points. 120
   C. V. Chaturvedi and P. Thakur
3. Thermal Conductivities of Some Polar Non Polar binary Gas Mixtures. 124
   S. R. Prajapati

PHYSICS

4. Adsorption studies & diffusion equation. 127
   S. K. Dabral, S. K. Khare and V. N. Sharma
5. U. V. Lasersonde for optical Detection of the Meteoric Dustcloud. 130
   M. K. Gupta, S. K. Khare and V. N. Sharma
6. Model for the Lattice Dynamics of HCP Metals. 133
   S. P. Singh

MATHEMATICS

7. Ishikawa Iteration Process for a Pair of Nonliner Maps. 136
   S. L. Singh and R. Mall
8. Fixed Points of Nonself Mappings in Probabilistic Metric Spaces. 139
   S. L. Singh and B. D. Pant

BOTANY

9. Seed Mycoflora and its role in Pre and Post Emergence of Echinochloa Frumentacea (ROXB) Link.
D. N. Joshi and R. S. Adhikari 143

10. Effect of a Synthetic Bioregulant on Flowering, fruiting & yield in Bitter Gourd. (Momordica Charantia. L)
Umesh Prakash Saxena 147

ZOOLOGY

11. Seasonal Histomorphological Studies on Thyroid of a Fresh Water Teleost : Channa punctatus.
Dhirendra Kumar and D. K. Singh 151

12. Effect of Magnesium treatment of some haematological values of Noemacheilus Montanus.
S. N. Bhatt 156

ENGLISH

13. The Parallel Urge : E. A. Robinson's Theory of Poetry. 160
B. D. Joshi

14. Social awareness and Humanitarianism in the Novels of Charles Dickens and Premchand : A Comparative Study 164
M. Ram

PSYCHOLOGY

15. Effects of Sympathy on Severity of Punishment assigned by Male and Female Jurors. 170
K. K. Angira

POLITICAL SCIENCE

16. The new international economic order and non-alignment. 177
Ashok Kumar Singh

17. १६वीं शताब्दी के भारतीय पुनर्जागरण आंदोलनों का कुमाऊँ में प्रभाव तथा प्रतिक्रिया 182
मदन मोहन करगेती

HISTORY

18. "The attitude of Lord Willingdon (1931-36) towards the Indian National Movement." 189
Rajiva Mohan

ECONOMICS

19. Marketable Surplus at farmer's Level (A study of Azamgarh Distt. of Eastern U. P.) 193
Haridwar

20. L. I. C.'s Role as a financial intermediary in Resource mobilisation & Development in India. 198
R. A. Sharma

GEOGRAPHY

21. A Technique and Methodology for an Analysis of out Migration Problem. 202
G. S. Lal

22. A Geographical Study of Soil erosion and conservation in the Hazari-Bagh Plateau. : Bihar 206
Onkar Prasad

SOCIOLOGY

23. ग्रामीण समुदाय में सामाजिक कुलकेन्द्रों की भूमिका 210
राम अधीन शुक्ल

MILITARY SCIENCE

24. नाभिकीय शीतलहर 216
उदयवीर सिंह जैवार

HINDI

25. स्वामी हित हरिवंश के काव्य में मुरली 220
लवकुश मिश्र

26. राष्ट्रीय चेतना का उपेक्षित स्वर : कमल साहित्यालंकार 225
हरिप्रसाद मौर्य

EDUCATION

27. स्नातक स्तर पर सतत् आंतरिक मूल्यांकन 229
आनन्द कुमार श्रीवास्तव

COMMERCE

28. Industrial Sickness in India. 235
S. N. Singh, M. P. Agarwal

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2, P. 117-119.
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० ११७-११९

A search for the natural hypoglycamic principle, Chromatographic examination of stem bark of Ficus religiosa Linn.

R. K. Baslas & Roohi Agha
Department of Chemistry, Govt. Raza P. G. College, Rampur.

सारांश

फाईक्स रेलिगोसा (कुल-यूरटिकेसी) भारत में हर जगह पाया जाता है। वृक्ष के सभी भाग आयुर्वेदिक दवाओं में विभिन्न रोगों में काम आते हैं। वृक्ष की छाल मधुमेह नामक रोग में दी जाती है। छाल के कॉलम क्रोमेटोग्राफिक तथा स्पेक्ट्रो-स्कोपिक आँकड़ों के परीक्षण द्वारा निम्न तत्व निकले हैं।

बीटा-एमाइरिन ऐसिटेट, बीटा-साइटोस्टेरोल, ल्यूपोल तथा जेनथैटोकसिन। बीटा- साइटोइस्टेरोल के अतिरिक्त सभी तत्व इस जाति में पहली बार निकाले गये हैं।

ABSTRACT

Ficus religiosa (Family-urticaceae) is a large glabrous tree growing wild and also cultivated throughout India. The bark of the tree is used in the treatment of diabetes mellitus. Following constituents have been separated by column chromatography and identified by Co-TLC with their authentic samples and spectroscopic data. β-amyrin acetate, β-sitosterol, Lupeol and Xanthotoxin Except β-sitosterol all the constituents are being reported for the first time in this species.

INTRODUCTION

Ficus religiosa linn (Family Urticaceae) is a large glabrous tree growing wild and also cultivated throughout India. All the parts of the tree are bitter, acrid, cooling and used in Ayurvedic System of Medicine for various disorders.

The bark of the tree is used in the treatment of diabetes mellitus and locally as an astringent on ulcers and inflammations.

EXPERIMENTAL

Investigation of the Stem bark :

The stem bark of the plant were collected in the month of April. The stem bark were dried in shade and powdered in grinder. Airdried stem bark (1 Kg) were extracted with petroleum ether (60–80°). The extract obtained was concentrated under reduced pressure to form resinous semisolid mass obtained from pet-ether extract was partioned with ethanol to separate it into ethanol soluble and ethanol insoluble (Petroleum ether soluble) fraction.

i. Examination of ethanol insoluble Fraction 'A'.

The preliminary screening for finding out different chemical constituents was carried out on silica gel coated TLC plates. The plates were developed in different solvent systems and sprayed by Libermann Burchard reagent the best results obtained in n-heptane : benzene : ethyl alcohol (50 : 50 : 2). In this system four spots having Rf 86·38, 18 and 09 were obtained. This mixture was separated by column chromatography in the above system.

The two compounds have been separated and identified as,

β-Amyrin acetate : The compound has *h Rf* value 38' in n-heptane : benzene : ethylalc (50 : 50 : 2) in 234°C molecular formula $C_{32} H_{52} O_2$ alkaline hydrohysis it gave B-amyrin (m. p. 196°C) and acetic acid (B. P. 116°C) in equimolar ratio. IR, cm^{-1} (KBr) 3600 (— CH), 2960, 2880 (C-H stretch) 1650 (C=C stretching) 1465 (C — CH_3 asmetric bonding) 1040 — (C — O stretching 890) (C—H bonding vibrations of gem-disubstituted olefenic group).

PMR (90 MH_2 ; $CHCl_3$) showed signals at 5·2 (M. IH), 4·5 (m. IH), 2·01 (S , 3H)

MS m/e at 426 (Mt)

β-Sitosterol : The compound has Rf value 13[2] in benzene : Chloroform (9 : 1) m. p.–136–7° ($CHCL_3$; MeOH) acetate (Ac 20/Pyr) m. p. 124–5°.

Molecular formula $C_{20}\ H_{50}\ O$

IR Cm^{-1} (KBr) – 3440, 1053 (equatorial OH gp)

834 & 797 (trisubstituted olofinic linkage)

ii Examination of ethanol soluble Fraction B :—

The preliminary screening for finding out different chemical constitutents was carried out on silicagel coated TLC plates. The plates were developed in different solvent systems and sprayed by antimoney trichloride. The best result obtained in benzene Chloroform (9 : 1) in which three spots of Rf value 32, 26 and 13 were obtained. The mixture was separated by column chromatography in the above system. The two compounds have been separated and identified as —

Lupeol:— It has Rf value 26[2] in benzene Chloroform (9 : 1) m. p. 214 – 16, $C_{30}\ H_{50}\ O$ (α) 28° + 28·9 in $CHCL_3$ acety derivative 211 – 12° and benzoyl derivative 254 – 6 identical (mmp TLC and IR) with an authentic sample.

Xanthotoxin:— It has Rf value 38 in benzene pet-ether (1 : 1) m. p.– 146 – 48°C identifical (mmp TLC and IR) with an authentic sample.

RESULTS AND DISCUSSION

The present investigation led to the isolation and identification of β-amyrin acetate, β-Sitosterol, lupeol and Xanthotoxin. Except β-Sitosterol all the constituents are being reported for the first time in this species.

REFERENCES

Salvador P. Hammer R. H., Jour, Phar m. Sci. 954-7, 61-1972.

Mustafa Abu E. A., Tawiz-El B. A. and Fayez M. B. E. Phytochem 1964, Vol 3, 701-703.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2, P. 120–123.
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० १२०–१२३

Equation of state and Evaluation of Isothermal compressibility of liquid Metals at their Melting Points.

C. V. Chaturvedi and P. Thakur
Department of Chemistry, K. N. Govt. Postgraduate College, Gyanpur (Varanasi).

सारांश

कार्नाहन-स्टार्लिग इम्वोशन ऑफ़ स्टेट का प्रयोग करके आसोथर्मल कम्प्रेसिबिलिटी (β_T) की गणना आठ लिमिवड मेटल के लिए उनके क्वथनांक पर की गई। इस समीकरण को अणुओं के डाइमीटर से व्युत्पन्न किया गया। इस पैरामीटर की गणना सरफेस-टेंसन तथा क्रिटिकल ताप के राकडे से आंगुणित किया गया। इसकी व्युत्पत्ति लिनार्डजोन्स पोटेंसिल के आधार पर की गई।

ABSTRACT

The isothermal compressibility (β_T) is evaluated for eight liquid metals at their melting points with the help of Carhanan-Starling equation of state simply by knowing the diameter of the molecule. The latter parameter is computed by a semi-empirical method consisting of surface tension and critical temperature data which has been derived on the basis of Lennard-Jones potential.

INTRODUCTION

On the basis of existing theories of liquid state such as free volume theory, hypernetted-chain theory, significant structure theory and Born-Green Theory, several thermodynamical quantities have been evaluated theoretically by number of investigators [1] to [5]. Recently [6], [7] & [8] on the basis of radial distribution function

theory of liquid state, we have evaluted the acoustical and thermodynamic parameters of several representative types of liquids. In the present communication on the basis of this theory we have evaluated the isothermal compressibility of liquid metals.

CALCULATION OF β_T AND α

Monte-Carlo and molecular dynamics studies have greatly improved our understanding of fluid thermodynamics during the last two decades. Exact equation of state and radial distribution function for all densities is available for the hard spheres in the form of Carahan-Starling [9] equation of state as.

$$\left[\frac{PV}{NKT}\right]_{HS} = \frac{1+y+y^2-y^3}{(1-y)^3} \qquad (1)$$

where y is dimensionless density $=1/6\ \pi\ \rho a^3$, a being the diameter of hard-spheres, ρ is the number density $=N/V$, P=pressure, V=molar volume, k is Boltzman constant and N is Avogadro's number.

The isothermal compressibility β_T defined as

$$\beta_T = \frac{1}{V}\left[\frac{\partial V}{\partial T}\right]_\rho$$

may be obtained by equation (1) as

$$\beta_T = -\frac{V}{RT}\ \frac{(1-y)^4}{(1+4y+4y^2-4y^3+y^4)} \qquad (2)$$

Thus isothermal compressibility may be evaluated by knowing molecular diameter of liquid metals. Recently [6] we have derived a semi empirical expression for the molecules model in terms of surface tension and critical temperature.

$$a^{5/2} = \frac{V}{7{\cdot}210\quad 10^{19}}\ \frac{(\quad)^{1/4}}{(T_c)} \qquad (3)$$

Where is surface tension, T_c is critical temperature and other terms have their usual meaning.

RESULTS AND DISCUSSION

The calculated values of β_T for liquid metals from equation (2) are presented in table 1. The important parameter needed for the evaluation of β_T is diameter of hard sphere fluids. Diameters of the liquid metals Na, K & Rb at melting points are calculated from equation (3) The value of surface-tension and critical temp. needed for calculation were taken from various sources [10], [11]. The values of the diameter obtained due to this calculation is found to be in fair agreement with

the literature values, since our calculated values are lower in comparison to others so we have utilized these values for the calculation of β_T for liquid metals Na, K Rb. The isothermal compressibility of Zn, Ga, Cd and In were calculated by using Mayer's [12] values of diameter, since it is lower in comparison to other values [13], [14] & [15].

The isothermal compressibility thus evaluated is obtained to be fair agreement with experimental values [16] which shows the validity of Carnahan-Starling equation of state even for fluids of higher densities.

TABLE—1

Comparison of computed and Experimental values of β_T for liquid metals.

Liquid metal	Temp. at M.P.	Molar Volume	Diameter a 10^8 cm		Isothermal β_T 10^{12}	comp. cm²/dyne
	OK	cc/mol	Present calc eq (3)	Ref. 12	From eq (2)	Expt. Ref. 16
Zn	693	9·199	—	2·52	2·775	2·4
Ga	303	11·245	—	2·79	2·508	2·4
Cd	594	14·016	—	2·87	3·644	3·2
In	429	16·403	—	3·10	3·868	3·2
Tl	575	18·104	—	3·17	3·846	4·1
Na	371	24·722	3·274	—	22·775	21·0
K	337	46·826	4·019	—	52·128	40·2
Rb	312	57·953	4·429	—	50·581	49·1

REFERENCES

1. (a) Beer, S. Z., Liquid metals-Chemistry and Physics (Marcel Dekker, New York) [1972], 186.

   (b) Lennard-Jones, J. E. and Cornor, J., Trans. Faraday Soc. 36 [1940], 1156.

2. Reiss, H., Frisch, H. L. and Lebowitz, J. L., J. Chem, Phys. 32 [1960], 119.

3. (a) Eyring, H. and Ree, T., Proc. Natun. Acad. Sci., 47 [1962], 526.

   (b) Eyring, H. and Marchi, R. P., J. Chem. Educ. 40 [1963], 562.

4. Born, M. and Green, H. S., Proc. R. Soc. A 188 [1846], 10.

5. Hirschfelder, J. O., Curtiss, C. F. and Bird, R. B. Molecular Theory of gasses and liquids, John Willey & Sons Inc. New York [1954].

6. Chaturvedi, C. V. and Pratap, S,, Acustica 3, [1979] (43) 227-229.

7. Chaturvedi, C. V. and Pratap, S., Acustica 4, [1979] (44) 2´0-263.

8. Chaturvedi, C. V. Chaturvedi G. D. and Pant N, Z. Phys. Cheime lupzig 264 (1983) 3, 8 513–524.

9. Carnahan, N. F. and Starling, K. E,, J. Chem. Phys. 51 [1969], 635.

10. Hand book of chemistry and Physics (The Chemical Rubber Company Cleveland Ohio USA) 585h ed. [1977-78] F.-25.

11. Gopala Rao, R. V. and Joardar, R. N., Ind. J. Pure & Appl. Phys. 15 [1977], 599.

12. Mayer, S. W., J. Phys. Chem. 67 [1963], 2160.

13. Gopala Rao, R. V., Ind. J, Pure and Appl. Phys. 13 [1975], 495.

14. Proptopapas, P. Hans, Anderson, C. and Parlen, N.A.D.J. Chem, Phys. 59 [1973], 15.

15. Gupta Ranajit Sen & Guha Asit, Ind. J. Chem. 13 [1975], 921.

16. Kleppa, O. J.. J. Chem. Phys. 18 [1950], 1331.

●

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2, P. 124–126
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२ पृ० १२४–१२६

Thermal Conductivities Of Some Polar-Non-Polar Binary Gas Mixtures.

S. R. PRAJAPATI
Department of Chemistry, Govt. P. G. College, Hamirpur.

सारांश

(कार्बन डाइआक्साइड तथा सल्फर डाइआक्साइड, मैथेन तथा सल्फर डाइआक्साइड, नाइट्रस-आँक्साइड तथा सल्फर डाइआक्साइड, अमोनियां तथा नाइट्रसआक्साइड, मैथेन तथा अमोनियां, आर्गन तथा सल्फर डाइआक्साइड एवं अमोनियां तथा आर्गन नामक युग्म गैस मिश्रणों की थर्मल कन्डक्टीविटीस की गणना 50 तथा 100 डिग्री सैन्टीग्रेड पर संशोधित वासिलजेवा इक्वेसन से संशोधित लिन्डसेक्रोमेब तथा मांसोन-सक्सेना इक्वेशन्स के योग से की गई है। इन युग्मों की थर्मल कन्डक्टीविटीस की गणना के लिये गम्भीर-सक्सेना इक्वेसन का भी उपयोग किया गया है। उपर्युक्त विधियों से प्राप्त मान ए० ओ० एस० मैकजेक तथा पी० ग्रे के प्रयोगात्मक मानों के समान ही आते हैं।)

ABSTRACT

The thermal conductivities of binary gas mixtures, viz., CO_2+SO_2, CH_4+SO_2, N_2O+SO_2, NH_3+N_2O, CH_4+NH_3, $Ar+SO_2$ & NH_3+Ar have been calculated at 50 and 100° C from modified Wassiljewà equation in conjunction with modified Lindsay—Bromlay and Mason-Saxena equations. Gambhir-Saxena equation has also been utilized for these systems. These methods render values in good agreement with the experimental values of A. O. S. Maczek and P. Gray.

INTRODUCTION AND THEORY

Wassiljewa equation[1] describes, successfully, the thermal conductivities of binary gas mixtures, as

$$\lambda = \frac{\lambda_i}{1 + A_{ij} \frac{X_j}{X_i}} + \frac{\lambda_j}{1 + A_{ji} \frac{X_i}{X_j}} \qquad ...(1)$$

where λ and λ_i are the thermal conductivities of mixture and the pure gas component i aud A_{ij}. one of the Wassiljewa coefficients—

Sriwastava and Saxena suggested the following modification to equation (1) for better results.

$$\lambda = \frac{\lambda_i}{1 + A_{ij} \frac{X_j}{X_i}} + \frac{\lambda_j}{1 + A_{ji} \frac{X_i}{X_j}} = \frac{C\,(\lambda_i . \lambda_j)^{1/2}}{\left(1 + A_{ij} \frac{X_j}{X_i}\right) \left(1 + A_{ji} \frac{X_i}{X_j}\right]} \qquad ...(2)$$

where C is a constant which can be calculated if the experimental value of thermal conductivity of the mixture at one composition is known.

Pandey and Prajapati[3-6] have suggested the following modified Lindsay-Bromley and Mason-Saxena equations for thermal conductivities of binary gas systems.

$$A_{ij} = \frac{1}{4} \left[1 + \left\{ \frac{\lambda_i}{\lambda_j} \left[\frac{M_i}{M_j}\right]^{1/4} \frac{\frac{4}{15} Cv_j + \frac{3}{5} R_j}{\frac{4}{15} Cv_i + \frac{3}{5} R_i} \right\}^{y_2} \right]^2 \frac{T + S_{ij}}{T + S_{ij}} \qquad ...(3)$$

and

$$A_{ij} = \frac{0{\cdot}85}{\sqrt{8}} \left[1 + \frac{M_i}{M_j} \right]^{-1/2} \left[1 + \left[\frac{\lambda_i}{\lambda_j}\right]^{1/2} \left[\frac{M_i}{M_j}\right]^{1/4} \left\{ \frac{\frac{4}{15} Cv_j + \frac{3}{5} R_j}{\frac{4}{15} Cv_i + \frac{3}{5} R_i} \right\}^{1/2} \right]^2 \qquad ...(4)$$

where S is Sutherland's constant and $S_{ij} = 0.73 \times (S_i - S_j)^{1/2}$, if one or both of the components are polar, Terms C_v, R and T stand for molar heat capacity at constant volume, molar gas constant and absolute temperature, respectively. In equation (4), $\frac{0{\cdot}84}{\sqrt{8}}$ has been taken in lieu of $\frac{1}{\sqrt{8}}$ in accordanc with Tondon and Saxena[7], as one of the mixtures being polar gas.

Gambhir and Saxena[8] have also expressed the ratio of A_{ij} and A_{ji}, as

$$\frac{A_{ij}}{A_{ji}} = \frac{\lambda_i}{\lambda_j} \cdot \frac{59\,M^2 + 88\,M + 150}{150\,M^2 + 88\,M + 59} \qquad ...(5)$$

where $M = Mj/Mi$

Equations (3) and (4) have been applied to these mixtures in these mixtures in conjunction with (2). The method of calculation of constant 'C' has been followed from Srivastava and Saxena method[2]. Experimental values have been taken from the source[9]. The thermal conductivities have also been calculated from Gambhir—

Saxena equation (5) and Wassiljewa equation (1). The method is in accordance with literature[8].

RESULT AND DISCUSSION

The author has calculated the thermal conductivities of CO_2+SO_2, CH_4+SO_2, N_2O+SO_2, NH_3+N_2O, CH_4+NH_3, $Ar+SO_2$ and NH_3+Ar at 50° and 100° C from equations (2) and (3), (2) and (4) and (2) and (5) on comparison, with experimental values, it has been found that the mean absolute deviations of calculated values of these binary gas mixtures lie in between 0.2% and 1.5%. Mean absolute deviations of various binary gas mixtures are shown in Table-1. The results are exellent.

Table 1.

Mean Absolute Deviations (%) of Binary Gas Mixtures at 50° and 100° C.

System.	Temperature.	From equations (2) & (3).	From equations (2) & (4).	From equations (1) & (5).
CO_2+SO_2	50	0.39	0,74	0.60
	100	0.37	0.71	0.27
CH_4+SO_2	50	0.40	0.74	0.43
	100	0.98	1.15	1.04
N_2O+SO_2	50	0.18	1.24	1.32
	100	0.36	0.36	0:52
NH_3+N_2O	50	0.29	0.54	1.34
	100	0.36	0.49	0.51
CH_4+NH_3	50	0:42	0.46	0.56
	100	0.43	0.31	0.41
$Ar+SO_2$	50	0.30	0.28	0.35
	100	0.28	0.34	0.25
NH_3+Ar.	50	0.20	0.22	0.44
	100	0.42	0.46	0.25

REFERENCES

1. Wassiljewa, A., Physik, Z, *5*, 737; (1904).
2. Srivastava, B. N., and Saxena, S. C., Indian J. Phys., *31*, 597-606 (1957).
3. Pandey, J. D., and Prajapati, S. R. Proc. Indian Nat. Sc. Ac., *45*, 372-382 (1979).
4. Pandey, J. D., and Prajapati, S. R., Indian J. Pure Appl. Phys., *18*, 815-816 (1980).
5. Prajapati, S. R., Indian J. Pure Appl. Phys., *20*, 55-56 (1982).
6. Prajapati, S. R. Actu Ciencia Indica, *IX c*, 116-119 (1983).
7. Tandon, P. S., and Saxena, S. C., Appl. Sci. Res. *19*, 163 (1968).
8. Gambhir, R. S., and Saxena, S. C., Trans. Faraday. Soc. *60*, 38-44 (1964).
9. Maczek, A. O. S. and Gray, P. Trans., Faraday. Soc., *66*, 127-141 (1970).

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2, P. 127–129
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६ खंड-२ पृ० १२७–१२९

Adsorption Studies and Diffusion Equation

S. K. Dabral, S. K. Khare and V. N. Sharma
Department of Chemistry, Government Post Graduate College, Uttarkashi.

सारांश

इस शोध पत्र में मैक तथा अन्य के अधिशोषण अध्ययनों और विसरण समीकरण हल पर संक्षिप्त व्याख्यात्मक अभ्युक्ति की गई है।

ABSTRACT

In this paper, a few explanatory remarks on adsorption studies by MC Kay et al. and on the solution of the diffusion equation have been made.

INTRODUCTION

Considering the importance and the rapidly growing prominance of adsorption in industries, recently Mc Kay et al. have studied that intraparticle diffusion is an important rate controlling step during the removal of Deorlene Yellow 2G dye from effluent using activated carbon and have defined a rate parameter, K, to correlate the variables as a fuction of square root of time. However, results and discussion presented by McKay, et. al. [1,2] provide better understanding, it was worthwhile to make a few explantory remarks on the work of McKay et. al.[1] and to investigate the problem with sufficient thoroughness,

The theory of absolute reaction rates can be applied to any process involving a rearrangement of matter, that is to say, to any 'rate process' including adsorption and diffusion. The concise diffusion theory of elementary process determining the kinetics of physical and chemical relaxation in the gaseous phase and the theory of rate process in somewhat greater detail are available.[3,4]

DIFFUSION EQUATION

The diffusion process can be expressed analytically by Fick's law[5] if D is independent of the concentration the three-dimensional differential diffusion equation describing the change in the concentration in the course of time at constant temperature and in the absence of external force, can be reduced to the form.[6]

$$\frac{\partial c}{\partial t} = D\nabla^2 C$$

or $$\frac{\partial c}{\partial t} = D\nabla C \text{ ....(Fick's second Law)}$$

Where, ∇ is the Laplacian operator,
D is the coefficient of diffusion.
t is the time and
∇C is concentration gradient.

SOLUTION AND DISCUSSION

The standard form of diffusion equation in addition, to the usual solutions, has a quasi-oscillatory solution that is strongly damped and highly dispersive.[7]

The mathematical form of Fick's second equation in polar co-ordinate system by McKay et. al[1] seems to be erroneous. It is trivial that the second term on the right hand side of equation (3) of the reference one should include sin θ inplace of sinϕ. The coefficient of diffusion D can be taken outside to reduce the equation (3) to Fick's second form, only, if D is independant of concentration.

The equation (2) by McKay et. al[1] for an isentropic medium does not provide clear understanding and much physical insights, as diffusion process is irreversible and consequently is attended by a growth in entropy,

The diffusion equations are erroneous at least for times too close to the occurrance of any very sudden change in the concentration. So the solution obtained by McKay et. al,[1], using much simplified model can not be much reliable for actual physical systems. Whereas, the solution of diffusion equation in terms of dimensionless quantity "fraction component adsorbed" as function of another dimensionless quantity $(Dt/a^2)^{0.5}$ is correct, the rate parameter, K, as defined by Mc. Kay et.al,[1] must have dimension. The equation (4) of Mc Kay et, al. is against the principle of homogeneity of dimensions because the term on the left hand side of the equation (4) is dismenionless and that on the right side has dimension.

It is not clear how the differential equation of diffusion in a isentropic medium McKay, et. al[1] equation (2) include the effects of agitation, which increses entropy in this irreversible process. McKay et. al[1] has explained the increase in adsorption uptake due to an increase in agitation (r. p. m.) by a change in boundary layer resis-

tance considering boundary layer mass transfer effect. Novertheless we can interpret the effect of agitation on adsorption uptake as a combinded effect of physical adsorption a surface phenomenon, and the chemiosorption. Even nominal an increase in the temperature during the agitation will decrease considerably the adsorpotion uptake due to physical adsorption, Whereas, on the other hand there will be a greater increase owing to chemiosorption. Hence, the net effect, the algebric sum in the measurements will be on the increase in adsorption uptake by an amount is measured by McKay et. al[1] due to agitation. Obviously the complex process of adsorption is a combined effect of a rapid surface mass transfer and a much slower diffusion phenomenon. The quantitative statistical analysis of the nature of dependence of adsorption uptake on different variables viz. agitation, temperature, particle size, mass of adsorbent and initial dye concentration and their correlation is in progeress.

Lastly, it may be pointed out that the reference for the part-II of their work i. e. *surface mass transfer effects studies* appear to have been omitted on purpose in part-III[1]

REFERENCES

1. G. Mc. KAY, M. S. Otterburn and A, G. Sweeny, J. Indian Chem. Soc., 1981, 58, 1164.
2. G. Mc. KAY M. S. Otterburn and A. G. Sweeny, J. Indian Chem. Soc., 1981, 58, 963.
3. S. Glasstone, K. J. Laidler and H. Eyring "The theory of Rate process" Mc. Grew-Hill book Co. 1941.
4. E. E. Nikitin, "Theory of elementary Atomic and Molecular process in Gases," Clarendon Press Oxford, 1974, p. 283.
5. L. V. Azaroff, "Introduction to solids" Tata Mc. Grew-Hill, TMH Edition, p. 393.
6. B. Yavorsky and A. Detlaf, "Hand Book of Physics,' (Trans, by N. Weinstein) Mir Publication Moscow, 1980, P, 260
7. W. Band, "Introduction to Mathematical Physics" Van-Nostrand Reinbold Co. Newyork, 1971, p. 107

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2, P. 130-132
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० १३०–१३२

U. V. Lasersonde for Optical Detection of the Meteoric

M. K. Gupta, S. K. Khare and V. N. Sharma

ABSTRACT

In this communication, the optical detection of the meteoric dust cloud by an U V Lasersonde has been studied. In the light of recently available new Rayleigh scattering data and detailed understanding of the gas breakdown, we have concluded that the optical detection of the meteoric dust cloud by an U V Lasersonde is possible,

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में परा बैंगनी-लेसर साँन्डे द्वारा उल्का धूलि मेघ के प्रकाशिक संसूचन का अध्ययन किया गया है। वर्तमान में उपलब्ध अध्ययन नव रैले-प्रकीर्णन आंकड़ों तथा गैस बिच्छेद-विस्तृत ज्ञान के प्रकाश में हम लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि परा बैंगनी लेसर साँन्डे द्वारा उल्का धूलि मेघ का प्रकाशिक संसूचन संभव है।

INTRODUCTION

Hamill et. al., (1) have concluded that one cannot expect lidar studies to determine, whether metereoretic ablation contributes significantly to the particulate loading in the stratosphere. Also Hunten et. al, (2) have viewed the optical detection of the meteoric dust cloud with great suspicion, Recently Sharma (3) has discussed in detail meteoric dust laser studies. Sharma et al (4) have studied the possibility of optical detection of the meteoric dust cloud by an U V Lasersonde. For this reason, it is of present interest to evaluate lidar capability for the optical detection.

THEORY

For atmospheric conditions of relatively high visibility, multiple scattering and attenuation can be ignored and the back scattering signature can be related to the distribution of particle concentrations along the observed path.

At a particular altitude lidar scattering ratio, R, is defined by $R=(B_a+B_m)/B_m$. Where B_m is the molecular Rayleigh back scattering coefficient and aerosole back scattering coefficient $B_a=(R=1)$ $_m, \lambda \cdot n$, $_m, \lambda$ is cross section at a particular wavelength λ and n is no. density.

To calculate the lidar back scattering intensity Mie model is generally used to evaluate the back scatter coefficient B_a for a particular wavelength λ and $_m$ λ is given by

$$_m, \lambda = 8/3 \frac{\frac{\pi D^2}{4}\left(\frac{\pi D}{4}\right)^4}{\left(\frac{\pi^2-1}{\lambda}\right)\left[1+\frac{3}{5}\frac{\pi^2-2}{\pi^2+2}\left(\frac{\pi D}{\lambda}\right)^2+\ldots\ldots\right]^2}$$

RESULT AND DISCUSSION

The most salient characteristic of the simulation study by Hamill et. al., (1) is the fact that the scattering ratio at 1.06 μm is much larger than at 0·6943 μm. The relative change in scattering ratio with changes in real part of index of reflection is nearly the same for both wavelengths, whereas a change in λ gives a larger absolute difference between the absorbing and non-absorbing cases, but the relative difference between the two cases is only slightly greater for the larger wavelength changes in temperature drop off. The lidar return at lower altitude with a small decrease in the maximum value of scattering ratio, sharp peaks in scattering ratio at low temperatures due to advection have also been reported. The new determination of Rayleigh scattering in the terrestrial atmosphere is also available (5).

The increasing relationship of extinction at 1·045 μm. and 0·514 μm. Wavelength with mean particle diameter derived from laboratory results (6) and the significant departure below 0·25 μm. and above 0·8 μm. seen on comparison of actual Rayleigh-scattering cross section of air at standard temperature and pressure with λ^{-4} dependance are the basis for the possibility of the use of U V Lasersonde for optical detection of meteoric dust cloud.

More complicated treatments required for approximate range $(0{\cdot}6/n) < \left(\frac{\pi D}{\lambda}\right) < 5$ where λ is wavelength inside the particle material and D is the particle diameter, ie Mie scattering is very sensitive to the ratio D/λ. Hunten

et. al (2) have considered the very common Rayleigh scattering for gas molecules. Below 0·25 μm. wavelength and with meteoric dust particle diameter correction terms to the Rayleigh scattering are to be included, which enable us to conclude that the optical detection with the U V Lasersonde is possible. It is worth noting that a rigorous characterisation of the gas break down (7) processess and parametric dependence of the threshold requires the careful specification. However considering, the simplified physical picture of gas break down, we have concluded that the optical detection of the meteoric dust cloud by an U V Lasersonde is possible.

ACKNOWLEDGEMENT

The authors thank all who acted in the various ways.

REFERENCES

1. Hamill, P. , Swissler, T. J. , Turco, R. P, and Toon, O. B. : Nature 1979, 278, 149.
2. Hunten, D. M. , Turco, R. P. and Toon, O. B. : J. Atmos. Sc. 1980, 37, 1342.
3. Sharma, V. N. : Invited talk 1984, LASS (Indian Science Congress) Ranchi.
4. Sharma, V. N. , Aswal, K. S. and Gupta, M. K. : Paper presented NSS PUNE. 1983.
5. Frohlich, C. and Shaw, G. E. : Applied optics 1980, 19, 1773.
6. Uthe, E. E. , Morley, B. M. and Nielson, N. B. : Applied optics 1982, 21. 460.
7. Smith, D. C. and Meyerand, R. G. Jr. : Principles of laser plasmas ed. G. 457 1976, Bakefi (John Willey & Sons, Newyork).

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 2, P. 133-135
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० १३३-१३५

Model for the Lattice of HCP Metals

S. P. Singh
Physics Department, Govt. P. G. College, Rishikesh.

सारांश

लघुपरासी बल का उपयोग करके मैगनीशियम धातु के लिए ध्वनि क्वांटम आवृतियों का अध्ययन किया गया है। प्राप्त परिणामों की तुलना प्रायोगिक परिणाम से की गई है।

ABSTRACT

Phonon dispersion relations for magnesium have been studied using short-range interaction. The results are in good agreement with the neutron inelastic scattering data.

The model pseudopotential approach [5] was applied to calculate the phonon frequencies of hcp Mg metal [2]. The phonon dispersion relations calculated from this model do not agree satisfactorily with the experimental observations. It has been found that the most likely source of discrepancy is to be traced to some form of short-range interaction. The existing simple model pseudopotential theory, where only pair-wise interactions are involved, is inherently incapable of explaining the lattice dynamics of s. p. bounded hcp metals viz. Mg, Zn etc. Following Brovman et al. [1], we have extended the model pseudopotential theory to incorporate an additional interaction having the character of tensor forces. It is concluded that the non-pair three body interaction is necessary for explaining the lattice dynamics of Mg. The proposed theory is found to be adequate for explaining the lattice dynamics of hcp metals.

In the present work the matrix elements have been regarded as consisting of three terms viz. due to electrostatic energy, due to band structure energy and due to short-range force energy. The Coulombic contribution to the elements of the dynamical matrix can be evaluated by standard methods [3, 4]. The electronic contribution to the dynamical matrix can be calculated by model pseudopotential theory [5]. The non-pair interaction, which is essentially short-range, has been taken into account by considering non-central forces, having tensor character, extending upto first and second coordination spheres. The following expressions for the matrix elements have been obtained.

$$A_{11}^{sr}(\bar{q}) = 3X + 6\beta'_1 + 3\alpha_1 (1 - C_1C_2) + \alpha_2 [3 - C_1C_2 + 2C_{22})]$$

$$A_{22}^{sr}(\bar{q}) = 3X + 6\beta'_1 + \alpha_1 [3 - (C_1C_2 + 2C_{22})] + 3\alpha_2 (1 - C_1C_2)$$

$$A_{33}^{sr}(\bar{q}) = \frac{9}{2}\surd^2 X + 6\beta'_1 + 2\alpha_3 [3 - (2C_1C_2 + C_{22})[$$

$$A_{12}^{sr}(\bar{q}) = \sqrt{3} [(\alpha_1 - \alpha_2)S_1S_2] + 2i\alpha_4 [(S_{22} - 2S_2C_1)]$$

$$A_{23}^{sr}(\bar{q}) = 0 \quad , \quad A_{13}^{sr}(\bar{q}) = 0$$

$$B_{13}^{sr}(\bar{q}) = -C_3 [(C_2D_1 + 2D_2^*) X + 2\beta'_1 (2C_2D_1 + D_2^*)]$$

$$B_{22}^{sr}(\bar{q}) = -C_3 [(3C_2D_1X + 2\beta'_1 (D_2^* + 2C_2D_1)]$$

$$B_{33}^{sr}(\bar{q}) = -C_3 \left[(D_2^* + 2C_2D_1) \left(\frac{3}{2}\surd^2 X + 2\beta'_1 \right) \right]$$

$$B_{12}^{sr}(\bar{q}) = -i\sqrt{3}\ S_2C_3D_1X$$

$$B_{13}^{sr}(\bar{q}) = 3\surd S_2S_3D_1X$$

$$B_{23}^{sr}(\bar{q}) = -i\sqrt{3}\ \surd S_3 (C_2D_1 - D_2^*) X$$

where

$C_1 = \text{Cos}\ (a/2q_1)$, $C_2 = \text{Cos}\ (\sqrt{3}/2\ aq_2)$, $C_3 = \text{Cos}\ (c/2\ q_3)$
$S_1 = \text{Sin}\ (a/2q_1)$, $S_2 = \text{Sin}\ (\sqrt{3}/2\ aq_2)$, $S_3 = \text{Sin}\ (c/2\ q_3)$
$C_{21} = \text{Cos}\ (a\ q_1)$. $S_{21} = \text{Sin}\ (aq_1)$,
$D_1 = \exp\ (i\pi a/\sqrt{3}\ K_x)$, $D_2^* = \exp\ (-2\pi\ i\ a/\sqrt{3}\ K_x)$,
$i = \sqrt{-1}$, $\bar{q} = 2\pi \bar{K}$, $\surd = c/a$
$X = (\beta_1 - \beta'_1)/n^2$, $n = (1 + 3/4\surd^2)^{1/2}$

α_1, α_2, α_3 and α_4 are the force constants related to the nearest neighbour atoms situated at distance 'a' from the reference atom. The tensor force constant matrix is :

$$- \begin{bmatrix} \alpha_1 & \alpha_4 & 0 \\ -\alpha_4 & \alpha_2 & 0 \\ 0 & 0 & \alpha_3 \end{bmatrix}$$

similarly β_1 and β_1' are the radial and angular force constants for the next nearest neighbour atoms situated at a distance $(c^2/4 + a^2/3)^{1/2}$ from the reference atom—

The force constants can be calculated by using the relation between the elastic constants and the force constants [1]. In case of magnesium the following data corresponding to short-range interaction have been used.

Force constants (10^3 dyns./cm.)

$\alpha_1 = ...3{\cdot}0500$, $\alpha_2 = 0{\cdot}9869$, $\alpha_3 = 0{\cdot}6894$
$\alpha_4 = 2{\cdot}2500$, $\beta'_1 = 0{\cdot}6850$, $\beta_1 = ...2{\cdot}5752$

Using the expressions for the dynamical matrix elements a Fortran programme was prepared to compute phonon frequencies for magnesium along symmetry directions. The calculated phonon dispersion curves of Mg have been shown in Fig. along with the experimental points [6]. The calculated frequencies are in good agreement with the experimental results.

It is obvious that present results for Mg are better than those obtained by Bajpai et al. [2]. It is, therefore, evident that unpaired short-range forces must play an effective role in present work.

Fig. -- Comparison of the theoretically computed dispersion relations based on short-range interaction with the experimental results (0, 0, □, □, △, △).
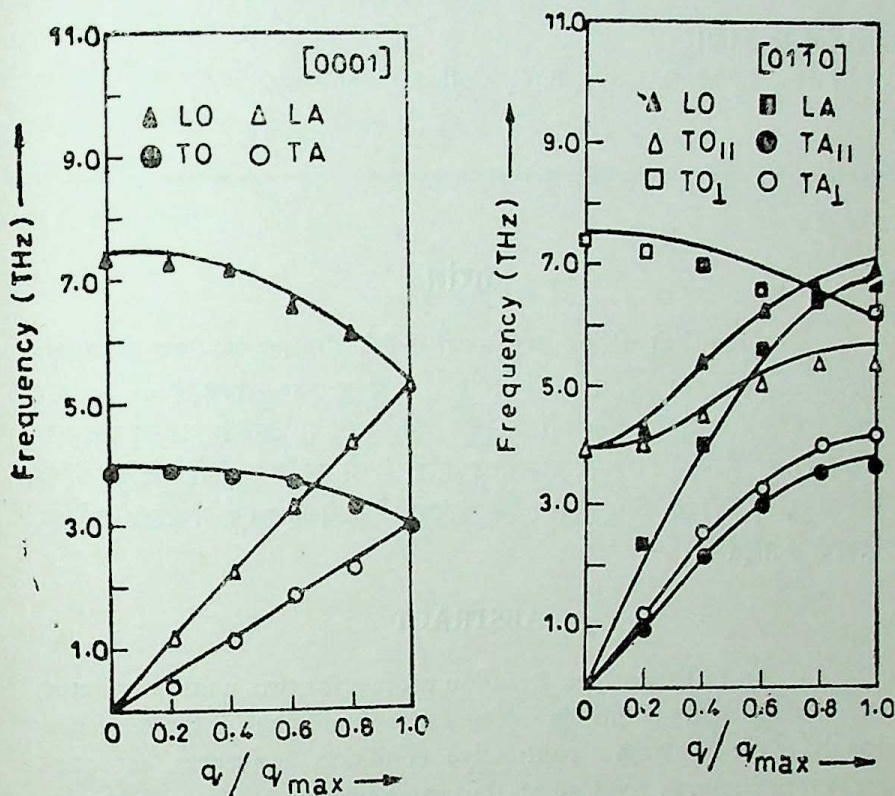
REFERENCS

1. E. G. Brovman, Yu Kagan and A. Kholas, Sovt. Phys. Solid State *11* (1969) 733; *8* (1966) 1120.
2. R. P. Bajpai and M. Ono, Phys. Lett. A *41 A* (1972) 141.
3. P. P. Ewald, Ann. Phys. *64* (1921) 253.
4. G. Gilat, G. Rizzi and G. Cubiotti, Phys. Rev. *185* (1969) 971.
5. G. L. Krasko and Z. A. Gurskii, Sovt. Phys. Solid State *11* (1970) 2447; Zh. Eksp. Teor. Fiz. 2 (1969) 596.
6. R. Pynn and G L. Squires, Proc. Roy. Soc. (London) A *326* (1972) 347; Inelastic Scattering of Neutrons (IAEA, Vienna) *1* (1968) 215.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2, P. 136-138
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० १३६-१३८

Ishikawa Iteration Process for a Pair of Nonliner Maps

S. L. Singh & R. Mall
Deptt. of Maths, L. M. S. Govt. P. G. College, Rishikesh.

सारांश

इस प्रपत्र में दो अरेखिक प्रतिचित्रणों के लिये इशिकावा पृष्ठ-प्रेषण प्रक्रिया को पारिभाषित किया गया है तथा यह दिखाया गया है कि एक व्यापक संकुचन शर्त को सन्तुष्ट करने वाले दोनों प्रतिचित्रणों के लिये इस प्रकार पारिभषित अनुक्रम यदि एक रैखिक समष्टि में किसी बिन्दु पर अभिसरित होता है तो वह बिन्दु दोनों प्रतिचित्रणों के लिये उभयनिष्ठ स्थिर बिन्दु होगा। इस परिणाम में रोअड्स एवं नैम्पल्ली आदि के निष्कर्ष समाहित हैं।

ABSTRACT

An Ishikawa type iteration process for two nonlinear maps in a normed space is introduced, and it is shown that, if the sequence for the maps satisfying a contractive condition converges, it converges to a common fixed point, thus extending the results of Rhoades and Naimpally et al.

The earliest approximation result for nonexpansive maps (see [2, p. 131]) due to Krasnoselskii [3] has been extensively studied by several mathematicians (see, for instance, [1], [6], [8], [10] and references thereof). Several authors have shown that, for a nonlinear (single or multivalued) map satisfying certain contractive condition, if the sequence of Mann or Ishikawa iterates converges, it converges of a fixed point of the map (see, for instance, [4], [5], [7], [9]). In [11], the Mann iterative process is considered for two maps satisfying a contractive condition.

In this paper, an Ishikawa type iteration scheme is defined for a pair of non-linear maps and it is shown that, for maps satisfying a very general contractive condition, if the sequence converges, it converges to a common fixed point.

Throughout this note, let X be a normed linear space, C a closed convex subset of **X** and S, T: C→C.

We shall discuss the following iteration process for two maps S and T.

(I.1) $x_o \in C$;

(I.2) $y_n = b_n Sx_n + (1 - b_n) x_n$;

(I.3) $x_n + 1 = (1 - a_n x_n + a_n Ty_n$;

(I.4) $o \leqslant a_n, b_n \leqslant 1$;

(1.5) $lim\, a_n = a > 0$

let $0 (x_n, S, T, y_n) = [x_i, y_i ; i = 0, 1, 2, \ldots\ldots\ldots]$;

We shall call $0 (x_n, S, T, y_n)$ the orbit of S and T for the process defined through **(I.1) - (1.5).**

THEOREM

Let S and T be maps from a closed convex subset C of a normed linear space X to itself. Further, let the sequence $\{x_n\}$ defined previously converge to a point z. If there exists a non negative number $\alpha < 1$ such that

$$\|Sx - Ty\| \leqslant \alpha \max \{ \|x - y\|, \|x - Sx\|, \|y - Ty\|, \|x - Ty\| + \|y - Sx\| \} \quad \ldots \quad (1)$$

for every x, y in $0 (x_n, S, T, yn) \cup \{z\}$ then $Sz = z = Tz$.

PROOF

By (1),

$$\|z - Tz\| \leqslant \|z - Sx_n\| + \|Sx_n - Tz\| \leqslant \|z - Sx_n\| + \alpha \max \{ \|x_n - z\|, \|x_n - Sx_n\|, \|z - Tz\|, \|x_n - Tz\| + \|z - Sx_n\| \}, \quad \ldots (2)$$

Now $\|z - Sx_n\| \leqslant \|x_n - z\| + \|x_n - Sx_n\|$;

$\|x_n - Tz\| \leqslant \|x_n - z\| + \|z - Tz\|$;

$\|x_n - Sx_n\| \leqslant \|x_n - Ty_n\| + \|Sx_n - Ty_n\|$.

Also from the definition of the sequence ,

$\|x_n - y_n\| = b_n \|x_n - Sx_n\| \leqslant \|x_n - Sx_n\|$;

$\|y_n - Sx_n\| = (1 - b_n) \|x_n - Sx_n\| \leqslant \|x_n - Sx_n\|$;

$\|x_n - Ty_n\| = \dfrac{1}{a_n} \|x_n + 1 - x_n\| \to 0$ as $n \to \infty$;

$$\|y_n - Ty_n\| \leqslant \|x_n - y_n\| + \|x_n - Ty_n\|$$
$$\leqslant \|x_n - Sx_n\| + \|x_n - Ty_n\|$$
$$\leqslant \|x_n - Ty_n\| + \|Sx_n - Ty_n\| + \|x_n - Ty_n\| = 2\|x_n - Ty_n\| + \|Sx_n - Ty_n\| .$$

So $\|Sx_n - Ty_n\| \leqslant \alpha \max \{\|x_n - y_n\| , \|x_n - Sx_n\| , \|y_n - Ty_n\| , \|x_n - Ty_n\| + \|y_n - Sx_n\|\}$

$$\leqslant \alpha \max \{\|x_n - Sx_n\| , 2\|x_n - Ty_n\| + \|Sx_n - Ty_n\| , \|x_n - Ty_n\| + \|x_n \quad Sx_n\|\}$$
$$\leqslant \alpha \max \{\|x_n - Sx_n\| , 2\|x_n - Ty_n\| + \|Sx_n - Ty_n\| , 2\|x_n - Ty_n\| + \|Sx_n - Ty_n\|\} ,$$

implying

$$\|Sx_n - Ty_n\| \leqslant \max\left[\frac{\alpha}{1-\alpha} , \frac{2\alpha}{1-\alpha}\right] \|x_n - Ty_n\| .$$

Therefore $\|Sx_n - Ty_n\|$ and $\|x_n - Sx_n\|$ both tend to zero as $n \to \infty$.

Making $n \to \infty$ we have from (2) ,

$$\|z - Tz\| \leqslant 0 + \alpha \max \{ 0 , 0 , \| z - Tz\| , \|z - Tz\| + 0\} = \alpha\|z - Tz\| ,$$

proving $Tz = z$.

By (1) ,

$$\|Sz - z\| = \|Sz - Tz\| \leqslant \alpha \max \{ \|z - z\| , \|z - Sz\| , \|z - Tz\| , \|z - Tz\| + \|z - Sz\| \} ,$$

yielding $Sz = z$, Thus $Sz = z = Tz$.

REMARK

If S=T then the theorem presents a generalization of a result of Rhoades [5 , Th. 9]. The theorem with S=T is also a variant of a result of Naimaplly and Singh [4 , Th. 1·2] .

REFERENCES

1. Shiro I shikawa : Proc. Amer. Math. Soc. 44 (1974), 147-15 .
2. W. A. Kirk : Contemprorary Math 18, 121—14 .
3. M. A. Krasnoselskii : Uspehi Mat· Nauk 1 (1955), 123—127 (Russian).
4. S. A. Naimpally and K. L. Singh : J. Math. Anal. Appl. (1983), 437—176.
5. B.E. Rhoades : Trans. Amer Math. Soc.199 (1984), 161k176.
6. B. E. Rhoades : J· Math. Anal. Appl. 56 (1676), 741—95 .
6. B. E. Rhoades : Math. Sem. Notes Kobe Univ. 6 (1968), 41—46.
8. V.M. Sehgal : Intern. J. Math. Math. Sci. 5 (1982), 2 1—3 4.
9. S.L. Singh : Approximating Fixed Points of Multivalued Maps. (preprint).
10. K. Geobel and W. A. Kirk : Contemproary Math 21 (1983), 115—123.
11. Ashok Gahguly : Math. Sem. Notes Kobe Univ. 8(1980), 343—345.

●

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 2, P. 139-142
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका, १९८५-८६, खंड-२, पृ० १३९-१४२

Fixed Points of Nonself-mappings in Probabilistic Metric Spaces

S. L. Singh and B. D. Pant
Department of Mathematics Govt. Postgraduate Colleges Rishikesh/Gopeshwar.

सारांश

यह सिद्ध किया गया है कि यदि संभावित F संबंधी दूरीक समिष्ट X का कोई (अरिक्त) संवृत उपकुलक A हो तो A से X पर किसी प्रतिचित्रण T का, व्यापकीकृत संकुचन प्रतिबंध के अंतर्गत, A में एक स्थिर बिन्दु होगा।

ABSTRACT

Let Abe a (nonempty) closed subset of a probabilistic metric space X and $T : A \rightarrow X$ satisfy a generalized contraction condition. It is proved that T has a fixed point in A.

INTRODUCTION

Fixed point theory, the study of fixed point theorems, has come to stay as an important branch of mathematics, in view of its applications to the solution of a variety of nonlinear problems arising in biological. engineering and physical sciences. Three basic fixed point theorems with a potential for applications are Banach Contraction Principle (BCP), Brouwer's fixed point theorem and Schauder's theorem. The BCP is formulated for self-mappings in metric spaces, and has been studied by a number of mathematicians on various settings and from diverse point of view. However, in many problems the mapping involved need not be a self—mapping in the space under consideration.

Recently, Rhoades [2] has obtained an interesting result concerning the fixed point of nonself—mapping in a Banach space. We, in this paper, prove a fixed

point theorem for a mapping T from a closed (nonempty) subset A of a probabilistic metric space (PM—space) X to X satisfying a generalized contraction condition (cf. (3.1)).

PRELIMINARIES

A PM—space is an ordered pair $(X, \mathcal{F})$ where X is a nonempty set of elements and $\mathcal{F}$ is a mapping from XxX to $\mathcal{L}$, the collection of all distribution functions. The value of $\mathcal{F}$ at $(u, v) \in XxX$ is denoted by E (u, v). The functions F (u, v) are assumed to satisfy the following conditions:

(a) $F(u, v, x) = 1$ for all $x > O$ iff $u = v$;

(b) $F(u, v, O) = O$;

(c) $F(u, v) = F(v, u)$;

(d) if $F(u, y, x) = 1$ and $F(v, w, y) = 1$ then $F(u, w, x+y) = 1$.

A Menger space is a triplet $(X, \mathcal{F}, t)$ consisting of a PM - space $(X, \mathcal{F})$ and the t —norm t Satisfying

(d′) $F(u, w, x+y) \geqslant t\{F(u, v, x), F(v, w, y)\}$
for all $u, v, w \in X$ and all $x \geqslant c, y \geqslant o$.

Note that $t(a, b) = \min\{a, b\}$ or simply "$t = \min$" is the strongest possible universal t (cf. [3, page 318]) and we, therefore, use

(d″) $F(u, w, x+y) \leqslant \min\{F(u, v, x). F(v, w, y)\}$
for all $u, v, w \in X$ and all $x \leqslant o, y \leqslant o$.

For details of topological preliminaries in PM-spaces, refer to Schweizer and Sklar [3].

We, in the proof of our result, assume that

(C) if $u \in A$ and $v \in A$, then there exists a point $w \in \partial A$, the boundary of A, such that

$$\min\{F(u, w, x). F(w, v, y)\} = F(u, v, x+y)$$

for all $x \leqslant o, y \leqslant o$.

RESULT

Let A be a nonempty subset of a Menger space $(X, \mathcal{F}, t)$. Following Ćirić [1] a nonself-mapping $T : A \to X$ satisfying

(3.1) $F(Tu, Tv, hx) \geqslant \min\{F(u, v, x), F(u! Tu, x), F(v, Tv, x), F(u, Tv, 2x) F(v, Tu, 2x)\}$

for all u, v in A and some (fixed) h in (o, 1) may be called a *generalized contraction*

THEOREM

Let $(X, \mathcal{F}, t)$ be a complete Manger space with property (C), where t is continuous and satisfies $t(x, x) \geqslant x$ for every $x \in [o, 1]$. Let $T : A \to X$ satisfy the condition (3 .1) and the following: (3 . 2) for every $u \in \partial A$, $Tu \in A$.
Then T has a fixed point in A.

PROOF

Let $u_o \epsilon A$. We, as in[2], constuct two seduences $\{u_n\}$ and $\{u'_n\}$ satisfying : (i) $u'_{n+1} = Tu_n$ (ii) $u_n = u_n'$ if $u_n' \epsilon A$ and (iii) $u_n \epsilon \partial A$ and for $x \leqslant o, y \leqslant o$, $\min \{F(u_{n-1}, u_n, x, F(u_n, u_n', y)\} = F(u_{n-1}, u'_n, x+y)$, if $u_n' \notin A$.

Let $P = \{u_i \; \epsilon \{u_n\} : u_i = u_i'\}$ and $Q = \{u_i \epsilon \{u_n\} : u_i \neq u_i'\}$. Clearly if $u_n \epsilon Q$ then, in view of (3·2), u_{n-1} and u_{n-1} belong to P. We show that $\{u_n\}$ is a Cauchy sequence.

Three cases arise :

Case I. $u_n, u_{n+1} \epsilon P$. By (3·1),

$$F(u_n, u_{n+1}, x) = F(Tu_{n-1}, Tu_n, x)$$
$$\leqslant \min \{F(u_{n-1}, u_n, x/h), F(u_{n-1}, Tu_{n-1}, x/h), F(u_n, Tu_n, x/h), F(u_{n-1}, Tu_n, 2x/h), F(u_n, Tu_{n-1}, 2x/h)\}$$
$$= F(u_{n-1}, u_n, x/h), \text{ since}$$
$$F(u_{n-1}, u_{n+1}, 2x/h) \leqslant \min \{F(u_{n-1}, u_n, x/h), F(u_n, u_{n+1}, x/h\}.$$

Case II. $u_n \epsilon P$, $u_{n+1} \epsilon Q$.

$$F(u_n, u_{n+1}, x) \leqslant \min \{F(u_n, u_{n+1}, x/2), F(u_{n+1}, u'_{n+1}, x/2)\}$$
$$= F(u_n, u'_{n+1}, x), \text{ by (iii)}$$
$$= F(Tu_{n-1}, Tu_n, x)$$
$$\leqslant F(u_{n-1}, u_n, x/h), \text{ by case I.}$$

Case III. $u_{n+1} \epsilon P$, $u_n \epsilon Q$.

Since $u_n \; \epsilon \; Q$ and is a convex linear combination of u_{n-1} and u'_n, we have

$$F(u_n, u_{n+1}, x) \min \left\{ F\left(u_{n-1}, u_{n-1}, \frac{1+h}{2} x \right), F\left(u'_n, u_{n+1}, \frac{1+h}{2} x \right) \right\}$$

Now if $F\left(u_{n-1}, u_{n+1}, \frac{1-h}{2} x\right) \leqslant F\left(u'_n, u_{n+1}, \frac{1+h}{2}\right)$, then

$$F(u_n, u_{n+1}, x) \leqslant \min \left\{ F\left(u_{n-1}, u_n, \frac{1+h}{2h} x \right), F\left(u_{n-1}, u'_{n+1}, \frac{1+h}{2h} x\right), \right.$$
$$F\left(u_n, u_{n+1}, \frac{1+h}{2h} x \right), F\left(u_{n-1}, u_{+1}, \frac{1+h}{h} x \right),$$
$$\left. F\left(u_n, u'_n, \frac{1+h}{2h} x \right) \right]$$
$$= \min \left[F\left(u_{n-1}, u'_n, \frac{1+h}{2h} x \right), F\left(u_{n-1}, u'_n, \frac{3}{2} \frac{1+h}{h} x \right), \right.$$

since, by (C),

$$\min \left[F\left(u_{n-1}, u_n, \frac{1+h}{2h} x \right), F\left(u_n, u'_n, \frac{1+h}{h} x \right) \right.$$
$$= F\left(u_{n-1}, u'_n, \frac{3}{2} \frac{1+h}{h} x \right).$$

Thus by case II,

$$F(u_n, u_{n+1}, x) \geqslant F\left(u_{n-2}, u_{n-1}, \frac{1+h}{2h^2} x\right)$$
$$\geqslant F(u_{n-2}, u_{n-1}, x/h).$$

The case when $F\left(u'_n, u_{n+1}, \frac{1+h}{2} x\right) > F\left(u_{n-1}, u_{n+1}, \frac{1-h}{2} x\right)$ may be dealt with similarly. Thus in all cases

$$F(u_n, u_{n+1}, x) \geqslant \min \{F(u_{n-2}, u_{n-1}, x/h), F(u_{n-1}, u_n, x/h)\}.$$

Now as in [2] (see also Lemma [4]) it follows that $\{u_n\}$ is a Cauchy sequence and hence converges to z (say). If $U_{Tz}(\epsilon,\lambda)$ be any nhd of Tz then there exists an integer $N=N(\epsilon,\lambda)$ such that

(3·3) $n \geqslant N$ implies $F\left(u_n, z, \frac{1-h}{2h}\epsilon\right) > 1-\lambda$ and $F\left(u_n, u_{n+1}, \frac{1-h}{2h}\epsilon\right) > 1-\lambda$

Now by a routine calculation we get

$$F(u_{n+1}, Tz, \epsilon) \geqslant \min\left[F\left(u_n, z, \frac{1-h}{2h} x\right), F\left(u_n, u_{s+1}, \frac{1-h}{2h}\epsilon\right),\right.$$
$$\left. F\left(u_{n+1}, z, \frac{1-h}{2h}\epsilon\right), F\left(u_{n\times 1}, Tz, \frac{1+h}{2h}\epsilon\right)\right],$$

which, with the use of 3·3) gives

$$F(u_{n+1}, Tz, \epsilon) > 1-\lambda \quad \text{for all } n \geqslant N.$$

Thus $Tz=z$.

Corollary 1. Let $(X, \mathcal{F}, t)$ be a Menger space, where t is continuous and satisfies $t(x, x) \geqslant x$ for every $x \in [0, 1]$. If $T:X \to X$ is a generalized contraction on X and X is T-orbitally complete, then T has a unique fixed point $v \in X$ and $\lim_n T^n u = v$ for every $u \in X$.

Corollary 2. Let X be as in the Theorem. Let H be a nomepty closed convex subset of X and K a nonempty closed subset of H. If $T : K \to H$ satisfies (3·1) and the property that $u \in \partial_H K$, the boundary of K relative to H, implies $Tu \in K$, then T has a unique fixed point in K.

REFERENCES

1. Lj. B. Ćirić, On fixed points of generalized contractions on probabilistic metric spaces, Publ. Inst. Math. (Beograd) (N. S.) 18 (32) (1995), 71-78.
2. B. E. Rhoades, A fixed point theorem for some non-self-mappings, Math. Japonica 23 (1978), 457-459.
3. B. Schweizer and A. Sklar, Statistical metric spaces, Pacific J. Math. 10 (1960), 313-334.
4. S. L. Singh and B. D. Pant, Common fixed point theorems in probabilistic metric spaces and extension to uniform spaces, Honam Math. J. (to appear).

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2 P. 143-146
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० १४३-१४६

Seed Mycoflora And Its Role In Pre And Post Emergence Of Echinochloa Frumetacea (ROXB.) Link.

D N. JOSHI And R. S. ADHIKARI
Department of Botany, Govt. P. G. College, Pithoragarh–262502

सारांश

एकाइनोकोला फ्रूमेंटेसिया के बीजों से कवक की 31 जातियाँ वियुक्त की गईं। इनमें से कुछ कवकों ने निर्गमन के पूर्व तथा पश्चात क्षति प्रदर्शित की। कुछ कवक बीज के अंकुरण के प्रारम्भ से प्रौढ़ अवस्था तक रोग जनक सिद्ध हुए जबकि कुछ अन्य कवकों ने केवल परिपक्व पौधों में ही रोग उत्पन्न किया।

ABSTRACT

A total of 31 fungal species were isolated from the seed of *Echinochloa frumentacea*. Some of the isolated fungi exhibited pre and post emergence loss. Some fungi were pathogenic from the very beginning of the seed germination upto the adult stage while some other produced diseases only on the mature plants.

INTRODUCTION

Seeds are an ideal agency for survival of plant pathogens when the growing host is lacking. Association of the microorganisms with the seeds of crop plants has been reported by various workers. Some of the fungi associated with the seeds cause ample damge to the seeds in different ways. Germination of the seeds is appreciably affected by certain fungi due to the production of some chemicals which

function like germination inhibitors. When the seeds germinate, these fungi also become active and cause either seed or seedling mortality or produce diseases at the later stages (Gauman 1957, Papavizas and Christensen 1960, Thomas 1937, Nath *et al* 1970, Mishra and Kanaujia 1973 and Gupta *et al* 1973).

The present investigation deals with the seed mycoflora of *Echinochloa frumentacea*, its effect in pre and post emergence and toxicity of culture filtrates of various fungi on seed germination.

MATERIAL AND METHODS

Seeds of *Echinochloa frumentacea* collected from the different localities of Kumaon were used for present investigations. The Blotter and Agar plate methods recommended by International Seed health Testing Association (1966) were followed for the isolation of seed mycoflora. To study the effect of mycoflora on seed germination, seeds were first surface sterilized with 0·1% $HgCl_2$ solution and then dressed with the fungal spores. For each fungus 100 dressed seeds were placed on agar and blotter plates and effect of the fungus on germination was recorded after a week. The effect of culture filtrates of different fungi on seed germination was studied by preparing culture of each fungus in 250 ml. flask containing Richards· liquid medium. After 15 days of incubation the liquid medium was filtered and the culture filtrate was collected. This culture filtrate was sterilized in an autoclave and seeds were soaked in it for 4, 8, 12, and 24 hours. To study the effect of culture filtrate on germination the soaked seeds were subjected to germination test.

Fungi were subjected to pathogenecity test in polythene house to find out there pathogenic nature and the post emergence loss caused by them, The inoculum was given in soil in the form of spore water suspension. In a sterilized pot 15 surface sterilized seeds were sown. Experimental pots were observed from seedling to seed formation.

RESULTS AND DISCUSSION

Out of 31 fungi isolated from the seeds of *Echinochloa Frumentacea*, fungi which exhibited either pre or post emergence loss were : *Aspergillus niger*, *Alternaria alternata*, *Cladosporium sphaerospermum*, *Curvularia lunata*. *Fusarium Oxysporum*, *F. solani*, *F. moniliforme*, *F. equiseti*, *Helminthosporium* sp., *Phoma sorghina*, *P. Glomerata*, *Penicillium crustosum* and *Rhizopus* sp.

It was observed that *Fusarium oxysporum*, *F. solani*, *F. equiseti*, *F. moniliforme*, *Phoma glomerata* and *Penicillium crustosum* showed more then 50% inhibition in seed germination when the seeds were dressed with the fungal spores. Culture filtrate of *Fusarium oxysporum* caused highest inhibition in seed germination.

Seeds soaked in culture filtrates of the said fungus for 4, 8, 12, 24 hrs. exhibited 30, 35, 45 and 75% inhibition in germination respectively. Seed germination was also considerably inhibited by the culture filtrates of *F. moniliforme*, *F. solani*, *Aspergilllus niger*, *Penicillium crustisum*, *Rhizopus* sp. and *Alternaria alternata*.

Experiments carried out for the pathogenecity tests revealed that following six fungi caused the post emergence loss :

(i) Fusarium oxysporum : After two weeks of seed germination some seedling started wilting from the tips and perished

(ii) Alternaria alternata : Nearly after two weeks of seedling formation small, oval, discoloured lesions appeared mainly on leaves of some plants. These spots become irregular in shape and were brown to grey in colour. Several spots coalsced to cover large area and sometimes caused death of the entire leaf.

(iii) Helminthosporium sp. : Disease symptoms were recorded on coleoptiles, leaves and leaf sheaths. On coleoptiles spots were circular and on leaves they were in the form of large streaks. In case of severe infection, heads failed to emerge and the plants perished.

(iv) Phoma sorghina : Some seedlings showed retarded growth for about two weeks and later developed visible symptoms on leaves. Small colourless spots appeared and grew in size, many of them fused and formed black necrotic patches on the leaves.

(v) Curvularia lunata : After 10 days of inoculation some plants were attacked by the pathogen. Firstly the mycilium grew on leaf surface and later formed dark brown and black spots. Histopathological studies showed that the mycilium was intercellular. Conidiophores bearing conidia emerge through the stomata forming dark brown dusty mass on the leaf surface. Such dusty mass was also present on the ear heads which caused disolouration of grains.

(vi) Cladosporium sphaerospermum: Small round dark grey to black spots appeared on the leaf surface after three weeks of seed germination. The spots were scattered densely on the whole leaf surface which later on became yellow. At the maturity of the plants the lower leaves were severely infected and the upper leaves showed less infection.

ACKNOWLEDGEMNT

The financial assistance given by the U. G. C. to one of us (D. N. J.) is gratefully acknowledged.

REFERENCES

Anonymous, 1966, *Proc. Int. Seed Test. Ass.32*: 108.

Guaman, E. 1957, Phytopath., *47*: 342.

Gupta, V. K., B. Ram L. T. Palmer and L. M. Joshi, 1973; *Indian Phytopath, 26*: 156.

Mishra, R. R. and R. S. Kanaujia, 1973; Studies on certain aspects of seed borne fungi. *Indian Phytopath, 26* : 284.

Nath, R., S. B. Mathur and P. Neergaard, 1970 ; *Proc. Int. Seed Test. Ass., 35* : 225.

Papavizas, G. C. and C. M. Chritensen, 1960; *Cereal Chem. 37* : 1.

Thomas, R. C. 1937; *Ohio Exp. Sta. Bimon. Bull, 22* : 11.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 2 P. 147-150
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० १४७-१५०

Effect Of A Synthetic Bioregulant On Flowering, Fruiting & Yield In Bitter Gourd (Momordica Charantia. L)

UMESH PRAKASH SAXENA
Department of Botany, R. H. Govt. P. G. College, Kashipur-244713

सारांश

करेला-पूसा दो मौसमी के फूल,फल व पैदावार पर इथेफान के प्रभाव का अध्ययन किया गया। पत्तियों पर इथेफ़ान के छिड़काव से करेले के फूलों की संख्या में कमी हुई परन्तु फूल बनने को प्रोत्साहन मिला। इथेफ़ान के छिड़काव से फल की लम्बाई और आकार दोनों कम हो गये, परन्तु कुल पैदावार बढ़ गयी। पैदावार में यह बढ़ोतरी इथेफांन छिड़काव की मात्रा के अनुपात में पाई गयी।

ABSTRACT

The influence of ethephon on flowering, fruit set and yield of bitter gourd (*Memordica charantia* L. cv. Pusa domousmi) was studied. Foliar application of ethephon reduced total flowering, but induced significant acceleration in fruit set. Ethephon reduced the length of fruits and their size at all the used concentration. Ethephon increased the yield of fruit, progressively with increasing concentration.

INTRODUCTION

Ethephon, an ethylene releaser, has been found to stimulate fruit set and yield in variety of plants.[1] Foliar application of ethephon increased fruit set in *Cucumis*

melo[9], *Cucurbita moschata*[7], Ethephon has been reported to induce better fruit characters and yield in *Abelmoschus esculenttus*[4] and *Solanum melongena*[3].

Since a limited information was available on the influence of ethephon on bitter gourd (vern. Karela), the present investigation was undertaken to elucidate the influence of ethephon on flowering, fruit morphology and yield in this crop, which is cultivated in several states of India for green fruits.

MATER1ALS AND METHODS :

Bitter gourd (*Momordica charantia* L. cv. Pusa Domousi) of family Cucurbitaceae was considered as test crop in the present investigations.

Plants were sprayed four times with aqueous solution of ethephon at weekly interval beginning at two leaved stage by a hand automiser. Tween-20 at 0·01% was used as surfactant. Three replicates of ten plants each were considered. Periodic observations were made on flowering, fruit set, fruit number, fruit morphology and finally the yield per plant.

RESULTS AND DISCUSSION :

The experimental observations of the present investigation are presented in table-1. Foliar application of ethephon progressively decreased the flower production with increasing concentration, the maximum reduction being at 400 ppm. The increase in the fruit set percentage was in proportion with the concentration of ethephon in *Momordica charantia*. The maximum production of fruits ($52·1 \pm 2·74$ per plant) was observed in plants treated with ethephon at 400 ppm. Ethephon was found to reduce the proportion beteen flowers and fruits gradually with increasing concentration. Such effects of ethephon has been reported for *Cucumis melo.*[9] *Cucurbita moschata*[7]. *Cucumis sativus*[5]. *Abelmoschus esculentus*[4] and *Solanum melongena*[2].

Although ethephon significantly enhanced fruit production but reduced the average length of fruit at 50, 100, 200 and 400 ppm and did not affect it significantly at 25 ppm in *Momordica charantia*. The size of fruit was reduced by foliar spray of ethephon at all the concentrations used. This reduction was in proportion to the concentraton of the bioregulant. The present observations are compatible with those reported for *Cucumis sativus*[5], *Abelmoschus esculentus*[4] and *Solanum melongena*[2]. The bioregulant failed to induce parthenocarpic fruit set. These cxperimental findings are in accordance with those reported for *Cucumis melo*[8] and *Abelmoschus esculentus*[4].

Foliar spray of ethephon enhanced the yield of fruit at all the used concentr-Tma.naeshxomuirit m yield i. e. 2. 163 kg, per plant was achieved from the pla-

nts applied with ethephon at 400 ppm. The experimental results show that ethephon significantly increased the yield.

ACKNOWLEDGEMENT

Financial support from Universiry Grants Commission (grant code no F. 25-4 (8857)/77 (S. R. 1) is acknowledged.

REFERENCES

1. Amchem Products Inc. 1967 Amchem 66-329. A new growth regulator.
2. Bhatnagar V. K. 1980 Ph. D Thesis Rohilkhand University, Bareilly.
3. Bisaria A. K. 1974 Ph. D Thesis Meerut University, Meerut.
4. Bisaria A. K. 1979 Philipines Agric. 62 (4) : 316-320.
5. Cantiffe, D. J. 1977 Hort. Science 12 : 58.
6. Cooke, A. R. and Randall, D. L. 1968 Nature, 213 : 974.
7. Dewilde, R. C. 1971 Hort. Science, 4 : 156.
8. Elassar, G. et al 1974 Hort. Science, 9 : 230-239.
9. Lower, R. L. and Miller C. H. 1969 Nature, 222 : 1072-1073.
10. Mohan Ram, H. Y. 1972 In advances in plant morphology (eds.) Y. S. Murthy, B. M. Johri, H. Y. Mohan Ram and T. M. Varghese. pp. 304-314.
11. Shanmugavelu, K. G. et al 1973 South Ind. Hort. 21 (3) : 94-99.

TABLE-1

Influence of ethephon on production of flowers, fruits ,fruit characters and yield in bitter gourd. *Momordica Charantia L.*

Observation	Control	concentration of ethephon in ppm.				
		25	50	100	200	400
Average No. of Flowers per plant.	485·8	477·8	457·7	442·8	420·7	382·9
Average No. of fruits per plant.	20·9 ±0·95	22·7 ±0·03	31·6 ±1·41	37·5 ±2·07	41·3 ±2·31	52·1 ±2·74
Flowers : Fruits	23·24 : 1	21·04 : 1	14·48 : 1	11·80 : 1	10·18 : 1	7·34 : 1
Length of fruit (cm.)	13·11±0·51	12·60±0·44	11·42±0·35	10·09±0·30	9·91±0·24	8·72±0·19
Diameter of fruits (cm.)	3·90±0·18	3·70±0·16	3·61±0·13	3·90±0·15	3·24±0·11	2·96±0·08
Size of fruit (Lx D)	51·12	46·62	41·22	39·35	31·78	25·81
No. of normal seed per fruits.	39·5 ±0·81	38·2 ±0·89	39·7 ±0·70	37·4 ±0·82	36·8 ±0·75	35·3 ±0·96
No. of abortive seeds per fruit.	3·0 ±0·19	3·5 ±0·21	3·2 ±0·14	3· 9±0·20	4·3 ±0·28	6·9 ±0·43
Total seeds per fruit	43·3 ±1·72	41·7 ±1·63	42·9 ±1·75	41·3 ±1·82	41·1 ±1·65	42·2 ±1·78
Yield of fruit per plant (kg.)	1·472	1·507	1·712	1·928	2·015	2·163

Jour. U. P. Govt. Acad. Soc. 1985-86, Vol. 2, P. 151-155
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० १५१-१५५

Seasonal Histomorphological Studies On Thyroid Of A Fresh Water Teleost : Channa Punctatus

DHIRENDRA KUMAR and D. K. SINGH
Zoology Deptt., Govt. Raza P. G. College, Rampur.

सारांश

प्रस्तुत लेख में चन्न पंकेटटस मछली की थाइरायड ग्रंथि की संरचना एवं मछली के प्रजनन चक्र के पारस्परिक सम्बंधों का अध्ययन किया गया है। जनन काल में इस ग्रंथि की कोशिकाओं का आकार तथा विस्तार बढ़ने के साथ ही इन कोशिकाओं में उच्च क्रम की सक्रियता भी देखी गई है।

ABSTRACT

The thyroid gland in fishes is diffused in the lower jaw region in the vicinity of ventral aorta. In the present study its histomorphology was studied in relation to seasonal cycle. During the course of this study it was noted that thyroid follicles show an increase in their area as well as the height of the epithelial cell showing a higher state of thyroid activity during breeding season, which indicates towards the possible correlation between thyroid and breeding cycle.

INTRODUCTION

The thyroid gland in teleosts was reported for the first time by Simon (1844). Generally it is diffused with groups of follicles scattered around ventral aorta and its afferent arteries. Gudernatsh (1911) has extensively studied the thyroid structure

in a number of teleost fishes. Compact and encapsulated thyroid has been reported by Addison and Richter (1932), Matthews (1984) and Srivastava & Sathyanesan (1971) in different fishes studied by them. Seasonal changes in teleostean thyroid have been studied by Barrington (1963) and Agrawala and Dixit (1979). The present study aims at determining the correlation between the thyroid activity and seasonal cycle in *Channa punctatus*, a fresh water teleost.

MATERIAL AND METHOD

Live *Channa punctatus* were collected from local ponds and rivers of Rampur district with the help of local fishermen every fortnight for a year from January to December (1984). The thyroid was taken out along with ventral aorta and fixed in aqueous and alcoholic Bouin's fluid and Zenker's formol. Microtomic sections of 4 5 micron thickness were cut and stained in Hiedenhain's hematoxylin with eosin as counterstain.

For measuring thyroid activity method of Tamura and Honma (1970) was adopted. The follicular epithelial cell height was measured by a caliberated ocular micrometer at two perpendicular points in each follicle and an average was calculated for each of them for every month. The area of thyroid follicle was calculated with the help of Zieswinkle's planimeter and then an average was worked out for each month in a year.

OBSERVATION

For the study of seasonal change in the thyroid of *Channa punctatus*, the average area of thyroid follicle, shape of epithelial cells and their nuclei, height of epithelial cells and nature of colloid within the follicles were studied in different months of a year. The findings are as follows :

April to June

The average area of thyroid follicle during these months measures 5.88 sq. mm. 6.02 sq. mm. and 6.80 sq. mm. : while the average epithelial cell height of follicies measure 4.38 micron, 4.56 micron and 5.56 micron in April, May and June respectively. The follicular cells are of flat squamous type with elongated nuclei. The colloid is homogeneous and fills the follicle completly.

July to September

During these months the average area of thyroid follicle measures 7.37 sq. mm., 4.81 sq. mm. and 3.80 sq mm. ; while epithelial cell height measures 6.42 microns 6.01 microns and 5.98 microns in the months of July, August and September

respectively. The cells become cuboidal in shape with spherical nuclie. The colloid become heterogeneous. Peripheral vacuoles start appearing in early July and become more prominent in latter months. In late September few empty follicles make their appearance.

October to December

During this period the average area of thyroid follicle is 4.29 sq. mm., 4.68 sq. mm. and 4.90 sq. mm. ; while the epithelial cell height measures 4.20 microns, 4.09 microns and 3.69 microns in the months of October, November and December respectively. The epithelial cells regain their flat shape with elongated nuclei. The colloid again becomes homogeneous and dense.

January to March

During this period the average area of thyroid follicle is 5.11 sq. mm., 4.25 sq. mm. and 5.37 sq. mm.; while the epithelial cell height measures 4.01 microns, 4.20 microns and 4.28 microns in the months of January, February and March respectively. The colloid becomes homogeneous.

Table 1 :—Showing variations in the average area of thyroid follicle and average epithelial cell height in different months of a year.

MONTHS	AREA (sq. mm.)	CELL HEIGHT (microns)
January	5.11	4.01
February	5.25	4.20
March	5.37	4.25
April	5.88	4.38
May	6.02	4.56
June	6.80	5.56
July	7.37	6.42
August	4.81	6.01
September	3.80	5.98
October	4.29	4.20
November	4.68	4.09
December	4.90	3.69

DISCUSSION

Seasonal activity of thyroid has been a subject of interest for a number of workers (Dodd and Matty, 1964; Swift, 1967 and Singh, 1968c). The changes in epithelial cell height of thyroid follicle were considered to be the true reflection of thyroid activity, prior to radioiodine introduction (Barrington, 1963 and Swift, 1969). Tamura and Honma (1970) in *Leucopsarian petersi* and Agrawala and Dixit (1979) in *Puntius sophore* have reported increase in cell height during summers and decrease during winters. These findings are supported by present study on *Channa punctatus*, as in this case too the cell height increases during summers and decreases during winters.

Swift (1967), Singh (1968c) and Agrawala and Dixit (1979) studied the seasonal activity of thyroid and have reported two peaks of thyroid activity in the fishes studied by them. In the present study in *Channa punctatus* only one peak of thyroid activity was recorded that is from July to September.

There are good number of investigators who suggest a correlation between thyroid activity and gonodal cycle. Yaron (1969) reported increased activity during spawning phase. Singh (1968c) in *Mystus vitatus* and Srivastava and Sathyanesan (1971b) in *Puntius sophore* using radioiodene technique have reported an enhanced state of thyroid activity during breeding season. In the present study the thyroid of *Channa punctatus* show only one peak of thyroid activity i. e. July to September, which is the spawning period in this fish.

REFERENCES

1. Addison, W. H. F. and Richter, M. N. — Biol. Bull. (1932) *62* : 472-476.
2. Agrawala, N. and Dixit, R. K. — Z. Mikrosk. (1979) *93* : 138-146.
3. Barrington, E. J. W. — An Introduction to General And Comparative Endocrinology. Clarendon Press. (1963) London.
4. Dodd, J, N. and Matty, A. J. — Gen. Comp. Endocrinol. (1964) *12* 604-608.
5, Gudernatsch, J. F. — J. Morphol. (1911) *21* : 709-782.
6. Ivanova, A. — Dokl. Akad. Nank. U.S.S.R. (1954) *98* : 693-696.
7. Lieber, A. — Z. Wiss. Zool. (1936) *148* : 3ʒ4-400.
8. Matthews, S. A. — Anat, Rec. (1948) *101* : 251-26?,

9. Olivereau, M. — Arch. Anat. Micro. Morphol. Exper. (1955a) *44* : 236–264.

10. Simon, J. — Phil. Trans. (1844) *134* : 295-303.

11. Swift, D. R. — Sym. Zool. Soc. London. (1967) 2 : 17-26.

12. ———— — J. Exp. Biol. (1969) *36* : 120-125.

13. Singh, T. P. — Z. Zell. Forsch. (1968c) *87* : 424-428.

14. Srivastava, S. S. and Sathyanesan, A. G. — Z. Mikrosk. Anat. Forsch. (1971b) *83* : 145-165.

15. ———— — Z. Mikrosk. Anat. Forsch. (1971) *83* : 237-241.

16. Tamura, E. and Honma, Y. — J. Ichthyol. (1970) *17* : 29-36.

17. Yaron, Z. — Gen. Comp. Endocrinol. (1969) *12* : 604-608.

Jour. U. P. Govt. Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2 P. 156-159
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड २; पृ० १५६-१५९

Effect Of Magnesium Treatment Of Some Haematological Values Of Noemacheilus Montanus

S. N. BHATT
Dept. of Zoology, Govt. P. G. College, Gopeshwar.

सारांश

निमोकाइलस मोन्टेनस मछली को 30 घन्टे तक मैगनीसियम सल्फेट (150 पीपीएम) के प्रभाव में रखने से उसकी लाल रक्त कणिकाएं अधिक बनती हैं, तथा कुछ सफेद रक्त कणिकाओं में कमी आ जाती है। हीमोग्लोबिन, लाल रक्त कणिकाओं के हीमोग्लोबिन का माध्य, लिम्फोसाइट्स और न्यूट्रोफिल्स के प्रतिशत घट जाते हैं जब कि थ्रोम्बोसाइट्स की संख्या विशिष्ट रूप से बढ़ जाती हैं। यद्यपि मैगनीसियम के प्रयोग का मछली पर कोई मृतक-प्रभाव नहीं पड़ता है।

ABSTRACT

The effect of magnesium sulphate (150 ppm) treatment on *Noemacheilus montanus* for a period of 30 hrs. showed erythropoiesis and a little leucopenia. The Hb concentration, mean corpuscular haemoglobin (MCH), lymphocytes and neutrophils decreased, while the thrombocytes showed a marked increase in their number. However, the magnesium treatment did not produce any lethal effect.

INTRODUCTION

Magnesium is one of the important useful metals which is always present in small quantity in the animal's body (Oser, 1971). However, no detailed study

has been made on the effect of magnesium on the blood values of fishes. The present study deals with the effect of magnesium on some haematological parameters of *N. montanus*.

MATERIAL AND METHODS

Fishes were collected from different tributaries of river Alakananda from Garhwal Himalayas. Only adult male and female specimens of equal number were used. They were acclimatized under laboratory conditions in tapwater (temp. 14° C).

Two groups of 7 fish each were exposed to 150 ppm Mg SO_4 for 30 hrs. The mortality was nil and all the fishes moved actively in the aquaria. Five fish (two from each aquarium) were taken for the haematological studies. Parallel groups of fishes, not treated with the metal, were used as the control. Treated fishes were dried with filter paper and their blood samples were collected.

Standard body length and weight for the control and experimental fish groups were $5{\cdot}66 \pm 0{\cdot}312$ cm and $5{\cdot}17 \pm 0{\cdot}112$ g, and $6{\cdot}04 \pm 0{\cdot}300$ cm and $5{\cdot}24 + 0{\cdot}140$ g. respectively. The total erythrocyte count (TEC), total leucocyte count (TLC), Haemoglobin concentration (Hb) and mean corpuscular haemoglobin (MCH) along with the differential blood cell counts were determined by the usual clinical methods as described earlier by Bhatt and Singh (1981).

RESULTS AND DISCUSSION

Values obtained from control and experimental fish groups are summarized in Table 1 and 2.

Fishes transferred to magnesium sulphate solution did not show any violent response. Following the 150 ppm magnesium sulphate treatment for 30 hrs the TEC value increased by 6·66%, while the rest of the values, viz., the TLC, Hb concentration and MCH decreased significantly by 24·48% ($P < 0{\cdot}05$) 18·94% ($P < 0{\cdot}001$) and 25·40% ($P < 0{\cdot}01$) respectively. Treatment caused a marked decrease in the small and large lymphocytes and neutrophils, and eosinophils disappeared (Table 2). Interestingly the erythroblasts decreased more conspicuously, while the mature erythrocytes were noted in maximum number. Basophils (0·6%) were noted following the magnesium treatment. However, the haemoblasts did not show any remarkable fluctuation. Thrombocytes increased more conspicuously after magnesium treatment (Table 2).

Magnesium is found constantly in small amount in the blood, being distributed equally between the cell and the plasma (Oser 1971). In the present study the total erythrocyte count increased following the magnesium sulphate treatment.

This indicate that the magnesium salt influenced the erythrocytosis which was further evident by an increase in the mature erythrocyte percent in the circulating blood (Table 2). In *N. montanus* the leucopenia was due mainly to reduction in number of circulating small and large lymphocytes and neutrophils. High amount of magnesium, which might have entered in blood circulation, caused leucopenia in this fish. It appears that the effects of magnesium salt caused the reduction in the Hb content. It might be possible that higher amount of magnesium might have entered the blood cell cytoplasm and thereby relative amount of Hb might have withdrawn from the cells. This is further supported by the decrease in MCH value following the magnesium treatment.

Table 1. Changes in some haematological values of *N. montanus* following its treatment with Magnesium sulphate solution at 150 ppm. All Values are mean ± SE (Standard Error),

No. of observations	TEC (x 10^6/mm^3)	TLC (/mm^3)	Hb (gm%)	MCH (pg)
Control (5)	3·75±0·251	17580±1418·9	14·36±0·203	39·01±2·757
Post-Treatment (5)	4·00±0·058	13276±1430·76[c]	11·64±0·231[a]	29·10±0·838[b]

Significantly decreased— a ($P<0·001$), b ($P<0·01$) and c ($P<0·05$)

Table 2. Differential blood cell counts (%) of *N. montus* following its treatment with Magnesium sulphate (150 ppm) for 30 hrs. All values are mean ± SE.

Status	Haemoblasts	Lymphocytes Small	Lymphocytes Large	Neutrophils	Eosinophils
Control (5)	1·6±0·74	22·2±2·35	8·2±0·73	10·8±0·86	1·4±0·67
Post-Treatment (5)	1·8±0·37	16·6±0·50	2·8±0·19	1·8±0·37	—

Status		Baeophils	Thrombocytes	Erythroblasts	Erythrocytes
Control	(5)	—	53·6±1·20	2·8±0·79	97·2±0·79
Post-Treatment	(5)	0·6±0·59	76·4±1·12	1·8±0·37	98·2±0·37

REFERENCES

1. Bhatt, S. N. and Singh, H. R. (1981). Haematological studies on some blood parameters of *Schizothorax richardsonii* (Gray). Intl. J. Acad. Ichthyol., 2 (1), 13-15.
2. Oser, B. L. (1971). Hawk's physiological Chemistry, TMH Edition, pp. 1472.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2, P. 160-163
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० १६०-१६३

The Parallel Urge : E. A. Robinson's Theory Of Poetry

B D. JOSHI
Deptt. of English, Govt. Raza College, R mpur.

सारांश

सामान्यतः ई० ए० रॉबिन्सन (1869-1935) को असफलता, असंतोष तथा निराशावाद का कवि माना जाता है। अपने पात्रों के अंतर्मन में गहरी पैठ के लिए यद्यपि रॉबिन्सन चौथे दशक में बहुत ख्याति प्राप्त कर चुके थे तथापि उनके आलोचकों ने उनके काव्य सिद्धान्तों को ध्यान में न रख कर उन्हें उपेक्षित कर दिया है। प्रस्तुत शोध निबंध में रॉबिन्सन की समानान्तर आलोचनाभिव्यक्ति को उजागर करने का प्रयास किया गया है, जिसमें वे टी० एस० इलियट तथा न्यू 'क्रिटिक्स' की काव्य-समालोचना के पूर्ववर्ती रहे हैं।

ABSTRACT

E. A. Robinson (1869-1935) has generally been held the poet of failure, pessimism and disappointment. Though his peep into the 'people' won him great repute in the forties, yet the criticism relegated his poetic tenets to the extent of dooming him to isolation. The present article is aimed at bringing out some aspects of Robinson's parallel urge wherein he anticipated the poetic criticism of T. S. Eliot and the New critics.

Mortimer Adler's proposed nomination of Edwin Arlington Robinson in his '*Great Books of the Twentieth Century*' along with the two widely acclaimed American Poets— T. S. Eliot and Robert Frost— caused surprize to some American readers as early as 1977. To date Robinson has been the most isolated of the

American poets. Although Robinson's insistence on the poet's task to "touch to life, the one right chord/wherein god's music slumbers and awakes/To Truth one drowsed ambition......"[1] and his fulfilment of the resolved ideal in his contra-positiveness to state both sides of situation of his 'people' has won him reputation to unchallenged pre-eminence among the American poets, yet his reluctance to adhere to the sophisticated slogans of the Imagists and his so-called apathy to for-see the contemporary poet's preference of the fleshless mythic figures in a symbolic garb to the 'people' as unique individuals are among the factors which Robinson critics have exploited to shadow his eminence. Such critics seem to relegate Robin-son's poetic tenets and his critical labour wherein Robinson anticipated the poetry criticism of T. S. Eliot and the New Critics.

Robinson had a surging ambition to draw little poetry ever since he was "Old enough to lay a plan for an air-castle".[2] He remained in a "State of semi-agitated punk"[3] right through his childhood till the discerning years of his tremen-dous poetic output. He didn't believe in theorizing about poetry in a sophisticated manner and never wrote to illustrate a theory. His conviction, that no poem is likely to succeed merely because of the theory in which it might be written, irked Robert Frost to the extent of the latter's recollection (in his 'Introduction' to Robin-son's posthumously published 'King Jasper') of the Place (of Bitters). In his letters Robinson has laid stress on the fact that mere commitment to a theory does not argue a true poetic vision. He insists on "the good and bad solid old-fashioned human qualities"[4] that serve as a '*leit-motif*' to all creative activity. These ideals and aspirations spring up from the willingness of the poet to look life in the face 'at unconjectured intervals' and to render with an intensely perceived experience which he likes to call direct honesty of vision :

"The predominance of this willingness to be honest with never the sugges-tion of surrender— or even of weariness— is to my mind the most admirable thing in life or in art— provided always the artist has the faculty of being interesting. To be more concrete I will say I have long thought 'Non Sine Dolore' not only interes-ting but exciting."[5]

Robinson is remarkably consistent in his conviction. In a letter to L. N. Chase, he writes. "As a rule I see the end of a thing before I begin it (if I don't see it then, I am likely never to see it) and the rest of the process is how the thing goes and so far as I see one method produces about the same result as the other provided I know what I am trying to say......"[6] Robinson's emphasis on thought texture rather than the character of expression is an outcome of his sensitivity to encompass and relate to his varied experience blatantly brooding up during the nineties and the early decades of the twentieth century. He wished that a poet should bring together the non-consecutive, assymmetrical and shadowed fragments of

experience and try to make them fit effectively enough to permit their precipitation. He told a newspaper reporter, "Poetry should not be propaganda, or if it is, the propaganda ought to be well-concealed, to be, one might say, reprecipitated."[7] A corresponding statement was given by him to Karl Schriftgiesser in 1932, "......All propaganda that is permissible in art, has got to be pretty thoroughly disguised."[8]

While insisting on the content in poetry Robinson does not exclude from it the natural expression which he conceives as "a language that tells us through a more or less emotional reaction something that can not be said".[9] The unanalyzable emotions seek their resolution in a specific use of language. He remarks, "Ideas are, of course inseparable from the medium, but much memorable poetry is not important for what is said".[10] To Robinson, the task of the poet is to give a sure touch to his pent-up emotions, to externalize his innermost feellings and (yet) to weave a fringe ('a nimbus of what can't be said') about it, raising it from personal experience to impersonal one. Thus his conviction is akin to that of T. S. Eliot regarding the man who suffers and the artist who creates : "what happens is a continual surrender of himself as he is at the moment to something which is more valuable. The progress of an artist is a continual self-sacrifice, a continual extinction of personality."[11]

Robinson's interest in language was not a dilettante's interest in words just for their sound effects as has Swinburne or an innovator's preoccupation with language and metre as Hopkins has strided into. To him words have inexplicable significance and they deserve utmost care of the artist in handling them for they provide the vehicle to express the deeper anguish, joy and struggle of the soul. It is through the special use of words and his insight into subtleties of sound and sense that he plans his "System of opposites" and elaborates it to the extent of "creating a fictitious life in direct opposition to a real life which I know".[12] He remains so meticuliously careful of his personal integrity that he hopes to "make some despairing devil a little stronger and a little better satisfied with things— not as they are, but as they are to be".[13]

Robinson is so identified with his work that his intentions and his faculties remain indistinguishable from the act of creation. He has an edge over the New Critics who have revelled in the intricate pattern of words. He says: "Words, in their very nature no matter how intense or lyrical their expression, must obviously admit subtleties of sound and sense that would not be possible in any conceivable combination of tones ... On the other hand, it is equally true that many poets—Swinburne and Lanier for example — have gone altogether too far in trying to make words do the work of tones. Generally speaking, I should be inclined to say that the field of poetry is infinitely more various and less definable than that of music, for the simple reason that Poetry is language and music at the same time".[14]

Robinson is against any imbalance between poetic inspiration and poetic craftsmanship. To him, the trenchant inspiration and poetic craft includes a poet's faculty in seeking recognizable words which have at the same time rhythm and music in them, thus, bringing to the poetic core the emotional as well as mental recognition that fruitions in his theory of poetry "— '*Non Sine Dolore*'— not only interesting but exciting".

REFERENCES

1. Selected Early Poems and Letters Holt Rinehart and Winston, 1965, p. 56
2. Selected Letters (Macmillan, Newyork) p. 9
3. *Ibid*, p. 63
4. *Ibid*, p. 93–94
5. *Ibid*. p. 65
6. *Ibid*, p. 102 -103
7. Hagedorn, Hermann *Edwin Arlington Robinson*, 89
8. Karl Schriftgiesser 'An American poet speaks His Mind. Boston Evening Transcript Nov. 4, 1933 Book section p. 1
9. Selected letters, p. 95
10. Evans, Nancy, *Edwin Arlington Robinson*, p. 679
11. Eliot, T. S. '*The sacred wood*, essays on Poetry and Criticism' (Methuen and Co. Ltd. London, 1966 p. 56
12. Selected Early poems and Letters, p. 206
13. Untriangulated Stars, Harvard University Press p. 273
14. Selected Letters, p. 96

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 2, P. 164-169
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका, १९८५-८६, खंड-२, पृ० १६८-१६९

Social Awareness And Humanitarianism In The Novels Of Charles Dickens And Premchand : A Comparative Study

M. Ram
Research Scholar, Department of English, Govt. Raza College, Rampur.

सारांश

(चार्ल्स डिकेन्स तथा प्रेम चन्द को क्रमशः अंग्रेजी व हिन्दी उपन्यासकारों का सम्राट माना जाता है। यद्यपि दोनों उपन्यासकारों के सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश अलग-अलग है परन्तु फिर भी दोनों ने ही समकालिक सामाजिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है, दोनों घोर मानवतावादी हैं तथा दोनों ने अपने उपन्यासों व कहानियों के माध्यम से समाज में चेतना लाने का प्रयास किया है। दोनों ने अपने-अपने समाज को साहित्यकार की पैनी दृष्टि से देखा है तथा सामाजिक बुराइयों का पर्दाफाश किया है।)

ABSTRACT

(Charles Dickens and Prem Chand are regarded as emperors among the novelists of English and Hindi languages respectlvely. Although the socio-cultural enviornment of both the novelists is different, yet both have depicted contemporary social circum stances realistically, both are staunch supporters of humanitarianism, and both have infused awareness in the society through their novels and stories. Both have observed their societies with penetrating literary eyes and have unveiled the social evils.)

Charles Dickens was born in 1812 and "the years from 1815 to 1830 were the bleak years in the annals of the London poor"[1]. So many reformatory agencies were at work. Mrs. Fry was working for prison reforms since she first visited a

prisoner at Newgate in 1813. Robert Owen about 1813 presented a new view of society which may be regarded the larva of modern socialism. Humanitarian reforms urged by Bentham and his friends had done something to alleviate the savagery of the late century. Hanging in chains was abolished in 1884 and capital punishment was reserved for murder only. The library of Francis Place at Charing Cross was the place of intellectual congregation for socio-political analysis of the country and the world. The Napoleonic war came to end in 1815. On the other hand, when Prem Chand opened his eyes in 1880, India had witnessed the mutiny of 1857 and attitude of Indian political leaders and intellectual thinkers was much influenced by the commencement of First World war, Russian Revolution, Swadeshi and Satyagrah Movements and Dandi March launched by M. K. Gandhi. So many social reform organizations like Aryasamaj, Brahmasamaj, Ram Krishna Mission etc. came into existence and socio-religious reformers and preachers became active. England was passing through the age of Industrial revolution and in India, during the age of Prem Chand industrialization and urbanization had begun. As a whole, if we make a general survey of the ages of both the novelists, we come to the conclusion that these were the ages of turbulance and turmoil, revolutions and counter-revolutions, social lawlessness and political instability, feudal exloitation and ecclesiastical corruption, aristocratic tyranny and monarchial despotism, class struggle and communal disharmony, industrial development and rural restlessness, scientific growth and religious preaching and these epochs heralded an era of human rights, democracey and self rule. Further, degradation of social and moral values increased the number of prostitutes. In 1816 in England the number of prostitutes was about the 30th of the total population.

Thirty years later Dickens wrote :

"Incontinence was so much the rule in England that if his own son was particularly chaste, he should be alarmed as if he could not be in good health.[2]"

Dalmandi in Benaras which Prem Chand has depicted in *Sewa Sadan* was the heaven for them and white clothed gentry proudly visited it. In Calcutta alone, there were about 16000 prostitutes.

Hunger, poverty, inhuman treatment of prisoners, pathetic conditions of prisons, crippled education system with cruel and irresponsible teachers incarnated in Mr. Creakle by Dickens in *David Copperfield* and cruel head master Mr. Bheekhan lal, hinted by Prem Chand when he came in contact with him at Gorakhpur. Child labour and exploitation of children and widows in mills, factories and farms were other characteristics of the age as well as of the themes of their novels. Prisons in *A Tale of Two Cities* and *Karma Bhumi* are dirty and inhuman. Further some scientific developments as introduction of railways, Darwin's theory of evolution also exercised influence on the minds of intellectuals and hence on both

these novelists too. Almost all the Victorions, as pointed out by Compton Rickett, were effected by these developments :

"In fiction, the scientific spirit is no less discernible, the problems of heredity and environment preoccupying the attention of the novelist. The social problems of early Victorians, of Charlotte Bronte, Dickens, Kingsley and Reade give place to points in biology, psychology, pathology."[3]

Prem Chand also refers to Darwin in *Kayakalp*. Prince of Harshpur, Indra Vikram Singh goes to Europe to study science and meets a Buddhist monk in Berlin, who advises him to go to Tibet for spiritual learning. Here he visits a Mahatma (hermit) who claims to be Darwin in his previous incarnation. Rejuvenation of Queen Devpriya and well equipped laboratory of Mahendra in a cave are the clear evidence of the impact of Science.

Prem Chand and Dickens both rose from penury to wealth and fame. Both became orphans at the tender ages and both struggled hard to meet out their financial difficulties as well as those of their families. Neither of them could get proper education. These pathetic experiences of infancy stamped imperishable impressions upon their imagination and they wielded their mighty pens against social injustice, economic inequality, official harassment, aristocratic tyranny, delayed justice and corrupt legal machinery and so on. *Oliver Twist* is an attack on the working of the Poor law and *Karma Bhumi*, *Ghaban*, *Kayakalp* and *Premashram* are the fatal onslaughts on the Indian legal system.

Money was the symbol of respect and prestige and it grew to be the most powerful tool in the hands of rich people. Mr. Dombey in *Dombey and Son* and Gyan Shankar and Rai Kamalanand in *Premashram* represent these traits. Money serves as the agent of separation and isolation for Pip and Gyan Shankar from their families. Economic culture is the theme of Godan.

Dickens and Prem Chand were the apostles of social awareness which they introduced in contemporary society by ruthlessly exposing social evils in all their manifestations and by creating situations and characters which satirised contemporary social set-up. Their novels arouse sympathy for the poor, oppressed and down-trodden. The descriptions of poverty and hunger move our hearts. For example :

'Not before dark night did the men and women come back to the children wailing and breadless. Then the miserable bakers' shops were beset by long files of them, patiently waiting to buy bad bread and while they waited with stomachs faint empty, they beguiled the time by embracing one another on the triumphs of the day and achieving them again in gossip. Gradually, these strings of ragged people shortened and frayed away and then poor lights began to shine high in

windows and slender fire were made in the streets at which neighbours cooked in common, afterwards suppling at their doors.[4]

Prem Chand vividly describes the house of Mangal, a sweeper in the story *Doodh Ke Keemat* :

"There was a neem tree before the house. Under it lived Mangal. A rag of sack, two earthen pots, one dhoti which was the abandoned cloth of Suresh Babu—His only kin was own dog of village. Both ate together, slept on the same sack......"[5]

Dickens and Prem Chand were the masters of acute sensibility and they were also great psychologists in the sense that they were familiar with the minutest complexities of human nature. They were the spokesmen of the masses and their characters are the spokesmen of the conscience of their respective nations. All their characters are living human beings of flesh and blood and share both human goodness and weakness. They are the living portraits of human life and they cover a wide range of the society. They are types as well as individuals. Most of these characters have been picked up from the lower and middle classes. Manohar, Balraj, Gobar, Dhania, Gheesu, Surdas, Sofia, Hori, Nirmala, Suman, David Copperfield, Oliver Twist, Pip, Paggoty, Heep, Emily, Micawber couple, Defarge couple, Martha, Brownlow, Charlotte, Mrs. Snagsby, Mrs. Gummidge, Mrs. Sorrowberry, Mrs. Pocket etc. all belong to these classes. But our novelists also depicted some of the characters with aristocratic back ground as Monsegneiur, Miss Havisham, Rai Kamalanand and some Kings and princes of *Kayakalp*. To add more, different types of characters have been portrayed good and bad, moral and immoral, philanthropic and misanthropic, ideal and real, old and young, children and adults, gentle and cunning, virtuous and villanous, rich and poor, miser and generous, kind and cruel and so on. Villains in their novels often operate from behind the curtain as they also wear the cloak of nobility. Female characters also play significant roles in their novels. They have been depicted as ideal beloveds, mothers and wives and they lead a respectable life in the society. But their miseries and misfortunes are also great. Widows and whores are deprived of the general social status and prestige. On the other hand, some of their lady creations as Betsy, Paggoty, Nancy, Agnes, Rukmani. Kalyani, Jalpa and Suman etc. are very strong. Some villainous women like Nancy and Sakia Begum have also been included.

These characters, through their dialogues, actions, statements and general remarks of universal appeal, try to awake the conscience and preach humanitarianism :

In poverty, man becomes dependent on fate. Satyagrah has the power to crush the injustice.[6]

Job says in *Pickwick Papers* :

We should all try to discharge our duty, sir; but it is a hard trial to betray a master, sir, whose clothes you wear and whose bread you eat even though he is scoundrel, sir.[7]

Some charaters in Prem Chand specially are preachers and social reformers. Shanti Kumar in *Karamabhumi* preaches to the poor, low-caste people about their rights and self dependence. Above all, the characters in their novels capture our imagination, they move us internally and we feel them moving around us and it appears that we meet David, Oliver, Mr. Dombey, Pip, Hori, Surdas, Gajadhar etc.

Excellent blending of humour and pathos is the sharpest instrument in the hands of our novelists, with which they operate on their societies and expose its hard facts before the public realistically so that they might beaware of them. David joins Mr. Creakle's school and a board. In this school it is put on his back 'Beware of him, he bites'. It is both pathetic and humorous but it also awakes our conscience against the heartless school masters and the whole education system prevailing in the society. The same is the case of Gheesu and Madhav in the story *Coffin*. They come to the city to purchase the shroud for the wife of Madhav with the borrowed money. But in the city, they eat and drink and enjoy themselves, forgetting all about the dead body. Their comments, when they are intoxicated, are humcrous and their actual circumstances and situations we are familiar with, move our heart but as a whole, the scene urges us to revolt against the social circumstances of which Gheesu and Madhav are mere products, quite helpless, quite innocent.

To sum up, both Charles Dickens and Munshi Prem Chand were the great social reformers and champions of humanitarianism and they awakened the conscience of the society against superficiality, ostentation, injustice, exploitation and tyranny and inhumanity. Both of them used their novels as a means of social change and justice.

REFERENCES

1. Compton Rickett : *A History of English Literature*, New Delhi, Universal Book Stall, 1981 p. 408.
2. Walter Allen : *The English Novel*, England, Penguin Books Ltd., Hormonds Worth, 1958, p. 104.
3. Compton Rickett : *A History of English Literature*, New Delhi, Universal Book Stall, 1981, p. 406.

4. Charles Dickens : *A Tale of Two Cities*, New Delhi, Roopa and Co. 1983, p. 254.

5. Amrit Rai : *Prem Chand, Qualam Ka Sipahi* Allahabad, Hans Prakashan, 1982, p. 553 (Translated by the author).

6. Prem Chand : *Premashram*, Allahabad Hans Prakashan 1981, p. 248, (Translated by the author).

7. Charles Dickens : *Pickwick Papers*, New Delhi, Roopa and Co. 1981, p. 221.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2. P. 170-176
उ० प्र० राज० महा० एके० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० १७०-१७६

Effects of Sympathy on Severity of Punishment Assigned by Male and Female Jurors

K. K. ANGIRA,
Lecturer, Deptt. of Psychology, Govt. Raza P. G. College, Rampur.

सारांश

वर्तमान शोध का उद्देश्य अपराधी के प्रति सहानुभूति का पुरुष व स्त्री निर्णायकों द्वारा दी जाने वाली सज़ा की तीव्रता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना था। इसके लिए २×२ फैक्टोरियल डिज़ाइन का उपयोग किया गया। यह अध्ययन ८० (४० पुरुषो व ४० स्त्रियो) स्नातक स्तर के प्रयोज़्यों पर किया गया और प्राप्त प्रदत्त को विश्लेषण विस्तार विधि व टी टैस्ट द्वारा विश्लेषित्त किया गया। प्राप्त परिणामों द्वारा अपराधी के प्रति सहानुभूति और निर्णायकों के लिंग का पारित सजा की तीव्रता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पाया गया। अन्तःक्रिया का प्रभाव भी सजा की तीव्रता पर महत्वपूर्ण पाया गया।

ABSTRACT

The present study was aimed at studying the effects of transgressor' s sympathy on severity of punishment assigned by male and female jurors. A 2×2 factorial design was employed for this study. The investigation was done on 80 (40 males and 40 females) undergraduate Ss, and the data were analysed by using analysis of variance and test. The results showed significant differences in severity of punishment because of sympathy as well as sex of jurors. The results also demonstrated that the interaction effect was also found signficant.

In every organised society for its smooth functioning, social norms, taboos and standards govern the behaviour of the individual. These norms of behaviour have existed in every stage of human progress. These rules serve as a guide for the group member and reduce ambiguity. Violation of social rules has been an old issue of study in psychology (Theoder 1957).[1] Like other psychological phenomena, the process of assigning punishment to violator and defendants is influenced by psychological and social variables. Researchers have described how the outcome of jury trials can be significantly affected by prejudices against transgressor's race, social class and political orientation (Vidmor 1973)[2].

The most important influencing variable upon severity of punishment which has drawn scant interest in psychological research is transgressor's sympathy due to his physical suffering. It is obvious from a number of previous studies that severity of punishment is influenced by transgressor's sympathy (Reynolds and Sanders, 1975[3], Stiperstein and Buddoff, 1980).[4] But there are contradictory results also. Landy and Aronson (1969)[5] and Sigall and Landy (1972)[6] have reported that there are no effect due to defendant's sympathy on severity of punishment. To avoid this uncertainity, further study of the efflects of sympathy on severity of punishment is needed.

The next problem of the present piece of research is to explore the effects of sex of jurors on severity of punishment. Sex variable plays an important role in assigning punishment to the transgressor. Females were regarded to be sensitive and kind hearted and assigned less severe punishment than males (Ross and Prell, 1955,[7] Simon, 1967,[8] Cookie, 1975)[9]. Contradictory to these results (Walster, 1966,[10] and Boor, 1975)[11] showed that there were no sex differences in assigning punishment to the transgressor.

Due to equivocal findings and lack of evidences we are unable to generalise that females differ from their counterpart in assigning punishment. It is, therefore, essential to reinvestigate the effects of sex variable on severity of punishment to have a sound conclusion.

METHOD

Design :—To ascertain the effects of independent variables, a factorial design of 2×2 with 4 cells was employed. The first independent variable, i. e. sympathy was varied at two levels-sympathy and no sympathy. The second variable, i. e. sex of jurors was varied at two levels-male and female.

Subjects :—Eighty students of B. A. I (40 males and 40 females, from the population of Govt. P. G. Colege Ramnagar (Nainital) were selected at random and served as Ss.

MATERIAL

(i) A Case Account:-- A case account of crime pertaining to theft was prepared with the help of a few local legal practitioners and modified in the light of the suggestions obtained from a group of twenty postgraauate students, apart from those who participated in actual experiment. In the case account, the description of the transgressor was varied in terms of having cancer and no suffering at all to arouse sympathy toward the transgressor.

(ii) Judgement Sheet:-- A judgement sheet was provided in form of ladder scale to each **S** individually to tick (√) the punishment assigned to the transgressor ranging from 0 to 10 years of imprisonment.

Procedure:— Eighty **Ss** were divided randomly into two groups of 40 each (20 males and 20 females). The transgressor was described as a young man of 25 years of age suffering from cancer to the first group of both male and females. To the second group of both the sexes, the transgressor was described as a young man of 25 years of normal condition. The judgement was obtained from each individual on a separate judgement sheet.

RESULT

The year of punishment assigned by each juror to the transgressor was considerd as a raw score. The data obtained from the jurors were analysed by using analysis of variance and a summary table of the analysis is given below ;

Table—1 SUMMARY OF ANOVA

Source of Variation	SS	df	M.S	F
Sympathy	48.05	1	48.05	34.08**
Sex	39.20	1	39.20	27.80**
Interaction (Symp. X Sex)	9.80	1	9.80	6.95**
Within	106.90	76	1.41	
Total	203.95	79		

** denotes P>.01 level of confidence.

To obtain difference in different group means, 't' test was further computed and a summary of the results is given below :

Table—2 t ratio for sympathy and Non sympathy group.

Group compared	M	N	S_{ED}	t
Sympathy Group Non-Sympathy	2·25 3·80	40 40	0·35	4·43**

** denotes P > .01 level of confidence.

Table—3 t ratio for sex differneces

Group Compared	M	N	S_{ED}	t
Male Jurors Female Jurors	3·72 2·32	40 40	0·35	4·00**

** denotes P > .01 level of confidence.

Table—4 t ratio for sympathy male Jurors and Non sympathy male jurors group.

Group compared	MM	N	S_{ED}	t
Sympathy Male jurors Non sympathy male jurors	2·60 4·85	20 20	0·53	4·24**

** denotes P > .01 level of confidence.

Table—5 t ratio for sympathy male jurors and sympathy female jurors group.

Group compared	M	N	S_{ED}	t
Sympathy male jurors Non Sympathy female jurors	2·60 1.90	20 20	0·51	1·37*

* denotes P > ·05 level of confidence.

Table—6 t ratio for sympathy male jurors and Non sympathy female jurors group.

Group compared	M	N	S_{ED}	t
Sympathy male jurors	2·60	20	0·51	0·29*
Non sympathy female jurors	2·75	20		

* denotes P> .05 level of confidence.

Table—7 t ratio for Non sympathy male jurors and Sympathy female jurors Group.

Group compared	M	N	S_{ED}	t
Non Sympathy Male jurors	4.85	20	0·49	6.02**
Sympathy female jurors	1.90	20		

** denotes P> .01 level of confidence.

Table—8 t ratio for Non sympathy male jurors and non sympathy female jurors Group.

Group compared	M	N	S_{ED}	t
Non sympathy male jurors	4.85	20	0.49	4.28**
Non sympathy female jurors	2.75	20		

** denotes P> .01 level of confidence.

Table—9 t ratio for sympathy female jurors and Non sympathy female jurors Group.

Group compared	M	N	S_{ED}	t
Sympathy female jurors	1.90	20	0.46	1.85*
Non sympathy female jurors	2.75	20		

* denotes P> .05 level of confidence.

From the Table—1 it is apparent that sympathy has a significant effect on the severity of punishment assigned by jurors (F=34.08 P>..01). In other words the severity of punishment has been influenced by transgressor's sympathy, A Mean comparison Table 2 reveals that the least punishment has beeu assigned to the transgressor having sympathy due to physical suffering (M=2.25 yrs) while maximum punishment has been assigned to the transgressor having no sympathy (M=3.80). The obtained t ratio (t=4.24 p< .01) shows that different amount of punishment has been assigned to the transgressor having sympathy and no sympathy. The Table-1 shows that the effect of the second variable, i. e. sex of jurors has also influenced severity of punishment (F=27.80 P> .01). It means that male and female jurors have acted differently in assigning punishment. The computed means obviously demonstrates that male jurors has assigned more punishment (M=3.72 yrs) than that of females (M=2.32 yrs). The calculated t ratio (t=1.37 P> .01) shows that different magnitude of punishment has been assigned by male and female jurors.

Table-1 further shows that both sympathy and sex of jurors influ ence severity of punishment in a combined way (F=6.95 P⩽ .01). It means that severity of punishment is a joint function of sympathy and sex of jurors. The mean compari son among different combinations of sympathy and sex of jurors given in Table-4 to 9 shows that all the group combinations differ significantly either at .05 or ·01 level of confidence.

DISCUSSION

From the obtained results, it ts clear that sympathy has a significant effect on serverity of punishment. The obvious reason of this might be that the transgressor of normal condition is unable to arouse sympathy towards him and his act is considered intentional, personally motivated while the crime of the transgressor suffering from cancer is considered to be circumstantial to obtain money for his treatment. He is able to arouse feeling of sympathy towards him. This finding is in accord with the findings of previous investigators (Reynolds and Sanders, 1975; Stiperstein and Buddoff, 1980).

The second finding i. e. sex of the jurors has influenced the severity of pnnishment. A feasible explanation to it may be put forward, that females are considered more kind-hearted and affectionate than males. Due to this social expectation, female jurors have assigned less severe punishment to the transgressor than males. This finding is also very much on the line of the previous psychologists (Ross and Prell, 1955; Simon, 1967; & Cookie, 1975).

SUMMARY

The result part presents that the transgressor sympathy has influenced severity of punishment assigned to the transgressor committing the same crime. The sex of jurors has also been found significant in assigning punishment to the transgressor.

REFERENCES

1. Theoder, R. *Myth and Guilt*, 1957, xiii, 432.
2. Vidmor, R. *Journal of Personality and Social Psychology*, 1973, 22, 211-218.
3. Reynolds, D. E. and Sanders, M. S. *Journal of Social Psychology*, 1975, 96, 140-150.
4. Stiperstein E. and Buddoff, L. *Journal of Personality and Social Psychology*, 1980, 6, 108-112,
5. Landy, D. and Aronson, E. *Journal of Experimental Sociol Psychology* 1969, 6, 147-152.
6. Landy D. and Sigall, H. *Journal of Personality and Social Psychology*,, 1972, 29, 289-304.
7. Ross, A, and Prell, A. *American Journal of Sociology*, 1955, 61, 247-251.
8. Simon, P. J. *Journal of Personality and Social Psychology*, 1967, 3, 68-75.
9. Cookie, S. *Journal of Psychology*, 1975, 88, 305-312.
10. Walster, E. *Journal of Personality and Social Psychology*, 1966, 3, 73-79.
11. Boor, M. *Journal of Social Psychology*, 1975, 100, 315-316.

●

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2, P. 177-181
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड २, पृ० १७७-१८१

The New International Economic Order and Non-alignment

ASHOK KUMAR SINGH
Lecturer in Political Science, Govt. Raza P. G. College, Rampur.

सारांश

नव अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की धारणा का विकास अवैध, वेईमानी पूर्ण तथा शोषण पर आधारित ''ब्रिटन वुड व्यवस्था'' के स्थान पर विकसित हुआ था। इसका आरंभ विकास शील देशों के अन्तराष्ट्रीय सम्बन्धों में व्याप्त विरोधों को दूर करने के उददेश्य से हुआ। गुटनिरपेक्ष आंदोलन ने निरन्तर तथा क्रमवृद्ध रूप में वर्तमान आर्थिक व्यवस्था में व्याप्त संगठन सम्बन्धी अन्तर के विषय में विचार किया है तथा उसे दूर करने का प्रयत्न किया हैं परन्तु समृद्ध राज्यों के असहयोगपूर्ण दृष्टिकोण तथा इस धारणा के विषय से सम्बन्धित विभिन्न अवधारणाओं ने इस विचार को संशय में डाल दिया हैं।

ABSTRACT

The concept of the New International Economic Order (NIEO)was evolved to replace the inequitable and exploitative 'Brettow Woods system' and to solve the contradictions existing in international relations between the developed and developing countries. Non-aligned movement has consistently and concertedly envisaged a structural differentiation of the existing world economic order. But the unhelpful attitude of the affiluent countries, the diffierent perceptions about this concept have all jeopardised it.

The concept of the New International Economic order (NIEO) was evolved to solve the intensified contradictions existing in international economic relations

between developed and developing countries, though in contemporary study it includes broader conceptions based on close mutual conditionality of the most important problems of the world economies which is inclusive of all the dimensions of the mentioned primary contradictions as well. The Non-aligned movement has played a potential role in adding impetus to the effort of evolving the New Economic order to "remove economic imbalances inherited from colonialism and imperialism."[1]

The post Second World-War-World witnessed the process of decolonization liberating the bulk of Asian, African and Latin American states with the commonality of abject poverty, and the establishment of the Bretton Woods system which replaced the economic order of the period preceding the war. But these two developments were in no way complimentary and commensurate to each-other. The Bretton Woods went with European recovery programme-to rebuild the war-shattered European economics-under the over-all leadership of the United States and the United Kingdom. It did not envisage bridging the yawning gap between the developed and the newly emerged developing countries; it did not address itself to the problems of the economic recovery of these developing countries and under-developed countries, it had no room and role for the newly independent countries. These countries which comprised the major chunk of humanity could not look forward towards it hopefully and optimistically to receive any real help for their National development within its frame-work. It was not in tune with the needs and necessities of the newly emerged "infant" countries. It bred "Neo-colonial exploitation and dominance." And "no international order can be considered just if Cooperation with the aim to raise the poorest of the world to a decent standard of living is not one of its basic principles."[2] Naturally, therefore, to transform it into a "just economic order became the goal of the struggle of the third world against colonialism, neo-colonial exploitation and the structures of economic dominance."[3]

The New international economic order was an imperative for the "independence" and "participation of the developing countries on equal basis" in the world economy. It was necessary to break-up the monopolistic tendencies and the prolonged economic crisis."[4]

The recent developments like the world inflation and recession, the protectionist measures, tariff and non-tariff, adopted by the developed countries affecting exports from the developing countries, the virtual drying/up of international financial institutions, mixing up of aid with ideology and the aggravated world politics influencing arms race has further necessitated the adoption of the New International economic order (NIEO).

NIEO and the Non-aligned movement have "generic linkages" between them. Non-aligned movement which originated in the wake of cold war is generally

understood as a concept which rejected military alliances and bloc polities and asserted freedom of judgement and action for the newly independent countries. But it is something more than this. It constituted some important dimensions like anti-colonialism and anti-imperialism in all its manifestations, "independence and equality", and "peace, cooperation and prosperity." It definitely envisaged a structual differentiation of the existing world economic order to base the new one on "rational, democratic, equitable and Non-exploitative inter-state relations."[5]

The leaders of the movement had visualised from the very outset that their hard-earned independence could only be maintained through "economic development" by restructuring the international economic relations on the basis of "Equity, sovereign equality, independence, common interests and cooperation among all states irrespective of their economic and social system."[6]

During the initial stages of the linkages between non-aligned movement and the struggle for an NIEO was characterized by their awareness for the change. Non-aligned movement was chiefly occupied with political aspects of decolonization and preservation of peace, independence and national sovereignty, though it worked through the UN to get the principle of state sovereignty over natural resources accepted. At the Bandung Conference of 1955, they laid emphasis on the need of "diversification of the export of the nonaligned countries and for the establishment of National and Regional banks and insurance companies in Asia and Africa".[7]

During the 1960s with the process of decolonisation making further progress, their effort for NIEO became apparant. They condemned Bretton Woods system and in 1961 Non-aligned summit at Belgrade called for effects to remove "economic imbalances inherited from colonialism and imperialism." The very next year at the Cairo Conference the attempts to perpetuate past structures of international economic relations was denounced as obstructing the economic development of the developing countries. Concerted efforts in the UN resulted in the establishment of the United Nations Conference on Trade and Development (UNCTAD) which together with the Group of 77 became the principal instrument of pursuing the struggle for an NIEO. The second Non-aligned summit in 1964 laid emphasis on economic development and cooperation and urged all the countries to contribute to the rapid evolution of a new and just economic order to reduce the disparity or to rectify seriously-growing economic imbalances. This Principle was emphasised in 1974 UN resolution on NIEO.

It was only in 1970s that the nonaligned movement made a determined, assertive and even "by a certain militancy" for the establishment of an NIEO. The third Non-aligned summit at Lusaka was a landmark in this direction. A blue print for the NIEO and specific guidelines for policies and action programme for economic progress was prepared. The idea was further developed at the meets held at

Algiers (1973), Colombo (1976) and Havana (1979) and New Delhi (1983). Havana Declaration categorically asserted for an NIEO and the "democratisation of international economic relations."[8] New Delhi Conference emphasised that the current global economic crisis had made it imperative and urgent for major issues of the world economy to be considered in an inter-related manner within the framework of Negotiations. The summit urged the developed countries to respond positively and constructively. It called for "bold and imaginative" approaches to stimulate the economics of the developing countries and suggested convening an international Conference on money and finance. Mrs. Gandhi made a fervent appeal to "guarantee peace, facilitate disarmament and achieve economic justice."[9] Her main thrust was on new economic order. She made it clear that the developing countries would be the first and the worst sufferers in any economic breakdown though in this interdependent world where one could not stir a flower without troubling a star, even the most afflunent were not immune to such disturbances. She emphasised comprehensive reforms of the international Monetary and financial systems which were now recognised as out of date, inequitable and inadequate. It should facilitate the mobilisation of developmental finance for investment in vital areas such as food, energy and economic development.

At various forums like the UN, UNCTAD and UNIDO and Commonwealth-Conferences, the Nonaligned countries have concertedly and unitedly insisted on the need of an NIEO. In the UNCTAD they emphasised the responsibility of the international community with regard to stabilisation of commodity prices, volume and terms aid and preferences. At the UNCTAD IV at Nairobi in 1976 Nonaligned countries supported the sharp rise in oil prices by OPEC in quest of repeating the example for the Commodity goods. However, it was not to be. It also demanded cancellation of debts for the least developed, land-locked and island developing countries. In 1979 UNCTAD insisted on the establishment of a common fund to finance buffer stocks in a price stablization scheme. It urged elimination of Protectionism.

To bridge the widening gulf the Nonaligned countries supported the North-South dialogue in order to achieve NIEO. It led to the Cancun summit in 1981. In this effort, the Nonaligned countries unitedly utilised the Commonwealth forum where developed countries interact to press their demands for North-South dialogue and establishment of NIEO. Melbourne Conference is important in this regard. In New Delhi Conference CHOGM, Mrs. Gandhi as chairperson of NAM emphatically asked the CHOGM to endorse the NAM resolution for a programme of urgent measures on money and finance for development with universal participation to bring about a New World economic order. NAM countries also suggested development of New financial institutions to which Margaret Thatcher and other developed member countries objected and did not agree.

The North-South failure led to the Origin of South-South meet at the initiative of the Nonaligned countries to make the international economic cooperation more efficacious.

Thus Nonaligned countries have played a very consistent role for the evolution of NIEO. The progress has been jeopardised because of the unhelpful attitude of the affluent countries. The stalemate in the North-South dialogue may be attributed to the tact that the two parties have diffierent conceptions of the NIEO that is to come. NIEO envisaged by the developed countries and the socialist group is indiffierent. But the question is that there is no way out of the impasse. Has the world reached a dead end in its path of development ? It would be a very difficult question to answer. "That would amount to undermining and insulting hnman ingenuity and innovativeness, which has resolved equally serious economic crisis in the past and opened up new frontiers of progress and perfection"[10] Yes, it is urgent that the third world countries should adopt "Collective self-reliance." Then the developed and developing countries should "harmonize their perception about NIEO" with "sufficient fund of knowledge and information." It is only with these preconditions that the NEW INTERNATIONAL ECONOMIC ORDER can be evolved by the Nonaligned countries.

REFERENCES

1. Declaration of the head of the state on Govt. of Nonaligned countries, Belgrade, 1961.
2. Henry Kissinger in one of his speeches.
3. K. B. Lall and S. D. Muni: Nonalignment in Contemporary International Relations.
4. Tomislav Popovic: Contemporary Realities of the New Economic order.
5. K. P. Mishra and K. R. Naryanan: Nonalignment in contemporary International Relations.
6. UN Resolution of lMay 1974.
7. Final Communique of the Asian African Conference–1955.
8. Havana Declaration 1979.
9. Quoted from Times of India Newspaper reporting on the NAM summit of NEW DELHI 1983.
10. K. B. Lall and S. D. Muni: "Nonalignment in Contemporary International relations.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc. 1985-86, Vol. 2, P. 182-188
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० १८२-१८८

१९ वीं शताब्दी के भारतीय पुनर्जागरण आन्दोलनों का कुमाऊँ में प्रभाव तथा प्रतिक्रिया

मदन मोहन करगेती
राजनीति विज्ञान-विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटद्वार (गढ़वाल)

सारांश

(ब्रिटिश शासन का अंग बन जाने के फलस्वरूप तत्कालीन कुमाऊँ में धीरे-धीरे यातायात तथा संचार साधनों का प्रसार होने लगा और कुमाऊँ का देश के मैदानी भागों से सम्पर्क स्थापित होने लगा । फलतः देश की विविध गतिविधियों और घटनाओं का इस क्षेत्र पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था । 19 वीं शताब्दी में भारत में अनेक पुनर्जागरण-आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ था । इन आन्दोलनों में से आर्य समाज तथा रामकृष्ण मिशन के संस्थापकों, नेताओं एवं कार्यकर्ताओं ने कुमाऊँ-गढ़वाल क्षेत्र में अपने प्रचार-प्रसार को पर्याप्त व्यापक बनाया । कालान्तर में जब राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन सम्पूर्ण देश में फैला तो कुमाऊँ भी इस आन्दोलन से अछूता न रहा) ।

ABSTRACT

(The expansion of Transport and means of communication in Kumaon which linked it to the other parts of the country took place after its annexation to the British Empire. Cousequently, it was natural for Kumaon to experience the impact of various happenings and events occuring in the different walks of life in the country. Various movements of reawakening took place in the 19th century. Out of these Renaissance movements, the Arya Samaj and The Rama Krisna Mission launched the propagation and extension of their missions on a very large scale in Kumaon-Garhwal region. With the passage of time when The Indian independance movement spread throughout India, Kumaon did not remain untouched by it.)

"ब्रह्मसमाज", "आर्यसमाज", "रामकृष्ण मिशन" तथा "थियोसाफिकल सोसाइटी"

19 वीं शताब्दी, भारत में विविध क्षेत्रों में पुनर्जागरण की अवधि है। इस शताब्दी के जिन भारतीय महापुरुषों ने सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों पर अपने विचार रखे, वे इस बात से चिन्तित थे कि भारतीय धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में जो अनेक बुराइयां तथा कमियां आ गयी हैं, उनमें सुधार हुए बिना समाज का उत्थान नहीं हो सकता। पुनर्जागरण के इन भारतीय चिन्तकों के विचार मुख्यतया धार्मिक-सामाजिक सुधार आन्दोलन के रूप में होते हुए भी, राजनीतिक प्रकृति के थे। इन महापुरुषों ने यह अनुभव किया कि समाज में व्याप्त बुराइयों का मुख्य कारण देश की राजनीतिक दासता है। अतः जब तक देश राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं करेगा, तब तक समाज का सर्वाङ्गीण विकास सम्भव नहीं है। इस पुनर्जागरण आन्दोलन ने भारतीय राष्ट्रीय जीवन के धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में व्यापक प्रभाव डाला। राजा राममोहन राय के "ब्रह्मसमाज", महर्षि दयानन्द के "आर्य समाज", स्वामी विवेकानन्द के "रामकृष्ण मिशन" तथा आइरिश महिला श्रीमती ऐनी बेसेंट की "थियोसाफिकल-सोसाइटी" आदि के विचारों तथा कार्य-कलापों ने भारत में धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों द्वारा भारतीय समाज तथा धर्म को सही दिशा प्रदान करके, अप्रत्यक्ष रूप से भारत की जनता की राजनीतिक चेतना को विकसित किया और उन्हें राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी।

उपर्युक्त धार्मिक तथा समाज सुधार आन्दोलनों में, आर्य समाज सर्वाधिक व्यापक, प्रभावशाली तथा चिरस्थायी सिद्ध हुआ है। इस आन्दोलन की एक प्रमुख विशेषता यह है कि जहाँ अन्य आन्दोलन किसी न किसी रूप में पाश्चात्य शिक्षा व सभ्यता से प्रभावित थे, वहाँ आर्य समाज का स्वरूप मूलतः भारतीय था। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द न तो अंग्रेजी भाषा जानते थे और न पाश्चात्य शिक्षा व सभ्यता के साथ उनका कोई सीधा सम्पर्क रहा। अस्तु, आज जब कि अन्य सुधार-संस्थाएं समाप्त होकर केवल इतिहास की वस्तु रह गयी हैं, आर्यसमाज जीवित ही नहीं, अपितु पर्याप्त सक्रिय भी है। इसका प्रमुख कारण यह है कि "आर्यसमाज" केवल शिक्षित वर्ग तक ही सीमित न रह कर, जनसाधारण में अत्यधिक लोकप्रिय रहा है। दूसरा कारण यह भी है कि जब भारत में अन्य सुधार-संस्थाएँ अंग्रेजी शिक्षा तथा सभ्यता का अनुकरण करके, अपने आन्दोलन को उसी वातावरण के संदर्भ में विकसित कर रही थीं, उस समय 'आर्य-समाज' ने अपने प्रचार आन्दोलन का माध्यम हिन्दी भाषा को बनाया। जिसे अधिकांश भारतवासी, विशेषतः उत्तरी भारत में भली-भाँति स्वभाषा के रूप में जानते तथा समझते थे।

पुनर्जागरण से पूर्व कुमाऊँ की धार्मिक-सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति

सम्पूर्ण भारत के समान ही तत्कालीन कुमाऊँ का वातावरण सामाजिक धार्मिक दृष्टि से दूषित और राजनीतिक दृष्टि से मृतप्राय था। सामान्य जनता की राजनीतिक चेतना लुप्त हो गयी थी और सामाजिक जीवन में एक विचित्र जड़ता आ गयी थी। आर्थिक वैषम्य तथा सामाजिक कुरीतियां अपनी जड़ें जमा चुकी थीं। गोरखों के अत्याचारी शासन एवं उनके पूर्व स्थानीय राजाओं के कुशासन ने कई धार्मिक-सामाजिक बुराइयों -- बाल-विवाह, अनमेल विवाह, बहुविवाह, दासों का विक्रय, नायक प्रथा, डोला-पालकी, वधू मूल्य, कन्या विक्रय आदि को जन्म दिया। धर्म के नाम पर नाना प्रकार के देवी-देवताओं की पूजा, ग्राम-देवताओं की पूजा, भूत-प्रेतादि, जादू-टोना, झाड़-फूंक आदि अंध-विश्वास व्याप्त हो गये थे।[2]

यों तो कुमाऊ-गढ़वाल में क्रमशः चन्द्र और परमार राजाओं के शासन काल के अन्तिम दिनों से ही कुमाऊँ-गढ़वाल की आर्थिक स्थिति खराब होने लगी थी। किन्तु गोरखा शासन काल में यह अवनति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी। कुमाऊँ में 1748 ई० से 1790 ई० तक चल रहे राजनीतिक षडयंत्रों से बार बार राजाओं और राज्याधिकारियों का उत्थान व पतन हुआ। रिक्तकोष को भरने और भाड़े के सैनिकों का वेतन चुकाने के लिए प्रजा का बलपूर्वक शोषण किया गया।[3] यही स्थिति समकालीन गढ़वाल में भी थी।

कत्यूरी राज्य के पतन से कुमाऊँ-गढ़वाल में जिन राजवंशों [क्रमशः चन्द व परमार] की स्थापना हुई, वे निरन्तर एक-दूसरे के विनाश के लिए प्रयत्न करते रहे। परन्तु पीढ़ियों तक चलने वाले सीमान्त के युद्धों द्वारा भी अपनी तथा पड़ोसी राजा की प्रजा, सेना, सम्पत्ति और शक्ति को नष्ट करके ये राजा कभी एक-दूसरे के राज्य की थोड़ी सी भूमि पर भी स्थायी अधिकार न जमा सके। फिर भी वे इन निष्फल तथा निरुद्देश्य युद्धों की निरन्तर पुनरावृत्ति करते रहे।[4] अतः कुमाऊँ व गढ़वाल के राजनीतिक पतन, गृह-युद्धों और राजनीतिक षडयंत्रों का पूरा लाभ उठा कर गोरखों ने इन राज्यों को अपने अधीन कर लेने में पूर्ण सफलता प्राप्त कर ली।

गोरखों में वीरता थी, किन्तु बुद्धि का सर्वथा अभाव था। उनमें साहस था, किन्तु प्रशासन की क्षमता न थी। उन्होंने अपने अतिक्रूर व्यवहार और अदूरदर्शिता के कारण अपनी प्रजा की सहानुभूति और सहयोग खो दिया था। यदि गोरखा शासन कुमाऊँ-गढ़वाल पर अपने शासन को लोकप्रिय बना लेते और ब्रिटिश शासन से न उलझते तो सम्भवतः इस क्षेत्र पर उनका राज्य स्थिर रह सकता था, किन्तु गोरखा अपनी अदूरदर्शिता, शोषण व अमानवीय व्यवहार के कारण 1815 में अंग्रेजों से पराजित हो गये और उन्हें सम्पूर्ण कुमाऊँ-गढ़वाल का क्षेत्र ब्रिटिश शासन को सौंपने के लिए बाध्य होना पड़ा।

पुनर्जागरण आन्दोलनों का तत्कालीन कुमाऊँ में प्रभाव

ब्रिटिश शासन का अंग बन जाने के फलस्वरूप कुमाऊँ में धीरे-धीरे यातायात तथा संचार साधनों का प्रसार होने लगा और कुमाऊँ का देश के मैदानी भागों से सम्पर्क स्थापित होने लगा। फलतः देश की विविध गतिविधियों और घटनाओं का इस क्षेत्र पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। 19वीं सदी के उक्त सभी आन्दोलनों का प्रवेश कुमाऊँ में भी हुआ। कुमाऊँ का कोई भाग उनके प्रभाव से अछूता नहीं रहा।[5] कुमाऊँ को ''गैर आयनी'' (जहाँ सामान्य सरकारी कानून लागू नहीं होते) बनाकर पिछड़ा रखने की रैम्जे की नीति के बावजूद संचार तथा यातायात सुविधाओं के कारण, उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक कुमाऊँ का प्रांत के अन्य भागों से सम्पर्क बढ़ गया तथा वहां पाश्चात्य सभ्यता के साथ-साथ राष्ट्रीय भावनाओं का भी प्रचार और प्रसार हुआ। इन दिनों भारत में धार्मिक व सामाजिक पुनरुत्थान की जो देशव्यापी लहर आयी, वह कुमाऊँ के पर्वतीय क्षेत्र में भी फैल गयी। ''ब्रह्मसमाज' तो केवल बंगाल तक ही सीमित रह गया था, किन्तु आर्यसमाज का प्रभाव कुमाऊँ पर अधिक पड़ा[6]। भारतीय ब्रह्मसमाज के संस्थापक, केशवचन्द्र सेन बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में कुमाऊँ (अल्मोड़ा) में आये। किन्तु ''ब्रह्मसमाज'' की शिक्षाओं का कुमाऊँ पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि यहां की परिस्थितियां ''ब्रह्मसमाज'' की शिक्षाओं के अनुकूल नहीं थीं।[7]

स्वामी दयानन्द सरस्वती की शिक्षाओं तथा उनके आर्य समाज आन्दोलन ने कुमाऊँ के सुप्त जन-जीवन को अवश्य प्रभावित किया। इस आन्दोलन ने धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक, राजनीतिक आदि विविध क्षेत्रों में कुमाऊँ में पुनर्जागरण की नवीन लहर उत्पन्न कर दी। दयानन्द सरस्वती अपनी साधना के दिनों में लगभग दो वर्षों तक कुमाऊँ-गढ़वाल के तीर्थस्थानों, शिखरों और बीहड़ क्षेत्रों की यात्रा करते रहे। पर्वतीय भ्रमण से लौटते हुए वे प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान ढ़िकुली (रामनगर) में कुछ दिनों तक रहे। वे काशीपुर में महीनों तक रहे तथा आज भी उनकी स्मृति में वहां "ऋषिताल" विद्यमान है।[8]

ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ कुमाऊँ में ईसाई धर्म–प्रचारकों ने भी प्रवेश किया। रैम्जे के शासनकाल में उन्हें कुमाऊँ में विशेष संरक्षण एवं प्रोत्साहन मिला। मिशनरियों ने विभिन्न प्रकार की समाज-सेवी संस्थाओं की स्थापना करके जनता को अपनी ओर आकृष्ट किया और हिन्दू धर्म तथा समाज के अन्तर्गत आ गयी अन्धविश्वासिता, ढोंग तथा अवैज्ञानिकता का उपहास करना आरम्भ कर दिया। जनता की सहानुभूति प्राप्त करने तथा उनके साथ अधिक सम्पर्क बनाने के निमित्त ईसाई मिशनरियों ने कुमाऊँ में कई शिक्षण संस्थाओं, अस्पतालों, अनाथालयों, सेवागृहों आदि की स्थापना की।[9] ब्रिटिश शासन-काल में मिशनरियों से मोर्चा लेना कोई सरल कार्य न था, फिर भी आर्य समाज ने आर्य-मन्दिरों की स्थापना करके ईसाई मिशनरियों के विरुद्ध मोर्चा संभाला। उन दिनों कुमाऊँ में जहां-जहां मिशनरियों की गतिविधियां तीव्र हुई, वहां-वहां आर्यसमाज भी सक्रिय हो गया।[10] आर्य समाज ने सम्पूर्ण कुमाऊँ में बालविवाह, बहुविवाह, दासों का विक्रय, डोला-पालकी, कन्या-विक्रय, पशुबलि, भूत-प्रेत, जादू-टोना, छुआ-छूत के भेदभाव की कठोरता, नायक प्रथा आदि धार्मिक-सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन चलाया।

आर्य समाज ने नैनीताल, अल्मोड़ा, मंसूरी आदि अनेक स्थानों में शिक्षा को विस्तार देने के उद्देश्य से शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की।[11] उन्नीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों में महर्षि दयानन्द के कुमाऊँ आगमन से, रैम्जे के शासन के प्रति मोहभंग की स्थिति दिनों-दिन स्पष्ट होने लगी। अल्मोड़ा के एक शिक्षित नागरिक को बलपूर्वक ईसाई बनाये जाने की घटना से लोगों के दिल में महर्षि दयानन्द के शुद्धि आन्दोलन के प्रति सहज आकर्षण हुआ।[12] स्वामी दयानन्द ने भारतीय जीवन में अंग्रेजियत के प्रभाव से आ रही मद्यपान, मांस भक्षण आदि बुराइयों के विरुद्ध भी लोगों को सचेत किया। उनके उपदेशों का कुमाऊँ के नगरों की जनता की अपेक्षा ग्रामीण जनता पर अधिक प्रभाव पड़ा।[13]

10 अप्रैल, 1875 ई० को सर्वप्रथम आर्य समाज की स्थापना हुई। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि नैनीताल में 1874 ई० में ही "सत्य धर्म प्रकाशिनी सभा" की स्थापना हो चुकी थी, जिसे 1875 ई० में आर्यसमाज में मिला दिया गया। तदुपरान्त 1880 ई० में जसपुर में, 1881 ई० में काशीपुर में, 1898 ई० में हल्द्वानी में, 1904 ई० में रामनगर में, 1916 ई० में अल्मोड़ा में, 1927 ई० में रामगढ़ में, 1932 ई० में रानीखेत में आर्यसमाज की स्थापना की गयी थी।[14]

आर्यसमाज की प्रभाव-परिधि हिन्दू धर्म तक सीमित न रही, अपितु कतिपय प्रमुख मिशनरियों ने भी आर्य समाज को ग्रहण कर लिया। शिमला की पहाड़ियों पर कार्य करने वाले अमेरिकी मिशनरी स्टोक्स

(बाद में सत्यानंद) आर्यसमाज से इतने अधिक प्रभावित हुए कि स्वयं उन्होंने इसे अपना लिया। कालांतर में गांधीजी से प्रभावित होकर भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में इन्होंने उल्लेखनीय भूमिका निभायी।[15] स्टोक्स (सत्यानन्द) के समान ही अल्मोड़ा में मिशन का कार्य करने वाले अमेरिकी मिशनरी रोनाल्ड निक्सन ने भी आर्य समाज से प्रभावित होकर, वैदिक धर्म को अपना लिया था।[16]

ईसाई मिशनरी अकाल के समय रोटी देकर सैकड़ों लड़कों को ईसाई बना लेते थे। आर्य समाजियों के सहायता-कार्यक्रम के कारण बहुत से अकाल पीड़ित लड़कों को आर्य-अनाथालयों में पहुँचाकर ईसाई बनने से बचा लिया जाता था। इन बातों का साधारण हिन्दू जनता पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह उनकी आर्थिक सहायता करने लगी। आर्य समाजी कार्यकर्ता अपने विचारों का प्रचार करने में भी बड़ी तत्परता दिखलाते थे और लोगों में देशभक्ति के भाव भी उत्पन्न करते थे। राजनीतिक संस्था न होते हुये भी आर्यसमाज और उसके संस्थापक महर्षि दयानन्द, भारत की स्वतन्त्रता के प्रबल पक्षपाती थे।[17] आर्यसमाज ने हजारों गरीब हरिजनों की धर्म परिवर्तन से रक्षा की। आर्यसमाज के मंच से राष्ट्रीय भावनाओं के प्रचार में बड़ी सहायता मिली। इससे जहां कुमाऊँ की रूढ़ियों में फंसी जनता में नई चेतना व नये विचारों का स्फुरण हुआ, वहीं कट्टरवादिता, जातिप्रथा तथा धार्मिक कुरीतियों पर भी कुठाराघात हुआ।[18]

स्वामी विवेकानन्द को अल्मोड़ा प्रिय था। उन्होंने अल्मोड़ा तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्रों में "रामकृष्ण मिशन" की शाखाओं की, यथा—श्री रामकृष्ण आश्रम (अल्मोड़ा) श्री रामकृष्ण धाम (अल्मोड़ा), अद्वैत आश्रम मायावती (चम्पावत), श्री रामकृष्ण धाम (हल्द्वानी) आदि की स्थापना की, जो आज भी विद्यमान हैं। समय-समय पर रामकृष्ण मिशन के विद्वान, महात्मा एवं संत अपने प्रवचनों से कुमाऊँ की जनता की आध्यात्मिक तथा बौद्धिक उन्नति में योगदान देते रहे।[19] स्वामी विवेकानन्द ने तीन बार कुमाऊँ की यात्राएँ कीं। अगस्त 1890 में स्वामी विवेकानन्द अपने गुरु भाई अखण्डानन्द के साथ काठगोदाम से नैनीताल और वहां से पैदल अल्मोड़ा पहुँचे। सात वर्ष पश्चात 1897 ई० में अल्मोड़ा की दूसरी यात्रा के समय स्वामी जी एक अज्ञात संन्यासी नहीं थे अपितु जगत विख्यात स्वामी विवेकानन्द बन चुके थे।[20] अल्मोड़ा की इस दूसरी यात्रा में उनके साथ अंग्रेज शिष्य जे० जे० गुडविन, अंग्रेज दम्पत्ति कैप्टन सैवियर और श्रीमती सैवियर भी थे। स्वामी जी के मन में कुमाऊँ में एक अद्वैत आश्रम स्थापित करने की इच्छा उत्पन्न हुई और इसी इच्छा को मूर्तरूप देने के लिए वे दूसरी बार अल्मोड़ा पहुँचे थे।[21]

विवेकानन्द ने अपनी तीसरी अल्मोड़ा यात्रा 1898 ई० में की। उनके साथ इंग्लैण्ड की मिस मार्गरेट नोबिल (भगिनी निवेदिता उनका भारतीय नाम था), अमेरिका की श्रीमती ओलीबूल, कुमारी जे० मैकलियोड, कलकत्ता के कांसिल जनरल की पत्नी श्रीमती पैटरसन तथा अन्य दो शिष्य और गुरुभाई थे। यह मण्डली अल्मोड़ा के टामसन हाऊस तथा ओकले हाऊस नामक बंगलों पर टिकी थी। थियोसाफिकल सोसायटी की नेत्री श्रीमती ऐनी बैसेंट की, स्वामी विवेकानन्द से यहीं मुलाकात हुई थीं।[22] स्वामी विवेकानन्द की तीन यात्राओं तथा मठ व मिशन के संन्यासियों के आगामी वर्षों में यहां आने से अल्मोड़ा स्वामी जी के पूर्वी व पश्चिमी अनुयायियों के लिए विशेष महत्वपूर्ण स्थान बन गया। अल्मोड़ा के पश्चिमी ढ़लान पर 1916 ई० में स्वामी तुरीयानन्द ने एक आश्रम की स्थापना की जो "रामकृष्ण कुटीर" के नाम से

प्रसिद्ध है । इसी स्थान से कुछ दूरी पर विवेकानन्द प्रयोगशाला है, जहां पर बनस्पति एवं कृषि-विज्ञान पर अन्वेषण किया जाता है ।[23]

विवेकानन्द के कुमाऊँ भ्रमण से इस क्षेत्र की जनता में, मुख्यतः नगरों में, एक नवीन जागृत्ति उत्पन्न हुई । मिशन द्वारा प्रकाशित विविध प्रकार के साहित्य, पत्र-पत्रिकाओं द्वारा जनता में जागृति आयी । उनके शिकागो धर्मसम्मेलन में हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता के विचारों से शिक्षित वर्ग विशेष रूप से प्रभावित हुआ । यद्यपि समाज के पिछड़े वर्ग की सहायता के लिए "रामकृष्ण मिशन" समाज सेवा का महत्वपूर्ण कार्य करती रही, किन्तु इसका दर्शन अत्यधिक आध्यात्मिक प्रकृति का होने के कारण, इसका विचार पक्ष थोड़े से शिक्षित वर्ग तक ही सीमित रहा । यह आन्दोलन आर्यसमाज को भांति जन-आन्दोलन नहीं बन सका । फिर भी, शिक्षित वर्ग में अपने धर्म व संस्कृति के प्रति स्वाभिमान उत्पन्न करने में, समाज सेवा के कार्य में, देश भक्ति की भावना उत्पन्न करने तथा राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने में उक्त मिशन तथा इसके संस्थापक स्वामी विवेकानन्द का योगदान उल्लेखनीय रहा है ।

"थियोसाफिकल सोसायटी" की नेता श्रीमती ऐनी बेसेंन्ट तथा डॉ० भगवानदास के कुमाऊँ आगमन एवं उनकी ओजस्वी वाणी ने, कुमाऊँ में राष्ट्रीय आन्दोलन को चरम अवस्था प्रदान की । "थियोसा-फिकल सोसाइटी" के प्रयत्नों से 1912 ई० में अल्मोड़ा के पल्टन बाजार में "इण्डियन बॉयज हिल स्कूल" की स्थापना हुई, जो "ओंरन्डेल स्कूल" के नाम से विख्यात था ।[24] बीसवीं सदी के प्रथम चरण में श्रीमती ऐनी वेसेन्ट के होमरूल-आन्दोलन का कुमाऊँ पर गहरा प्रभाव पड़ा था । कुमाऊँ में देशभक्त मोहन जोशी, चिरंजीलाल, अय्यर हेमचन्द्र, बद्रीदत्त पाण्डे आदि ने होमरूल लीग की स्थापना की ।[25]

संदर्भ

1—शाह, एस० पी० : गोविन्द बल्लभ पन्त—एक जीवनी, नई दिल्ली 1972, पृष्ठ—9

2—ओकले तथा गैरोला : दि हिमालयन फोक लोरस, इलाहाबाद, 1953, पृष्ठ—20-27

3—ऐटकिन्स, ई० टी० : दि हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स आफ एन० डब्लू० पी० ऑफ इण्डिया, जिल्द-2, गवर्न-मेन्ट प्रेस, इलाहाबाद, 1884, पृष्ठ-623

4—डबराल, एस० पी० : उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग-4, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा, गढ़वाल, सं० 2028 पृष्ठ-22

5—वैष्णव, यमुनादत्त : संस्कृति संगम उत्तरांचल, आगरा, 1977, पृष्ठ 101

6—शाह, एस० पी०, पूर्वोक्त, पृ०-19

7—वही, पृ०-19-20

8—वही, पृ०-19

9—पाण्डे, बद्री दत्त : कुमाऊँ का इतिहास, प्रेमकुटी, अल्मोड़ा, 1937, पृ०-645-46

10—प्रेमी, विश्वम्भर सहाय : हिमालय में भारतीय संस्कृति, प्रेम प्रिंटिंग प्रेस, मेरठ, 1965, पृ०—232-33

11—वही, पृ०-286

12—वैष्णव, पूर्वोक्त, पृ०-110

13—वही, पृ०-110-11

14—पाण्डे, बद्रीदत्त : पूर्वोक्त, पृ०-644-45

15—प्रेमी विश्वम्भर सहाय : पूर्वोक्त पृ०—231-32

16—वही, पृ०—233

17—सांकृत्यायन, राहुल : बीर चन्द्र सिंह गढ़वाली, किताब महल, इलाहाबाद, दिल्ली, 1957, पृ०-97

18—शाह, पूर्वोक्त, पृ०-19-20

19—वही, पृ० 20

20—अल्मोड़ा में : "रामकृष्ण मिशन" की एक प्रमुख सदस्य-श्रीमती गर्टरूड इमर्सन सेन के लेख—"स्वामी विवेकानन्द की अल्मोड़ा की तीन यात्रायें" स्मारिका (अल्मोड़ा), खण्ड—1, 1973 पृष्ठ 160 पर उद्धृत।

21—वैष्णव, यमुनादत्त : पूर्वोक्त, पृष्ठ-103-04

22—वही, पृष्ठ—108

23—"स्मारिका" : अल्मोड़ा जनपद के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की एक झांकी, खण्ड—1, 1973, पृष्ठ 163

24—नयाल इन्द्र सिंह : स्वतन्त्रता संग्राम में कुमाऊँ का योगदान, श्रमिक प्रेस, शाहदरा, दिल्ली, 1973, पृष्ठ—11

25—पाण्डेय, बद्रीदत्त : पूर्वोक्त, पृष्ठ—500-01.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2, P. 189-192
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२ पृ० १८९-१९२

"The Attitude of Lord Willingdon (1931-36) Towards the Indian National Movement"

Rajiva Mohan
History Deptt. Govt. Post Graduate College Bageshwar, Almora.

सारांश

इस शोध लेख में वायसराय लार्ड विलिंगडन के शासन काल में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति तथा उसके प्रति वायसराय की नीति का अध्ययन किया गया है। महात्मा गांधी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरंभ किया था जिससे सिद्ध हो सके कि कांग्रेस को भारत पर शासन करने के लिए जनता का अनुमोदन प्राप्त हो गया है। किन्तु मुसलमानों के आमधारा से पृथक हो जाने के कारण उनकी यह रणनीति असफल हो गई। लार्ड विलिंगटन के विभाजनवादी और दमनात्मक रवैये से भी इस आन्दोलन को धक्का लगा। फिर भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने गाँधी जी के नेतृत्व में समुचित गुणवत्ता और शक्ति अर्जित की।

ABSTRACT

The period of study shows the progress of the Indian National Movement and British attitude during the Viceroyalty of Lord Willingdon. The Civil Disobedience experiment was Gandhi's attempt to secure a mandate from the masses, classes and communities that would prove the right of the Congress to rule India but this strategy failed because the Muslims stood apart and the Viceroy indulged in vigorous repression. With the help of Communal Award the Viceroy tried to divide the major communities in India. Despite all repressive measures of Lord Willingdon, the Indian National Movement acquired a multidimensional character and from Gandhi it acquired a unique quality and power.

The span of the Indian National Movement from 1947 witnessed vicissitudes and when Freeman Thomas who later became Earl of Marques of Willingdon entered India as Viceroy in April 1931[1], it was marked by the growth of constitutional ambition and the surging wave of the Non-Cooperation Movement. The period of his Viceroyalty experienced the most devastating chaos of economic depression and Civil Disobedience programme of politico-economic action.

Lord Willingdon's approach to India's political problem was different from that of his predecessor. In August 1931, the Labour Government and Ramsay Macdonald retained the premiership[2] but the real parliamentary power of the new government lay in the support of the Conservative Party. Sir Samuel Hoare, a leading Conservative became Secretary of State for India.[3] This gave impetus to repressive policy of Lord Willingdon.

Before the arrival of Lord Willingdon, Gandhi-Irwin pact had been signed on March 5, 1931 and it had been decided that civil disobedience would be effectively discontinued and reciprocal action would be taken by the Government.[4] The pact had created a semblance of constitutional peace but behind it still there were the forces of intransigence. With the advent of Lord Willingdon, the disregard of the Gandhi-Irwin Pact became common. Gandhi wrote to Lord Willingdon that it would not be fitting that he should go to London to participate in the Second Round Table Conference when the communal issue was still unsettled and the terms of the Delhi agreement incompleted.[5] Now the Viceroy intended to seek the cooperation of the Congress and Gandhi announced his agreement with Lord Willingdon's offer to attend the Conference.[6] This was a diplomatic triumph for the Viceroy who succeeded in evolving an agreement that satisfied the conscience of the political spirit.

After the failure of the Second Round Table Conference the national activities in India began with a new fervour. On January 1, 1932 the Congress insisted on the resumption of the Civil Disobedience.[7] In reply the Viceroy issued on 4th January 1932 four ordinances to cope with the Civil Disobedience Movement with an intention to crush the movement[8] Thus Lord Willingdon drove the last nail into the coffin of the Gandhi-Irwin Pact and declared an open war on the Congress.

When Gandhi returned home, he discovered to his exasperation that Lord Willingdon had already struck hard. Bengal was under Martial law.[9] Ordinances ruled the United Provinces[10] and the North West Frontier Province.[11] Jawaharlal Nehru and Abdul Gaffar Khan were arrested.[12] Gandhi's interview with the Viceroy met with a rebuff.[13] The Congress authorised Gandhi to resume Satyagraha but this action landed Gandhi in jail.[14] Several new ordinances made the execu-

tive autocratic. Indian leaders found themselves behind bars. The organisation was declared unlawful and press was placed under strict surveillance.[15]

At this juncture the British Government announced the Communal Award (August 1932) providing for the separate communal electorates.[16] The British were in need of Muslim support as the Civil Disobedience Movement had been in full swing. The Viceroy considered it imperative that no ground should be given for suspicion that Muslim interests were being neglected. The contents of the Award revealed that Lord Willingdon's views had finally prevailed. Obviously the Communal Award was the culmination of the British policy partitioning the major communities in India which ultimately led to the partition of India in 1947. Gandhi commenced a fast unto death (20th September 1932) in protest against the segregation of the Depressed Classes from the Hindu fold by the Award,[17] This resulted in an agreement with the Depressed Classes known as the Poona Pact which was accepted by the British Government.[18] This saved the situation of disintegration of Hindus.

When the situation improved a little after the Viceroy's acceptance of the Poona Pact, the authorities took up the question of Third Round Table Conference (September 1932). But in this Conference the Congress was, of course, unrepresented.[19] The positive role of the Indian nationalists for freedom and the stiff action of Lord Willingdon led the British Government to formulate an Act (1935). This Act, however, could not bring the major political problems of the country to an end.

Thus we see that Lord Willingdon's attitude was reactionary and he always followed the policy of repression. With his arrival in India the truce between the Congress and the Government had broken down. If he wished to act in response to public opinion to any extent and thus to earn the goodwill and cooperation of the people, he had an excellent opportunity to do so when he took charge from Lord Irwin. The Gandhi-Irwin Pact yielded for the first time in recent history some real cooperation between the Congress and the people on the one side and the Government on the other on terms of equality.[20] But Lord Willingdon buried this opportunity to make the cooperation more lasting, as if he thought his predecessor's biggest blunder was the Pact itself, insufferably humiliating to British imperialism. He was determined to retrieve this "blunder" by crushing the Congress and the movement.

The Viceroy had the full backing of the bureaucracy which was averse to any conciliatory policy. He adopted a really rapid, organised and weighty handling of Civil Disobedience Movement, when it was started. He threw an unprovoked challenge to the Congress immediately after the return of its leader from the Second Round Table Conference, insulted him, the Congress and the country by

refusing to give him an unrestricted interview. Its result was the terrible suffering that India went through in the long regime of relentless repression. The intensity of the mass Civil Disobedience Movement was checked by the harsh measures. The period witnessed the rise and growth of what may be called the politics of suffering. The massage, however, of the Congress and the nationalists was carried to every nook and corner of the country and the people of every class were aroused to fight for the freedom of their nation.

REFERENCES

1. Durga Das, India From Curzon to Nehru and After, p. 160, Calcutta 1973.
2. R. Coupland, The Indian Problem 1833-1935, p. 123, Oxford 1942.
3. Ibid, p. 123.
4. File No. 5/45/1931, Home Political, National Archives of India.
5. The Pioneer, 24th May 1931.
6. The Pioneer, 29th Mey 1931.
7. A. I. C. C. Annual Report 1931-32, File No. 7/1932, A. I. C. C. Papers, N. M. M. L.
8. Indian Recorder, April-June 1932, p. 262.
9. A. I. C. C. Annual Report 1931-32, File No. 7/1932, A. I. C. C. Papers.
10. File No. 13/21/1931, Home Political, N. A. I.
11. Indin in 1931-32, p. 30.
12. A. I. C. C. Annual Report 1931-32, File No. 7/1932, A. I. C. C. Papers.
13. Ibid.
14. File No. 30/12/1932, Home Political, N. A. I.
15. The Pioneer, 28th April 1932.
16. File No. 31/113/32, Home Political, N. A. I.
17. File No. 41/5/32, Home Political, N. A. I.
18. The Pioneer, 26th Septembsr, 1932.
19. R. Coupland, Indian Problem 1833-1935, p. 129, Oxford 1942.
20. Bombay Chronicle, 18th April 1936.

•

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2, P. 193-197.
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० १९३-१९७

Marketable Surplus at Farmer's Level (A Study of Azamgarh District of Eastern Uttar Pradesh)

Haridwar
Deptt. of Economics, Govt. Degree College, Chandauli (Varanasi).

सारांश

इस अध्ययन में आजमगढ़ जनपद में उगाई जाने वाली मुख्य फसलों के विक्रय योग्य अतिरेक का सविस्तार आंकड़ा प्रस्तुत है। यहाँ खरीफ में धान तथा रबी में गेहूँ की फसल व्यापक पैमाने पर उगाई जाती हैं। अध्ययन से पता चला कि मात्रा की दृष्टि से गेहूँ में सबसे अधिक विक्रय योग्य अतिरेक है परन्तु प्रतिशत मात्रा की दृष्टि से सर्वाधिक विक्रय योग्य अतिरेक सरसों व गुड़ में है।

ABSTRACT

Here is a detailed account of the marketable surplus of the major crops in Azamgarh District. In this survey it is seen that paddy is the most extensively sown crop followed by kharif season and wheat in Ravi season in the area. The marketable surplus in case of wheat is more than other crops in quantity. But in case of mustard and gur, the marketable surplus in percentage is more than others crops.

Food crops in Azamgarh District occupy more than 80% of the total cropped area. With the introduction of new technology of production, there is substantial increase in the production of cereal crops. But a mere increase in the production of

Agricultural Commodities may not be sufficient to sustain the over all economic development. More important than the increased production is the actual quantities of marketable surplus available from such an increase.[1]

The .present study was undertaken to investigate the disposal of food crops on different size of farms. It covered through samples, all the cultivating households of Azamgarh District. The period of reference of the survey was July, 1982 to June, 1984. In the survey, informatton was collected on some important crops. Rice (Paddy), wheat, Arahar, Gur and Mustard emerged in the survey as the more impartant ones among them.

MARKETABLE SURPLUS

Marketable Surplus at farmer's level is the foundation on which the structure of Agricultural Marketing rests. The term 'Marketable Surplus' refers to the excess of a particular agricultural produce over the consumption requirements of the agriculturist's family for the same and also the requirements for seed and wages to be given in kind.[2] This 'Marketable Surplus is the amount of produce the farmer desires to sell. But the amount he actually sells is not always equal to the 'Marketable surplus' he has. Generally actual sales remain at a lower level. The amount of Agricultural produce which the farmer actually sells is called "Marketed Surplus" Such instances are rare when the 'marketed surplus' remains equal to or exceeds the limit of 'Marketable Surplus'.

Among the 100 farmers of different size groups selected for study from the Azamgarh district only 5 farmers were such whose Marketed surplus exceeded the marketable surplus. Such farmers were only 3 in number whose Marketed Surplus was just equal to their 'Marketable Surplus'. All such farmers whose 'Marketed Surplus' was found equal to or more than the 'Marketable Surplus' belonged to 0-5 acres size group. Equality between 'Marketable' and 'Marketed' surpluses are indicatlons of an efficient marketing system and is an optimum situation. But in only about 3 percent instances given above equality between the two was not on account of efficiency or right efforts in this regard but it was either on account of the need to sell more or it was by chance.

The details of 'Marketable Surplus' of farmers of diffierent size groups in the district under consideration are given in Table No. 1.

Table No. 1

Marketable Surplus as percentage to total Production

Agricultural produce	Size groups in Acres	Average production of per farmer family		Average percentage to total production of per farmer family			
		in quintals	in percentage	consumption	Seed	Wages paid in kind	Marketable Surplus [3–(4+5+6)]
1	2	3		4	5	6	7
Paddy	0-5	9.35	100.00	69.56	5.10	9.15	16.19
	5-10	20.04	100.00	51.02	6.31	12.03	30.64
	Above 10	38.51	100.00	45.50	7.00	13.75	33.75
	Average	22.63	100.00	55.36	6.14	11.64	26.86
Wheat	0-5	12.13	100.00	63.38	9.49	6.19	20.94
	5-10	27.50	100.00	53.16	9.02	6.55	31.27
	Above 10	50.47	100.00	46.05	8.27	8.10	37.58
	Average	30.03	100.00	54.20	8.92	6.95	29.93
Gur	0-5	4.58	100.00	53.93	--	9.39	36.68
	5-10	14.19	100.00	51.16	—	9.94	38.90
	Above 10	22.58	100.00	42.07	—	10.01	47.92
	Average	13.78	100.00	49.27	—	9.86	40.87
Arhar	0-5	1.98	100.00	73.49	2.02	9.09	15.40
	5-10	2.31	100.00	69.74	1.30	9.96	19.00
	Above 10	7.84	100.00	63.67	1.28	10.46	24.59
	Average	4.04	100.00	68.97	1.53	9.84	19.66
Mustard	0-5	1.01	100.00	38.50	10.19	—	51.31
	5-10	2.50	100.00	39.15	9.00	—	51.85
	Above 10	4.23	100.00	40.00	8.07	—	51.93
	Average	2.58	100.00	39.22	9.08	—	51.70

Source—Based on my own Research.

The above figures indicate that total average production (in quintals) per agriculturist family, it has a tendency to increase in the holding size in respect of all crops (like Paddy, wheat, Gur, Arahar and Mustard). Although big farmers put in lesser farming efforts and adopt lesser intensive farming yet, because of more land under cultivation, their family on an average gets more total production.

Family consumption of a farmer in the table represents the food consumed by all such persons (including servants) to whom food is served from his kitchen. The percentage of consumption in average total production per family shows a decreasing tendency with increase in the size. This tendency is also dependent upon Keynesian theory that men are disposed, as rule and on the average, to increase their consumption as their income increases, but not by as much as the increase in their income. Mustard is exception in this respect, because more of its oil is consumed by large holders.

Table no. 1 indicates that 6.14 percent paddy, 8.92% wheat, 6.53% Arahar ard 9.08% Mustard on all farms was used for seed. It is clear that big farmers keep seeds in larger amounts, because of requirement for sowing on a larger area. But if we look at the percentage of seed amount in total production of families it has a declining tendency with increase in the size of holding.

Wages given in the shape of corn are also more in the case of big farmers. Figures show that the percentage of Agricultural produce used for wages has an upward tendency with increase in the land holding. It is because small farmers give lesser employment opportunities for outsiders and small farmers generally do most of their agricultural work with the help of their family labour. The case is just reverse with big farmers. Percentage of total production scared for wages show that in the case of small farmers it is 9.15 precent of paddy, 6.19 percent of wheat, 9.39 percent of Guar and 9.09 percent of Arahar and in the case of big farmers it is 13·75 percent of paddy, 8·10 percent of wheat, 10·01 percent of Gur and 10·46 percent of Arahar.

Table No. 1 indicates that the marketable surplus for paddy, wheat, gur, Arahar and Mustard is 16·19%, 20·94% 36·68%, 15·40% and 51·31 percent respectively in the case of small farmers and in the case of big farmers it is 33·75 percent of paddy, 37·58 percent of wheat, 47·92 percent of gur, 24·56 percent of Arahar and 51·93 percent of Mustard. There is significant variation in the marketable surplus of paddy, wheat, Arahar and Mustard crop between small and big farmers. The percentage of Marketable Surplus is higher in case of Mustard and Gur as compared to wheat, Paddy and Arahar. Mustard and Gur are cash crops in this district. It may be observed that Marketable Surplus and size of holding are directly correlated to each other.

The above percentage may be compared with those furnished in the report on the marketing of Rice in India (1954). It gives the average derived from the data relating to the major rice producing states of Madras, West Bengal, Bihar, Orissa, Madhya Pradesh, Punjab and Hyderabad for the years 1946-47 to 1948-49. The disbursements as percentage of total production are[3] :

Domestic Consumption	44·4
Used for barter	1·7
Wages paid in kind	20·0
Seed	6·4
Balance representing marketable surplus	27·5
Total	100·00

It can be seen that the percentage obtained in the persent survey do not show wide variation from the above, inspite of the difference in time and locality.

REFERENCES

1. Singh, R. P. and S. N. Sahay : *Agricultural Marketing*. A quarterly Journal of Agricultural Ministry in India, July '83, p·25,
   Phillips, C. F. and D. J. Duncan : *Marketing Principles And Method*, Richard D. Irwin Inc., Ilinois, U. S. A., III–Edition, 1956, p. 9.
2. Pillai, G. V. : *Agricultural Situation in India*, Decmber 1962, Vol. 4. XVIL no. 9, p. 970, and
   Thomas, C. A. : *Annual Report of Central Rice Research Institute*, Cuttack, 1977, p·71, and
   Varma R. and K. Shanker. : *The Economic Times*, Marketable Surplus of Cereals, Retention and Sales, October 5, 1971.
3. Pillai, G. V. : Op. cit. p. 971.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2, P. 198-201.
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० १९८-२०१

LI.C.'s Role as a Financial Intermediary in Resource Mobilisation and Development in India

R. A. Sharma
Department of Economics, M. B. Govt. P. G. College, (Nainital) U. P.

सारांश

आज के युग में एल० आई० सी० विकासशील पूँजी बाजार ,में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । यह वित्तीय मध्यस्थ का कार्य भी करता है क्योंकि एक ओर यह अपने पॉलिसी धारकों की आवश्यकताओं को पूरा करता है और दूसरी ओर सार्वजनिक और व्यक्तिगत क्षेत्र के विभिन्न विनियोजकों के हितों का ध्यान रखता है । वित्तीय संस्था के रूप में यह पॉलिसी-धारको से प्रीमियम एकत्रित करता है और इस धन से इन्शोरेंस की प्रबन्ध लागत के रूप में विनियोजित करता है तथा इससे जीवन बीमा निधि को संचित करती है ।

ABSTRACT

Now-a-days LIC has became vitally important part of the developing capital market structure. It also serves as financial intermediary as it endeavours to meet simultaneously, the financial requirements of its policy holders on the one hand and on the other hand looks after the interest of various public sector institutions and private enterprises. As financial institution it collects premiums from policy holders and invests this amount to meet the cost of insurance and expenses of the management and also accumulating a life insurance fund.

In the Country's financial system, LIC of India has become a powerful factor because of massive fund at its disposal. Its does not only mobilise funds, which it invests in long term investment but also lends support to the stock market and helps check speculative activities. LIC's main responsibility is to its policy holders but it is also playing a pioneer role in stemming the economy of the Country.

Life Insurance Corporation serves as financial intermediary as it endeavours to meet simultaneously the financial requirements of its policy holders on the one hand and, on the others looks after the interest of various public sector institutions and private enterprises by channellising its funds for their disposal to expand their holdings of real assets e. g. plant and equipment, real estate and inventories, beyond the limits of their present net worth.

Life Insurance Corporation has become vitally important part of the developing capital market structure in India, Over the years it has provided policy holders with attractive and convenient instrument to accumulate retirement savings and to protect their families financially against premature death. LIC is the most widespread and efficient system of mobilising funds of the small savers. Having collected those savings the LIC then allocate it among alternative types of investments. The assets of LIC are primarily the obligations or the equities of those seeking capital funds, conversely the liabillties of life insurers are the assets of the policy holders (1). In general the insurance assumed by the LIC have greater predictability of value, smaller default risk the greater liquidity then the assets held by the corporation.

LIC, besides selling Life Insurance protection to its customers is also a financial institution of great importance and works as an intermediary. As financial institution it collects premiums from policy holders and invests this amount to meet the cost of insurance and expanses of the management and also accumulating a life insurance fund (2).

LIC in this way, while it collects modest sums from the savings of the policy holders, efficiently manages its funds by putting these savings in to meaningful investments. The main function of the LIC is to serve as an agency to funnel the savings into the pipelines of capital. It invests these funds for productively yielding handsome returns.

Since its inception the LIC has made a remarkable achievement in activising savings. Table-1, shows that its premium income has continuously risen; during the first five years i. e. 1957 to 1962, the average increase per annum was 11.07 crores which increased during 1962-67 to 16.8 crores, during 1967-72 to 28.29 crores, 1972-77 to 62.95 crores and financially during 1977-82 to 87.92 crores per annum.

In this way the increase during 1977-82 is about eight times more then first five years average increase.

There is hardly any field of economic activity in the country which has not been benefitted, directly or indirectly, by the operations of the LIC, whether it be the expansion of power projects, the development of sugar cooperatives, the project to provide drinking water to parched villages of India or the rural electrification, the LIC has extended massive financial assistance.

While on 31st December 1957 total investment of the corporation stood at Rs. 259 crores, over the last 25 years it has achieved phenomenal[3] growth. On 1st March 1982 total available funds of the LIC were Rs. 7562·61 crores (4). According to the present statutory provisions LIC has to inves 50% of its annual accretion in the Central Government, State Government and other approved securities. Another 25% is invested for financing schemes in the socially oriented sectors. Ten percent is earmarked for invesment in corporate sector and eight percent for loans and policy holders and upto two percent for construction and acquisition of immovable property.

The corporation investment in the socially oriented sector at present comprises of such purposes as electricity, housing, water supply, sewerage, road transport, sugar cooperatives and industrial estates have risen from mere Rs. 8 crores (2 percent of the total) in 1957 to Rs. 2472 crores (nearly 50% of the total) as on March 31st, 1980 (3). This is of course, in addition to the LIC's funds amounting to over Rs. 1886 crores invested in the Central and the State Government and other approved securities which are also utilized for nation building activities.

Financial resources for economic growth of a country are directly related to its savings. Saving involves setting aside a portion of current income for future use. The institution which promotes frugality, encourages and mobilizes savings and makes them available for investment, has a very vital role to play in the national economic development. The Life Insurance Corporation is the institution which has all these characteristics. It attracts personal savings of millions of individuals in the form of premiums and after meeting its cost of operation accumulates net savings which are made available for investment in various enterprises and thus helps to promote national economic and social development.

The author is thankful to Dr. K. S. Sharma, Associate Professor of Economics, Himachal Pradesh University, Simla. Dr. B. P. S. Bhadauria, Reader and Head of Economics Department, Meerut University, Meerut and Prof. R. L. Rawat, English Department, M. B. Govt. P. G. College, Haldwani for their valuable suggestions, the author is also thankful to the U. G. C. for its financial assistance.

TABLE 1

Premium income, total increase (crores of Rs.) and % increase over the previous year from 1957 to 1982-83.

Year	Premium Income (Crores of Rs.	Total Increase over the previous year (Crores of Rs.)	% Increase over the previous year
* 1957	68.67	--	---
1958	73.63	4.96	7.22
1959	84.93	11.30	15.48
1960	97.55	12.62	14.85
1961	112.94	15.39	15.77
* 1962-63	120.84	7.90	7.03
1963-64	146.73	25.89	21.42
1964-65	162.25	15.52	10.57
1965-66	179.76	17-51	10.79
1966-67	196.98	17.22	9.58
1967-68	213.01	16.03	8.13
1968-69	234.78	21.67	10.12
1969-70	260.41	25.63	10.91
1970-71	292.35	31.94	12.26
1971-72	338.55	46.20	15.80
1972-73	389.73	51.18	15.11
1973-74	454.88	65.15	16.72
1974-75	511.24	56.36	12.10
1975-76	588.25	77.01	15.06
1976-77	653.30	65.05	11.05
1977-78	709-43	56.13	8.59
1978-79	774.98	65.55	9.24
1979-80	875.37	100.39	2.95
1980-81	964.88	89.51	10.22
1981-82	1092 90	128.02	13.27
1982-83	1217.96	125.08	11.44

Source :—Annual Reports and Accounts of LIC. since 1957 to 1983.
*—Adjusted for twelve months.

REFERENCES

1. J. David Cummins Editor, 1977; P. 2.
2. Surya Pal Singh, Investment Pattern of the Life Insurance Corporation of India, 1974, P. 1.
3. The Economic Times, Saturday, January 24, 1981, P. II.
4. 25th Report and Accounts for the year ended 31st March 1982 of the L. I. C. of India, P. 2,

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2, P. 202-205
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० २०२-२०५

A Technique and Methodology for an Analysis of out-Migration Problem

G. S. Lal
Prof. & Head of Geography Deptt. Govt. P. G. College, Rishikesh.

सारांश

बाह्य प्रवास समस्या प्रादेशिक विकास में एक नयी प्रवृति है जिसमें निहित कारकों के भिन्न-भिन्न अन्तर्जात एवं पारस्परिक पहलुओं के विश्लेषण पर ध्यान केन्द्रित किया जाना आवश्यक है। प्रस्तुत लेख में समस्या के अध्ययन से सम्बन्धित नयी तकनीक एवं विधितंत्र जैसे अनुसंधान एवं शोध की रूप रेखा, आँकड़ा एकत्रीकरण एवं मानचित्र प्रदर्शन के उपयुक्त प्रयोग पर बल दिया गया है।

ABSTRACT

Out migration problem is a new trend in regional development which focusses attention on factorial analysis of varied multifaces of the problem. The present paper highlights on new technique and methodology such as design of investigation, research, data collection and cartographic representatrion for the study of outmigration problem.

INTRODUCTION

Migration is a branch of population geography and out migration is relatively a new trend which emerges as problem on area ultimately with regard to its regional development. *Khan* (1980 p. 381)[1] pleaded the object and nature of the problem on the basis of data for better understanding and analysis. A factorial analysis of direction of outmigration, spatial-movement, characteristics of outmigration, socio-economic changes and its impact on areal economy need be made. In

addition to above, characteristic features of original place and destination of migration are also essentially needed.

DESIGN OF INVESTIGATION

Schedules and questionaires should be prepared and through methods of interviews, reasons for outmigration may be easily investigated which would reveal the attraction tool of destination. Correlation and interaction between environmental combinations and spatial movements may be easily, thus, determined and results be derived. Variations in spatial personalities exist on different types of area. Problem of outmigration depends largely on the areal differentiation. Out migration in plains are two dimensional while that of the hills multidimensional such as physiographic, climatic, socio-economic, political, national and cultural. Due to differentiation in multi-dimensional factors, the degree and nature of out migration is highly fluctuating and variable. Therefore, the design of the investigation depends on nature of enquiry and the results be inferred on the type and size of samples, *Lal* (1979 p. 462-63)[2] pleaded that emphasis be given on stratified random sampling so determined through superimposition method from each environmental cum homogeneous zones based on a number of variables keeping pace with the characteristics features of the area.

DESIGN OF RESEARCH WORK

Risly (1963 p. 3-31)[3] has laid too much emphasis on social research and has classified 3 types of research work according to nature of work as detailed below.

1. Statistical study.
2. Case study.
3. Comparative study,

Tarner (1969 p. 207 14)[13] classified into four categories from geographical stand point as given below.

1. Case study.
2. Area study.
3. Diagnoistic study.
4. Regional study.

For research work on outmigration, it is essential to indicate as to whether the study is objective or subjective. It should be both objective cum subjective in author's opinion so that practical infra-structure of out migration may be detailed in the frame of objective perspective. Such study need be simplified through stratified random Sampling, (*Lal*, 1979 p. 462-63) in hills or purposive sampling depending on

the terrain and environmental combinations. Site of samples in respect of outmigration need be selected on the basis of the following variables–

1. Sex-Ratio and marital status.
2. Land man ratio and relationship.
3. Proportion of cultivated land and growth cum stage of production.
4. Spatial-movement and stratification.
5. Age group structure and occupational groups.
6. Transport and communications.
7. Marketing and shopping facilities.
8. Stage of resource development.
9. Outmigration distance-adjustment.
10. Employment opportunities and social forces.

The research work on outmigration should rest over a selected base year for recording the pattern and over years for temporal-analysis in relation to space-distance for understanding of spatial-movements.

METHODOLOGY AND DATA COLLECTION

Different methodologies have been attempted by different set of scholars for meeting the ends. The research of outmigration need be based on the following sources of data collection. *Karnatak* (1974)[5] pleaded some of the underlined sources of data collection for Himalayan region specially.

1. Data collection Methodology.
   a. Published and Unpublished sources.
   b. Primary sources, official records, unofficial records, reports, papers and magazines.
      1. Qualification and schedules.
      2. Enquiry and interviews.
      3. Tertiary data by own observations.
      4. Field survey by personal investigation.
2. Selection and allocation of village.
   a. Allocation of samples and their selection through stratified random sampling.
   b. Geographic aspects of land use be taken into consideration.

3. Cartographic collection and cartographic analysis of data--
   a- Cartographic collection, data processing and tabulation plan.
   b- Stastistical analysis of data.
   c- Cartographic analysis-photographic representation.
   d- Report writing and trend analysis

4. Division of work
   a. Introduction
   b- Geographical factors of relevance
   c- Outmigration, problem, factoral analysis and outmigration patterns
   d- Problems and suggestions
   e- Planning and development

These techniques and methodologies would help in the investigations of visible and invisible fundamental facts and factors concerned with outmigration of an area. Data so obtained can be further clarified, analysed and concluded, interpretations of facts and figures can be further supplemented by plate, tables and suitable cartographic analysis. After having a comprehensive knowledge of facts and factoral analysis, the magnitude of the outmigration problem can be better understood and accordingly suggestive measures may be put forward to meet the challenges. As per geographic responses, planning on charted course of action may be affected to, case studies or network analysis of few examples in accordance with the suitable theories may be highlighted for indicating development or phenomenal success in the right direction or perspective for controlling outmigration problem to large extent considerably.

REFERENCES

1. Khan, Najama : Internal migration-concept theories and method of analysis in recent trends and concepts in Geography Mandal, B. P. and Singh, V. N. P. Ph. D. concept publishing co. New Delhi, 1980, p. 381 (eds.)
2. Lal, G. S. : Land use pattern in Chamoli Distt. of U. P. Himalaya unpublished Ph. D. thesis, Agra Univer 1979, p. 462-63
3. Riley, Matilda, White : A case study approach, II-Exercise and manual p. pub. Harcourt, Harce and World, Newyork. 1963, p. 3-31
4. Tarner, J. D. : Predicting migration, social forces, Vol. 30 1961. p.207-14
5. Lal, G. S. : Op. cit 1979, p. 462-63
6. Karnatak, P. D : Sor Bhumi of U. P. Himachalya-A study of resources, land use and settlement Ph. D. unpublished thesis, Agra Univ. Agra. 1974
7. Smith, T. N. : Fundamental of Population Geog. Chicago. 1960

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2, P. 206-209
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० २०६-२०९

A Geographical study of Soil Erosion and Conservation in the Hazaribagh Plateau : Bihar

Onkar Prasad
Lecturer in Geography, Govt. Degree College, Chaubattakhal, Pauri Garhwal.

सारांश

(प्रस्तुत अध्ययन बिहार के हजारीबाग पठार पर भूमि क्षरण के साथ भौगोलिक तत्वों का सम्बन्ध प्रस्तुत करता है। अध्ययन का उद्देश्य क्षेत्र में भूसंरक्षण से सम्बन्धित क्रिया-कलापों के पारिस्थैविक संतुलन को प्रदर्शित करना है।)

ABSTRACT

[The study presents a relationship between soil erosion and geographical elements in the Hazaribagh Plateau of Bihar. The study aims at revealing the ecological balance regarding soil conservation practices in the area.

The Hazaribagh Plateau (between latitudes 23°36' to 24°48' N and longitudes 84°27' to 86°34' E), with an area of 15, 129.5 km² and a population of 27,24,815 (1971), forms the north eastern part of Chotanagpur Highlands in the state of Bihar.

PHYSIOGRAPHY

The landscape of the study area expresses itself in different surface forms which range from granite gneiss domes, projecting over peneplained surfaces, to peaks, hills, spurs and scarps highly dissected and diversified by streams. The general elevation of the area varies between 250 m and 600 m above mean sea level. In fact the broad and undulating Plateau consists of two distinct erosional surfaces.

the Upper Hazaribagh Plateau Surface and the Lower Hazaribagh Plateau Surface, having an average elevation of 600 m and 400 m respectively. The former has length (east-west) of 60 km and width (north-south) of 25 km, the area of 956.94 km. being 6.37% of the total study area. On the other hand the latter covers 93.63% of the total study area, has been divided into four sub-regions : The Kodarma Plateau, The Chatra Plateau, The Bagodar Upland and The Northern Dissected Fringe.

The descent from the Upper Surface to the Lower Surface is not gradual but rather abrupt in the form of narrow and steep slopes or scarps, locally known as 'Ghats'. Further, the relative relief (100 to 400 m) of the Upper Surface closely resembles that of Lower Surface but this is not so in the case of their escarpments. The latter differences arise most probably out of the differences in rock-resistance to erosion in the two cases. In fact, the southern escarpment of the Upper Surface is steeper (above 6°), than the northern escarpment of the Lower Surface (below 6°), the latter also being more dissected. The slope of the Upper surface (below 1°) is also gentler than the Lower Surface (1°--2°).

The surface drainage of the Hazaribagh Plateau is a part of the Ganga basin and finds its outlet through the Ganga System into the Bay of Bengal. Structurally, the study area is the ancient landmass; it has perhaps never gone under the sea and has been therefore, subjected to long continued soil erosion. According to the drainage characteristics, the drainage of the area can be grouped into six main systems : the Damodar, the Sakari, the Mohane, the Amanat, the Lilajan and the Morhar.

RAINFALL

In conformity with the characteristic features of the monsoon rainfall, the rainfall distribution in the area exhibits marked variations with respect to time and space, the variability increasing with a decrease in rainfall amounts. More than 80% of the total annual rainfall occurs during the rainy season. The area lies in a belt of transition between wetter Bengal in the east and the drier west. However, the general tendency of the rainfall to decrease from east to west in this part of the country is very much obliterated by relief in the study area, as a result of which the decrease in rainfall amounts (1,350 mm) are recorded in the south-western part of the area. The 1,300 mm isohyetal line may be taken to roughly divide the area into the more humid south from the less humid north.

FOREST

Champion terms the natural vegetation of Chotanagpur region (including the Hazaribagh Plateau) as 'Tropical Moist Deciduous' and separates it from the

natural vegetation of the Ganga Plain (termed as 'Tropical Dry Deciduous') in the north by the 1,200 mm isohyetal line 2. The area happens to be situated in a transitional zone and hence this foundary is only an approximate one. The forest comprises almost one half (47·98%) of the total area.[3]

SOIL EROSION

Soil in the study area has evolved largely from the underlying rock materials through geological time. The stream valley bottoms are the only sites covered by transported alluvial soils. At several places, execssive water erosion has produced deep gashes in the soil cover. The parent rocks, thus exposed, have often subsequently been covered afresh by rock materials washed down from higher levels, for instance, in the valleys of Barsoti and Jamunia rivers. In the greater part of the study area, however, the soil is composed of disintegration. In general, the lowland (dons) areas of the undulating surfaces of the Plateau are comparatively more fertile. The uplands (tanrs) are well drained, gently to moderately sloping, and moderately to roughly eroded. The lowlands, on the other hand, are moderately to roughly drained, gently sloping and generally bunded. Soil erosion is thus largely confined in the cultivable areas.

Thus, the highly uneven topography, along with a high incidence of intensive rain storms, accelerate the rate of run off from rainfall, resulting in a high rate of soil erosion. Low soil permeability, deforestation, overgrazing and upland cultivation act as contributory factors. Sheet erosion is a common feature, causing heavy annual loss of valuable top soil. Gully erosion too is quite prominent, resulting in the conversion of agricultural lands into ravine lands.

Almost the entire area suffers from soil erosion but the intensity varies from place to place. The soil cover, if any, on the higher and steeper scarplands, is generally free from erosion, for example the scarplands of the Northern Dissected Fringe where the vegetal cover has remained intact so far due to its general in accessibility to man and live stock. The worst aflected areas, largely due to gullying, are the uplands of Giridih district, in the eastern part of the study area, and the Upper Barakar Valley, in the central part. The gentler and the wider connecting scarp-land between central Upper Hazaribagh Plateau and the Lower northern Hazaribagh Plateau (Kodarma Plateau) is also seriously aflected. It has been found that approximately 17% of the total area had been lost to cultivation by 1960 through gully erosion and the rest had suffered depletion of fertility through sheet erosion.[4] This has also resulted in siltation in reservoirs, and riverbeds, thereby reducing water supply and increasing flood frequency. A fall in the storage capacity of reservoirs has also resulted in a fall in the water-table of the surrounding areas and drying up of wells in extreme cases.

SOIL CONSERVATION

The Damodar Valley Corporation (D. V. C.) has adopted soil conservation measures with a views to mitigate the problem of sedimentation in the reservoirs and the Damodar river. Similar measures have also been adopted by the State Government, for the reservoirs managed by them. An active participation of the Population is a pre-requisite in the successful implementatinn of these measures, initiated on a large scale from 1955. The commonly utilized soil conservation practices are contour-ploughing and terrace cultivation on slopes and construction of check-bands or 'bandhis'. In fact, an integrated approach is required for the utilization, maintenance and conservation of soil resources through proper coordination between the Soil Conservation Department on the one hand and others like the Irrigation, Forest and Animal Husbandry Department on the other.

However, the State Government Forest Department has been undertaking reforestation programme and checking overgrazing and other destructive land-use practices in terms of the objectives of the National Forest Policy adopted for the country in 1952. Proper forest management practices need be urgently applied in the severely affected areas. There is need for further improvement and expansion to protcct, maintain and improve the forest and even grass lands not only on scarp-lands, slopes and river sides but also around the cultivable lands.

As regards checking soil erosion as well as siltation in reservoirs, special attention need be given to the catchments of Upper Barakar and the Jamunia rivers, which are severely affected. The Government agencies should also involve tribals and other uncmployed people in the Soil consesvation programmes. This will not only lessen the local unemployment problem but also develop conservation consciousness amongst inhabitants.

REFERENCES

1. Prasad Onkar, An Appraisal of Resources For Economic Development of Hazaribagh Plateau : A Geographieal Analysis, Approved .Ph. D. thesis in Geography, B. H. U., Varanasi, 1983, P. 4.
2. Champion, H. C., A Preliminary Survey of the Forest Types of India and Burma, Ind. For. Rec. (New Series), I (1), 1936.
3. माथुर आर० एन० एवं प्रसाद ओंकार, बिहार के हजारीबाग एवं गिरिडिह जनपदों के वन संसाधन : नियोजन हेतु एक भौगोलिक मूल्यांकन, विकासशील भूगोल पत्रिका, हरिहरपुर, 1982, पृ० सं० 1·7.
4. Bhattacharya, J. P., Study of Soil Conservation Programme for Agricultural Land, Bombay, 1964, P. 208.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2. P. 210-215
उ० प्र० राज० महा० एके० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० २१०-२१५

ग्रामीण समुदाय में सामाजिक कुल केन्द्रों की भूमिका

राम अधीन शुक्ल
समाज शास्त्र विभाग, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर

सारांश

(जातिगत आधार सामाजिक शक्ति के लिए आवश्यक है परन्तु साधन कुल केन्द्र के स्तर पर जातिगत आधार टूट कर व्यक्तिगत हितों और समूहगत हितों के संरक्षण का यंत्र बन जाता है। व्यावहारिक स्तर पर सामाजिक कुल-केन्द्र जातिगत भावना से मुक्त होकर सेक्युलर होता है। सामाजिक कुल-केन्द्र में सदस्यों का जातिगत महत्व नहीं होता है। जनतांत्रिक एवं विकासवादी प्रक्रिया में जैसे-जैसे ग्रामीण जीवन में सम्बन्धों की परम्परागत पद्धति टूटती जाएगी वैसे-वैसे सामाजिक कुल केन्द्रों का प्रकार्यवादी महत्व बढ़ता जाएगा और सामाजिक कुल केन्द्रों की प्रकार्यात्मकता के कारण प्रतिदिन के ग्रामीण जीवन में सदस्यों की जातिगत स्थिति का महत्व घटता जाएगा।)

ABSTRACT

(Caste base is the essential factor for the social strength. But at the level of the resource net work the caste base does not succeed as such rather it becomes an instrument of protection for both individual and collective interest. But in practice the social net work is secular and devoid of caste consciousness because at this level the members have no importance on the basis of their caste. In a democratic and developing process with the traditional ways of relationship of rural life, tending to break the importance of functional orientation, increases in social net work and because of the functional social net work the caste status as a discriminatory factor diminish in every day rural life.)

भारतीय सामाजिक ग्रामीण संरचना के बारे में लम्बे अर्से तक यह मान्यता प्रचलित रही है कि यह स्थिर एवं परिवर्तनहीन निरन्तर प्रवाहमय है। परन्तु आधुनिक उपागमों के प्रभाव से यह अछूती नहीं रही है इसमें परिलक्षित परिवर्तन आये हैं। इस प्रक्रिया का प्रभाव बन्द, अर्द्धखुली, एवं खुली सभी प्रकार की सामाजिक संस्थाओं पर अलग-अलग स्तर पर पड़ा है। जाति, सामाजिक बन्धन एवं स्तरीकरण के सन्दर्भ में इस प्रभाव का आंकलन किया जा सकता है। इस शोध पत्र में ग्रामीण नेताओं के सामाजिक कुल केन्द्रों एवं ग्राम सदस्यों के बीच विनिमय प्रक्रिया का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में सामाजिक कुल केन्द्रों [1] का विशिष्ट स्थान है। सामाजिक कुल केन्द्र व्यक्ति एवं सामाजिक समूह के प्रति क्रियाशील होते हैं? भारतीय समाज में इस दिशा में उच्च और निम्न, धनी और निर्धन-जातीय संस्तरण में शीर्षस्थ सवर्ण लोग सामाजिक कुल केन्द्रों के सहारे ग्रामीण जन जीवन को प्रभावित करते हैं। सामाजिक कुल केन्द्र एक प्रकार का स्वार्थ समूह है जो पूर्णतः स्वीकार मूलक (positive) निजी स्वार्थों पर आधारित होता है। एक कुलकेन्द्र के अन्तर्गत कुछ व्यक्ति या परिवार होते हैं जो परस्पर सामाजिक अन्तर्सम्बन्ध से जुड़े होते हैं और प्रायः जिनके निजी स्वार्थ एक समान होते हैं, ये एक दूसरे के हितों के लिए पूरक होते हैं। प्रत्येक कुलकेन्द्र का एक नेता होता है जो अपने कुलकेन्द्र का मार्ग निर्देशन करता है। 1960 के बाद साधन कुल केन्द्रों को लेकर जो अनुसंधान कार्य हुए हैं उनसे साधन कुल केन्दों के आधारों पर प्रकाश पड़ता है। इन अध्ययनों में ए० सी० मेयर (1960–62)[3] वोसीवियन (1968)[4] वार्न्स (1964)[5] हीटेन एवं वुल्क[6] आदि प्रमुख हैं। इन लोगों ने अन्तर्क्रिया पर अधिक बल दिया है। अतः सामाजिक कुलकेन्द्र अन्तर्वैयक्तिक अन्तर्वद्ध सम्बन्धों की श्रेणी है। प्रस्तुत शोध पत्र प्रो० के० एस० शर्मा, एवम् डॉ० सुधाकर पाठक के अध्ययन पर आधारित है।

अध्ययन की समस्या एवं क्षेत्र

अध्ययन की निम्नलिखित समस्यायें हैं—

क—सामाजिक कुलकेन्द्र क्या है?

ख—सामाजिक कुलकेन्द्र किन प्रकार्यों का निर्वाह करते हैं?

ग—ग्रामीण क्षेत्र पर आधारित सामाजिक कुलकेन्द्रों की क्या विशेषतायें हैं।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद में काशी विद्यापीठ विकास खण्ड को अध्ययन के लिये चुना गया है। यह विकास खण्ड भारतीय ग्रामीण राजनीति का जलता हुआ क्षेत्र हैं आर्थिक दृष्टि से पूर्वी उत्तर प्रदेश में सबसे पिछड़ा हुआ है। वाराणसी जनपद की राजनीति का प्रभाव यहाँ के प्रत्येक लोगों के जन-मानस पर रहता है। इन्हीं कारणों से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से इस क्षेत्र के 400 ग्रामीण नेताओं को, जिनमें औपचारिक नेता एवं अनौपचारिक नेता भी सम्मिलित हैं, को दैव निदर्शन प्रणाली के द्वारा चुना गया है। इन ग्रामीण नेताओं में कुछ के वैयक्तिक इतिहास को भी लिखा गया है। क्षेत्र में राजनीति सम्बन्धी घटित घटनाओं पर विशेष ध्यान दिया गया है। अन्त में इन ग्रामीण नेताओं के कार्यों का भी मूल्यांकन किया गया है।

सैद्धान्तिक अभिगम :—

साधन कुलकेन्द्र में कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का विशिष्ट स्थान है जो कि साधन कुल केन्द्रों के प्रकार्यों में निरन्तरता बनाये रखते हैं।

(क) भूमिका सिद्धान्त :—

सामाजिक सम्बन्ध कुल केन्द्र की व्याख्या करने के लिए भूमिका सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता है। व्यक्ति की भूमिका से सामाजिक सम्बन्धों का पता चलता है। भूमिका के साथ यदि सम्बन्ध कुल केन्द्रों को जोड़ दिया जाय तो सामाजिक घटना की व्याख्या व्यवस्थित रूप से होती है।

(ख) विनिमय सिद्धान्त :—

मानवशास्त्र में इस सिद्धान्त के प्रस्तावकों का मत है कि सामाजिक सम्बन्ध कुलकेन्द्रों की व्याख्या पारस्परिकता पर आधारित होती है। एक मित्र दूसरे मित्र को उपहार देता है। उपहार देकर भी मित्र प्राप्त किये जाते हैं। तात्पर्य यह है कि जब भौतिक वस्तुओं का आदान प्रदान होता है तो उससे सामाजिक सम्बन्ध निर्मित होते हैं। किसी भी सम्बन्ध विनिमय के अभाव में सम्बन्ध-कुल-केन्द्रों की कल्पना नहीं की जाती है। वर्तमान शोधपत्र में विनिमय पर आधारित सामाजिक सम्बन्ध कुलकेन्द्रों का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। अन्य सामाजिक आधारों की अपेक्षा हमारे अध्ययन के लिये विनिमय का सैद्धान्तिक आधार विशेष महत्व रखता है।

(ग) क्रिया सिद्धान्त :—

सामूहिक प्रतिनिधित्व के दबाव से मुक्त होने के लिए क्रिया सिद्धान्त पर बल दिया जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति अपने व्यवहारों के लिये उत्तरदायी होता है। वह अपनी इच्छा से लक्ष्यों का चयन करता है। व्यक्ति अपने उद्देश्यों को ध्यान में रखकर सामाजिक सम्बन्धों में गाँठ (जोड़) लगाता है।

इन तीनों सैद्धान्तिक आधारों का समन्वित रूप भी सम्भव है, इसके अतिरिक्त निम्नलिखित अवधारणाओं का भी प्रयोग किया जाता है क्योंकि सम्पूर्ण कुलकेन्द्र असीमित होता है। ऐसी भी अवधारणा ए०-सी० मेयर के अनुसार हैं। [7]

(अ) एक्शन सेट :

किसी उद्देश्य को लेकर जो कार्य किये जाते हैं वे ऐक्शन सेट कहलाते हैं। ऐक्शन सेट ही सामाजिक कुलकेन्द्रों का विश्शेषण करते हैं।

(ब) अर्द्ध समूह

जब तक व्यक्तियों के सम्बन्धों में सामूहिकता का विकास नहीं होता तब तक वह ढ़ीले-ढ़ाले सम्बन्धों का अर्ध समूह होता है। सदस्यों के उद्देश्य बदल जाते हैं तो ऐसे अर्द्ध-समूह या तो टूट जाते हैं या दूसरे अर्ध-समूह वन जाते हैं। कुल-केन्द्रों की व्याख्या में अर्द्ध समूह की अवधारणा से सम्बन्धों का गुण समझा जासा है।

(स) संरक्षक की भूमिका

संरक्षक भूमिका का सम्बन्ध कुलकेन्द्र में एक ऐसे व्यक्ति (एक से अधिक भी हो सकते हैं) से होता है जो दूसरों को लाभ पहुँचाता है तो वे संरक्षक को दोषी ठहराते हैं।

(द) दलाल या बिचौलिया

दलाल या बिचौलिया का सम्बन्ध शंकुल में एक या एक से अधिक ऐसे बिचौलिये होते हैं जो एक व्यक्ति को लाभ देकर दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाते हैं। इसका कार्य क्षेत्र संरक्षक की भूमिका से अधिक व्यापक होता है।

उपर्युक्त सभी अवधारणाओं का वर्तमान शोधपत्र में यथासम्भव प्रयोग किया गया है। इस शोध पत्र को हमने प्रो० के० एन० शर्मा के कानपुर[8] एवं डॉ० सुधाकर पाठक[9] के अध्ययन के आधार पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

उक्त प्रासंगिकता में प्रस्तुत अध्ययन का मूल्यांकन एवं निष्कर्ष

भारतीय ग्रामीण समाज में व्यवित अपना कार्य कराने के लिए अपने कुलकेन्द्र के नेताओं की सहायता चाहता है। कुलकेन्द्र का नेता भी अपने कुलकेन्द्र के सदस्यों की सहायता किसी भी स्थिति में करता है। इनके कार्य करने के क्षेत्र इतने व्यापक होते हैं कि कभी-कभी कुलकेन्द्र के नेता दूसरे नगरों में अपने बने कुलकेन्द्र के सदस्यों के यहाँ अपने ही कुलकेन्द्र के अन्य सदस्य भेजकर कार्य करवाते हैं। इस प्रकार गाँवों में भी नातेदारी के सम्बन्धों में उनके कुलकेन्द्र के नेताओं की जानकारी प्राप्त करके उनसे सहायता ली जाती है। कभी-कभी पाँच या उससे भी अधिक माध्यमिक सम्बन्धों का सहारा लिया जाता है। वैसे ग्रामीण समाज में ज्यादातर (42%) नेता अपने कुलकेन्द्र के सदस्यों की सहायता अपने कुलकेन्द्र के नेता से ही करवाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में ग्रामीण परिवेश में कुलकेन्द्र के माध्यमों का अधिक महत्व बढ़ता जा रहा है।

ग्रमीण नेताओं द्वारा अपने कुलकेन्द्रों में किये कार्यों का स्वरूप :—

कुलकेन्द्र का नेता अपने सदस्यों को किसी नौकरी या किसी व्यवसाय में लगाता है। कुलकेन्द्र के नेता के लिए ग्रामीण परिवेश में अपने सदस्यों को नौकरी दिलाना एक महत्वपूर्ण कार्य बन गया है एवं यही कार्य उनकी प्रतिष्ठा का द्योतक माना गया है। ग्रामवासी भी राजनीतिक क्षेत्र में नौकरी लगवा देने को उसके राजनीतिक दबदबे का परिचायक मानते हैं। गाँव वाले इस बात से सहमत हैं कि कुलकेन्द्र के नेता ने उसके लड़के की रेलवे में नौकरी लगवा दी क्योंकि कुलकेन्द्र नेता का सम्बन्ध रेलमन्त्री से बहुत ही निकट का था। दूसरे महत्वपूर्ण कार्य ग्रामीण नेताओं का अपने कुलकेन्द्र के सदस्यों की आर्थिक सहायता करना होता है। औपचारिक नेता निश्चित रूप से किसी न किसी प्रकार अपने कुलकेन्द्र के सदस्यों की आर्थिक सहायता करता है। इन कुलकेन्द्र के नेताओं का कार्य लड़के-लड़कियों का विवाह तय करवाना, मुकदमें की पैरवी करना, तथा छिपे रूप में अपने सदस्यों की आर्थिक सहायता करना है। दुकान का लाइसेंस दिलाना, पम्पिंग सेट मंजूर कराना, उनके लड़के लड़कियों को विश्वविद्यालय, महाविद्यालय में प्रवेश दिलाना भी उनका कार्य होता है। इसके अतिरिक्त कुलकेन्द्र का नेता बहुत मामूली मामूली कार्यों में (जैसे सरकारी नलकूप के पानी के बँटवारे में) अपने सदस्यों का पक्षपात करता है, चकबन्दी के समय चकों की हेराफेरी करवाता है तथा साधन सहकारी समितियों में सिफ़ारिश करके उनके आर्थिक हितों के लिये छोटे-छोटे कार्य भी करता है। आश्चर्य उस समय होता है जब कि इस सभी कार्यों में

जाति का कोई स्थान नहीं होता हैं। सर्वाधिक माध्यमों का उपयोग ये अपने कुलकेन्द्र के सदस्यों की नौकरी हेतु करते हैं, इसमें इनको तीन चार माध्यमों का सहारा लेना पड़ जाता है।

ग्राम सदस्यों द्वारा अपने कुलकेन्द्रों के नेताओं की सहायता के स्वरूप :

भारतीय ग्रामीण संरचना में ग्राम सदस्यों का सहयोग अपने गुट के प्रति जितना अधिक होता है उतना शायद जाति के प्रति सम्भव नहीं है। यह सर्वमान्य धारणा बन चुकी है कि ग्रामीण परिवेश में पर्याप्त राजनीतिक जनजागरण हुआ हैं। 1977 एवं 1980 के चुनाव इस तथ्य को काफी स्पष्ट करते हैं कि आज के गाँव वे गांव नहीं हैं जो 1960 के गाँव थे। आकड़े इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि सर्वाधिक ग्राम सदस्य अपने कुलकेन्द्र के नेता की सहायता उनके चुनाव के समय ही करते हैं। ये ग्राम सदस्य अपने कुलकेन्द्र के नेता के लिए अपने अलग-अलग नातैदारी समूह का प्रयोग उनके अपने सम्बन्धों के द्वारा अलग-अलग करवाते हैं। वे अपने व्यक्तिगत प्रभाव का भी उपयोग करते हैं। चुनाव के अवसर पर ये सदस्यगण अपने कुलकेन्द्र के नेता के लिए मारपीट, लड़ाई, झगड़ा, शारीरिक बल प्रयोग तथा गुप्त रूप से आर्थिक सहायता करते हैं। ग्रामीण पृष्ठ भूमि में राजनीतिक चुनाव के समय यह भी देखने को मिला है कि उच्च स्तर का नेता मध्यम स्तर के अपने कुलकेन्द्र के नेता को पैसा देकर गाँव-गाँव में उसके कुलकेन्द्र के सदस्यों को प्रभावित करता है। यही लोग चुनाव में झण्डे लगाते हैं, नारा बोलते हैं, तथा वोट के दिन तम्बू लगाकर वोट देने के लिये आने वाले प्रत्येक ग्रामीण जन को पर्ची बनाकर देते हैं। कुछ लोग तो उनके दाना-पानी (नाश्ता वगैरह) की व्यवस्था तथा वोट देने आने के लिए बैलगाड़ी अथवा ट्रक का प्रबंध करते हैं। साधारण जन, जिसे मीलों से पैदल आना पड़ता होता है, जिसकी गाड़ी में बैठकर आता है उसी को भावना-वश वोट भी दे देता है। इस प्रकार ये कुलकेन्द्र के नेता अपने बड़े नेताओं की सहायता बड़ी कुशलता से करते हैं। वे बड़े नेताओं के लिये कुलकेन्द्र के नेताओं के कहने पर प्रचार करते हैं वह इस लिये कि उनके कुल-केन्द्र के नेता का सम्बन्ध बड़े नेता से है जो रेलमन्त्री था। वह जीत जायेगा तो पुनः मन्त्री बनेगा और उनके कुलकेन्द्र का नेता उनका कार्य कराएगा। ग्राम सदस्यों को इस बात पर गर्व होता है कि उनके कुल-केन्द्र के नेता का सम्बन्ध राजधानी के नेता से है। ये ग्राम-सदस्य रामलीला, कृष्णलीला, राम नवमी, जन्माष्टमी के आयोजन अथवा दंगल कराने, मेला लगवाने या अन्य सामाजिक सांस्कृतिक कार्यों में तन, मन, धन से अपने कुलकेन्द्र के नेता की सहायता करते हैं। इसके अतिरिक्त ये ग्राम सदस्य सड़क बनवाने, अस्पताल की व्यवस्था करवाने, गाँव की सफ़ाई, या बच्चों की पढ़ाई की व्यवस्था करने जैसे ग्राम विकास के कार्यो द्वारा अपने कुलकेन्द्र के नेता की छवि को ग्रामीण पृष्ठभूमि में निखारने का प्रयास करते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि यदि कुलकेन्द्र का नेता स्वतः जब ग्राम सदस्यों की सहायता करता है तो ग्राम सदस्य भी अपने कुलकेन्द्र के नेता के लिये अपना जीवन होम देते हैं। इस प्रकार ग्रामीण पृष्ठभूमि में साधन कुल-केन्द्रों का प्रभाव संचार माध्यमों से भी ज्यादा बढ़ रहा है।

निष्कर्ष :—

जातिगत आधार सामाजिक शक्ति के लिये आवश्यक है परन्तु साधन कुलकेन्द्र के स्तर पर जातिगत आधार टूट कर व्यक्तिगत हितों और समूहगत हितों के संरक्षण का यन्त्र बन जाता है। व्यावहारिक स्तर पर सामाजिक कुलकेन्द्र जातिगत भावना से मुक्त होकर सेकुलर होता है। सामाजिक कुलकेन्द्र में सदस्यों का जातिगत महत्व नहीं होता है। कुलकेन्द्र का नेता सजातीय भावना को छोड़कर दूसरे जाति के वफादार सदस्यों

की तन, मन, धन से सहायता करता है । कुलकेन्द्र के नेता के लिये सबसे महत्वपूर्ण कार्य नौकरी दिलाना, राजनीतिक गुटबन्दी, लड़ाई झगड़े में सहायता करना होता है । आर्थिक सहायता वैवाहिक, सहायता एवं नौकरी में पदोन्नति की घटनायें कम महत्वपूर्ण होती है । कुल-केन्द्र के सदस्यों की सहायता करने के लिये अपने कुल-केन्द्र के बाहर अन्य माध्यमों से भी समर्थन लिया जाता है । नौकरी दिलाने, लड़ाई झगड़े एवं मुकदमें बाजी में सहायता प्राप्त करने में एक कुल केन्द्र दूसरे साधन-सम्पन्न व्यक्तियों से सम्पर्क करके उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है । सम्बन्ध कुलकेन्द्र में जो व्यक्ति वफ़ादार एवं उपयोगी होता है चाहे वह किसी जाति का हो उसकी सहायता सामाजिक कुलकेन्द्र अपने स्तर पर करता है ।

जनतान्त्रिक एवं विकासवादी प्रक्रिया में जैसे-जैसे ग्रामीण जीवन में सम्बन्धों की परम्परागत पद्धति टूटती जायेगी वैसे-वैसे सामाजिक कुलकेन्द्रों का प्रकार्यवादी महत्व बढ़ता जायेगा, और सामाजिक कुलकेन्द्रों की प्रकार्यात्मकता के कारण प्रतिदिन के ग्रामीण जीवन में सदस्यों की जातिगत स्थिति का महत्व भेद भाव के रूप घटता जाएगा ।।

संदर्भ

1. Barnes, J. A. : "Class and communities in a Norwegian Island". Human Relation Vol. 7 No. 1, 1954 P. 8.
2. Srinivas, M. N. and Beteille Andre— "Net works in Indian Social structure", Man. Vol. 64, No- 212, 1964
3. Mayer, A. C. : "Dominant caste in a Region of Central India". South Western Journal of Anthropology (1958).
4. Bossevian : "The place of Non- group in social Sciences". Man, Vol. 3 1968
5. Barnes, : J. A. : "Net work and Political Process" (ed) J. C. Mitchell Social Net works in a urban Lituations, Manche ster. Page Nc. 57.
6. Norman, E,. : Whitten Jr. and Alvin W. Wolfe- Net work Analysis. Prepared for chapter 23 in the Hand book of social and Cultural Anthropology. (ed) John J. Homznam Chicago P. 20, 1970.
7. Mayer, A. C. : Dominant Caste in a Region of Central India. South Western Journal of Anthropology, 1958.
8. Sharma, K. N. : Institutions, Net work, and Social change. Indian Institute of Advanced Study Simla. 1968.
9. Pathak, Sudhaker— Social Net works in a Rural Community unpublished Ph. D. Deptt. of Sociology Banaras Hindu University Varanasi 1981.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2, P. 216-219
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड २ पृ० २१६-२१९

नाभिकीय शीतलहर

उदयवीर सिंह जैवार
राजकीय महाविद्यालय, वेदीखाल

सारांश

नाभिकीय युद्ध से महाप्रलय की एक ऐसी कालरात्रि उत्पन्न होगी जो लगभग एक साल तक रहेगी; हवा में लाखों टन धूल, विषैली गैसों और चारों ओर लगने वाली आग से उठने वाले धुएँ के गुब्बार से आकाश में ऐसा घनांधकार छा जायेगा कि सूर्य का प्रकाश धरती पर नहीं पहुँच जायेगा। इससे एक नये नाभिकीय शीतकाल का अवतरण होगा; इस भीषण नाभिकीय शीतलहर से करोड़ों मानव काल के मुँह में समा जायेंगे-- बचने वालों की दशा मृत्यु से भी भयंकर होगी।

ABSTRACT

Nuclear war would cause such a Dooms Day devastation as would last almost a year. Millions of tons of dust and poisonous gases would fill the atmosphere. Rising fires on all sides would cover the sky with so thick cloudes of smokes that the rays of sun would not penetrate them to reach earth. Consequently millions of human beings shall die due to terrible nuclear cold wave. The condition of the survivors would be worse.

आज सारी दुनिया युद्ध के आंतक पूर्ण दौर से गुजर रही है। तीसरा विश्व युद्ध केवल कुछ मिनटों की दूरी पर ही हैं, जो कभी भी भड़क सकता है और यह युद्ध कितना भयानक होगा इसकी कल्पना नहीं की जा सकती; क्योंकि इन 39 सालों में हीरोशिमा और नागासाकी वाला अणुबम तो बहुत पुराना पड़ गया है और उसकी जगह ले चुके हैं--जीवाणु बम, रोग विषाणु बम, जहरीले रासायनिक और न्यूट्रान बम, हाइड्रोजन बम तथा महाप्रलयकारी लेसर किरणें। आज मानव जाति को सबसे ज्यादा खतरा अन्तर्महाद्वीपीय

प्रक्षेपास्त्रों और नाभिकीय युद्ध से है। दोनों महाशक्तियों में से किसी ने भी इन विनाशकारी हथियारों का प्रयोग किया तो न केवल उसके शत्रु देश का अपितु उसके अपने देश सहित समूचे भूमण्डल का विध्वंस हो जायेगा। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्धों में मानव-जाति जन-धन की भीषण हानि उठाकर भी जीवित बच सकी थी, लेकिन तृतीय विश्वयुद्ध में उसके बच पाने की संभावना बहुत ही कम है।

डॉ० लल्लन सिंह का कहना है : "आज मानव जाति परमाणु बम से न्यूट्रान बम वाया हाइड्रोजन बम तक जा पहुँची है; जिनके नाम से स्वयं उसके विनाश की आशंका उत्पन्न हो गयी है। आज यह बात खुले रूप में स्वीकार की जाती है कि यदि परमाणु आयुधों, अंतरिक्षयानों; प्रक्षेपास्त्रों, रासायनिक एवं जीवाणु पदार्थों और रेडियो संचालन विधि से युद्ध हुआ तो इस पृथ्वी पर मानव जाति, उसकी संस्कृति और सभ्यता का विनाश हुए बिना न रहेगा और यदि कुछ प्राणी किसी प्रकार इस अग्नि प्रलय से बच गये तो उनकी स्थिति वनचरों सी रह जायेगी।"[1]

प्रथम विश्व युद्ध चार वर्ष चला था और द्वितीय विश्वयुद्ध छह वर्ष। यदि तृतीय विश्व युद्ध हुआ तो वह बहुत ही थोड़े समय चलकर निर्णयात्मक दौर में पहुँच जायेगा अर्थात सम्पूर्ण मानव सभ्यता का विनाश। कार्ल सैगन के शब्दों में, "मानव सभ्यता यदि जीवित रही तो प्रागैतिहासिक युग में पहुँच जायेगी।"[2]

आज दोनों ही महाशक्तियाँ आपसी विश्वास की कमी के अभाव में, अपनी सुरक्षा के सन्दर्भ में तर्क देते हुए, परमाणु हथियारों का भण्डार बना रही हैं। विश्व में इस समय पचास हजार परमाणु-हथियार हैं और इनमें निरन्तर वृद्धि हो रही है। अमेरिका के श्री रुथ द्वारा लिखित रिपोर्ट "विश्व सैनिक एवं सामाजिक खर्च" के नवीनतम वार्षिक प्रकाशन में यह जानकारी दी गयी है कि 1945 के बाद से लगभग 1 करोड़ 65 लाख 90 हजार लोग विभिन्न युद्धों में मौत के शिकार हो चुके हैं। परमाणु शस्त्र परिसीमन सन्धि (साल्ट) एक और दो के बावजूद अमेरिका और रूस द्वारा परमाणु-हथियारों का परीक्षण निरन्तर जारी है। साल्टएक से पूर्व अमेरिका के पास लगभग 4600 परमाणु हथियार थे जिनकी संख्या अब बढ़कर दस हजार हो गयी है; जबकि सोवियत संघ के ऐसे हथियारों की संख्या 1971 में 2100 से बढ़कर 1983 में 7400 तक पहुँच गयी है।[3] रूस प्रतिवर्ष 50 नाभिकीय शस्त्र बना रहा है। अगले तीन वर्षों में अमरीका पश्चिम यूरोप में अपने 572 पशिंग-पशिंग तथा क्रूज लगायेगा; तब तक रूस उन्हें नष्ट करने के लिये 600 नये प्रक्षेपास्त्र तैयार कर लेगा।[5]

कुछ अमरीकी रणनीतिज्ञों का यह मत बिल्कुल गलत और बहुत ही खतरनाक है कि नाभिकीय हथियारों के जमाव से हम अपनी तथा अपने देशों की सुरक्षा कर सकते हैं तथा नाभिकीय युद्ध छिड़ने पर हम इसे दो महीने में जीत सकते हैं। सोवियत वैज्ञानिकों द्वारा इलेक्ट्रोनिक कम्प्यूटर की मदद से तैयार किये गये माडल ने, तथा अमरीका के राष्ट्रीय जलवायु अनुसन्धान केन्द्र में निर्मित माडल ने एक ही बात की पुष्टि की है और वह यह कि पहले नाभिकीय युद्ध से (जमा किये गये कुल नाभिकीय हथियारों के 10-15 प्रतिशत के पहले उपयोग से) एक ऐसी महाप्रलय की कालरात्रि उत्पन्न होगी जो लगभग एक साल तक रहेगी। हवा में लाखों टन धूल, विषैली गैसों, और चारों ओर लगने वाली आग से उठने वाले धुएँ के गुब्बार से आकाश में ऐसा घनांधकार छा जायेगा कि सूर्य का प्रकाश धरती पर नहीं पहुँच पायेगा। इससे एक नये

नाभिकीय शीतकाल का अवतरण होगा। इस भीषण नाभिकीय शीतलहर से करोड़ों मानव काल के मुँह में समा जायेगें—बचने वालों की दशा मृत्यु से भी भयंकर होगी।

नाभिकीय काजल के बादल से हमारे वायुमण्डल की प्रणाली ही उलट जायेगी; अर्थात् वायुमण्डल की ऊपरी परतें गरम होती जायेगीं और धरती के पास की वायु ठण्डी होती जायेगी। वायुमण्डल की ऊपरी परतों का तापमान सौ डिग्री सेंटीग्रेड तक पहुँच जायेगा जबकि पहले महीने में ही सतह के करीब का तापमान 15-20 डिग्री तक कम हो जायेगा। साइबेरिया के मध्य में और अमरीका के पूर्वी तट पर तापमान 40-45 डिग्री सेंटीग्रेड तक पहुँच जायेगा। इस नाभिकीय हिमयुग से ऐसी नाभिकीय शीतलहर चलेगी जिससे पृथ्वी के वायुमण्डल का पूरा चक्र ही बदल जायेगा। बहुत घने अंधकार का बादल उत्तरी गोलार्द्ध से दक्षिण की ओर बढ़ेगा और पृथ्वी को पूरी तरह से ढ़क देगा, पृथ्वी का सारा मीठा पानी जम जायेगा; पूरा प्राकृतिक चक्र नष्ट हो जायेगा। इस नाभिकीय शीतलहर से क्या इस भूमण्डल पर कोई जीव-जन्तु बच सकेगा; जबकि आजकल मामूली शीतलहर से सैंकड़ों व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। महा प्रलय की जो-जो कल्पनाएँ विभिन्न धर्मों के पुराणकारों ने की हैं; यह उन सबसे अधिक भीषण स्थिति होगी।[5]

नाभिकीय युद्ध के बाद दुनिया की क्या हालत होगी—इस संदर्भ में अमरीकी और सोवियत अनुसन्धान कर्त्ताओं ने जो गणनाएँ की हैं; वे एक समान हैं। युद्ध में केवल 100-150 मेगाटन नाभिकीय ईंधन का उपयोग होने से ही नाभिकीय शीतकाल शुरू हो जायेगा। यह नाभिकीय शीतकाल कई महीने तक जारी रहेगा; लेकिन यह समय भी इतना लम्बा होगा कि पृथ्वी का सारा जीवन नष्ट हो जायेगा। सोवियत वैज्ञानिक ने जोर देकर कहा कि केवल एक पनडुब्बी के नाभिकीय हथियार ही इस भूमण्डल के सम्पूर्ण जीवन को नष्ट कर डालने के लिए पर्याप्त हैं।

इससे पहले कि यह नाभिकीय शीतलहर चले, नाभिकीय युद्ध की रोकथाम की जाये। दोनों ही महाशक्तियों को परमाणु-अस्त्र-परिसीमन की वार्ता फिर से प्रारम्भ करवाने के लिए सम्पूर्ण मानव जाति को प्रयत्न करना चाहिए; क्योंकि यह व्यक्ति-विशेष या एक देश की समस्या नहीं है, सम्पूर्ण मानव जाति की सुरक्षा का प्रश्न है। शांति की हिफाजत के लिए, तथा नाभिकीय शीतलहर से बचने के लिए प्रत्येक मानव को संघर्ष करना चाहिए क्योंकि संगठित शान्ति प्रयासों में ही हमारी सुरक्षा निहित है। नाभिकीय विनाश की रोकथाम करने के लिए भूमण्डल पर समस्त देशों की जोरदार संयुक्त कार्यवाही की आवश्यकता है। भारत 1947 से ही शान्ति के लिए संघर्ष करता आ रहा है, लेकिन अब हमारा लक्ष्य नाभिकीय युद्ध को रोकना, तनाव-शैथिल्य और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाना होना चाहिए। भारत की ही तरह अन्य राष्ट्रों को भी शान्ति, मैत्री तथा सहयोग पर बल देना चाहिए। शान्ति मानव जाति के लिए आवश्यक है; और आज शान्ति के ध्येय के लिए संयुक्त संघर्ष न किया गया तो हम अपने विनाश की भूमिका में प्रमुख भागीदार होंगे। जब इस विनाशकारी लीला का नृत्य होगा; उस समय हम कुछ नहीं कर सकेंगें।

इस नाभिकीय शीतलहर से बचने की एक मात्र आशा किरण है कि मानव अपनी सद्बुद्धि और विवेक से "नाभिकीय युद्ध की तैयारी को रोकने" तथा "शान्ति के ध्येय के लिए संघर्ष करे।"

संदर्भ

1—डॉ० लल्लन जी सिंह; राष्ट्रीय सुरक्षा और प्रतिरक्षा पृष्ठ-137

2—अमर उजाला-बरेली; क्या यूरोप तीसरे विश्व युद्ध का रणक्षेत्र बनेगा--प्रो० हरिदत्त वेदालंकार (लेख) 19 फरवरी 1984

3—अमर उजाला-बरेली; 27 अक्टूबर 1983

4—अमर उजाला-बरेली; क्या यूरोप तीसरे विश्व युद्ध का रणक्षेत्र बनेगा--प्रो० हरिदत्त वेदालंकार -19 फरवरी 1984

5—युवक दर्पण : सोवियत समाचार साप्ताहिक; नाभिकीय युद्ध के बाद दुनिया की क्या हालत होगी—इलेक्ट्रोनिक कम्प्यूटर का अनुमान 31 अगस्त 1984

Jour. U. P. Govt. Acad. Soc. 1985-86, Vol. 2, P. 220-224
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० २२०-२२४

स्वामी हित हरिवंश के काव्य में मुरली

लवकुश मिश्र
प्रवक्ता हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, पिथौरागढ़

सारांश

राधा वल्लभ सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी हित हरिवंश (१६वीं शती) मुरली के अवतार माने जाते हैं। उनके काव्य में मुरली को श्री कृष्ण की चिर संगिनी तथा भक्तों की भक्ति भावना में अभिवृद्धि करने वाला माना गया है। मुरली ध्वनि, चराचर को मुग्ध करती हुई श्री कृष्ण प्राप्ति में सहायक होती है।

ABSTRACT

Swami Hitharivanasha (16th century), founder of Radha vallabh cult, is called the incarnation of Lord Krishna's flute. In his poetry the flute is depicted as constant associate of Lord Krishna which creates and increases devotion in the devotees of Lord Krishna. Its sound enchants the whole creation and helps in the realization of the Lord.

स्वामी हितहरिवंश जी प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त थे। राधावल्लभ सम्प्रदाय के संस्थापक के रूप में उनकी ख्याति है। वे कृष्ण की वंशी अथवा मुरली का अवतार माने जाते हैं। सम्प्रदाय के संस्थापक को मुरली का रूप मानने की भावना से ही, यह अनुमान हो जाता है कि इस सम्प्रदाय के भक्त-कवि, मुरली को भक्ति-भावना का उद्गम स्रोत स्वीकार करते हैं।[1] जिस प्रकार मुरली-ध्वनि के द्वारा गोपियों को यह ज्ञात हो जाता था कि कृष्ण कहाँ अवस्थित है, तथा वे उसी ध्वनि-मार्ग का अनुसरण करके कृष्ण तक जा पहुँचती थीं, मुरली-ध्वनि ही उन्हें कृष्ण की ओर आकृष्ट करती थी; उसी प्रकार हितहरिवंश जी ने कृष्ण-प्राप्ति के मार्ग का निर्देश करते हुए, जन समुदाय को इस मार्ग पर चलाने एवं आकर्षित करने के लिए, राधावल्लभ सम्प्रदाय की स्थापना की। हितहरिवंश जी ने वंशी का चित्रण भक्ति के उद्गम स्रोत तथा कृष्ण की परम

अनुरागिणी के रूप में किया है। उनके शिष्यों तथा इस सम्प्रदाय के अन्य अनेक परवर्ती कवियों ने हितहरिवंश जी की वंशी को उक्त विशिष्टताओं से युक्त पाया। यही कारण है कि परवर्ती कवियों ने हितहरिवंश जी को वंशी का अवतार मान लिया तथा गुरु रूप में अधिष्ठित होने के कारण वंशी के वर्णन में विशिष्ट रुचि ली।

'जुगुल विलास' के प्रारम्भ में ही हितहरिवंश जी मुरली की महानता का वर्णन करते हैं।[2] वह मुरली कितनी महान है जो नित्य श्रीकृष्ण जी के अधरामृत का पान किया करती है। मुरली की महानता का ही एक लक्षण है कि वह श्री कृष्ण जी के सान्निध्य में निरन्तर वास करती है और यही मुरलिका श्रीकृष्ण जी के गोप्य रस को अभिव्यक्त करने में समर्थ है। गुप्त रस की महिमा को प्रकट करने का श्रेय मुरली को ही प्राप्त है। मुरली अत्यधिक रसपूर्ण है, जिसके कारण वह अपनी ध्वनि का श्रवण करने वाले प्राणियों में भी रसप्राकट्य कर देती है। इस प्रकार वह भक्ति रस की उत्पत्ति का मूल उत्स है।

हितहरिवंश जी ने मुरली का चित्रण उद्दीपक के रूप में भी किया है।[3] श्रीकृष्ण जी वृन्दावन के रमणीय वातावरण से प्रेरित होकर मुरलिका वादन करते हैं। उस कर्णप्रिय एवं भावपूर्ण ध्वनि का श्रवण कर गोपियाँ अकस्मात् श्रीकृष्ण जी से मिलने के लिए व्याकुल हो जाती हैं। उस समय उन्हें केवल श्रीकृष्ण से मिलने का ही ध्यान रह जाता है। वे आत्मविस्मृत, श्रीकृष्ण के पास दौड़ती हुई चल देती हैं। उस अवस्था में उनके हृदय में काम-भावना का आधिक्य होता है, वे स्वयं को मनसिज-ताप से दग्ध होता हुआ अनुभव करती हैं। परन्तु श्रीकृष्ण स्वरूप की विलक्षणता देखिए। श्रीकृष्ण की त्रिभंगी मुद्रा का दर्शन करते ही गोपियों के मनसिज-ताप का निवारण हो जाता है। वे श्रीकृष्ण के अद्भुत रूप का दर्शन करके काम-भावना से शून्य हो जाती हैं।

मुरली ध्वनि के अद्भुत प्रभाव का भी वर्णन श्री हितहरिवंश जी ने किया है।[4] मुरली रस का स्रोत है तथा श्रीकृष्ण के निरन्तर सान्निध्य में रहती हुई, अद्भुत लक्षणों से युक्त है। मुरली ध्वनि सुनकर वनवासी जीव भी आत्मविस्मृत होकर मुरली-ध्वनि की ओर ही केन्द्रित हो जाते हैं। श्रीकृष्ण के समीप पहुँचकर वनवासी पशु विलक्षण आभा से युक्त वृन्दावन विहारी श्रीकृष्ण के दर्शन करते हैं। श्रीकृष्ण के कुंचित केश उनके मुखमण्डल के चतुर्दिक फैले हुए हैं, उनके इस आकर्षक मुखारविन्द का दर्शन करके पशु भी अत्यधिक प्रभावित हो जाते हैं, परन्तु उनके पास इस प्रभाव की अभिव्यक्ति का कोई माध्यम नहीं है। वाणी-विहीन होने के कारण वे मात्र दर्शन करके ही संतुष्ट हो जाते हैं, भावाभिव्यंजन नहीं कर पाते।

श्री हितहरिवंश जी ने विविध उत्सवों के अवसर पर भी श्रीकृष्ण द्वारा मुरली वादन का उल्लेख किया है।[5] इन अवसरों पर मुरली हर्ष की अभिव्यक्ति हेतु बजायी जाती है। होलिकोत्सव पर श्रीकृष्ण तथा गोपियाँ एक दूसरे पर रंग डाल रहे हैं। इस अवसर पर वातावरण को और भी अधिक रससिक्त बनाने के लिए गोपियाँ मृदंग, डफ आदि वाद्य बजा रही हैं तथा श्रीकृष्ण जी मुरली वादन कर रहे हैं। मुरली इस समय श्रीकृष्ण के अन्तस्तल में निहित हर्ष की अभिव्यक्ति करती है और यह ध्वनि गोपियों के लिए अतिशय आनन्द-प्रदायिनी सिद्ध होती है।

सिद्ध योगी तथा मुनि जो संसार से अनासक्त होकर ईश्वर चिन्तन में, समाधि लगाकर निमग्न थे, भी मुरली वादन के समय, उसके प्रभाव के परिणामस्वरूप, समाधिस्थ नहीं रह पाते। उनकी समाधि इस

आकर्षक ध्वनि को सुनकर सहसा भंग हो जाती है ।[6] श्री हितहरिवंश जी इस रूप में मुरली का वर्णन करके उसके अद्भुत स्वरूप की प्रतिष्ठा करना चाहते है, साथ ही उन सामान्य सांसारिक व्यक्तियों को—जो मुरली को मात्र उद्दीपक के रूप में मानते हैं—यह संदेश देना चाहते हैं कि मुरली केवल गोपियों को ही आकृष्ट नहीं करती, वरन् मुनियों को भी आकर्षित करती है । मुरली-ध्वनि का आकर्षण वासनाजन्य नहीं है, अपितु उसमें अद्भुत प्रभाव निहित है । यही कारण है कि ईश्वर-चिन्तन में निमग्न सिद्ध मुनि भी स्वयं को इस ओर आकर्षित पाते हैं ।

मुरली-ध्वनि के अद्भुत प्रभाव तथा उसकी अनिर्वचनीयता की अभिव्यक्ति करने वाला एक पद प्रस्तुत है :—

मैं जु मोहन सुन्वों वेणु गोपाल को ।।
व्योम मुनि यान सुर-नारि विथकित भई ।
कहत नहिं बनत कछु भेद यति ताल को ।।
स्रवन कुण्डल दुरित रुरत कुन्तल ललित ।
रुचिर कस्तूरि चन्दन तिलक भाल को ।।
चंद गति मंद भई निरखि छवि काम मई ।
देखि हरिवंश हित वेष नंदलाल को ।।[7]

वस्तुतः श्रीकृष्ण की मुरली परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली, विविध विशेषताओं से युक्त है । उसकी ध्वनि जहाँ एक ओर गोपियों को आकर्षित करती है तथा उनमें काम-भावना की अभिवृद्धि करती है, वहीं दूसरी ओर सिद्ध मुनियों को भी आकृष्ट करती है और उनके मन में भक्ति-भावना का अभिवर्धन करती है । मुरली-ध्वनि दिव्य है, जो व्यक्ति जिस भाव से उसका श्रवण करता है उस व्यक्ति में उसी भाव की वृद्धि मुरली ध्वनि करती है ।

वंशी-वादन सम्बन्धी यह पद प्रस्तुत है,[8] जिसमें यमुना पुलिन के सुरम्य वातावरण में श्रीकृष्ण वंशी बजा रहे हैं :—

वेनु बसंत रहत वृन्दावन, पुलिन पवित्र सुभग यमुना तट ।
सदा बसंत रहत वृन्दावन, पुलिन पवित्र सुभग यमुना तट ।
जलतट क्रीट मकराकृत कुण्डल, मुख अरविंद भँवर मानों ।
दसंनन कुंद कली छवि लज्जित, सज्जित कनक समान पीतपट ।
मुनि मन ध्यान धरत नहिं पावत, करत विनोद संग बालक भट ।
दास अनन्य भजन रस कारन, हित हरिवंश प्रगट लीला नट ।

मुरली राधा-कृष्ण के मध्य क्रीड़ा और हासविलास का भी माध्यम है । इस रूप में भी श्री हितहरिवंश जी ने मुरली का चित्रण किया है ।[9] श्रीकृष्ण एकाकी बैठे मुरली वादन कर रहे हैं, गपियाँ और राधा उन्हें देखती हैं । राधा के मन में यह उत्कट लालसा है कि श्रीकृष्ण उनके पास आयें, परन्तु उन्हें बुलाने की कोई युक्ति उन्हें नहीं सूझती । अनायास उन्हें एक उपाय ध्यान में आता है । राधा अपनी सखियों के साथ

श्रीकृष्ण के पास जाती हैं और उनकी मुरली छल से छीन लेती हैं। मुरली लाकर राधा श्रीकृष्ण का अनुकरण करके, उन्हीं के समान त्रिभंगी मुद्रा में विराजमान होकर, मंद-मंद स्वर में मुरली वादन करने लगती हैं। मुरली ध्वनि सुनकर सभी गोपियाँ राधा को घेरकर बैठ जाती हैं, तथा बार-बार तालियाँ बजाकर अपने हर्ष की अभिव्यंजना करती हैं और साथ ही उच्च स्वर में घोषणा भी करती जाती हैं कि जैसी मुरली राधा बजा रही है, वैसी श्रीकृष्ण कभी बजा ही नहीं सकते हैं। श्रीकृष्ण अपनी मुरली छीने जाने के कारण तथा गोपियों की उच्च ध्वनि से आकर्षित होकर उसी स्थान पर आ पहुँचते हैं, जहाँ राधा और गोपियां बैठी हुई हैं। इस प्रकार राधा का मंतव्य सिद्ध हो जाता है। वे श्रीकृष्ण को अपने समीप पाकर हर्ष से उल्लसित हो उठती हैं, मुरली ही उनके उद्देश्य सिद्धि में सहायिका होती है।

परम रसिक श्रीकृष्ण राधिका जी का नाम अहर्निश, जागते-सोते, तो स्मरण करते ही रहते हैं, मुरली के माध्यम से भी उन्हीं का नाम पुकारते हैं। प्रस्तुत पद में रमणीय शब्दों में कवि ने इसी का वर्णन किया है।[10]

काहे को मान बढ़ावत है, बालक मृग लोचन।
हाँस डरन कछु कहि न सकत, इक बात सकोचन।
मत्त मुरलि अन्तर तव गावत
जागत सैन तवाकृति सोचन।
हित हरिवंश महा मोहन पिय,
आतुर यह विरहज दुख मोचन।

श्री हितहरिवंश जी के मुरली विषयक पदों का विश्लेषण करने के पश्चात् इसके स्वरूप के विषय में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं :—

(1) मुरली श्रीकृष्ण की चिरसंगिनी है, जिसके मध्यम से वे अपनी प्रिया गोपियों का आह्वान करते हैं।

(2) मुरली-ध्वनि मुनि-सिद्धों में भक्ति- भावना की अभिवृद्धि करती है।

(3) मुरली श्रीकृष्ण तक पहुँचाने में उसी प्रकार सहायिका सिद्ध होती है जैसे गुरु शिष्य को ईश्वर तक पहुँचाने में सहायक होता है।

(4) मुरली ध्वनि का प्रभाव चराचर एवं त्रिभुवनव्यापी है।

वैसे तो मुरली का अनेकविध वर्णन कवि ने किया है, जिनके आधार पर उपर्युक्त निष्कर्ष निकाले गये हैं, परन्तु वस्तुतः मुरली का आध्यात्मिक पक्ष ही प्रधान है। देखने में तो यह मुरली कामवर्द्धक एवं मनसिज-कारी है, परन्तु वस्तुतः यह 'मनसिज ताप निवारी' है, जिसकी घोषणा कवि अनेक स्थानों पर करता है। मुरली-ध्वनि वस्तुतः ईश्वर के आह्वान का प्रतीक है जो भक्त को अपने सुकृतों तथा उत्कट भक्ति के परिणाम-स्वरूप, अनेक जन्मों की साधना के पश्चात् प्राप्त होता है। भला यह 'काम' से सम्बद्ध कैसे हो सकती है, 'काम' का वहाँ काम ही क्या ? वह स्थिति तो परमानन्द की स्थिति है। अतः मुरली श्री हितहरिवंश जी के शब्दों में 'करत रतिराज के ताप को नासु री' ही हैं।[11]

संदर्भ

1. विजयेन्द्र स्नातक; राधा बल्लभ संप्रदाय; सिद्धान्त और साहित्य ।
2. हितहरिवंश, जुगल विलास श्री मयाशंकर याज्ञिक हस्त लेख संग्रह, काशीनागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, छंद सं० 3
3. हितहरिवंश; फुटकर पद, श्री मयाशंकर याज्ञिक हस्तलेख संग्रह, पृ० 45
4. हितहरिवंश; पद संग्रह, हस्तलिखित प्रति, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, छंद सं० 8, 15,
5. वही, छंद सं० 46,47
6. वही, छंद सं 49
7. हितहरिवंश, श्री हित स्फुटवाणी, पद सं० 13
8. हितहरिवंश; श्री हित चौरासी, पद सं० 64
9. हितहरिवंश; पदावली, हस्त लिखित प्रति, का. ना. प्र. स. छंद सं० 18,
10. हितहरिवंश; श्री हित चौरासी, पद सं० 74,
11. लवकुशमिश्र, हिन्दी कृष्ण काव्य में मुरली एवं रास का स्वरूप, पृ० 298

Jour. U. P. Govt. Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2 P. 225-228
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड २, पृ० २२५-२२८

राष्ट्रचेतना का उपेक्षित स्वर : कमल साहित्यालंकार

हरि प्रसाद मौर्य
राजकीय महाविद्यालय, चौबट्टाखाल,

सारांश

गढ़वाल के अनेक साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। कमल साहित्यालंकार ने भी हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं की अनेक कृतियाँ दी हैं। उनमें राष्ट्रीय चेतना का स्वर प्रमुख है। उनकी गणना कभी निराला, दिनकर और सुभद्रा कुमारी चौहान के साथ होती थी। यदि उनकी उपेक्षा न हुई होती तो आज हिन्दी साहित्य में उनका महत्वपूर्ण होता।

ABSTRACT

Many writers of Garhwal have got an important place in Hindi literature. Kamal Sahityalankara is also one of them. His works are full of the feeling of Nationality. Once upon a time he was placed with Nirala, Subhadra Kumari and Dinkar ; but to day he is a forgotten and neglected writer. Here is an attempt to revaluate his works.

गढ़वाल की सुरम्य भूमि के अनेक रत्नों ने हिन्दी साहित्य को अपनी प्रतिभा के आलोक से आलोकित किया है। डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल और श्री रमा प्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी को विस्मृत नहीं किया जा सकता। डॉ० बड़थ्वाल समीक्षा एवं शोध के क्षेत्र में अपने समय के अग्रणी विद्वान थे। श्री रमा प्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' की कलम अब मौन है फिर भी मनोवैज्ञानिक कहानियों के क्षेत्र में उनके अद्वितीय योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। काव्य के क्षेत्र में भी यदि उपेक्षा का शिकार न हुए होते तो गढ़वाल के गौरव, कवि कमल साहित्यालंकार सम्पूर्ण हिन्दी जगत को अपनी काव्य प्रतिभा की प्रभा दीप्ति प्रदान करने की क्षमता रखते हैं। प्रख्यात समीक्षक डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत ने लिखा है—"सौन्दर्य प्रिय कमल जी बहुमुखी

प्रतिभा के सरल कवि हैं। आप एक विस्तृत साहित्य के सृष्टा हैं। दो दर्जन के आस पास पुस्तकें मेरे देखने में आई हैं। आपने नाटक, उपन्यास, आलोचना आदि सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा से चमत्कृत करने का प्रयास किया है। आपकी राष्ट्रीय कविताएँ भी बहुत प्रभावोत्पादक हैं।"[1]

कमल जी के काव्य में राष्ट्रीय चेतना का स्वर उतना ही तीव्र है जितना कि 'दिनकर', 'नवीन', या सुभद्रा कुमारी चौहान के काव्य में। यदि हिन्दी के समीक्षकों ने आपकी उपेक्षा न की होती तो आज हमारे राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की एक और कहानी हमारे सामने होती। कुछ समीक्षकों एवं कवियों की दृष्टि कभी-कभी कमल जी के काव्य पर गई है परन्तु उन्हें उनका वांछित स्थान प्राप्त नहीं हो सका। उनकी कविताओं का मूल्यांकन करते हुए श्री बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' ने लिखा है—"कमल साहित्यालंकार अपनी साहित्यिक रचनाओं में जितने सरस और रूपायत हैं उतने ही तीव्र, उग्र और ओजस्वी राष्ट्रीय कविताओं में भी हैं। इनकी रचनाओं में अनुप्रास के साथ ही साथ भाव व्यंजना भी माधुर्मित है। ये हिन्दी काव्य के निष्ठावान, उत्साही और विश्वासयुक्त साधकों में हैं।"[2] कमल जी आज भी साधनारत हैं। उन्हें हिन्दी समीक्षा से कोई शिकायत नहीं है, शिकायत है गढ़वाली विद्वानों से—"यद्यपि हिन्दी के प्रवर विद्वानों ने अवश्य मेरे काव्य साहित्य ही नहीं कहानी और नाट्य विधाओं में भी अर्थ गाम्भीर्य, सौन्दर्य निरूपण, भाव सौन्दर्य, भाषा सौष्ठव, उच्च कल्पना आदि का उल्लेख करके समय समय पर मुझे बताया है, अपनी पुस्तकों में भी लिखा है। गढ़वाली कई विद्वानों तक मेरी पुस्तकें पहुँची भी हैं, किन्तु जिन पुस्तकों पर मुझे पुरस्कार मिलते रहे उनके गुण-दोष तक किसी गढ़वाली ने मुझे नहीं बताये। इसका अर्थ चाहे समझ में न आना हो, चाहे मेरे और मेरे साहित्य के प्रति उपेक्षा हो लेकिन कुछ अनदेखी बात अवश्य है।"[3] यही 'अनदेखी बात' हिन्दी में भी है किन्तु यह कमल जी की विनम्रता है कि उन्होंने शिकायत नहीं की। आपकी उपेक्षा से व्यथित होकर श्री त्रिलोकचन्द पपनै ने 'कमल साहित्यालंकार' नामक एक परिचयात्मक पुस्तक 1982 में प्रकाशित की थी। श्री पपनै ने आपकी रचनाओं का उल्लेख करते हुए लिखा है—"हिन्दी तथा गढ़वाली के कवि कमल जी ने हिन्दी में ही अब तक लगभग 70 पुस्तकें लिखी हैं। गढ़वाली में लिखी पुस्तकें इनसे अलग हैं। इनमें कविता 18, कहानी 8, नाटक 16, उपन्यास 7, समालोचना 2 और अन्य लगभग 10 हैं।"[4] इतनी सामग्री तो शोध कार्य के लिए भी पर्याप्त है फिर भी कमल जी के साहित्य पर कोई समीक्षात्मक कृति उपलब्ध नहीं है।

श्री कमल साहित्यालंकार का जन्म गढ़वाल की सुरम्य पर्वत शृंखलाओं से घिरे ग्राम हली, पट्टी तलाई, परगना चौंदकोट, जिला पौड़ी गढ़वाल में 15 मई सन् 1909 को हुआ था। आपका पूर्णनाम श्री बलीराम घनश्याम 'कमल' साहित्यालंकार है। आपके पिता स्व० गौरीदत्त घनश्याला एवं माता श्रीमती समुद्रा देवी थीं। आपका बचपन पहाड़ पर ही बीता इसीलिए पन्त जी की तरह आपकी रचनाओं में भी प्रकृति प्रेम सहज ही दिखाई देता है। आपकी रचनाएँ 14 वर्ष की अवस्था में ही प्रकाशित होने लगी थीं। आपकी प्रारम्भिक रचनाओं पर छायावादी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है—

"सन्ध्या की श्यामल पलकों से
ढ़क जाती जब रजनी भीमा,
तब है प्रिय धन स्मृति तुम्हारी
बन जाती मुझको सुख सीमा।"[5]

कमल जी की उपरोक्त कविता 'चाँद' में प्रकाशित हुई थी। 'चाँद' में ही प्रसाद जी की कविताएँ भी प्रकाशित होती थीं। कमल जी पर उस स्वाभाविक रूप से प्रसाद जी प्रभाव भी पड़ा होगा। प्रसाद जी ने 'आँसू' में लिखा था--

"थक जाती थी सुख रजनी
मुख-चन्द्र हृदय में होता,
श्रम सीकर सदृश नखत से
अम्बर पट भीगा होता।'[6]

कमल जी का 'माधुरी' में प्रकाशित एक गीत आज भी कभी-कभी सुनाई देता है। प्रसिद्ध गायक हेमन्त कुमार ने इस गीत को स्वर दिया है।

"माझी दूर किनारा
प्यास लगी हैं पिया न जाये
सागर का जल खारा।"[7]

कमल जी सन् 1924 में क्वेटा चले गये थे। वहाँ आप 1947 तक रहे। स्व० मुकुन्दी लाल बैरिस्टर ने इस संदर्भ में लिखा है--"सन् 1918 के आस पास गढ़वाली युवक अक्सर भाग कर क्वेटा की छावनी में नौकरी की तलाश में जाया करते थे और शुरू में घरेलू नौकरी पेट पालने के लिए करने लगते थे और धीरे-धीरे आगे बढ़ते थे। कोई चपरासी बन जाते थे, कोई चौकीदार बन जाते थे--जो पढ़े लिखे गढ़वाली युवक मेधावी होते थे वे दफ्तरों में क्लर्क बन जाते थे। इसका एक बड़ा दीप्ति मान उदाहरण श्री बलीराम घनश्याला 'कमल' साहित्यालंकार हैं जो गाँव में आठ वर्ष की अवस्था से कविता करने लगे थे और क्वेटा में अपने इस व्यसन को और बढ़ाते गये और अब गढ़वाल के उच्चकोटि के कवि हैं जिन्होंने काव्य में कई रचनाएँ की हैं। वे क्वेटा में सरकारी नौकरी में भी उच्च पद पर पहुँच गये थे और विभाजन के बाद जब वे संयुक्त प्रान्त में लौट आए तो लखनऊ में पं० गोविन्द बल्लभ पन्त मुख्य मंत्री जी ने उनकी विद्वता और कविताओं का बड़ा आदर किया और सरकार में एक बहुत बड़ा उच्च पद दिया।"[8] कमल जी ने क्वेटा में साहित्य साधना के साथ-साथ समाज सेवा भी की। सन् 1955 के भूकम्प के समय आपने भूकम्प पीड़ितों के सहायतार्थ जो कार्य किया उसकी मुक्त कण्ठ से सर्वत्र सराहना की गई थी। क्वेटा में आपने 'जमुना', 'कल्यूर', 'रणमणी', 'कर्त्तव्य-बोध' 'संगिनी', 'क्रान्ति दीप', 'वीणा की झंकार', 'इन्द्रिका'' 'सुहागरात' आदि की रचना की। संगिनी और 'क्रांति दीप' को पंजाब सरकार ने 1942 में क्रमशः दस और आठ हजार रुपयों के पुरस्कारों से सम्मानित किया था।

कमल जी की गणना क्वेटा से लौटने के बाद राष्ट्रीय कवियों में होने थी--"हिन्दी के राष्ट्रीय कवियों का एक वर्ग क्रान्ति का सन्देश देने का अनवरत प्रयास करता आया है। इस वर्ग के प्रमुख कवि निराला, सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहन लाल द्विवेदी, उदय शंकर भट्ट, बाल कृष्ण शर्मा नवीन, श्याम नारायण पाण्डे, दिनकर, सुधीन्द्र, श्याम लाल पार्षद, कमल साहित्यालंकार, ईश कुमार आदि हैं।"[9] आश्चर्य है कि जिस कवि की गणना कभी निराला, दिनकर, नवीन ओर सुभद्रा कुमारी चौहान के साथ की गई थी उससे आज हिन्दी संसार अनभिज्ञ है। इसी कवि ने सन् 1982 में क्वेटा से पुकारा था--

"सुप्त देश के सुप्त सिंह उठ देश देवता तुझे पुकारे ।
जाति, धर्म, संस्कृति रक्षक उठ देख चतुर्दिक लगी आग है,
बाहर भीतर जल जंगल में अरे हुई स्वातन्त्र्य माँग है,
समय बना है आज भिखारी, अलख जगाता हाथ पसारे ।" [10]

कमल जी के काव्य में हिन्दी काव्य की समस्त प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं किन्तु राष्ट्रीय चेतना का स्वर उनमें प्रमुख है । उन्होंने छायावादी युग में लेखन आरम्भ किया था और आज भी लिख रहे हैं। उनकी कविताओं की प्रगति शीलता भी आरोपित नहीं है––

"कहीं फावड़ा गैंती के स्वर,
खेतों में हल बैल चले,
मार हथौड़ा तोड़ें पत्थर,
कहीं लौह फौलाद गले,
कहीं बोझ ढोते हम सिर पर
सोते पत्थर ढेलों में
शिल्पी और कृषक हलवाहे
मेरे सब अपने जन हैं ।" [11]

संदर्भ

1. गोविन्द त्रिगुणयात: शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत, पृ० 149-50
2. त्रिलोकचंद्र पपनै: कमल साहित्यालंकार, पृ० 40
3. बद्रीनाथ विश्वंभरम्: श्री कमल साहित्यालंकार, पृ० 3
4. त्रि० चं० पपनै: कमल साहित्यालंकार, पृ० 14
5. वही, पृ० 14,
6. जय शंकर प्रसाद, आँसू, पृ० 10
7. त्रि० चं० पपनै: कमल साहित्यालंकार, पृ० 14,
8. गो० त्रि०, शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत, पृ० 149, 50
9. गढ़ गौरव (पत्रिका), 15 फ़रवरी 1981, पृ० 9,
10. कमल साहित्यालंकार, क्रान्ति दीप पृ० 1
11. वही पृ० 31,

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2, P. 229-234
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड २, पृ० २२९-२३४

स्नातक स्तर पर सतत आन्तरिक मूल्यांकन

आनन्द कुमार श्रीवास्तव
वनस्पति विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, ऋषिकेश

सारांश

किसी भी छात्र के एक सत्र में मूल्यांकन को अधिक से अधिक वस्तुनिष्ठ बनाने के लिये यह आवश्यक है कि छात्र के पूरे सत्र के शैक्षणिक प्रदर्शन का मूल्यांकन कई भागों में किया जाय। इस शोध पत्र में यह कार्य छात्र के दक्षता, क्षमता एवं आचरण से सम्बन्धित सम्भावित शिक्षण परिणामों के आधार पर निष्पादित किया गया है। मूल्यांकन के छः मुख्य घटकों को चयनित किया गया है। मूल्यांकन की प्रतिकृति (१) परीक्षा की आवृति (२) प्रश्नों की संख्या (३) परीक्षा की अवधि (४) शिक्षण सत्र में परीक्षा की कुल संख्या एवं (५) परीक्षा का कुल प्रतिशत भाग के आधार पर अभिकल्पित है।

ABSTRACT

In order to evaluate a student in a session as objectively as possible, it is essential to evaluate the student's academic performance of a session into many parts. In this paper this task is performed on the basis of the outcomes of learning related to the skills, abilities and behaviour of the student. In this reference, six major components of internal assessment are selected. The pattern of assessment is designed on the basis of (1) frequency of the test (2) Number of question (3) duration of the test (4) total number of test during the academic year and (5) percent weightages alloted to the test.

भूमिका :

वर्तमान समय में अधिकांश विश्वविद्यालयों में छात्र के शैक्षणिक प्रदर्शन का मूल्यांकन सत्र के अन्त में मुख्यतः छात्र की स्मरण शक्ति पर आधारित होता है, तथा छात्र की अन्य सभी योग्यताएं उपेक्षित रह जाती हैं। आन्तरिक मूल्यांकन शिक्षा के वर्तमान तीनों क्षेत्रों शिक्षण, ज्ञान प्राप्ति तथा परीक्षा के एकीकरण में महत्वपूर्ण कदम है। किसी भी छात्र के एक सत्र के मूल्यांकन को अधिक से अधिक वस्तुनिष्ठ बनाने के लिये यह आवश्यक होगा कि छात्र के पूरे पाठ्यक्रम का मूल्यांकन कई भागों में किया जाय। सतत् आन्तरिक मूल्यांकन एक अर्थ में छात्र के बारे में अधिक से अधिक सूचनायें प्राप्त करने का साधारण उपाय है। इसका मुख्य प्रयोजन छात्र की उन निपुणताओं की परीक्षा करना है, जो सत्र के अन्त में ली गयी लिखित परीक्षा में मूल्यांकित नहीं हो पातीं। आन्तरिक मूल्यांकन आन्तरिक इस अर्थ में होता है कि यह छात्र के अपने ही शिक्षक द्वारा होता है तथा इसमें कोई बाह्य अभिकरण प्रयुक्त नहीं होता।[1] सतत आन्तरिक मूल्यांकन करने वाला प्राध्यापक अपने छात्र में, उसकी शिक्षा के निर्धारित लक्ष्यों के प्रसंग में विभिन्न निपुणताओं एवं विवेक के विकास के संकेतों की निरन्तर अपेक्षा करता है।[5] इस प्रक्रिया में उसे छात्र के विकास की गति का पूरा अभिज्ञान रहता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बाह्य-अन्त-परीक्षा भी आन्तरिक मूल्यांकन के समान ही महत्वपूर्ण है। बाह्य अन्त-परीक्षा एक सर्वमान्य स्वतन्त्र प्रणाली है, जो सभी छात्रों के एक साथ मूल्यांकन हेतु समान मानदण्ड प्रदान करता है, साथ ही यह शिक्षक तथा छात्र के व्यक्तिगत सम्बन्धों से भी अप्रभावित रहता है।[6] परन्तु अन्त-बाह्य-परीक्षा कार्य के परिणाम तक ही सीमित रहती है, इस पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है कि कार्य कैसे सम्पन्न हुआ तथा इसकी गति कैसी थी। इसके अतिरिक्त इस प्रणाली में प्रशासनिक कारक भी बहुत प्रभाव डालते हैं।

चूंकि सतत् आन्तरिक मूल्यांकन कई अवसरों पर होता है इसलिए इसकी असफलता की सम्भावना बहुत कम होती है, साथ ही समय-समय पर मूल्यांकित होते रहने के कारण छात्र अपने पाठ्यक्रमों के पूरा करने तथा अपनी बौद्धिक योग्यताओं को विकसित करने में समक्ष रहता है। दूसरी ओर सतत् आन्तरिक मूल्यांकन से कभी-कभी शिक्षक तथा छात्रों के सम्बन्धों में कटुता आने की सम्भावना रहती है तथा इससे अलग-अलग विद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा संस्थानों के छात्रों के स्तर की तुलना में भी कठिनाई होती है।[3] इसके अतिरिक्त इस प्रणाली में नियोक्ता परीक्षा की प्रामाणिकता एवं विश्वसनीयता पर भी सन्देह कर सकता है।

मूल आधार :

सतत आन्तरिक मूल्यांकन का उद्देश्य यदि शिक्षक को स्पष्ट न हो तो इस बात का भय रहता है कि वह छात्र के पूर्ण मूल्यांकन के समय छात्र के "व्यक्तिगत चरित्र" को उसकी प्रतिभा के अन्तर्गत मान लें। यहां प्रतिभा का अर्थ "शिक्षण के उन परिणामों" (आउट कम्स आफ लर्निङ्ग) के सन्दर्भ में सोचना होगा जो शिक्षा के किन्ही विशिष्ट उद्देश्यों हेतु निर्दिष्ट है।

विभिन्न शिक्षा शास्त्रियों [1,4,7] ने निम्नलिखित "शिक्षण परिणाम" बताये हैं :—

1. ज्ञान--1 विशिष्ट अभिज्ञान, पुनरावृत्ति स्मरण आदि ।
2. विस्तृतीकरण--1 अनुवाद, व्याख्या, परिचालन ।
3. उपयोग
4. विश्लेषण
5. संश्लेषण
6. मूल्यांकन
7. आरेखण, चित्रांकन
8. उपकरण संचालन
9. सामाजिक प्रतिभा
10. अभिरुचि
11. सृजनात्मकता

उपर्युक्त के मूल्यांकन हेतु निम्नलिखित घटकों को मानदण्ड बनाया जा सकता है :[2,5,7]

1. प्रश्नोत्तरी--1 घोषित, अघोषित ।
2. लिखित परीक्षा--1 वस्तुनिष्ठ, लघुउत्तर, दीर्घ उत्तर ।
3. नियत कार्य–1 कक्षा, गृह ।
4. प्रायोगिक, प्रोजेक्ट 1 प्रायोजना 1-1 व्यक्तिगत, सामूहिक ।
5. परिसंवाद, शोध / फील्ड वर्क, सामूहिक परिचर्चा
6. व्यक्तिगत गुण

अभिकल्पन

सारणी—1 : विभिन्न घटको हेतु परीक्षा की आवृत्ति, प्रश्नों की संख्या, परीक्षा की अवधि, शिक्षण सत्र में परीक्षा की कुल संख्या, परीक्षा का प्रतिशत भाग का अभिकल्पन

क्र० सं० घटक	परीक्षा की आवृत्ति	प्रश्नों की संख्या	परीक्षा की अवधि मिनट	शिक्षण सत्र में परीक्षा की कुल संख्या	परीक्षा का प्रतिशत भाग
1—प्रश्नोत्तरी					
अ—घोषित	प्रति 4 पाठ की समाप्ति पर	5	10	15	5

1	2	3	4	5	6
ब—अधोषित	प्रति 4 पाठ की समाप्ति पर	5	10	15	5
2—लिखित परीक्षा					
अ—वस्तुनिष्ठ	प्रति 4 पाठ की समाप्ति पर	10	15	8	10
ब—लघु उत्तरी	प्रति 4 पाठ की समाप्ति पर	10	20	8	10
स—दीर्घ उत्तरी	प्रति 10 पाठ की समप्ति पर	5	35	5	15
3—नियत कार्य					
अ—कक्षा	प्रति 4 पाठ की समाप्ति पर	1-2	20	8	5
ब—गृह	प्रति 4 पाठ की समाप्ति पर	1-2	--	16	5
4—प्रोजेक्ट/प्रायोगिकी					
अ—व्यक्तिगत प्रोजेक्ट	प्रति 4 माह	1	--	2	8
ब—सामूहिक प्रोजेक्ट	प्रति 4 माह	1	—	2	4
स—प्रायोगिक	प्रति 15 दिन	1	30	8	8
5—परिसंवाद, शोध आदि					
अ—परिसंवाद	प्रति 4 माह	1	20	2	4
ब—सामूहिक परिचर्चा	प्रति माह	1	30	8	3
स—शोध/फील्ड वर्क	प्रति सत्र	–	—	1	3
6—व्यक्तिगत गुण	—	–	--	–	15

सारणी/2 : घोषित, अघोषित प्रश्नोत्तरी; वस्तु निष्ठ एवं लघु उत्तरी लिखित परीक्षाओं हेतु अंक तालिका का अभिकल्पन

क्र० सं०	परीक्षा संख्या	प्राप्तांक	ग्रेड
1	1		
2	2		

साधणी—3 : दीर्घ उत्तरपरीक्षा, कक्षा एवं गृह नियत कार्यों हेतु अंक तालिका का अभिकल्पन

क्र० सं०	प्राप्तांक					योग	ग्रेड
	गुण	गति	विधि	परिशुद्धता	मौलिकता		
1							
2							

सारणी—4 व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रायोजना (प्रोजेक्ट) हेतु अंक तालिका का अभिकल्पन

क्र० सं०	प्रायोजना सं०	प्राप्तांक			योग	ग्रेड
		अभिकल्पन	प्रस्तुतीकरण	व्यक्तिगत विकास		
1	1					
2	2					

साराणी—5 : प्रायोगिक शोध एवं फील्ड वर्क हेतु अंक तालिका का अभिकल्पन

क्र० सं०	प्रयोग सं०	प्राप्तांक					योग	ग्रेड
		सामान्य दृष्टिकोण	तकनीकी	परिशुद्धता	व्याख्या	निष्कर्ष		
1	1							
2	2							

सारणी--6 : सामूहिक परिचर्चा एवं परिसंवाद हेतु अंक तालिका का अभिकल्पन

क्र० सं०	प्राप्तांक			योग	ग्रेड
	विषयवस्तु	व्याख्या	प्रस्तुतीकरण		

सारणी--7 : व्यक्ति गुण हेतु अंक तालिका का अभिकल्पन

क्र० सं०	व्यक्तिगत गुण	प्राप्तांक 5	4	3	2	1
1--	अच्छे छात्र, अध्यापक एवं साहित्य की प्रशंसा					
2--	गृहकार्य, प्रायोगिक तथा परीक्षा हेतु तत्पर					
3—	विषय के प्रत्येक विवरण की सूक्ष्मता से परख					
4--	निष्कर्ष के पूर्व निराकरण के प्रत्येक पक्ष की परख					
5--	अन्यायसंगत प्रस्ताव को स्वीकार न करना					
6--	समस्याओं को पूर्ण समाधान के पश्चात् ही छोड़ना					
7--	व्याख्यान के प्रति एकाग्रता					
8--	किसी भी कार्य के निष्पादन में रुचि					
9--	नियमितता					
10--	परिश्रम					
11--	सूत्रपात					
12--	मौलिकता					

संदर्भ

1. Duggal, S. L. : System of internal assessment in education. *University*, 1968, 6(11), 14-18.
2. Julka, Satya Pal : Examination Reforms I. Internal assessment, *Univ. Affairs*, 1976 (3), 6–7.
3. Mann, S, S. : Critique of internal assessment system. *Progress of Education*, 1969 43 (2) 412-12.
4. Natarajan, V. : Instructional objectives in the teaching of surveying, 1970, *Technician Teacher*.
5. Natarajan, V. : Monograph on internal assessment for Universities, 1977, Association of Indian Universities, Delhi.
6. Raina, T.N. : Relationship between external examination and internal assessment – *Teacher Edudation* 1953, 8 (1), 25-38.
7. Trivedi, N. H. : Internal assessment *Educational Review* 1960, 75 (2), 25-27.

Jour. U. P. Govt. College Acad. Soc., 1985-86, Vol. 2, P. 235-242
उ० प्र० राज० महा० एकेड० सोसाइटी शोध पत्रिका १९८५-८६, खंड-२, पृ० २३५-२४२

Industrial Sickness In India

Shiv Nayak Singh, Mahavir Prasad Agrawal
Department of Commerce, Govt. P. G. College, Rishikesh

सारांश

औद्योगिक रुग्णता आज भारत की एक प्रमुख औद्योगिक समस्या है। यह न केवल स्वस्थ्य औद्योगिक विकास एवं अर्थ व्यवस्था को ही पंगु बना रही हैं वरन् भावी उद्योगपतियों, साहसियों के विकासशील एवं प्रेरणात्मक दृष्टिकोण को भी आघात पहुँचा रही है। रुग्णता क्या है? इसे कैसे पहचाना जाये ताकि समय पर इलाज हो सके, की संक्षिप्त विवेचना "निधि प्रवाह अनुपात" के आधार पर प्रस्तुत है।

ABSTRACT

To-day, industriral sickness is an alarming industrial pro: blem of India. It is not only crippling the healthy base of industrial development and economy of the country but is also retarding the spirit of initiative and developmental out-look of prospective enterp reneure. What is sickness? How can it be diagnosed, is briefly discussed in this article on the basis of " Fund Flow Ratios".

INTRODUCTION :

To-day, India is facing a number of proclems on social and economic fronts The problem of industrial sickness is the most burning problem of to-day as well as of tomorrow of modern India. The problem is Socio-economic in character. The magnitude of the problem is constantly advancing and is causing grave social and economic dangers. This problemetic situation has infused the idea among the national planners, academicians, managers of the sick units, heads of the term lending financial institutions, commercial banks, practicing professionals etc. to

assemble together and ponder over the issue. The problem of industrial sickness is very grave in the present set up of the Indian economy. This chaotic situation calls for immediate and projected cures, recipes and remedies in order to prevent the loss in production, employment opportunities, physical assets, saving, recycling of funds, imported and indigenous technology, the generation of social wealth and state revenue etc. Industrial sickness is not only crippling the healthy base of industrial development, social fabric and economic system of the country but is also retarding the spirit of initiative and developmental outlook of the prospective entrepreneurs. In brief, never before has sickness in industries–large, medium and small. affected the economy so adversely as it is now affecting.

CONCEPT OF INDUSTRIAL SICKNESS :

The developed countries of the world are dealing with the phenomenon of 'Corporate Bankruptcies'or 'Corporate Insolvencies'. India has coined its own terminology of 'Industrial Sickness'. Industrial sickness is a blanket term. It has not been defined as yet in the sense of gradation of sickness. However, Reserve Bank of India and the study Team of State Bank of India have made an endeavour in this sphere. The R.B.I. has defined the concept of industrial sickness from functional financial point of view and has also tried to unveil the reasons of the sickness. The base adopted by R.B.I. is :-

1. Cash loss before allowing depreciation for atleast three consecutive years.
2. Imbalance in financial structure caused by —
   (a) Worsening current Ratio

   $$\text{Current Ratio} = \frac{\text{Total Current Assets}}{\text{Total Current liabilities}}$$

   (b) worsening debt—equity Ratio

   $$\text{Debt Equity Ratio} = \frac{\text{Net Worth}}{\text{Total external liabilities}}$$

Similarly, the study Team of S. B. I. has defined Industrial sickness in its own way. According to its criteria the unit is said to be sick, :—

(i) When it fails to generate internal fund and surpluses on a continuous basis,

(ii) When it depends for its survival on frequent external funds and assistance.

(iii) When it incurs continuing cash losses for atleast three consecutive years.

According to another school of thought only those units may be deemeed as sick where a major part of their equity share capital and reserves is wiped out by way of continuing cash losses. All these concepts reveal the basic symptoms of industrial sickness caused by continuing cash losses and consequently the inability of the sick units to honour their business commitments, their dependence for survival on external help of technological, managerial and financial character. Basically the concept of industrial sickness exhibits the deteriorating operational efficiency of the industrial units—large, medium or small, which is caused by a number of internal, external or combind factors. On the basis of Break-even Analysis a unit is said to be sick when it is operating at less than break-even point. Similarly on the basis of fund flow Analysis a unit touches the peak of sickness when the value of its profitability as well as liquidity is zero or negative. All these notions merely indicate the symptoms of sickness of a unit. The criteria adopted and the definition envisaged by R. B. I. merely helps us in categorising units as sick or insolvent and non-sick or viable, but does not help us in understanding the gradation of sickness. The various phases of gradation of sickness which may occur in any unit large, medium or small, are :-

1. Peak of viability, healthiness or well being starts of the unit.
1. Stage when the unit is normally healthy.
3. Stage when the process of sickness starts in the unit.
4. Stage when the unit if neither sick nor viable.
5. Stage when unit continues to be sick.
6. Stage when unit coutinues to be sick but improving.
7. Peak of sickness or the plight when the unit is very near to complete collapse or insolvancy.
8. Trap of sickness.

ROLE OF FLUND FLOW RATIO:

We can very well solve the above problems with the help of Fund Flow Ratio. Two parameters namely profitability and liquidity may be chosen to calculate the pR (profitability Ratio) and LR (Liquidity Ratio) with the help of F. F. R. (Fund Flow Ratio) For the purpose of this analysis GOFG (Gross Operating Fund Generation) may be taken as profit before Tax plus non cash charges such as depreciation, diminuition and wastage in the value of assets, prepaid and outstanding expenses, accrued incomes, obsolete irrecoverable assets and receipts, appropriation of earned profit, increase/ decrease in the value of fixed assets on account of revaluation and fixed assets written off. This may be taken as the prime indicator for measuring total profitability of the organisation. In practice, the whole amount of

profit is not released as cash and the huge amout is exhausted due to the payment of income tax and purchase of noncash current assets. Thus the NOCG (Net Operating Cash Generation) may be ascertained by deducting income tax plus investment in non-cash current assets such as stock and debtors etc. out of the GOFG. This may be taken as the prime indicator of liquidity of the organisation. Now we can very well calculate the Profitability Ratio and Liquidity Ratio with the help of GOFG and NOCG as shown below :—

1. $PR = \frac{GOFG}{NOCG}$ 2. $LR = \frac{NOCG}{GOFG}$

We may denote P. R. and L. R. by A and B respectively. The following frame work may be evolved with the help of these two parameters by categorising both profitability and liquidity as High, Medium and Low or lack of profitability and liquidity.

ANALYSIS FRAMEWORK

Profitability (A)	Liquidity (B)	High B_1	Medium B_2	Low or lack or liquidily B_2
High A_1		Peak of viability	Normal Healthiness	Starting of Latent sickness
		Unit is poised for growth and development	Normal operations	Business is expanding
		A_1 B_1	A_1 B_2	A_1 A_2
		Interpretation L=p=1 L>1 P>1	Interpretiation P= or>1 L > 0 or <1	Interpretation P=1 or>1 L < 0 or L=0 Needs watch and timely control

Medium A_2	Starting of Latent sickness Working capital squeeze or idle cash A_2 B_1 Interpretation $L=1$ or >1 $P<1$ or >0 Needs watch and timely control	Neither sick nor viable Unstable operations. A_2 B_2 Interpretation $P>0$ but <1 $L>0$ but <1 Needs watch and timely control	Sick but Reviving Over trading A_2 B_2 Interpretation $P>0$ but <1 $L<0$ but $L=0$ Needs watch and timely control
Low or Lack of profitability A_2	Continuance of sickness Under trading liquidation may take place A_2 B_1 Interpretation $P=0$ or $P<0$ $L=1$ or >1 Needs watch and timely control	Sick but reviving Contracting business A_2 B_2 Interpretation $P<0$ $L>0$ but <1 Needs watch & timely control	Peak of sickness Continuing cash losses are being financed by exter nal borrowing A_2 B_2 Interpretation $P=0$ or <0 $L=0$ or <0 Ripe for complete closure or collapse

DETAILED INTERPRETATION OF THE ABOVE FRAME-WORK

The above frame-work analysis involves the interpretation of positive as well as negative values of profitability and Liquidity Ratio.

1. **Peak of Viability** : A_1 B_1 exhibits the peak of viability, healthiness and well being state of the industrial concern. In this case the positive values of profitability and liquidity ratio are always one or greater than one. The concern is poised for rapid growth and development.

1. **Normal Healthiness** : A_1 B_2 states the normal healthiness of the enterprise. Thus, the profitability/ratio is always one or greater than zero or smaller than one. The Liquidity Ratio ranges between zero and one.

3, **Starting of Latent Sickness** : A_1 B_3 denotes the stage when sickness starts in the concern. The positive value of Profitability Ratio is one or greater than one but the value of Liquidity Ratio is zero or negative. Similarly A_2 B_1 also indicates the beginning of sickness because the liquidity is high but the Profitability is medium. Thus LR is always positive and either one but greater than one. The PR is always smaller than one but greater than zero. In other words, the PR ranges betwean zero and one. Both these stages show latent and inherent-sickness.

4. **Units Neither Sick nor Viable :** A_2 B_2 indicates the state where the positive values of PR and LR are between zero and one and exhibits the unstable operations.
5. **Unit continues to be sick**:- A_3 B_1 indicates the stage when unit continues to be sick, because the positive value of LR is either one or greater than one but the value of PR is always zero or negative. The unit may go into liquidation because the Liquidity is high but the Profitability is negative. This may be a case of under trading.

6. **Unit continues to be sick but improving or reviving**:- A_2 B_3 indicates the stage when unit continues to be sick but reviving. The positive value of PR is greater than zero but the value of LR is always negative. The unit may resort to overr trading in order to escape out of the sickness. But it is not useful strategy or remedy to cure sickness.

Similarly A_3 B_2 also exhibits the stage when unit continues to be sick but reviving on account of contracting business. But it is not healthy cure to eradicate sickness because the positive value of LR is greater than zero but smaller than one and the value of PR is negative. Both these stages show manifest sickness

7. **Peak of Sickness**: A_3B_3 denotes the peak of sickness or the stage when the values of profitability and Liqudiity Ratio are negative. This is the stage when sick unit starts to finance its continuing cash losses out of borrowed funds obtained from creditors, commercial banks and term-lending financial institutions. There is no generation of internal funds and unit depends frequently on external funds for its survival. In the absence of external help the unit may not exist or survive. In reality, the plight of such an industrial unit is very near to complete collapse and insolvency.

8. **Trap of sickness**: The trap of sickness may be denoted by A_2 B_3, A_3B_2 and A_3 B_3 in the above frame work. The unit faces an acute financial crisis when it is within the trap of sickness.

PRACTICAL UTILITY OF THIS ANALYSIS

The analysis helps us in numerous ways and is of universal utility. It reveals the following positive points:-

1. The Chief Accountants of the sick unit can very well identify, detect, prevent and cure the incipient sickness.
2. They can sense the latent nature of inhernt sickness, manifest sickness, temporary sickness and permanent sickness and can take timely suitable action to prevent and cure it.
3. This appoach helps us in identifying, analysing, measuring and forecasting the gradation of sickness.
4. This approch may be applied at micro, macro or meso level to study this burning problem of industrial sickness.
5. This model can also function as an early warning system for the management to investigate the internal and external or combined forces which are causing sickness in the concern.
6. This approach can make the management alert to take timely suitable actions. It is a well known proverb that stitch in time saves nine or prevention is better than cure. Thus, timely actions are curative, constructive and preventive in character and can help to detect and prevent this incipient sickness.
7. This model can also help the private and public sector banks, and all India level of term-lending financial institutions in granting and advancing loans and credit to sick unit when they actually need it on the basis of viability. These term-lending financial institutions should re-orient their roles as investor, as financing agency, and as a development agency. What is needed today is the more participative and purposeful role to encourage the diversified industrial development of various sectors of the economy.

9. This model can also assist the Technical Consultancy Organisations of the country in making judicious use of the services. These services should be given to repair and reprimand the latent sickness and temporary sickness first and permanent sickness afterwards.

9. This analysis frame-work can also help the healthy unit in amalgamating the sick units U/S 72 A of I. T. Act, 1961.

10. The units which are badly trapped in sickness should be nationalised, sustained or be allowed a mercy killing is a matter of grave concern. The above analysis can help the Government to take a right and corrective stand regarding

these issues. What I personally feel and very strongly feel is that huge social cost is involved in both the cases either sustaining the sick units or reviving the sick units.

11. This ratio analysis has also its own limitations. But we can make horizental and vertical applications of these ratios. Thus, it can help the corporate law-makers, national planners, economic, fiscal and monetary policy makers. and tax authorities to frame policies which are conducive for reviving sick units and strengthening the healthy base for rapid economic development and social reformation.

12. This analysis also necessitates the idea of imparting training to new entrepreneurs who are daring to step in socially and economically backward regions of the country. The training courses should embrace the knowledge of Industrial Engineering, Social & Human Engineering, Legal Enginecring, Management Engineering, Financial Engineering and Socio-economic feasible studies.

REFERENCES

1. Chakraborty, S. K & Sen, P. K., Industrial Sickness & Revival in India, U. P. 248-254

2. Gupta, K. R., Issues in Indian Industry, P. 18
3. Sharma, H. L., Industrial Sickness, PP. 1-10